

ब्रज के भक्त (सम्पूर्ण)

लेखक :
डा० अवधबिहारी लाल कपूर

प्रकाशक :
गोपेश कपूर

राधा रमण निवास ट्रस्ट
श्री गौरांग आश्रम
आई० ओ० पी० कॉलेज के सामने
रमणरेती
बृन्दावन (मथुरा)
इंडिया
दूरभाष : 0565-2540616

403, अंगद अपार्टमेन्ट
जी० डी० मिश्रा पथ, रोड नम्बर 2
न्यू पी० पी० कॉलोनी
पटना-800013 (इंडिया)
पोस्ट बॉक्स नम्बर 210
दूरभाष : 0612-2260886, 09835014511
ई मेल : gkapoor@sancharnet.in
: gkapoor@droblkapoor.info
वेब-साइट : www.droblkapoor.info

प्रकाशक : गोपेश कपूर
403, अंगद अपार्टमेन्ट, जी० डी० मिश्रा पथ
रोड नम्बर 2, न्यू पी० पी० कॉलोनी
पटना-800013 (इंडिया)

प्रकाशन तिथि : अप्रैल 5, 2007

संस्करण : प्रथम 1982 – 2000 प्रतियाँ
द्वितीय 1984 – 1100 प्रतियाँ
तृतीय 1985 – 1100 प्रतियाँ
चतुर्थ 1989 – 2100 प्रतियाँ
पंचम् 1994 – 2100 प्रतियाँ
षष्ठम् 1996 – 1100 प्रतियाँ
सप्तम् 1998 – 1100 प्रतियाँ
अष्टम् 2001 – 500 प्रतियाँ
नवम् 2003 – 1200 प्रतियाँ
दशम् 2005 – 1200 प्रतियाँ
एकादश 2007 – 1550 प्रतियाँ

मूल्य : 125 रुपये

अधिकार : © सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

मुद्रक : अरिन्दम घोष
दि इंडियन प्रेस प्रा० लि०
36, पन्नालाल रोड, इलाहाबाद-211002 (उत्तर प्रदेश)
दूरभाष : 0532-2461433, 09839051062

प्राप्ति स्थान :

1. खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अटखम्भा बाजार, बृन्दावन-281121
दूरभाष : (0565) 2443101 (दु०) 2442100 (नि०)
2. राधा रमण निवास ट्रस्ट, श्री गौरांग आश्रम
आई० ओ० पी० कॉलेज के सामने, रमणरेती
बृन्दावन (मथुरा), इंडिया दूरभाष : 0565-2540616

3. गोपेश कपूर
403, अंगद अपार्टमेंट, जी० डी० मिश्रा पथ
रोड नम्बर 2, न्यू पी० पी० कॉलोनी
पटना-800013 (इंडिया), पोस्ट बॉक्स नम्बर 210
दूरभाष : 0612-2260886, 9835014511
ई मेल : gkapoor@sancharnet.in, gkapoor@droblkapoor.info
वेब-साइट : www.droblkapoor.info
4. सुशील कुमार ताम्बी
प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
ए-3, आर्य नगर, मुरलीपुरा
जयपुर-302023 (राज०)
दूरभाष : 0141-2233765, गतिभाष : 09829547773
5. बुक्स-एन-ऐमी
सहदेव महतो मार्ग, श्रीकृष्णापुरी
पटना-800001
दूरभाष : 0612-2232888
6. जानकी प्रकाशन
अशोक राजपथ, चौहट्टा
पटना-800004
दूरभाष : 0612-2355310
7. अनुपम प्रकाशन
पटना कॉलेज के सामने
पटना-800004
दूरभाष : 0612-2370242, 2670441
8. लोक भारती पुस्तक विक्रेता
15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद-211 001
दूरभाष : 0532-2427210, 3295870, गतिभाष : 09335108090

VRAJA KE BHAKTA
Dr. O.B.L. Kapoor

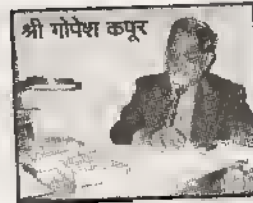
Rs. 125/-

॥

एकादश संस्करण के सम्बन्ध में

॥

दशम् संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया। एकादश संस्करण आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। कागज का मूल्य एवं छपाई आदि में वृद्धि के कारण इस संस्करण का मूल्य 125 रुपये रखने के लिए बाध्य हूँ।



मैंने दशम् संस्करण में बृज के रसिकाचार्य खण्ड एक और खण्ड दो दोनों को एक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करने की बात कही थी। ये पुस्तक सभी पुस्तक विक्रेताओं के पास सितम्बर 2006 से उपलब्ध है।

नव-भक्तपाल के चार खण्ड पंचम्, षष्ठम्, सप्तम् एवं अष्टम् जिसमें राजस्थान के भक्तों का विवरण है, कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज किया जा चुका है। अप्रैल 2007 में उपलब्ध हो जायेगी।

श्री श्री बाबा गौरांग दास जी महाराज के अलौकिक चरित्र का तीसरा संस्करण भी कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज किया जा चुका है। यह पुस्तक भी अप्रैल 2007 में ही सभी पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ उपलब्ध हो जायेगी।

पाठक यदि डॉ० अवध बिहारी लाल कपूर की किसी विशेष पुस्तक में रुचि रखते हों तो मुझसे निम्न पते पर सम्पर्क करें। मैं उस पुस्तक विशेष का मुद्रण पहले करवाने का प्रयास करूँगा।

विनीत

गोपेश कपूर

राधा रमण निवास ट्रस्ट

(श्री गौरांग आश्रम)

आई० ओ० पी० कालेज के सामने

रमणरेती, वृन्दावन (मथुरा) इंडिया

दूरभाष : 0565-2540616

403, अंगद अपार्टमेन्ट

जी० डी० मिश्रा पथ, रोड नम्बर 2

न्यू पी० पी० कॉलोनी

पटना-800013 (इंडिया)

पोस्ट बॉक्स नम्बर 210

दूरभाष : 2260886, 9835014511

ई मेल : gkapoor@sancharnet.in

: gkapoor@droblkapoor.info

वेब-साइट : www.droblkapoor.info

ब्रजके भक्त (प्रथम—खण्ड)

विषय सूची

क्रम	पृष्ठ
१. श्रीनन्दकिशोरदास गोस्वामी प्रभु	१
२. „ हरिदास बाबाजी	५
३. „ जयकृष्णदास बाबाजी	७
४. „ कृष्णदास बाबाजी (गोवर्धन)	१४
५. „ श्रीकृष्णदास बाबाजी (रनवारी)	२४
६. „ नित्यानन्ददास बाबाजी (ब्रह्मकुण्ड)	२७
७. „ मधुसूदनदास बाबाजी (सूर्यकुण्ड)	२६
८. „ जगन्नाथदास बाबाजी (वृन्दावन, नवद्वीप)	३५
९. „ गौरकिशोर शिरोमणि (वृन्दावन)	४७
१०. „ गौरचरणदास बाबाजी (महावन)	५७
११. „ गौरदास बाबाजी	६१
१२. „ गिरिधारीदास बाबाजी	६२
१३. „ मनोहरदास बाबाजी (गोविन्दकुण्ड)	६५
१४. „ दुर्नभदास बाबाजी (गोविन्दकुण्ड)	६७
१५. नन्दग्रामके एक महात्मा और पुजारिका भूत	६८
१६. श्रीराधावल्लभ गोस्वामी (वृन्दावन)	७१
१७. „ नित्यानन्ददास बाबाजी (गोवर्धन)	७४
१८. „ बलरामदास बाबाजी (वृन्दावन)	७६
१९. „ माधवदास बाबाजी	८१
२०. „ राधारमण घोष भागवतभूषण (वृन्दावन)	८७
२१. „ रामहरिदास बाबाजी (वृन्दावन, राधाकुण्ड)	९१
२२. „ सीतानाथदास बाबाजी (गोवर्धन)	९५
२३. „ वृन्दावनदास बाबाजी (धरसाना)	९७
२४. श्रीपाद नवकिशोर गोस्वामी एवं श्रीपाद लोचनानन्द गोस्वामी	९८
२५. „ ग्वारिया बाबा (वृन्दावन)	१०३
२६. „ लालाबाबू (वृन्दावन, गोवर्धन)	११५

२७. पिसी माँ गोस्वामिनी और गोपेश्वर गोस्वामी	१२५
२८. श्रीदुर्गी माँ	१३७
२९. ,, श्यामसुन्दरदास बाबाजी (मुश्निदाबाद, वृन्दावन)	१४५
३०. श्रीपाद ब्रह्मानन्द गोस्वामी प्रभु (शृङ्गारवट, वृन्दावन)	१४८
३१. ,, प्रेमानन्द गोस्वामी प्रभुपाद (शृङ्गारवट, वृन्दावन)	१५१
३२. ,, जगदीशदास बाबाजी (वृन्दावन)	१५३
३३. पण्डित रामकृष्णदास बाबाजी (वृन्दावन)	१६२
३४. श्रीगौरांगदास बाबाजी (वृन्दावन)	२००
३५. ,, कृष्णप्रेम (रोनाल्ड निक्सन) और यशोदा माँ	२२७
३६. स्वामी श्रीबलदेवदासजी (वृन्दावन)	२५६
३७. स्वामी श्रीरूपमाधुरीशरणजी (वृन्दावन)	२६१
३८. श्रीरामदास काठियाबाबा (वृन्दावन)	२६६
३९. ,, सन्तदास काठियाबाबा (वृन्दावन)	२७६
४०. भक्त श्रीभोलानाथजी (भोरी सखी)	२८३
४१. गोस्वामी श्रीगल्लूजी महाराज (वृन्दावन)	२८८
४२. श्रीललितकिशोरजी एवं श्रीललितमाधुरीजी	२९५
४३. भक्त श्रीनवलकिशोरदासजी	३०३
४४. मुसलमान भक्त गुलाब सखीजी	३११
४५. श्रीअद्वैतदास बाबाजी (गोवर्धन)	३१५
४६. ,, अनन्तदास बाबाजी (करहला)	३२५
४७. ,, कृपासिन्धुदास बाबाजी (वृन्दावन)	३२७
४८. भक्त दादर रहमान (मथुरा)	३३३
४९. श्रीफूल बाबाजी (वृन्दावन)	३४१
५०. ,, शचीनन्दनदास बाबा (बरसाना)	३४६
५१. ,, प्रियाशरण बाबाजी (वृन्दावन, बरसाना)	३५२
५२. ,, जुगलदास बाबाजी (वृन्दावन)	३६३
५३. ,, अवधदास बाबाजी (वृन्दावन)	३६६
५४. स्वामी श्रीकृष्णनन्ददासजी (हिंडौल)	३७३



ब्रजके भक्त
प्रथम खण्ड

श्रीनन्दकिशोरदास गोस्वामी प्रभु

(शृङ्गारवट, वृन्दावन)

बंग देशके बाँकुड़ा जिलेके पुरुणिया पाटके श्रीरसिकानन्द प्रभुके वनिष्ठ भ्राता श्रीनन्दकिशोरदास गोस्वामी श्रीश्रीमन्नित्यानन्द प्रभुकी सातवीं पीढ़ीमें । वे शैशवसे ही विषयविरक्त थे । नित्यानन्द-सन्तान होनेके नाते वैष्णव अष्टाचारके अनुसार वैष्णव मात्रके पूज्य थे । छोटे-बड़े, गृहस्थ और त्यागी सब उसी दृष्टिसे उनका आदर करते थे । पर यह उनके 'तृणादपि सुनीचेन' भावके प्रतिकूल था । इससे उन्हें हार्दिक कष्ट होता था । उनकी प्रबल इच्छा थी भगवत्-कृपालब्ध किसी विशिष्ट वैष्णवके आनुगत्यमें भजन-शिक्षा ग्रहण करनेकी । यह भी नित्यानन्द प्रभुके वंशज होनेके कारण उनके लिए सम्भव नहीं था । जो सभी वैष्णवोंके पूज्य थे और स्वयं आचार्य स्वरूप थे, उन्हें कोई वैष्णव अपने अनुगत मानकर भजन-शिक्षा कैसे देता ?

इसलिए वे चुपचाप घर छोड़कर वृन्दावन चले गये । उस समय गौड़ीय-वैष्णव समाजके भृकुटमणि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपाद वृन्दावनमें रहते थे । उनसे उन्होंने बिना अपने स्वरूपका परिचय दिये भजन-शिक्षा देने और शास्त्राध्ययन करानेकी प्रार्थना की । विश्वनाथ चक्रवर्तीपादने उनकी प्रार्थना स्वीकार की । कुछ दिन वे उनके आनुगत्यमें भजन और शास्त्राध्ययन करते रहे । किसीने न जाना कि वे नित्यानन्द-सन्तान हैं ।

पर उनकी माँ उनके बिना किसीसे कहे घर छोड़कर चले जानेके कारण बहुत दुःखी थीं । उन्होंने उन्हें खोजनेके लिए कई वैष्णवोंको इधर-उधर भेज रखा था । उनमें-से एक उन्हें खोजते-खोजते वृन्दावनमें चक्रवर्तीपादके पास जा पहुँचे । चक्रवर्तीपादको उन्होंने उनके स्वरूपका परिचय देते हुए उनकी माँकी दारुण व्यथाका वर्णन किया और घर लौटकर उनकी इच्छानुसार विवाह करनेकी आज्ञा देनेका अनुरोध किया ।

चक्रवर्तीपाद परमपूज्या माँ गोस्वामिनीकी इच्छाकी अवहेलना कैसे करते ? उन्होंने नन्दकिशोर गोस्वामीसे कहा—'आपने मुझे अपने शिक्षा-गुरुके रूपमें अङ्गीकार किया है । मैं यदि कुछ गुरु-दक्षिणा माँगूँ तो दोगे ?'

‘क्यों नहीं ? आप आज्ञा करें ।’ नन्दकिशोरजीने तुरन्त कहा ।

‘मेरी गुरु-दक्षिणा रूपमें आप अब माँकी आज्ञानुसार घर लौट जायें और विवाह करें ।’

नन्दकिशोरजी घर लौट गये, विवाह किया और एक पुत्रको जन्म दिया । उसके पश्चात् वे फिर गृह त्यागकर वृन्दावन चले गये । अपने साथ सम्वत् १८१५ की बादशाही सनदके साथ श्रीश्रीनिताइ-गौरांग विग्रह लेते गये, जिनकी आज भी श्रृङ्गारवटमें विधिवत् सेवा-पूजा चल रही है । उनका अलौकिक प्रभाव देख तत्कालीन जोधपुरके राजाने उन्हें बहुत-सी भू-सम्पत्ति प्रदान की, जिसका उनके वंशज निताइ-गौरांगकी सेवामें उपयोग कर रहे हैं ।

श्रीपाद नन्दकिशोरजीके पास भोंदू नामका एक ब्रजवासी बालक रहता था, जो उनकी गैयोंकी देखभाल करता था । उसे लोग भोंदू इसलिए कहते थे कि उसे छल-कपट और चतुराई छूकर भी नहीं गये थे । उससे यदि उपहासमें कोई कुछ झूठ भी कह देता, तो वह उसे मान लेता । शङ्का करना तो उसे आता ही न था । वह नित्य बालभोग-प्रसाद पाकर श्रीपादकी गायें चराने जमुनापार भांडीरवनमें जाया करता । उससे किसीने कहा था कि भांडीरवनमें नन्दलाल ग्वाल-बाल सहित गायें चराने जाते हैं । वह यह सोचकर खुश होता कि किसी दिन उनमें भेंट होगी, तब वह उनसे मित्रता कर लेगा और उनके साथ खेला-कूदा करेगा ।

भोले-भाले भोंदूके हृदयकी भाव-तरङ्ग उमड़-धुमड़कर जा टकरायी भक्तवत्सल भगवान्के मन-मन्दिरमें । उनमें भी एक अपूर्व आलोड़नकी सृष्टि हुई और जाग पड़ी एक नयी वासना भोंदूके साथ मित्रता कर खेल-कूदका आनन्द लेनेकी ।

तो हो गयी एक दिन भेंट दोनोंमें । भेंटको मित्रतामें बदलते देर न लगी । भोंदू नित्य कुछ खाने-पीनेकी सामग्री अपने साथ ले जाता । नन्दलाल और उनके साथी ग्वाल-बाल उसके साथ खाते-पीते, खेलते और नाचते-कूदते । कई दिन श्रीपादने देखा भोंदूको सामान सिरपर ढोकर ले जाते । एक दिन उन्होंने पूछा—‘भोंदू, यह क्या ले जा रहा है ?’

‘जे दाल-बाटीके ताई है श्रीपाद ।’

‘दाल-बाटी ? किसके लिए ?’

‘नन्दलाल और बिनके साथी ग्वाल-बालनके लिए । हम सब मिलके रोज दाल-बाटी बनामें हैं ।’

‘नन्दलाल ! कौनसे नन्दलाल रे ?’

‘बेई बंसीबारे, जो भाँडीरवनमें गया चरामें हैं ।’

‘बंसीबारे ! भाँडीरवनमें गया चरामें हैं ! अच्छा, बता तो उनका मुखारबिन्द और वेशभूषा कैसी हैं ?’

‘वे बड़े मलूक हैं । सिर पे मोर-मुकुट धारन करे हैं । काननमें कुण्डल, गनेमें बनमाला धारन करै हैं और पीरे रंगकौ ओढ़ना ओढ़े हैं । सच वे बड़े मलूक लगै हैं ।’

श्रीपाद आश्चर्यचकित नेत्रोंसे भोंदूकी ओर देखते रह गये । उन्हें उसकी बातका विश्वास नहीं हो रहा था । पर वे विश्वास किये बिना रह भी नहीं सक रहे थे; क्योंकि वे जानते थे भोंदू झूठ नहीं बोलता ।

उन्होंने कहा—‘अच्छा भोंदू, एक दिन नन्दलाल और उनके साथियोंको यहाँ ले आना । उनसे कहना श्रीपादके यहाँ आपका दाल-बाटीका निमन्त्रण है । वे आ जायेंगे न ?’

‘आमेंगे ज्यों नई । मैं धिनकूँ लै आऊँगो’ भोंदूने खुश होकर कहा ।

उस दिन भाँडीरवन जाते समय भोंदू सोच रहा था—‘आज नन्दलालसे श्रीपादके निमन्त्रणकी कहूँगा, तो वह कितना खुश होगा !’ पर जब उसने उनसे निमन्त्रणकी बात कही, तो वे बोले—‘हम काजकी नौतौ-औतौ नायं खामें ।’

भोंदूका चेहरा मुस्त पड़ गया । उसने कहा—‘नायें नन्दलाल, तोको चलनौ परैगौ । मैंने श्रीपादसे कह दी है, मैं तोय लै जाऊँगो ।’

‘नायं, हम नायें जायें । हमकूँ श्रीपाद सों कह करनी ?’ नन्दलालने गरदन हिलाकर मुँह बिचकाते हुए कहा ।

भोंदू रोष करना नहीं जानता था, पर उस समय उसे रोष आ गया । उसने नन्दलालसे कुछ नहीं कहा । पर वह अपनी गीयोंको अलग कर कहीं अन्यत्र जान लगा, जेमे वह नन्दलालसे कह रहा हो—‘तुझे श्रीपादसे कुछ नहीं करना, तो मुझे भी तुझसे कुछ नहीं करना । बस, हो चुकी मेरी-तेरी मैत्रो ।’

वह थोड़ी दूर ही जा पाया था कि नन्दलालने पुकारा—‘भोंदू, ओ भोंदू ! नैक सुन जा ।’

भोंदू क्या अब सुननेवाला था ? वह और भी तेजीसे गैयोंको हाँकने लगा । भोंदू सुननेवाला नहीं था, तो भगवान् भी उसे छोड़नेवाले कब थे ? वे भागे उसके पीछे-पीछे ।

वाह रे ब्रजके भगवान् ! तुम्हें ‘भगवान्’ कहते भी वाणी लजाती है । भगवान्, जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयकर्ता हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महेश जिनके अंशके भी अंश हैं, वे क्या किसी व्यक्तिके पीछे ऐसे भागते हैं, जैसे उनकी उससे कोई अपनी गरज अटकी हो, जैसे उसके रूठ जानेसे उनका त्रिलोकीका साम्राज्य छिन जानेवाला हो !

पर वे जिसके पीछे भागें वह भागकर जाय कहाँ ? नन्दलाल जा खड़े हुए भोंदूका रास्ता रोककर उसके सामने और बोले—‘सुनै नायँ ?’

उनका स्वर ऊँचा था, पर उसमें विनयका भाव था । भोंदूने उनके नेत्रोंकी ओर देखा, तो वे सजल थे । उसने कहा—‘कहा कहै ?’

‘मैं कहूँ, मैं श्रीपादको निमन्त्रण अस्वीकार नायँ करूँ । मैं तो कहूँ, मैं शृङ्गारवट नायँ जाऊँगी । तू तो भोरी है, जानै नायँ शृङ्गारवट राधारानीकौ टौर है । हुआँ दाऊ दादा कैसे जायगी ? मेरे सखा कैसे जायँगे ? श्रीपादकूँ ह्याँई आवनी होयगी अपने माये पै सामग्री लैकें । बे अपने हाथसे दाल-वाटी बनामैगे, तो हम पामैगे ।’ भोंदू प्रसन्न हो गया । उसने उसी प्रसन्न मुद्रामें श्रीपादसे जाकर सब कुछ निवेदन किया ।

श्रीपाद दूसरे दिन प्रचुर सामग्री अपने मस्तकपर वहनकर भाँडीरवन ले गये । वे राम-कृष्ण और ग्वान-बालोके साथ उनका क्रीड़ा-विनोद देखकर कृतार्थ हुए । थोड़ी देरमें सब कुछ अन्तर्हित हो गया । तब वे मूच्छित हो भूमिपर गिर पड़े । उस समय उन्हें आदेश हुआ—‘अधीर न हो । घर जाओ और मेरी लीला-स्थलियोंका वर्णन करो ।’ इस आदेशका पालन कर श्रीपादने ‘श्रीवृन्दावन-लीलामृत’ और ‘श्रीश्रीरसकलिका’ नामके दो ग्रंथोंका प्रणयन किया ।

श्रीहरिदास बाबाजी

(वृन्दावन)

त्रिलोकीमें जितने स्थान हैं सब त्रिलोकपति श्रीभगवान्के हैं। वे अपने आंशिक परमात्मस्वरूपसे सर्वत्र विराजमान हैं। पर उन्हें व्रजभूमि जितनी प्रिय है उतनी और कोई भूमि प्रिय नहीं। वे स्वयंरूपसे यहाँ सदा विराजमान हैं; पर उनके अन्य रूपोंको भी यदि इसका लोभ हो आये तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

एक बार, आजमे लगभग २०० वर्ष पूर्व, इसका लोभ जागा श्रीधामपुरीके श्रीजगन्नाथजीको। वे वृन्दावनमें मनोहर यमुनापुलिनपर वास करनेका लोभ संवरण न कर सके। पर वृन्दावन जायें कैसे? सर्वसमर्थ होते हुए भी वे अपने श्रीविग्रहरूपमें अपने भक्तोंके जैसा अधीन हैं वैसा और किसी रूपमें नहीं। भक्त ही उन्हें जहाँ चाहें ले जायें और जैमे चाहें रखें। उनके प्रेम-मेवा-रसका आस्वादन करनेके लिए ही तो अर्चाविग्रह रूपमें उनका अवतार है। इस रूपमें वे जो भी करना चाहते हैं अपने किसी भक्तको निमित्त बनाकर उसके सहयोगसे ही कर सकते हैं। वृन्दावन तो वे तभी जा सकते थे जब उनका कोई भक्त उन्हें ले जाता और वहाँ उनकी सेवा करनेको प्रस्तुत होता। उन्हें ऐसे एक भक्तकी खोज थी।

वृन्दावनमें हरिदास नामके रामानन्दी महात्मा यमुनातटपर भजन करते थे। बड़े अनुरागी महात्मा थे वे। दिन-रात प्रभुके चिन्तनमें डूबे रहते, उनके विरहमें अश्रुविसर्जन किया करते। अन्तमें प्रभुने उन्हें दर्शन दिये। वे उनकी रूप-माधुरी देख अपनी सुध-बुध खो बैठे। उन्हें एकटक निहारते-निहारते अचेतन हो गये। तब करुणानिधिने अपना हस्तकमल उनके मस्तकपर फेर उन्हें चेत कराया। चेतना आते ही उन्होंने अपना सिर उनके चरणोंमें रख दिया। उन्होंने अपनी अमृतमयी वाणीमें कहा—

‘वत्स ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारे निकट रहकर तुम्हारी प्रेममयी सेवाका सुखास्वादन करनेको लालायित हूँ। तुम जगन्नाथपुरी जाओ। इस

वर्षे आषाढ़में वहाँ जगन्नाथजीका विग्रह-परिवर्तन होगा। पुराना विग्रह तुम ले आना और इसी स्थलपर उसे स्थापितकर उसकी सेवा करना।'

इतना कह भगवान् अन्तर्धान हो गये। महात्मा उनके अदर्शनसे छटपट करने लगे। पर उनकी आज्ञाका स्मरण कर उन्होंने धैर्य धारण किया। वे अपने शिष्योंको साथ ले कीर्तन करते हुए जगन्नाथपुरीकी ओर चले पड़े। उस समय रेलकी सुविधा तो थी नहीं। पैदल ही बीहड़ जङ्गलोंमें-से होते हुए, नदी-नालों और पर्वतोंको पार करते हुए जगन्नाथपुरी पहुँचे।

जगन्नाथपुरीमें महा-महोत्सव था। चार दिन बाद छत्तीस वर्ष पीछे दो आषाढ़ पड़नेपर जगन्नाथजीका कलेवर बदले जानेका और उनके महाभिषेकका योग था। लाखों यात्री दूर-दूरसे आये थे। आनन्द और उत्साहका समुद्र उमड़ रहा था।

हरिदासजीने जगन्नाथजीके पुजारियोंके पास जाकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया। उन्होंने कहा—'जगन्नाथजीका पुराना कलेवर देनेका हमें अधिकार नहीं। आप राजासे मिलें।'

वे राजाके पास गये। राजाने उनका तेजोमय मुखमण्डल देख उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और आनेका कारण पूछा। उन्होंने भगवान्की आज्ञा बताकर उनसे जगन्नाथजीका पुराना विग्रह दिलवानेका आग्रह किया। राजाने कहा—'महाराज! आपको भगवान्की आज्ञा हुई है, पर मुझे तो ऐसा कोई आज्ञा नहीं। उत्तकी प्रत्यक्ष आज्ञाके बगैर मैं सदासे चली आयी रीतिका पालन करनेको विवश हूँ। सदासे जगन्नाथजीका नया कलेवर होनेपर पुराना कलेवर समुद्रमें प्रवाहित किया जाता रहा है। अतः इस बार भी वही करना होगा। आपकी प्रार्थना स्वीकार करना सम्भव नहीं। मुझे क्षमा करें।'

हरिदासजीने कहा—'यदि श्रीविग्रह सागरमें प्रवाहित होगे, तो मेरा शरीर भी उनके साथ प्रवाहित होगा।' इतना कह वे जा बैठे। समुद्र तटपर और अक्ष-जल त्यागकर प्रशान्त मनसे भगवान्का ध्यान करते हुए प्रतीक्षा करने लगे उस घड़ीकी, जब उन्हें जगन्नाथजीके श्रीविग्रहके साथ अपने शरीरको समुद्रमें प्रवाहित कर देना था।

अर्धरात्रिमें, जब राजा शयन कर रहे थे, जगन्नाथजीने उनके समक्ष प्रकट होकर मेघगम्भीर स्वरमें कहा—'वे महात्मा मेरी आज्ञासे मेरा कलेवर

माँगने तुम्हारे पास आये थे। तुमने उनका तिरस्कार किया। जाओ, उनसे क्षमा माँगो और उनकी आज्ञाका पालन करो। मेरा एक विग्रह अब वृन्दावनमें भी रहा करेगा।'

राजा भयभीत हो जाग पड़े। उसी समय कर्मचारियोंको भेषा महात्माजीकी खोज करने। जब उनका पता चल गया, राजा स्वयं गये समुद्र तटपर। उनके चरणोंमें गिरकर उनसे क्षमा-प्रार्थना की और उनकी आज्ञा पालन करनेका वचन दिया।

अभिषेकके पश्चात् राजाने एक विशाल रथमें श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलदाऊजी और श्रीसुभद्राजीको विराजमानकर धन-धान्य और सेनाके साथ उन्हें वृन्दावनके लिए निदा किया। हरिदासजी और उनके शिष्य उनके साथ परमानन्दपूर्वक कीर्तन करते हुए कई मासमें वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावनमें यमुना तटपर उसी स्थलपर, जहाँ वे भजन करते थे, एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण कर श्रीविग्रहोंको स्थापित किया।

आज भी वह मन्दिर और श्रीविग्रह उस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उसके सामने यमुना बह रही है और नीचे पक्का घाट बना है, जो 'जगन्नाथ घाट' के नामसे पुकारा जाता है। भक्तगण वृन्दावनमें उस स्थानपर जगन्नाथजीके दर्शन कर कृतार्थ होते हैं। जगन्नाथजीकी रथयात्राके दिन वहाँ दर्शकोंकी विशेष भीड़ होती है।

श्रीजयकृष्णदास बाबाजी

(काम्यबन)

भक्तको भगवान्को खोजना नहीं पड़ता। भगवान् स्वयं उसे खोज लेते हैं। भक्त जितना भगवान्के दर्शनकी इच्छा करता है, उससे कहीं अधिक भगवान् उसके दर्शनके लिए उतावले रहते हैं। भक्त जितना भगवान्को प्राप्त कर मन और प्राणसे उनकी सेवा करनेके लिए उत्सुक रहता है, उससे कहीं अधिक भगवान् उसकी सेवा ग्रहण करनेको लालायित रहते हैं। भक्तकी प्रेम-सेवामें भगवान्को जो सुख मिलता है, वह उन्हें वैकुण्ठमें भी नहीं

मिलता। तभी तो वे श्रीविग्रह रूपमें इस लोकमें आते हैं भक्तोंकी सेवा ग्रहण करने।

पर इस लोकमें आकर भी उनका मिलकर बिछुड़ जाने और बिछुड़कर मिल जानेका स्वभाव नहीं छूटता। लुका-छिपीका खेल उन्हें चिरकालसे प्रिय है। इस खेलमें भक्तोंपर जै वीतती है उसे उनके मित्र और कौन जानता है? वे जब मिलते हैं तो हठात् मिलते हैं, अनायास मिलते हैं, बिना बुलाये मिलते हैं; बिछुड़ते हैं तो हठात् बिछुड़ते हैं, बिना नोटिस दिये, बिना रहस किये, बिना चिरौरी-विनतीका या कुछ कहने-सुननेका अवसर दिये। उनके लिए तो इस लुका-छिपीमें लाभ-हानि बराबरका होता है; क्योंकि वे एकसे बिछुड़ते हैं, दूसरेसे मिलते हैं; पर जिस भक्तसे वे बिछुड़ते हैं, उसका सर्वस्व लुट जाता है।

आज भी वे स्वतन्त्रतापूर्वक दो भक्तोंसे लुका-छिपी खेल रहे हैं। एकसे मिलनेके लिए बंगालमें ब्रज तककी लम्बी यात्रा करके आये हैं; दूसरेकी ब्रजसे बंगाल वापस भेजनेको उत्सुक हैं। एककी सेवा त्याग रहे हैं, दूसरेकी ग्रहण करनेको उतावले हो गये हैं। जिनसे बिछुड़ रहे हैं, वे हैं श्रीनित्यानन्द प्रभुके वंशज, ढाकाके श्रीलक्ष्मीकान्त प्रभुके पुत्र, श्रीनवलकिशोर गोस्वामी; जिनसे मिल रहे हैं, वे हैं काम्यवनके श्रीजयकृष्णदास बाबाजी महाराज।

श्रीनवलकिशोर गोस्वामी आये थे ब्रज-दर्शन करने अपने ठाकुर श्रीराधा-मदनमोहनको साथ लेकर। जा रहे हैं, कुछ दिन श्रीजयकृष्णदास बाबाकी भजन-कुटीमें रहनेके पश्चात् अपने प्राणधनको छोड़कर। गत रात्रि श्रीराधा-मदनमोहनने स्वप्नमें आज्ञा की थी—'मैं तुम्हारी सेवासे परितुष्ट हूँ। अब इन बाबाजीकी सेवा ग्रहण करूँगा। इस स्थानसे नहीं जाऊँगा।' विदा होने समय श्रीनवलकिशोर गोस्वामी अश्रु-विसर्जन कर रहे हैं अपने हृदय-धनको अनायास खो देनेके कारण; श्रीजयकृष्णदास बाबा अश्रु-विसर्जन कर रहे हैं अपने हृदय-धनकी अनायास, अयाचित रूपसे प्राप्त कर आनन्दमें न समा सकनेके कारण। श्रीराधा-मदनमोहन इस दृश्यको देख रहे हैं चुपचाप, अनाखी विवशताके कारण।

श्रीराधा-मदनमोहन और उनके मेवक श्रीजयकृष्णदास बाबा काम्यवनमें अब आनन्दपूर्वक रहने लगे। कुछ दिन पश्चात् श्रीनवलकिशोर मोहनकी इच्छा से एक अल्पवयस्क बाबाजी भी आ गये और जयकृष्णदास

बाबाके पास रहकर श्रीराधामदनमोहनकी सेवामें उनका हाथ बटाने लगे । जयकृष्णदास बाबा उनके विनीत व्यवहार और सेवा-परिचयसे इतना प्रसन्न हुए कि उन्हें रागानुगा भजनकी शिक्षा देनेका सङ्कल्प किया । उन्होंने उनमें पूछा—‘तुम्हारी गुरु-प्रणालिका है ?’

नववयस्क बाबाजीने कहा—‘मैं नहीं जानता गुरु-प्रणालिका किसे कहते हैं । मैंने गुरुदेवसे इसके सम्बन्धमें कभी नहीं पूछा ।’

जयकृष्णदास बाबाने समझाते हुए कहा—‘रागानुगा मार्गके गुरु शिष्यको गुरु-प्रणालिका दिया करते हैं । गुरु-प्रणालिकामें शिष्यकी गुरु-परंपरा होती है, उसके गुरु, परमगुरु, परात्पर-गुरु आदिके नाम होते हैं । गुरु-प्रणालिकाके साथ गुरुदेव सिद्ध-प्रणालिका भी दिया करते हैं । सिद्ध-प्रणालिकामें रहता है शिष्य और गुरुवर्गके सिद्ध-देहों और उनके वर्ण, वयस, वेशभूषा, सेवादिका वर्णन । सिद्ध-गुरुदेवके आनुगत्यमें उनके कृपादत्त सिद्धगोपीरूपा मंजरी-देहसे राधा-कृष्णकी सेवा करनेका नाम है—रागानुगा भजन । इस प्रकारका भजन ही राधा-कृष्णकी प्रेम-सेवा प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है । यह भजन गुरु-प्रणालिकाके बिना सम्भव नहीं है । मैं तुम्हें इसकी शिक्षा देना चाहता हूँ । तुम्हें एक बार देश जाकर गुरुदेवसे गुरु-प्रणालिका प्राप्त करनी होगी ।’

छोटे बाबा थोड़े ही दिनोंमें श्रीजयकृष्णदास बाबाके स्निग्ध व्यवहार और उनके मधुर संगसे इतना मुग्ध हो गये थे कि रागानुगा भजनका लोभ जागनेपर भी उन्हें छोड़कर देश जानेके विचारने उन्हें अधीर कर दिया । वे रोने लगे । श्रीजयकृष्णदास बाबाने लीला-माधुर्य और रागानुगा-भजन-माधुर्यका बार-बार वर्णनकर किसी प्रकार छोटे बाबाको शान्त किया और गुरु-प्रणालिका लानेके लिए गौरमण्डल जानेको राजी किया ।

उस समय मथुरामें रेल नहीं थी । गौरमण्डल जानेके लिए हाथरस होकर जाना पड़ता था । एक दिन प्रातः जयकृष्णदास बाबाने छोटे बाबाको वड़े कष्टसे विदा किया । छोटे बाबा रोते-रोते जाने लगे । उन्हें हाथरस जाकर रात्रिमें गाड़ी पकड़नी थी । वे जानते थे कि गाड़ीपर बैठते ही उनके प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे । गाड़ीपर बैठें तो मृत्यु, न बैठें तो बाबाकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें मृत्यु । दोनों प्रकारमें मृत्युको निश्चित जान वे कातर स्वरसे राधारानी और वृन्दावनदेवीको पुकारकर कहने लगे—‘हे राधारानी !

हे वृन्दे ! तुम निश्चय ही मेरी अवस्थाको जान रही हो । फिर क्यों अपनी शरणमें आये इस दीन-हीन, असहाय सेवकको अपने चरणोंसे ठेल रही हो ? कृपा करो करुणामयी कि गाड़ीपर बैठनेकी अशुभ घड़ी आनेके पहले ही मेरे प्राण निकल जायँ ।'

राधारानीने छोटे बाबाकी पुकार सुन ली । उन्हें गाड़ीपर चढ़ना नहीं पड़ा । गाड़ी छूट गयी और बावाने लौट जानेका सङ्कल्प किया । इधर रात्रिमें वृन्दादेवीने जयकृष्णदास बाबाको स्वप्नमें डाँट बताया । उन्होंने कहा—'तूने क्यों उसे बाहर भेज दिया जब उसकी गुरु-प्रणाली तेरे ठाकुरके सिंहासनके नीचे हो रखी है ?'

जयकृष्णदास बाबाकी निद्रा भंग हुई । वे रो-रोकर वृन्दादेवीसे क्षमा-प्रार्थना करने लगे । शीघ्र स्नानकर मन्दिरमें गये । गुरु-प्रणाली सिंहासनपर रखी देख भाव-विह्वल हो गये । उसे उठाकर बार-बार छातीसे लगाने लगे । वृन्दादेवीकी कृपाका स्मरण करते हुए बाह्य संज्ञा-हीन हो गये । कुछ सुस्थ हो श्रीगोविन्दजीके मन्दिर गये । वहाँ वृन्दादेवीके दर्शन कर उनसे बार-बार प्रार्थना की छोटे बाबाको फिराकर ले आनेकी । फिर कुटियापर लौटकर दैनिक सेवा-कार्य करने लगे; पर मन छोटे बाबामें लगा रहा । 'वह तो कल रात गाड़ीपर बैठ गया होगा । गाड़ी बहुत दूर निकल गयी होगी । वह कितना रो रहा था जाते-जाते । क्या जाने उसके आँसू अभी थमे होंगे या नहीं । मैंने कितना अपराध किया है उसे बरबस ब्रजके बाहर भेजकर ।' वे यह सोचते जाते और आँसू पोंछते जाते । अनुतापमें सारा दिन बीत चला । उन्होंने अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया ।

संध्याके कुछ पूर्व हठात् छोटे बाबाको आते देख वे आनन्दोल्लसित हो चौंक पड़े । छोटे बाबा भूख-प्यास, पथश्रम और बड़े बाबाकी आज्ञा-लंघनके भयसे कातर हो रहे थे । वे रोते-रोते उनके चरणोंमें गिर पड़े । बावाने उन्हें बक्षसे लगाकर नयन-जलसे अभिषिक्त करते हुए पूछा—'कैसे लौट आये ?' छोटे बावाने अपने हृदयकी सारी बात कहकर आज्ञा-लंघनके अपराधके लिए कातर भावसे क्षमा माँगी । बावाने वृन्दादेवीकी कृपाका सारा वृत्तान्त सुनाकर छोटे बाबाको आश्वस्त किया । छोटे बाबा वृन्दादेवीकी कृपाका स्मरण कर आनन्दाश्रु विसर्जन करने लगे ।

इस घटनाके बादसे बाबा ब्रजमें सिद्ध जयकृष्णदास बाबाके नामसे प्रसिद्ध हुए । वे ब्रजमें कब आये ? कहाँसे आये ? उनके गुरु कौन थे ? इस

सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता । इतना भर निश्चित है कि वे श्रीश्रीगंगामाता गोस्वामिनीके परिकरके थे । काम्यवनमें वृन्दादेवीके आदेशसे विमलाकुण्डके तीरपर रहकर भजन किया करते थे । कुछ दिन बाद वहाँके गोप-बालक उन्हें परेशान करने लगे । वे कहीं अन्यत्र जाकर भजन करनेका विचार करने लगे । यह देख ग्राम-वासियोंने एक कुटिया बनवा दी । उसमें रहकर वे हर समय भजनमें लीन रहते । केवल एक बार मधुकरीके लिए ग्राममें जाया करते । रात-दिन हरिनाम जपते । सोते एक निनटकी भी नहीं ! पाठक विश्वास भले ही न करें, पर इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं । सोना और जागना तो शरीरका धर्म है । जिन महात्माओंकी स्थिति अपने सिद्ध स्वरूपमें हो जाती है, उनके लिए क्या सोना, क्या जागना ! बाबा रात भर प्रिया-प्रियतमकी यादमें अश्रु-विसर्जन करते, चीखते-पुकारते, विनय और आक्षेप सहित भाव-भीनी उक्तियोंसे उनकी अर्चना करते और कभी-कभी प्रेमावेशमें ऐसी हुंकार भरते कि दिशाएँ विकम्पित हो जातीं । प्रसिद्ध है कि एक बार उनकी हुंकारसे कुटियाकी छत फट गयी, जो आज भी देखनेमें आती है ।

सिद्ध जयकृष्णदास बाबामें ऐसी चुम्बकीय शक्ति थी कि लोग दूर-दूरसे उनके पास खिंचे चले आते थे । जो एक बार उनका संग कर लेता था उसके लिए उन्हें छोड़ना असम्भव हो जाता था । श्रीश्रीराधा-मदनमोहन और छोटे शत्रुके सम्बन्धमें तो हम उनकी इस शक्तिका परिचय पा ही चुके हैं । और भो न जाने कितने लोगोंके साथ इस प्रकारकी घटनाएँ घटीं । एक बार राधाकुण्डके श्रीजगदानन्ददास पंडित बाबाके वेश-गुरु, फरीदपुर जिलेके रामदिया ग्रामके महन्त श्रीभगवानदास बाबाजी उनके पास आये कुछ दिन उनके दिव्य संगका लाभ उठानेके उद्देश्यसे । दोनोंमें परस्पर ऐसी प्रियता हो गयी कि जब कभी महन्तजीके जानेका प्रसङ्ग आता तो दोनों मूर्च्छित हो जाते । एक मास बाद बहुत कष्टसे वे काम्यवनसे विदा हो सके ।

काम्यवन उस समय भरतपुरके राजाके अधीन था । राजाने सिद्ध बाबाके दर्शन करना चाहा । बहुत चंष्टा करनेपर भी उनका मनोरथ सफल न हुआ; क्योंकि बाबा विषयी पुरुषोंको अपने निकट नहीं आने देते थे । तब वे एक दिन भेष बदलकर दीन-हीन भावसे उनकी कुटियाके सामने जा बैठे । उस समय बाबा मधुकरीके लिए गाँवमें गये हुए थे । गाँवसे लौटते

समय आधे रास्तेतक आकर वे फिर गाँवकी तरफ लौट गये। गाँवमें चीख-चीखकर कहने लगे—‘बन्धुओ ! मेरी कुटियामें आग लगी है ! जाकर बुझा आओ, तब मैं जाऊँगा।’

बाबा गाँवमें बैठे रहे। गाँवके लोग दौड़े गये कुटियापर। देखा कि कुटियामें आग-वाग तो लगी नहीं है, पर वहाँ छद्मवेशमें राजा बैठे हैं। वे समझ गये बाबाकी बात। उन्होंने विनीत भावसे राजाको सब कुछ समझाने हुए कहा—‘महाराज ! राज-हठसे योगी-हठ बहुत बलवान होता है।’ राजा भीत और विषण्ण हो लौट गये। तब बाबा आये और गोबर-जलसे स्थानको पवित्र कर भजनके लिए बैठे। राजा वैष्णव-सेवी थे, इसलिए उन्होंने बुरा नहीं माना। इस घटनासे उनमें दैन्य और निर्वंदका उदय हुआ और उन्होंने परोक्षरूपसे बाबाकी कृपा भी प्राप्त की।

एक दिन मध्याह्नमें सिद्ध बाबाकी अन्तरंग सेवामें ऐसी घटना घटी कि वे श्रीकृष्ण-विरहमें व्याकुल होने लगे। उस समय विमलाकुण्डके चारों ओर असंख्य गाय और गोपबालक आकर उपस्थित हुए। गोपबालक बाहरसे चीखकर कहने लगे—‘बाबा प्यास लगी है, जल प्याय दे।’ बाबा तो पहले ही स्वारिया बालकोंके उत्पातसे विरक्त थे। वे चुपचाप कुटियामें बैठे रहे। पर बालक कब माननेवाले। लगे तरह-तरहके उत्पात करने। कुटियाके दरवाजेके पास आकर बोले—‘बंगाली बाबा ! हम जानते हैं तू कहा भजन कर है। दयाहीन बाबा कसाईके बराबर होय है। अरे, कुटियासे निकलके जल प्याय दे। हमनको बड़ी प्यास लगी है।’ बाबाजी क्रुद्ध ही लकड़ी हाथमें ले बाहर निकल पड़े। सामने दीखे असंख्य गो और गोपबालक ! सब एकमें एक सुन्दर ! एकसे एक अद्भुत ! उन्हें देखते ही उनका क्रोध ठंडा पड़ गया। उन्होंने पूछा—

‘लाला ! तुम कौन गाँवसे आये हो ?’

‘नन्दगाँव तें।’ बालकोंने उत्तर दिया।

‘तेरा नाम क्या है ?’ एक बालकसे उन्होंने पूछा।

‘कन्हैया’।

‘लाला, तेरा नाम ?’ एक और बालकसे पूछा।

‘बलदाऊ’।

तब बालकोने कहा—‘देख बाबाजी, पहिले जल पियाय दे, पाछे बात करियो।’

बाबाने स्नेह परवश हो करवेसे जल पिला दिया।

बालक बोले—‘देख बाबा, हम नित्य कितेक दूर ते आमें हैं, प्यासे चले जाय हैं। तू कछु जल और बालभोग राख्यो कर।’

‘नहीं बाबा! रोज-रोज उपाधि नहीं करना।’ कहते हुए बाबा कुटियामें चले गये।

कुटियामें जाकर सोचने लगे—‘ऐसे अद्भुत गोपबालक और ऐसी गायें तो मैंने कभी देखी नहीं! न कभी ऐसी मधुर बोली ही सुनी! यह लोग हम जगत्के थे या किसी और जगत्के!’ यह सोचते हुए उन्हें एक बार फिर देखनेको वे जैसे ही कुटियामें बाहर निकले, वहाँ न गायें थीं, न गोपबालक! बाबा दुःखित और अनुत्तम हो अपने दुर्भाग्य और गोपबालकोके प्रति अपने अन्तिम वाक्यकी बात सोचते-सोचते आविष्ट हो गये। उस अवस्थामें श्रीकृष्ण उनके सामने उपस्थित हो उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले—‘बाबा दुःख मत करे। कल मैं तेरे पास आऊँगा?’ तब बाबाका आवेश भंग हुआ और उन्होंने धैर्य धारण किया।

दूसरे दिन एक वृद्धा व्रजमाई आयी एक गोपाल-मूर्ति लेकर। बोली—‘बाबा, मोते अब गोपालकी सेवा नाय होय। तू सेवा कियौ कर।’

‘मैं कैसे इनकी सेवा करूँगा? सेवाकी सामग्री कहाँ-से लाऊँगा?’ बाबाने कहा।

‘सेवाको सामग्री मैं रोज दे जाऊँगी’ कहती हुई वृद्धा चली गयी।

गोपालजीकी माधुरी देख बाबा मुग्ध हो गये। उसी रात स्वप्नमें वृद्धाने वृन्दाजीके रूपमें उन्हें दर्शन दिये।

गोपालकी उलटी रीति है। कभी कोई बुलाता है, तो भी उसके पास नहीं जाते। कभी कोई नहीं भी बुलाता तो उसके पास जाते हैं, उसके उपेक्षा करनेपर भी जाते हैं। ऋषि, मुनि, यति बुला-बुलाकर हार जाते हैं। उनके मानस-पटनपर भी कभी उदय नहीं होते। पर उनके भक्त, उन्हें नहीं भी बुलाते तो हाथ धोकर उनके पीछे पड़ जाते हैं। सिद्ध बाबाने उनके आनेको उपाधि मानकर कल उनसे यही कहा था न, ‘रोज-रोज आकर उपाधि नहीं

करना।' इसीलिए आज उनके पास आ ऐसे जमकर बैठे हैं कि जानेका नाम ही नहीं लेते।

कुछ दिन प्रेमसे गोपालजीकी सेवा कर सिद्ध बाबाने चैत्र शुक्ला द्वादशीको पार्थिव शरीर छोड़कर अपार्थिव शरीरसे नित्य-लीलामें प्रवेश किया। कदाचित् किसीकी बासुरीकी ध्वनि सुनकर उनसे रहा न गया और लहंगा-फरिया पहन उन्होंने अभिसार किया। उनके अन्तिम शब्द यही थे— 'मेरे लहंगा कहाँ ? फरिया कहाँ ? अँगिया कहाँ ?'

गोपाल ! एक बात पूछूँ तुमसे, बताओगे ? तुम मधुकरकी तरह उड़कर आये बंगालसे श्रीराधा-मदनमोहनरूपमें बाबाका प्रेम-सेवा-रस आस्वादन करने। इतने दिन उस रसका आस्वादन करके भी तुम्हारी तृष्णा न मिटी, तो एक और रूपमें घुस पड़े उनकी कुटियामें। यदि तुम बाबाकी सेवा-शक्तिको अपनी तरह असीम जानते, तो शायद अनन्तरूप धारणकर अनन्त प्रकारसे उनकी प्रेम-सेवाका आस्वादन करके भी न अघाते। ऐसी कौन-सी बात थी उस लँगोटीवाले बाबामें जिसपर तुम इतना रीझ गये ?

श्रीकृष्णदास बाबाजी

(गोवर्द्धन)

वह दक्षिणदेशीय दिग्विजयी तैलंग पण्डित जैसे खम्ब ठोककर सबको ललकार रहा है; पर शास्त्रार्थ करनेकी बात तो दूर, उसके सम्मुख होनेका भी कोई साहस नहीं बटोर पा रहा है। ब्रजके लिए कैसी लज्जाकी बात है यह ! जो ब्रज सैकड़ों वर्षोंसे भारतका सांस्कृतिक केन्द्र रहा है, वह आज एक तैलंगी पण्डितके आगे नतमस्तक हो रहा है ! किस प्रकार ब्रजकी नाक रखी जाय—इस विषयको लेकर वृन्दावनके पण्डित चिन्ताग्रस्त हैं। एक ही उपाय है दिग्विजयीको नीचा दिखानेका। उसे गोवर्द्धनके सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके पास भेज दिया जाय। पर वे यदि भजनावेशके कारण उससे शास्त्रालाप न करें, या अपने स्वाभाविक दैन्यके कारण उससे अपनी अयोग्यता ही प्रकट कर दें, तब तो रही-सही बात भी बिगड़ जायगी। ऐसी कोई युक्ति करनी चाहिये, जिससे दिग्विजयी उनके पीछे पड़ जाय और उन्हें उससे पीछा छुड़ानेके लिए उससे टक्कर लेनी ही पड़े।

आखिर पण्डितोंने एक युक्ति सोच ली। वे दिग्विजयीके पास गये। प्रथोचित आदर-सत्कार, प्रशंसा और स्तुतिके पश्चात् बोले—‘महामना, हम सब आपकी प्रतिभासे प्रभावित हैं। हममें ऐसा कोई नहीं जो आपसे आलाप भी कर सके। हमारा निवेदन है कि आप गोवर्द्धनके श्रीकृष्णदास बाबाके पास जानेका कष्ट करें। व्रजके पण्डितोंके मुकुट-मणि हैं वे। यदि उन्हें आपने परास्त कर दिया तो समझ लीजिये कि विश्वमें आपकी विजयका डंका पिट गया। पर वे आसानीसे हाथ आने वाले व्यक्ति नहीं। उन्हें शास्त्रालापको तैयार करनेके लिए आग्रह करना होगा, अपने पाण्डित्यका कुछ प्रदर्शन भी करना होगा। वे हर किसीसे शास्त्रालाप नहीं करते। उसीसे करते हैं, जिसे यत्किंचित् आलापके योग्य समझते हैं।’

दिग्विजयीके अभिमानको उकसा देनेके लिए इतना पर्याप्त था। वह दूसरे ही दिन वृन्दावनसे गोवर्द्धन गया। श्रीकृष्णदास बाबाके पास जाकर बोला—‘सुना है आप व्रजके पण्डितोंके मुकुटमणि हैं। मैं आपसे शास्त्रालापकर विजय-पत्र लिखवाने आया हूँ।’ बाबाने सोचा यह कहाँकी मुसीबत आ गयी। उन्होंने बहुत चेशा की दैन्य और छल-वाक्योंका प्रयोगकर उसे टाल देनेकी, पर वह किसी प्रकार उन्हें छोड़नेकी राजी न हुआ। उसे अपनी विजयका डंका जो पिटवाना था। उसने कुछ क्रुद्ध हो दुःख प्रदर्शित करते हुए कहा—‘मैं व्रजमें यह जानकर आया था कि यहाँ बहुत-से बड़े-बड़े पण्डित रहते हैं। उनसे शास्त्रालापकर आनन्दका उपभोग करूँगा। पर देखता हूँ कि यहाँ एक भी पण्डित नहीं, जो श्रुतिका शुद्ध रूपसे उच्चारण भी कर सके।’ सिद्ध बाबाने कहा—‘हाँ आपके समान वेद-परायण पण्डित यहाँ कोई विरला ही होगा। आप यदि सामवेदका कोई मन्त्र पढ़कर सुनायें तो बड़ी कृपा होगी।’ पण्डित तो ऐसा सुयोग हूँ ही रहा था। उसने मुललित स्वरमें एक श्रुति-मन्त्रका पाठ किया। सिद्ध बाबाने सुनकर कहा—‘स्वरमें तीन दोष हैं।’ दिग्विजयी बोला—‘इससे शुद्ध स्वरमें मन्त्र उच्चारण कर सके ऐसा कोई पण्डित भारतवर्षमें मुझे नहीं दीखतो। आप ही और शुद्ध रूपमें उच्चारण करें, देखूँ।’ तब सिद्ध बाबाने स्वयं शुद्ध स्वरमें मन्त्रका पाठ किया। दिग्विजयी उसे सुनकर स्तब्ध और चकित रह गया। उसने बाबाको साष्टांग दण्डवत्कर कहा—‘आपकी विद्या जागतिक नहीं है ! ऐसा कोई व्यक्ति इस जगत्में नहीं, जो आपकी बराबरी कर सके !’

बात बिल्कुल ठीक थी। बाबाकी विद्या जागतिक नहीं थी। उनका कुछभी तो जागतिक नहीं था। प्रारम्भसे ही उनका जीवन किसी दिव्य शक्ति द्वारा परिचालित और परिपूरित था।

संसारका त्यागकर पारमार्थिक जीवन यापन करनेके लिए लोगोंको कितना संघर्ष करना पड़ता है अपने आपसे और सगे-सम्बन्धियोंसे। पर बाबाको ऐसा कुछ नहीं करना पड़ा था। उनका जीवन-पथ पहलेसे ही निर्दिष्ट था। उनका जन्म नरोत्तम ठाकुर महाशयकी वंशपरम्पराके अन्तर्गत उड़ीसाके एक समृद्ध परिवारमें हुआ था। पिता, श्रीसनातन कानूनगोका स्वर्गवास होनेपर उनकी माता सती हो गयी थी। दाहके समय उन्होंने अपने तीनों पुत्रोंको कुछ आदेश दिया था। सबसे छोटे वटकृष्णको वृन्दावनमें रहकर भजन करनेका आदेश दिया था। वटकृष्ण ही सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके नामसे विख्यात हुए। १६ वर्षकी अवस्थामें वे मांकि द्वारा निर्दिष्ट पथके पथिक बनकर वृन्दावन चले आये थे। दो वर्ष वृन्दावनमें पाठाभ्यास करनेके पश्चात् जयपुर गये श्रीगोविन्दजीकी सेवाके उद्देश्यसे। वहाँ राजासे गोविन्दजीकी सेवाका अधिकार प्राप्तकर आठ-दस वर्ष तक उनकी सेवा की। बराबर गोविन्दजीके राजभोगका प्रसाद ग्रहण करते रहे। गोविन्दजीका प्रसाद ग्रहण करते हुए भी वे प्रबल कामवेगसे पीड़ित होने लगे। यह देख उन्हें चिन्ता हुई। शंका जागी कि गोविन्दजीकी सेवामें संलग्न रहते हुए और उनके चिन्मय प्रसादका सेवन करते हुए भी काम विकार क्यों ?

जयपुरमें ऐसा कोई न था जो उनकी शंकाका समाधान कर सकता। इसलिए काम्यवनके सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबाके पास जाकर उन्होंने इस शंकाका समाधान करनेकी प्रार्थना की। बाबाने उत्तर दिया—

“देख बेटा, एक हरे वृक्षको काटकर पानीमें डुबाओ। कुछ दिन बाद उसे निकालकर बिना सुखाये अग्निमें डाल दो, तो वह जलेगा क्या ? जीव अनादिकालसे संसार-सागरमें निपतित है। पानीमें डूबे काष्ठकी तरह विषय-रसमें डूबा हुआ है। उसे हठात् भक्तिरूपी अग्निमें डाल दो तो परिणाम वही होगा जो गीले काष्ठको अग्निमें डालनेसे होता है। यदि चाहो कि भक्ति-अग्नि उसे पकड़े तो विषय-रसको सुखाकर भक्तिका याजन करना होगा। यदि कहो कि महाप्रसादका विषय-रससे क्या सम्बन्ध ? महाप्रसाद तो चिन्मय है, साधारण विषयोंसे सर्वथा भिन्न, तो क्या तुम भूल गये महाप्रभुके

वे वाक्य, जो उन्होंने रघुनाथदाससे कहे थे ? रघुनाथदास गोस्वामी जगन्नाथ पुरीमें जगन्नाथजीका महाप्रसाद खरीदकर महाप्रभुकी सेवा करते थे । इसपर उन्होंने आपत्ति की थी और कहा था 'विषयीर अन्ने ह्य राजस निमन्त्रण', अर्थात् विषयीका अन्न खाना रजोगुणको निमन्त्रण देना है, चाहे वह प्रसादके रूपमें हो क्यों न हो । इसके विपरीत जब उन्हें यह पता चला था कि रघुनाथ स्वयं जगन्नाथजीके उस प्रसादको धोकर उसका सेवन करते हैं, जो बासी और सड़ा-बुरा होनेके कारण मार्गमें फेंक दिया जाता है और जिसे जानवर भी सूँघकर छोड़ जाते हैं, तब उन्हें भी उस प्रसादका लोभ हो आया था । उन्होंने रघुनाथके पास जाकर उसका एक ग्रास छीनकर खा लिया था और कहा था—

नित नित नाना प्रसाद खाई ।

ऐछे स्वाद आर, कोन प्रसादे ना पाइ ॥

अच्छा सुनो, तुम्हें इस सम्बन्धमें एक घटना सुनाता हूँ—घटना उस समयकी है जब रूप, सनातन आदि वृन्दावनके गोस्वामी अग्रकट हो चुके थे । बंग देशमें एक वैष्णव-मण्डली नगर-कीर्तनमें प्रेमोन्मत्त हो नृत्य-कीर्तन कर रही थी । एक प्रसिद्ध वेश्या, जो अपनी अट्टालिकासे इस दृश्यको देख रही थी, हठात् नीचे उतरकर कीर्तनकारी वैष्णवोंकी पद-धूलिमें लोट-मोट होने लगी । उनकी चरणरजके प्रभावसे तत्काल उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ । वह कीर्तन-मण्डलीके महन्तके चरणोंमें लोटने और क्रन्दन करने लगी । महन्तने पूछा—'तुम चाहती क्या हो ।' उसने उत्तर दिया—'मैं चाहती हूँ कि मेरे पास जो लाखों रुपयेके आभूषण हैं, वह आप ठाकुरजीके लिए ले लें । मेरी जितनी धन-सम्पत्ति है, उसे वैष्णव-सेवामें लगा दें और मुझे शिष्या स्वीकार कर लें ।'

महन्तजीने कहा—'मैंने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार की । तुम अब मेरी शिष्या हो । मेरी एक आज्ञाका पालन करो । तुम्हारी जितनी भी धन-सम्पत्ति है और जितने अलंकार आदि हैं, उन्हें वृन्दावन जाकर श्रीगोविन्द-जीको समर्पण कर दो ।'

वेश्याने ऐसा ही करना चाहा । पर जब वृन्दावन जाकर गोविन्ददेवके पुजारीसे अपनी इच्छा प्रकट की, तो उन्होंने कहा—'मैं तुम्हारा कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता ।'

वेश्या हताश होकर तीन दिन तक यमुना-तटपर बिना अन्न-जलवे पड़ी रही। तब गोविन्दजीने पुजारीको आदेश दिया—‘तुम यमुना-तटपर जाकर उस वेश्याको ले आओ। उसका सब धन लेकर मेरा भोग लगाओ और अपने हाथसे उसे मेरा शृङ्गार करनेदो।’

पुजारीने ऐसा ही किया। वेश्याने स्नानकर अपने हाथसे श्रीगोविन्द-देवजीका शृङ्गार किया। उसके धनसे गोविन्ददेवजीको विविध प्रकारका भोग लगाया गया। वैष्णवोंको आमन्त्रितकर उन्हें भोजन कराया गया। उसी रात प्रसाद-भोजनकारी वैष्णवोंको स्वप्नदोष हुआ। प्रातःकाल परस्पर कथोपकथनके पश्चात् उन्होंने पुजारीसे उस दिनके प्रसादके सम्बन्धमें पूछा, तो उसने आद्योपान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया। वैष्णवगण यह जानकर बहुत दुखी हुए कि उन्होंने वेश्याका अन्न खाया। वे अपनी-अपनी कुटीपर जाकर तीन दिन तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये पड़े रहे। तीसरे दिनकी शेष रात्रिमें गोविन्दजीने स्वप्नमें उनसे कहा—‘तुम क्यों मेरे प्रति क्रोधकर आत्महत्या करना चाह रहे हो?’

‘आत्महत्या न करें तो क्या करें? तुमने हमारा घरद्वार छुड़वाकर इतने दिन अपने चरणोंकी शरणमें रखा, क्या इसीलिए कि वेश्याका अन्न खिलाकर हमारा धर्म नाश करो?’ पण्डितोंने एक साथ उत्तर दिया।

गोविन्ददेव बोले—‘मैंने कब कहा था तुमसे वेश्याका अन्न खानेको? मैं तो सभी कुछ खा सकता हूँ। पर तुमसे सब कुछ खानेको कहूँ तब न।’

‘तो हम क्या करें। महाप्रसाद सामने आये तो उसकी उपेक्षाकर अपराधके भागी बनें?’ पण्डितोंने पूछा।

गोविन्ददेवने उन्हें ऐसी स्थितिमें प्रसादका केवल एक कण लेकर उसका सम्मान करनेका आदेश दिया।

जयकृष्णदास बाबाके वचनोंसे श्रीकृष्णदासकी शंकाका समाधान हुआ। उन्होंने निश्चय किया गोविन्ददेवके राजभोग-प्रसादका सेवन न करनेका। वे जयपुर छोड़ नन्दग्रामके पास दोमन बनमें पूर्ण वैराग्यसे रहकर भजन करने लगे। नन्दग्रामसे ओटेकी भिक्षा कर लाते। उसमें नीमके पत्ते मिला, कभी पानीमें सानकर कच्चा, और कभी बाटीकी तरह सेंककर खा लेते। धीरे-धीरे उनका शरीर दुर्बल होता गया। दृष्टि-शक्ति जाती रही। भिक्षाके लिए जाना भी बन्द हो गया। कई दिन तक कुण्डका

जल पीकर रहे। अन्तमें कुण्ड तक जानेकी शक्ति भी न रही। दी-तीन दिन बिना जलके बीत गये। तब कुरुगामयी राधारानीका हृदय विगलित हुआ। उन्होंने ललिता सखीसे कहा—‘तू क्या अब भी कृष्णदासपर कृपा न करेगी? क्या मेरे नामपर कलंक लगायेगी? ले, यह प्रसादकी थाली, ले जा और उसे भोजन करा।’

ललिताजी प्रसादकी थाली लेकर ब्रजवालाके रूपमें दोमन वनमें श्रीकृष्णदास बाबाके पास जा उपस्थित हुईं और बोलीं—‘बाबा प्रसाद पायजे। मेरी मइयाने तेरो दुःख देखके मोकुं भेजो है प्रसाद लैके।’

इस वाणी-सुधाके श्रवण-पुटमें पड़ते ही और प्रसादकी दिव्य गन्धके नासिका-रन्ध्रोंमें जाते ही कृष्णदासमें दिव्य शक्तिका संचार हुआ। उन्होंने प्रेमसे प्रसादका सेवन किया। प्रसाद सेवनकर थालको रजसे माँज दिया। ब्रजवालारूपी ललिताने पूछा—‘बाबा, तू माँगवे क्लं क्यों नाय जाय?’

‘लाली आँखनते तो दीखे नाँय, माँगवे जाऊँ कैसे?’ बावाने उत्तर दिया।

‘अच्छा, आँखनते दीखेगो तो जायो करैगो?’

‘क्यों नहीं जाऊँगो।’

‘देख मेरी मइयाने एक आँजन दियो है। जाय तेरी आँखमें लगाय दऊँ, तोको दीखन लगैगो।’ इतना कह ललिताजीने बाबाकी दाहिनी आँखमें कुछ लगाकर जैसे ही बाई आँखको स्पर्श किया, उनकी आँखोंमें रोशनी आ गयी। पर उन्हें न तो वह बालिका दीखी न वह थाल, जिसे माँजकर उन्होंने अभी रखा था। ऐसा लगा कि एक अप्राकृत भुगन्धसे वातावरण परिपूर्ण हो रहा है। बालिका कौन थी? कहाँमें आयी थी और कहाँ चली गयी? अपने स्पर्श मात्रसे कैसे दृष्टि दे गयी? यह सब बाबाके लिए एक स्वप्नकी-सी घटना बनकर रह गया! इसका यथार्थ मर्म जाननेके लिए वे तीन दिन तक वैसे ही पड़े रहे। तीसरे दिन रात्रिमें तन्द्रावस्थामें उन्होंने देखा कि कोटि विद्युत् छटाको तुच्छ करनेवाली दिव्य कान्ति सम्पन्ना एक देवी उनसे कह रही हैं—‘तुम क्यों दुखी हो रहे हो? अब तुम्हें भय किस बातका? मैं तुम्हारी हूँ और तुम मेरे। मेरी अभिन्न सखी ललिताके ललित करसे दृष्टिशक्ति प्राप्त करनेके साथ-साथ

तुम सर्वशक्ति प्राप्त कर चुके हो । अब निश्चिन्त होकर गोवर्धन चले जाओ । वहाँ मुझे प्राप्त करनेका सहज सोपान निदिष्टकर मेरे चरणोंमें निष्ठावान् वैष्णवोंको कृतार्थ करो ।

इतना कह देवी अन्तर्धान हो गयीं । बहुत देर तक बाबा अश्रु-कम्पादि सात्विक विकारोंसे अवसन्न रहे । उसके पश्चात् अपनेको सर्वशक्ति-सम्पन्न और सफल-मनोरथ जान प्रेम-सिन्धुकी तरंगोंमें शुष्क काष्ठकी तरह तैरते हुए गोवर्धन-स्तूपपर आ लगे ।

श्रीकृष्णदास बाबा गोवर्धनमें चकलेश्वर नामक स्थानपर रहने लगे । उस समय राधाकुण्ड और गोवर्धनमें बहुत-से पण्डित, महात्मा, रूप-सनातनादि गोस्वामियोंके संस्कृत ग्रन्थोंका सहारा लेकर भजन करते थे । कृष्णदास बाबाको संस्कृत-भाषाका यथेष्ट ज्ञान न था । इसलिए वे किसी बृद्ध वैष्णवके निकट हरिनामामृत व्याकरणका अध्ययन करने लगे । उस समय उन्हें एक विकट समस्याका सामना करना पड़ा । उनका अध्ययन भजनमें बाधक होने लगा और भजन अध्ययनमें । दोनोंको अन्तराय जान एक दिन अत्यन्त दुःखित हो उन्होंने मानसोगङ्गामें प्राण त्याग देनेका संकल्प कर लिया । रात अनिद्रा और चिन्तामें व्यतीत हुई । शेष रात्रिमें उन्होंने सुना कि उनकी कुटीके बाहरसे कोई आवाज दे रहा है—‘कृष्णदास, कृष्णदास ।’

बाहर आये तो प्रत्यक्ष रूपसे सामने खड़े देखा अपने अन्तर्निहित, कथा-करंगधारी श्रीसनातन प्रभुपाद और श्रीललितादेवीको । आत्मविस्मृत और किकर्तव्यविमूढ़ अवस्थामें वे दण्डवत् कर उनके चरणोंमें जा बैठे । सनातन गोस्वामीने स्नेहसे उनके मस्तकपर हाथ फेरते हुए कहा—‘कृष्णदास ! कुशलपूर्वक तो हो ? मधुकरी भर पेट मिल जाती है न ?’

‘हाँ, प्रभो’ कृष्णदासने हाथ जोड़कर उत्तर दिया ।

तब सनातन प्रभुने कहा—‘देख बेटा, शास्त्र अनन्त हैं । जिसका जहाँ तक अधिकार है वहीं तक उनका अनुशीलन करना यथेष्ट है । शास्त्राध्ययनके कारण तुझे मरनेकी आवश्यकता नहीं ? ऐसी कुबुद्धि फिर न करना । तेरे द्वारा हमारा बहुत-सा कार्य होना है । आजसे मेरे आशीर्वादसे सभी शास्त्रोंकी तुझे स्वतः स्फूर्ति होगी ।’ ललितादेवीने आशीर्वाद दिया—‘तू जब भी हमारा स्मरण करेगा, तभी तेरे हृदयमें हमारी स्फूर्ति होगी । तेरे द्वारा ब्रजवासी वैष्णवोंके लिए भजनमुद्राका प्रकाश होगा ।’

इतना कह दोनों श्रीकृष्णदास बाबाके मस्तकपर चरण रख अन्तर्धान हो गये ।

इस घटनाके पश्चात् श्रीकृष्णदास बाबा समुद्रवत् गम्भीर हो गये । उन्होंने छात्रोंको हरिनामामृत व्याकरण पढ़ाना और साधकोंको भजन-सम्बन्धी उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया । हरिनामामृत व्याकरण पढ़ाते समय वे प्रति सूत्रमें नित्य-लीला स्थापनकर भजनमुद्राके द्वारका उद्घाटन करते, जिससे छात्रोंको अध्ययनके साथ-साथ भजन-शिक्षाका अवसर भी प्राप्त होता । उन्होंने 'श्रीगोविन्दलीलामृत', 'संकल्प-कल्पद्रुम', 'पद कल्पतरु', 'क्षणदासीति चिंतामणि', 'पदामृत समुद्र' आदि बहुत-से ग्रन्थोंका अध्ययन कर श्रीमन्नमहाप्रभुकी अष्टकालीय लीला-स्मरणके साथ श्रीराधागोविन्दकी अष्टयाम लीला-स्मरणकी एक पद्धतिका प्रणयन किया । अनुगत वैष्णवोंको वे उसके अनुसार भजन-शिक्षा देने लगे । यही भजन-पद्धति परवर्ती कालमें 'गुटिका' के नामसे प्रसिद्ध हुई ।

बाबा जिन्हें भजन-शिक्षा देते, वे सब नित्य रात्रिमें उनके पास जाकर अपने-अपने भजनकी बात कहते । यदि उनके भजनमें कोई भूल-भ्रान्ति होती तो वे उसे सुधार देते । एक दिन एक महात्मा अपने भजनके विषयमें बिना कुछ कहे क्रन्दन करने लगे । बाबाने पूछा तो बोले—'आज मैं कुछ भी भजन न कर सका । प्रातःकालीन लीला-स्मरणमें प्राणेश्वरीके बाहिने हाथ में अलंकार पहनाते समय श्रीहस्तकी शोभामें मन इतना अटक गया कि बहुत हटानेकी चेष्टा करनेपर भी न हटा ।'

बाबाने उसे उत्साहित करते हुए कहा—'तुम्हारा ही तो यथार्थ भजन हुआ है आज ।'

सिद्ध बाबाने जिसे-जिसे भजनका उपदेश किया, वे सभी सिद्ध हो गये । साधारण सिद्ध पुरुषोंके लक्षणोंसे व्रजके सिद्ध पुरुषोंके लक्षण सर्वथा पृथक् हैं । व्रजजनानुगत वैष्णवोंके अन्तश्चिन्तित भावदेहकी वृत्ति जब बाह्यदेहमें स्फुट रूपसे प्रकट हो दूसरोंको दृष्टिगोचर होती है, तब उसे भजन-सिद्धि कहते हैं । सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके आनुगत्यमें भजनकर जो लोग सिद्ध हो गये हैं, उनमें मुख्य हैं गोवर्धनके द्वितीय श्रीकृष्णदास, मदन-मोहन ठौरके श्री नित्यानन्ददास, झाड़ू मण्डलके श्रीबलरामदास और लाला बाबू (तृतीय श्रीकृष्णदास) ।

सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाजी भजन-सिद्धिसे सम्बन्धित बहुत-सी घटनाओंके लोगोंने प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं। एक बार वे होली-लीलाका स्मरण करते हुए अन्तश्चिन्तित देहसे राधारानीका आनुगत्य कर रहे थे। लीलामें उनका अंग अबीर, गुलाल, कुंकुम, कस्तूरी आदिसे लिस गया। अर्धबाह्या-वस्थामें जब वे भजन-कुटीसे बाहर गये तो वैष्णव-गण उन्हें रंगमें रंगे देखकर और अप्राकृत कस्तूरी आदिकी दिव्य गन्धका अनुभव कर कृतार्थ हुए।

एक बार राधा-कृष्ण मानसीगङ्गामें जल-केल करके चुके थे। तटपर ललिता-विशाखादि उनकी वेश-भूषा करनेमें लगी थीं। रूप-मञ्जरी आदि प्रसाधन-सामग्री एकत्र कर रही थीं। सिद्ध बाबा भंजरी रूपमें इत्रकी शीशी लिये अपेक्षाकर रहे थे। दोनोंका हास-परिहास सुन उनके देहमें स्तम्भ हुआ और इत्रकी शीशी हाथसे गिर पड़ी। उसका सौरभ चारों ओर वातावरणमें व्याप्त हो गया। मानसीगङ्गापर स्नानके लिए आये हुए वैष्णवोंने उस दिव्य गन्धका अनुभव किया। सिद्ध बाबासे उसका कारण पूछा, तो वे अपराधीकी तरह बोले—‘क्या करूँ भाई ! मैं अपराधी जीव हूँ, सेवाकी योग्यता मुझमें है नहीं। प्रिया-प्रियतमकी सेवाके समय इत्रकी शीशी हाथसे गिरादी। उसीकी गन्ध तुम लोग ले रहे हो।’

एक दिन बाबा हाथमें करुआ ले मानसीगङ्गामें स्नानके लिए गये। वहाँ जुगलकिशोरकी जल-केल देख वे भावाविष्ट हो अगाध जलमें कूद पड़े। उस समय वहाँ और कोई न था। बहुत देर तक जब कुटियापर न पहुँचे, तब सेवक चिन्तित हो उन्हें देखने निकले। चारों ओर खोजनेपर भी उनका कहीं पता न चला। समस्त व्रजमण्डलमें हाहाकार मच गया। लोग तरह-तरहकी अटकलें लगाने लगे। सात दिन बाद बाबा करुआ हाथमें लिये मानसीगङ्गासे बाहर निकले। लोगोंने विस्मयसे पूछा—‘बाबा, सात दिन कहाँ थे आप ? वे भी विस्मित हो बोले—‘यहीं तो, मैं स्नान करके निकल रहा हूँ। इतनी-सी देरमें सात दिन कैसे बीत गये ? तुम लोगोंको यह कैसा भ्रम हो गया है ?’

भरतपुरके राजा यशवन्तसिंह सिद्ध बाबाके दर्शन करने गये और बोले—‘बाबा, मेरी कुछ सेवा अङ्गीकार कर मुझे धन्य करें।’

बाबाने कहा—‘हम लोग व्रजवासियोंके घर मधुकरों भिक्षा करते हैं। उनकी सेवा करो। उसीसे हमारी सेवा हो जायगी।’

आज्ञा पा राजाने बहुत-सी भू-सम्पत्ति ब्रजवासियोंको दानमें दी, जिसके लिए आज भी ब्रजवासी उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। इसके पश्चात् वे फिर बाबाके पास गये और बोले—‘आप स्वयं भी यदि कुछ अङ्गीकार करें, तो मैं धन्य होऊँ।’

बाबाने कहा—‘अच्छा, यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो सुनो। तुम्हारी बहुत-सी रानियाँ हैं। उनमें-से जो सबसे अधिक प्रिय हो, उस मेरे पास भेज दो।’

राजाने ऐसा ही किया। चारों ओरसे पगदोंमें घिरी हुई सजी-धजी रानी लक्ष्मिनी बाबाके निकट आयीं। बाबा उस समय निर्जनमें भजनवेशमें बैठे थे। कंकण, किकिणी और तूपुरकी मधुर ध्वनि सुनते ही आत्मविस्मृत हो विस्फारित नेत्रोंसे रानीकी ओर देखते रह गये। रानी भी दस-पन्द्रह हाथ दूर स्तम्भित हो स्थिर खड़ी रह गयीं। इस प्रकार एक प्रहर बीत गया। रानीकी दासियोंने धीरे-धीरे परदा उठाकर देखा कि रानी सचेत अवस्थामें अचेत हुई-सी मिश्रित खड़ी हैं और बाबा एकटक उनकी ओर देख रहे हैं। तब वे राजाको वहाँ ले गयीं। उन्होंने अपनी आँखोंसे यह सब देखा। बाबाकी अवस्था दिन-रात समान भाव से वैसी हो रही। दूसरे दिन अर्धबाह्य दशा हुई और तीसरे दिन बाह्य दशा। तीन दिन तक राजा भी उसी स्थानपर रहे। भाव-राज्यका कुछ भी ज्ञान न होनेके कारण उन्हें भयंकर सन्देह हो गया। तब सिद्ध बाबाने उन्हें अपने पास बुलाया और मस्तकपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। उसी क्षण उन्हें स्फूर्ति हुई और वे समझ गये कि सामान्य कंकण-किकिणीकी ध्वनि सुन बाबाको आत्मेश्वरी राधारानीके कंकण-किकिणीकी ध्वनिका उद्दीपन हो गया था और उन्हींका दर्शन करते हुए वे दो-दिनतक आनन्द-सागरमें निमज्जित थे।

रानी लक्ष्मिनी भी बाबाके दर्शनकर कृतार्थ हो गयीं। उनकी भक्तिकी कथाएँ आज भी ब्रजमें कही जाती हैं। उन्होंने एक बार राधाकुण्ड जाकर बहुत-सा धन वैष्णवोंकी संवामें खर्च करनेकी चेष्टा की। वैष्णवोंने कहा—‘हम लोग राजान्न ग्रहण नहीं कर सकते।’

रानी रो पड़ी और अति कातर-भावसे बोली—‘आपके चरशोमें मेरी प्रार्थना है कि आप ऐसा आशीर्वाद करें, जिससे मरनेके पश्चात् फिर

राजकुलमें मेरा जन्म न हो । जन्म वहाँ हो, जहाँ जन्मनेसे आप लोगोंकी सेवाकी योग्यता और अधिकार प्राप्त हो ।’

उनका ऐसा भाव देख वैष्णवोंने कहा—‘तुम एक काम कर सकती हो । यदि अपने हाथसे गोबरके कण्डे पायो और उन्हें बेचकर प्राप्त किये हुए धनको हमारे पास भेजो, तो हम उसे स्वीकार कर लेंगे ।’

रानीने वैसा ही किया । आज तक रानीके दिये हुए उस धनमेंसे राधाकुण्डके वैष्णवोंकी सेवा की जाती है ।

कहते हैं कि सिद्धबाबा कई-कई दिन तक मानसीगङ्गामें डूबे रहकर जल-स्पर्श-शून्य श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपादके स्वहस्तलिखित ग्रन्थ लेकर बाहर निकलते । यह भी प्रसिद्ध है कि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपाद जब आवरणशून्य स्थानमें बैठकर ग्रन्थ लिखते, तो चारों ओर घनघोर वृष्टि होनेपर भी, उनके ग्रन्थ या शरीरको जलका एक बिन्दु भी स्पर्श न करता ।

सिद्ध बाबा भजनके अनुकूल प्रायः सभी ग्रन्थ संग्रह कर योग्य व्यक्तियोंकी सहायतासे उनका आस्वादन करते । निश्चल होकर जब वे ग्रन्थ श्रवण करते, तब उन्हें असाधारण प्रेमावेश होता । नेत्रोंसे अश्रु, नासिकासे श्लेष्मा और मुखसे रालका ऐसा अजल प्रवाह होता कि दोनों ओर बैठे दो वैष्णव लगातार पोंछते रहते, तो भी न पोंछ पाते ।

श्रीव्रजमण्डलके सारे वैष्णव सिद्ध बाबाके पास जाकर भजन-विषयक जिज्ञासा करते । बाबा निरन्तर भजनावेशमें रहते हुए भी उनके अनुकूल उपदेशकर उन्हें भजनमें उत्साहित करते ।

श्रीश्रीकृष्णदास बाबाजी

(रनवारी)

उस दिन जब यह आश्चर्यजनक घटना घटी, सिद्ध श्रीजगन्नाथदास बाबा और उनके शिष्य श्रीबिहारीदास बाबा रनवारीमें श्रीकृष्णदास बाबाके निकट हो एक कुटियामें ठहरे हुए थे । शेष रात्रिमें श्रीजगन्नाथदास बाबाने बिहारीदास बाबाको पुकारतेहुए कहा—‘बिहारी ! देख तो श्रीकृष्णदास बाबाकी कुटियामें क्या हो रहा है ?’ बिहारीदास भागकर गये, तो देखा

कुटियाका दरवाजा भीतरसे बन्द है। दरवाजेकी झिरीमें-से झाँका, तो देखा कि कृष्णदास बाबा सिद्धासनकी मुद्रामें बैठे हुए हैं, उनका शरीर दग्ध हो रहा है और मुखसे हरिनामका उच्चारण हो रहा है। वे दौड़कर गये और जैसे ही गुरुदेवसे कहा—‘श्रीकृष्णदास बाबाका शरीर दग्ध हो रहा है’, वे चीख पड़े—‘अहो ! विरहानल ! विरहानल !! उसी समय पड़ोसी ब्रजवासी दौड़ पड़े। श्रीकृष्णदास बाबाकी कुटियाका दरवाजा तोड़ा। भीतर जाकर देखा कि अग्नि धक्धक्कर जलते हुए बाबाके कण्ठ तक आ गयी है, फिर भी उनके मुखसे नामका स्पष्ट रूपसे उच्चारण हो रहा है। ब्रजवासी कातर भावसे उनकी ओर देखते रह गये। तब उन्होंने मशालकी तरह जलते हुए अपने दोनों हाथोंको उठाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—‘तुम्हारे गाँवमें कभी किसी प्रकारका संकट न आयेगा। सर्वत्र दुर्भिक्ष और महामारी होनेपर भी तुम्हारा गाँव सुरक्षित रहेगा।’

जगन्नाथदास बाबाने देखा कि अग्नि बाबाके कण्ठ तक आगयी है। तब उन्होंने रुईकी तीन बस्तियाँ बनाकर बाबाके माथेपर रखदीं। बस्तियाँ जलने लगीं और उनके साथ ही उनका सारा शरीर भस्मीभूत हो गया।

श्रीश्रीकृष्णदास बाबाका पूर्व नाम श्रीकृष्णप्रसाद चट्टोपाध्याय था। जन्मस्थान था बंगदेशके जशोहर जिलेके अन्तर्गत महम्मदपुर ग्राम। पिताका नाम था श्रीगोकुलेशचन्द्र चट्टोपाध्याय। जब उनके विवाहका प्रस्ताव हुआ, तभी वे एक दिन शेष रात्रिमें घरसे निकल पड़े और पैदल ही चलकर वृन्दावन पहुँच गये। वृन्दावनमें श्रीश्रीमदनमोहनकी सेवामें कुछ दिन रहकर रनवारी चले गये। रनवारी उस समय भीषण जंगल था। वहाँ एक छोटी कुटिया बनाकर उसमें भजन करने लगे। संध्या समय मधुकरी माँग लाते। अपने प्रयोजन अनुसार रखकर बाकी गायोंको खिला देते। मधुकरी इतनी मिलती कि रास्ते भर गायोंको खिलाते आते, क्योंकि प्रत्येक वृजवासी मधुकरीके लिए आग्रह करता और वे उसकी उपेक्षा न कर पाते।

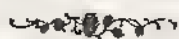
वात्यकालमें ही गृह त्यागकर व्रज चले जानेके कारण श्रीकृष्णदास बाबा और किसी तीर्थके दर्शन नहीं कर पाये थे। प्रायः पचास वर्ष बाद उनके हृदयमें वासना जागी एक बार चारों धामके दर्शनकर लेनेकी। राधा-रानीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—‘तुमने वृन्दावनमें मेरी शरण ली है। तुम्हें और कहीं जानेकी आवश्यकता नहीं। यहीं रहकर भजन करो। तुम्हें सर्वसिद्धि लाभ होगी।’ उन्होंने प्रियाजीके स्वप्नादेशको अपने मन-बुद्धिकी

कल्पना जान उसकी अवेहलता की और तीर्थयात्राको निकल पड़े। भ्रमण करते-करते द्वारका पहुँचे। चारों सम्प्रदायके वैष्णव द्वारका जाकर तप्त मुद्रा धारण किया करते हैं। पर यह रागानुगी वैष्णवोंकी परम्परा नहीं है, यद्यपि 'हरिभक्ति-विलास' में इसकी व्यवस्था दी हुई है। बाबा कृष्णदासने व्रजके सदाचारकी उपेक्षाकर हरिभक्तिविलासके मतानुसार तप्त-मुद्रा धारण करली। परन्तु वादमें उनके चित्तमें विक्षेप आया, तीर्थ-भ्रमणमें अरुचि हो गयी और वे व्रज लौट गये।

जिस दिन बाबा लौटे, उसी दिन रात्रिमें फिर राधारानीने स्वप्नमें कहा—'तुम द्वारकामें तप्त-मुद्रा धारणकर सत्यभामाके गणोंमें शामिल होगये हो। व्रजधामके उपयुक्त अब नहीं रहे। द्वारका चले जाओ।' इस बार उन्हें ऐसा नहीं लगा कि स्वप्न कल्पित था। किर्तव्यविमूढ़ हो वे गोवर्धनके सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके पास गये। उन्हें देखते ही गाढ़ आलिंगनपूर्वक बावाने पूछा—'आप इतने दिन कहाँ थे?' 'मैं द्वारका गया था। यह देखिये तप्त-मुद्रा लगवा आया हूँ' उन्होंने उत्तर दिया। 'ओही! तब आजसे आपको स्पर्श करनेकी मेरी योग्यता नहीं रही। कहाँ आप महाराज-राजेश्वरीकी सेविका! कहाँ मैं ग्वालिनकी दासी!!' दीर्घ निःश्वासके साथ कई कदम पीछे हटते हुए सिद्ध बावाने कहा।

व्रजमें उस समय और भी कई सिद्ध महात्मा विराजमान थे। उनसे भी कृष्णदास बावाने जाकर पूछा कि उन्हें क्या करना चाहिये। उन्होंने उत्तर दिया—'प्रियाजीके आदेशानुरूप ही आपको चलना है। उनके आदेशके ऊपर उपदेश देनेकी हमारी क्षमता कहाँ?' हताश हो वे रनवारी लौट गये। अन्न-जल त्यागकर कुटियामें जा पड़े। अनुताप और प्रियाजीके विरहकी अग्निमें उनका हृदय दग्ध होने लगा। इस अवस्थामें पड़े-पड़े तीन माह बीत गये। तब भीतरकी अग्नि बाहर फूट पड़ी। तीन दिनमें अग्नि चरणोंसे लेकर कण्ठ तक फैल गयी। चौथे दिन श्रीजगन्नाथदास बाबाके सहयोगसे उनका सारा शरीर भस्म होगया। भस्म-राशि शीतल ही जानेके कई दिन बाद उनके गुरुभाई श्रीप्रेमदास बाबाजी महाराज आये। भस्मके निकट जाकर दण्डवत्कर बोले—'दादा! आपने मेरे हाथकी लकड़ी तो ली नहीं, यह मैं लकड़ी दे रहा हूँ।' भस्मराशिसे स्पर्श होते ही लकड़ी जलने लगी और भस्म होकर उसमें मिल गयी।

इस घटनाको घटे लगभग सवा-सौ वर्ष हुए हैं, पर आज भी रन-वारीके व्रजवासी पौषी अमावस्याको चन्दा कर श्रीश्रीकृष्णदास बाबाकी तिरोभाव-तिथिके उपलक्षमें एक विराट् उत्सव करते हैं, जिसमें चौरासी कोस व्रजके वैष्णवोंको भोजन कराते हैं। बाबाने यहाँके व्रजवासियोंको फाल्गुन शुक्ला एकादशी तिथिका पालनकर रात्रिमें जागरण करनेका आदेश दिया था। आज भी यहाँके व्रजवासी, स्त्री-पुरुष, बड़े-बूढ़े, यहाँ तक कि बालक-बालिकाएँ भी इस तिथिका विशेष रूपसे पालन करते हैं और इस उपलक्षमें भगवल्लीला, कीर्तन आदि करते हैं। आज भी वे बाबाके आशीर्वादसे दुर्भिक्ष और महामारी आदिके प्रकोपसे सुरक्षित हैं। उनका विश्वास है कि सिद्ध बाबाकी समाधिके आगे जो कोई कुछ प्रार्थना करता है, उसकी पूर्ति होती है।



श्रीनित्यानन्ददास बाबाजी

(सहायकुण्ड)

रागानुगीय सिद्ध महात्माओंमें गोवर्धनके सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके शिष्य श्रीनित्यानन्ददास बाबा थे अद्वितीय। उनकी मनोगति थी गङ्गाके प्रवाहके समान अविच्छिन्ना—स्वप्न, जागरण और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें एक-सी ! जागरणमें वे रहते गम्भीर, निःस्पन्द, और समाधिस्थ। आहार-विहार और शौचादि कृत्यके लिए सेवकोंके अनुरोधपर ऐसे उठते, जैसे घोर निद्रासे। निद्रित अवस्थामें लीलाका दर्शन करते हुए हास्य, रोदन और प्रलाप इस प्रकार करते जैसे जाग रहे हों। चेतनावस्थामें मनोभाव गोपन रखते हुए गम्भीर रहते। निद्रित अवस्थामें भाव गोपन न रख सकते। हास्य, रोदन और प्रलापके रूपमें प्रकट कर देते। इसलिए सेवकोंके लिए जानना कठिन होता कि वे सो रहे हैं, या जाग रहे।

ऐसी अवस्थामें उनसे यदि किसीको कोई प्रश्न पूछना होता, तो कैसे पूछता ? कहने-सुननेका तो वहाँ कोई प्रश्न ही न था। पर उनके पास यदि कोई कुछ जिज्ञासा या शंका लेकर जाता, तो वह निराश न लौटता। उनके सान्निध्यमें बैठनेसे ही शंकाका समाधान हो जाता।

‘तृणादपि सुनोचेन’ श्लोककी बाबा सजीव मूर्ति थे। जो कोई भी उनके सामने आता, चाहे उनका शिष्य ही क्यों न होता, उसके दण्डवत् करनेके पूर्व वे स्वयं ही उसे दण्डवत् करते। कोई उनके सामने किसी प्रकारकी दैन्योक्ति करता, तो उन्हें रोना आ जाता। रोना इसलिए आता कि उनके लिए उनसे अधिक दीन-हीन तो विश्वमें और कोई था ही नहीं। जब वह उनके सामने अपना दैन्य प्रकाश करता, तो वे समझते कि वह परोक्ष रूपसे उनकी प्रशंसा कर रहा है। उन्हें यह सोचकर दुःख होता कि वे उसकी प्रशंसाके पात्र तो बन नहीं सके, उलटे अपने कपट आचरणसे धोखा दे रहे हैं उसे।

बाबा थे तो सिद्ध महात्मा, पंडित रामकृष्ण बाबा और गौरकिशोर शिरोमणि जैसे सिद्ध महात्माओंके भी गुरु। भक्तश्रेष्ठ होनेके नाते स्वयं भक्त-वत्सल भगवान् भी थे उनके अधीन। तो फिर वे दीनताका नाटक क्यों करते थे? क्या दूसरे लोगोंको शिक्षा देनेके लिए? नहीं, नाटकका तो ऐसे लोगोंके लिए सबाल ही नहीं होता। उनके जो भीतर होता है, वही बाहर होता है। उनकी आन्तरिक अनुभूति ही ऐसी होती है, जो उन्हें दीनातिदीन बना देती है। छोटी वस्तुको अपने छोटेपनका ठीक-ठीक ज्ञान तभी होता है, जब वह बड़ी वस्तुके निकट आती है। सिद्ध महापुरुषोंको एक बृहत्तम, श्रेष्ठतम, वस्तुकी साक्षात् अनुभूति होती है। इसलिए उन्हें अपनी न्यूनतमताका अनुभव होना स्वाभाविक है। उस श्रेष्ठतम वस्तुका वे प्रत्येक प्राणीमें दर्शन करते हैं। इसलिए प्रत्येक प्राणीको अपनेसे बड़ा और अपनेको उससे छोटा मानते हैं। प्रत्येक प्राणीको सरल सहज निष्कपट भावसे प्रणाम करते हैं।

बाबासे यदि कोई कहता—‘आपका अमुक शिष्य, जिसे आपने दण्डवत् को थी, बहुत दुःखी होकर गया है। आपका क्या उसके प्रति इस प्रकारका व्यवहार उचित है?’ तो बाबा भयभीत होकर कहते—‘तो मुझे क्या करना चाहिये? आप उपदेश कीजिये। वे तो महाभागवत हैं। कृष्णने मेरे ऊपर कृपाकर उन्हें मेरे पास भेजा है। यदि मेरे आचरणसे उन्हें दुःख होता है, तो मैं अपराधी हूँ। मैं ऐसा आचरण अब न करूँगा।’ परन्तु जब फिर वही शिष्य उनके सामने आता, तो इसे भूलकर पूर्ववत् प्रणाम करते।

सिद्ध बाबा वृन्दावनमें मदनमोहन ठौरमें रहकर भजन करते। आज भी उनका आसन वहाँ विराजमान है। उनके शिष्योंमें प्रधान और सुविख्यात

थे—श्रीगौरकिशोर शिरोमणि महाराज, श्री व्रजकिशोरदास बाबाजी, श्रीनृसिंहदासजी, श्रीरामकृष्णदास पंडित बाबाजी और श्रीनरोत्तमदास अधिकारी। नवद्वीपके श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी भी उन्हींसे भजन-शिक्षा ग्रहणकर सिद्ध हुए थे।

श्रीमधुसूदनदास बाबाजी

(सूर्यकुण्ड)

अर्धरात्रिके नीरव, निस्तब्ध वातावरणमें राधाकुण्डके तीरपर यह नवीन युवक क्या कर रहा है ? उसके निकट रखी है एक भारी गिरिराज-शिला। शिलामें चारों ओरसे लपेटा देकर वह बांध रहा है मोटी रस्सीका एक सिरा। दूसरा सिरा उसके हाथमें है। उसे वह अपने गलेमें बांध रहा है। एक गांठ बांध ली है, दूसरी बांधने जा रहा है। उसके मुख-कमलपर छाया है किसी प्राणान्तक दुःख और विषादकी गहरी कालिमा। आरक्तिम नेत्रोंसे हो रहा है अश्रुका अजस्र प्रवाह। भाव और मुद्रासे स्पष्ट दीख रहा है कि वह गिरिराज-शिलाके साथ राधाकुण्डके गहरे जलमें कूदकर प्राण विसर्जन करने जा रहा है।

ऐसा कौन-सा दुःख उसके हृदयमें बैठ गया है, जो उसे प्राण विसर्जन करनेको विवश कर रहा है ? क्या वह किसी नीच कुलका बालक है, जो समाजसे अवहेलित, उत्पीड़ित होनेके कारण अपने जीवनसे दुःखी हो गया है ? क्या उसके निष्ठुर, हृदयहीन माता-पिताने उसे घरसे निकाल दिया है ? क्या उसकी नव-विवाहिता परम रूपवती स्त्री उसे अकस्मात् छोड़कर चली गयी है ? क्या लुटेरोंने उसकी धन-सम्पत्ति लूटकर उसे भिखारी बना दिया है ? नहीं, वह बंगदेशके एक कुलीन-ब्राह्मण परिवारमें उत्पन्न माता-पिताका लाड़ला पुत्र है, जो विवाहकी रात्रिमें ही माता-पिता, पत्नी, संसार और उसकी सभी लोभनीय विषय-सम्पत्तिको तृणवत् त्यागकर वृन्दावन चला आया है। जिन वस्तुओंके अभावमें लोग जीवन निरर्थक समझकर आत्म-हत्या करनेकी सोचते हैं, उन्हींको वह निरर्थक जानकर छोड़ आया है।

जिस कारण जीवनकी भारस्वरूप जान वह प्राण-विसर्जन करने जा रहा है, उसकी एक कहानी है।

बाल्यावस्थामें उसने वृन्दावनके एक श्याम वर्णके वंशी और मोर-मुकुटधारी बालकके विषयमें सुना था—‘वह, जैसा रूपवान है, वैसा ही गुणवान और शक्तिमान है। रूप, गुण और शक्तिमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। वह बड़ा दयावान, सुहृद और स्नेही भी है। उससे जो प्रेम करता है, उसका वह कितना अपना हो जाता है। उसके सारे अभाव दूर करता है, सब प्रकारसे उसकी रक्षा करता है। वह बड़ा लीलामय, कौतुकी और विनोदी है। उसका संग जैसा सुखमय है, वैसा और कुछ भी सुखमय नहीं है। उसे पाकर फिर कुछ भी पानेको बाकी नहीं रहता।’ तभीसे उसे उसके प्रति अनुराग हो गया। वह सब समय उसके बारेमें सोचता, उसके ध्यानमें खोया-खोया-सा रहता। किसी सांसारिक काममें उसका ध्यान न लगता।

माता-पिताको उसे इस प्रकार संसारसे विरक्त देखकर चिंता हुई। उन्होंने उसे संसारसे बांध रखनेके लिए, उसकी इच्छाके विरुद्ध, विवाह कर दिया। विवाहके दिन ही रात्रिमें, नव वधूसे प्रथममिलनकी बेलामें, वह घरसे भागकर वृन्दावन चला गया। वृन्दावमें लोकालयसे दूर बनोंमें रहकर वंशीवालेकी यादमें दिन व्यतीत करने लगा। कभी गांवसे मधुकरी मांग लाता, कभी यमुना-जल ही पीकर रह जाता।

उसने सुना था कि बिना गुरु-दीक्षाके भगवत्-प्राप्ति नहीं होती। एक दिन वह केशी-तीर्थपर यमुनाके किनारे एक वृक्षके नीचे गुरुकी चिंतामें बैठा था। उसी समय वहां स्नानके लिए आये एक महात्माने उसे देखकर कहा—‘बेटा, जा यमुना स्नान कर आ। मैं तुझे दीक्षा-मंत्र दूंगा।’

चिन्तामणि स्वरूप दिव्य वृन्दावन धामकी इस प्रकारकी कृपा देख उसकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। महात्मासे दशाक्षर मन्त्र प्राप्त करते ही वह आविष्ट हो भूमिपर गिर पड़ा। प्रकृतिस्थ होने तक महात्मा अन्तर्धान हो गये। वह उनका नाम और पता-ठिकाना भी न जान सका। भ्रमण करते-करते वह मानसगंगाके निकट सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके पास पहुँचा। उनके शरणापन्न हो बोला—‘मैं मूर्ख भजनके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानता। मुझे भजन-रीति उपदेश करनेकी कृपा करें।’

सिद्ध बावाने उसके तेज और भक्तिभावसे प्रभावित हो परिचय पूछा।

उसने गृह-त्यागसे दीक्षा तक सारी घटनाओंका वर्णन किया । तब सिद्ध बाबाने कहा—‘हमारा रागमार्गका भजन सम्बन्धानुगा है । सम्बन्ध गुरु-परिवारसे ही निर्णय होता है । इष्टसे तुम्हारा सम्बन्ध तुम्हारे गुरु-परिवारके उनसे सम्बन्धके अनुरूप होगा । उसी सम्बन्धके अनुरूप तुम्हारा भजन होगा । पर तुम्हें अपने गुरु-परिवारका पता ही नहीं । इसलिए रागानुगा भजनमें तुम्हारा अधिकार नहीं । दूसरी दीक्षा तुम्हें दी नहीं जा सकती, क्योंकि तुमने इसी सम्प्रदायमें मन्त्रार्थ सहित दीक्षा ले रखी है ।’

सिद्ध बाबाकी बात सुन वह बज्जाहतकी भाँति दारुण रोदन करने लगा । बाबाने तब उससे कहा—‘तुम काम्यवनके सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबाके पास जाओ । वे सर्ववेत्ता हैं । तुम्हारे गुरुदेवका परिचय और सम्बन्ध वे बता सकेंगे ।’

उसने काम्यवन जाकर सिद्धबाबाकी शरण ली । सर्वज्ञ होते हुए भी सिद्ध बाबाने सम्प्रदायमें उपधर्म सृष्टि होनेके भयसे कहा—‘भाई ! तुम्हारे गुरुके सम्बन्धमें मेरे लिए कुछ अनुमान करना कठिन है । तुम्हारा दीक्षालंघन करना भी ठीक नहीं । अतएव तुम रागानुगा भजनके अधिकारी नहीं । ऐसी स्थितिमें तुम्हें चाहिये कि तुम एकान्तमें बैठकर हरिनाम करो । राधारानी जो करेंगी सी होगा । चिन्तामणि स्वरूप गुरुदेवने जैसे तुम्हारी दीक्षाकी इच्छा पूर्ण की है, वैसे ही रागानुगा भजनकी इच्छा भी पूर्ण करेंगे ।’

गंगा निकलती है गिरिगुहासे समुद्रसे मिलनेकी आकांक्षा लेकर और तब तक निरन्तर बहती रहती है, जब तक समुद्रमें समा नहीं जाती । यदि मार्गमें कोई बाधा आती है, तो और भी अधिक बेगवती होजाती है । कृष्णानुरागकी भी ऐसी ही गति है । बाधाएँ उसे मिटा नहीं देती, और अधिक समुज्ज्वल और तीव्र बना देती हैं । रागानुगी साधकके लिए इससे बड़ी बाधा और क्या हो सकती है कि जिसके लिए वह सब कुछ त्यागकर दर-दरका भिखारी बन जाये, उसके भजनके लिए उसे अधिकारी ही न समझा जाय । सिद्ध जयकृष्णदास बाबाका उपदेश नवयुवकके नवानुरागके लिए विस्फोटक सिद्ध हुआ । उसके अनुरागकी अग्नि धू-धूकर जलने लगी । जीवन निराशामय, निरुद्देश्य और निरर्थक प्रतीत होने लगा । ऐसे जीवनको लेकर वह क्या करता ? गिरिराज शिलारूपी गिरिधारीको गलेसे बाँध राधाकुण्डमें कूद पड़ा ! राधाकुण्डके अतल-तलमें संज्ञाहीन अवस्थामें न

जाने कब तक पड़ा रहा। संज्ञा आनेपर उसने देखा कि किसीने उसके गलेकी रस्सी खोलदी है और हाथमें एक ताल-पत्र देकर उसे कुण्डके तटपर लिटा दिया है। ताल-पत्रमें कुछ लिखा है।

इसे राधारानीकी कृपा जान वह दिन निकलते ही दौड़ा गया सिद्ध कृष्णदास बाबाके पास। उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया और ताल-पत्र दिखाया। कृष्णदास बावाने तालपत्र देख सिद्ध जयकृष्णदास बाबाके पास जानेको कहा। तब वह काम्यवनमें सिद्ध जयकृष्णदास बाबाके पास गया। उन्होंने सारा वृत्तान्त सुनकर कहा—‘तुम्हारे ऊपर राधारानीकी यथेष्ट कृपा है। पर तुम्हें जो मिला है, वह भी अव्यक्त है। रागानुगा सेवाके लिए स्पष्ट निर्देशकी आवश्यकता है। तुम फिर राधाकुण्ड जाकर प्रियाजीको पुकारो। वे अवश्य कृपा करेंगी।’

वह राधाकुण्ड जाकर आर्तभावसे राधारानीको पुकारने लगा। भक्तकी आर्तनाद कानमें पहुँचते ही सधोरानीने प्रकट होकर उपदेश किया—‘सूर्यकुण्डमें जाकर भजन करो। वहीं तुम्हारी अभीष्ट रागानुगा सेवाकी प्राप्ति होगी। जो मन्त्र तुम्हें मिला है, उसमें किसीको दीक्षित न करना। आजीवन उसे गोपन रखना।’

तबसे वह सूर्यकुण्डमें रहकर भजन करने लगा। लोग उसे मधुसूदनदास बाबा कहकर पुकारने लगे। मधुसूदनदास नाम उसके गुरुने ही उसे दिया होगा। एक दिन प्रियाजीने मधुसूदनदासको स्वप्नादेश किया—‘तुम जिस घाटपर स्नान करते हो, उसके निकट कण्ठ तक जलमें एक शिला है। उसपर मैंने और मेरी दो सखियोंने स्नान करते समय अपने केयूर और अङ्गुली रख दिये थे। उनके स्पर्शसे शिला गल गयी है और उसपर उन आभूषणोंके चिह्न बन गये हैं। तुम उस शिलाको निकालकर उसका पूजन किया करो।’

मधुसूदनदास बाबा कुण्डके जलमें प्रवेशकर उस शिलाको निकालने लगे, तो वह दो-ढाई मनकी शिला फूलके समान प्रतीत हुई। उन्होंने सहज ही उसे उठाकर कुण्डके तटपर रख दिया। आज भी लोग वहाँ उसके दर्शन करते हैं। कहते हैं, तभीसे मधुसूदनदास बाबा सिद्ध मधुसूदनदास कहलाने लगे।

मधुसूदनदास बाबा शेष-रात्रिमें कुण्डके तीरपर बैठकर उच्च स्वरसे ‘विश्वम्भर गौरचन्द्र ! वृषभानुनन्दिनी ! राधे !!’ नामका कीर्तन किया करते।

प्रातःकाल जब लोगोंका बाहर चलना-फिरना आरम्भ हो जाता, कुटीके भीतर जाकर भजन करने लगते । उनकी सिद्धावस्थाकी बहुत-सी कहानियाँ हैं ।

बरसानेमें फाल्गुनी शुक्ला नवमीके दिन होली खेली जाती है । उस दिन अपराह्नमें सफेद वस्त्र धारणकर बाबा द्रुतगतिसे सीधे बरसानेकी ओर भागते । बम्बेके निकट पहुँचते ही संज्ञाहीन ही गिर पड़ते । ग्वाल-बाल कौतूहलवश उन्हें चारों ओर घेरकर खड़े हो जाते । उनके नेत्रोंसे जल और मुँहसे निकली रालसे धूलि कर्दमाक्त हो जाती । मुखसे फेन झरते, श्वास-प्रश्वास बहुत दीर्घ हो जाते । शरीर अपरूप रोमाञ्चसे युक्त हो जाता । संध्या पर्यन्त वे इसी स्थितिमें पड़े रहते । तत्पश्चात् हुंकारके साथ उठ पड़ते । उस समय उनके उज्ज्वल वस्त्र लाल रंगमें भीगे होते ।

एक दिन किसी व्यक्तिने उनसे कहा—‘आपकी धर्मपत्नी आपको खोजते-खोजते वृन्दावन आयी हैं । आज सन्ध्या समय वे आपके दर्शनार्थ सूर्यकुण्ड आनेकी हैं ।’ बाबा उस समय वृद्ध थे । पत्नी भी वृद्धा थी । पर उनके सूर्यकुण्ड आनेकी बात सुनते ही उन्होंने कहा—‘मैं गोवर्धन चलूँ और वहाँसे चल दिये । सूर्यकुण्ड आकर पत्नीको पता चला कि बाबा गोवर्धन चले गये हैं, तो वे गोवर्धन गयीं । वहाँ जाकर पता चला कि वे अन्यत्र चले गये हैं । वृद्धा ब्राह्मणीने समझ लिया कि उनके कारण महात्माके स्वच्छन्द भजनमें विघ्न पड़ रहा है । वे इधर-उधर भागनेको बाध्य हो रहे हैं । गिरिराजसे उनके कुशल-क्षेम और भजन-साफल्यके लिए प्रार्थनाकर वे देश लौट गयीं ।

कुछ दिन बाद ही बाबाके पैरमें क्षतरोग हो गया । उनका चलना-फिरना दुष्कर हो गया । तब उन्होंने किसी निर्जन स्थानमें जाकर देह-त्याग करनेका संकल्प किया । बड़े कष्टसे वे रात्रिके समय किसी सघन-वनमें जा पड़े । बिना अन्न-जल ग्रहण किये राधारानीको पुकारते हुए मृत्युकी प्रतीक्षा करने लगे । दो दिन बीत गये । एक बूंद जल भी पेटमें नहीं गया । राधारानीका नाम लेकर रोते-रोते वे मृतप्राय हो गये । तीसरे दिन करुणामयीसे रहा न गया । किशोरी ब्रज-बालिकाके रूपमें रोटी और जल लेकर अपराह्नमें बाबाके पास आकर बोलीं—‘अरे तू हियां काय कूं आय पड़ो है ? मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान है गयी । तू कल रोटी लैवे नाय आयो, परसोंऊँ नाय आयो । मइयाने तेरे ताई रोटी भेजी है । खाय ले ।’

बालिकाको बाबा बहुत दिनोंसे जानते थे। वह जिस घरकी थी, उसे भी जानते थे। उन्होंने कहा—‘लाली तू यहाँ क्यों आयी? तूने कैसे जाना कि मैं यहाँ हूँ?’

‘मौएँ सब खबर पड़ जाय। अब तू खाय ले।’

‘मैं नहीं खाऊँगा, लेजा।’

‘खायगो च्यू नई। मइयाने कह्यो है सामने जियायके अइयो। शरीरमें दुःख-सुख तो लग्योई रहे है। प्राण तजे तें कहा भजन पूरो होय है? खायले।’

बालिकाके मधुर वचनोंकी बाबा अवहेलना न कर सके। तीन दिनके भूखे-प्यासे थे, बालिकाका लाया प्रसाद सब खा गये। खाकर बोले—‘फिर कभी भक्त अइयो।’

किशोरी उनकी ओर देखती ओर मृदु-मन्द मुसकाती चली गयी। बावाने अनुभव किया कि उनके शरीरकी ज्वाला-यन्त्रणा चली गयी। पैरकी पट्टी खोलकर देखा, तो क्षतका भी कोई चिह्न नहीं! उन्हें कुछ सन्देह हुआ। उठकर धीरे-धीरे बालिकाके घर तक गये। व्रजमाईसे पूछा—‘तेरी लाली कहाँ है?’

‘लाली तो ससुरालमें है।’

‘कब गयी?’

‘तीन माह भये।’

बावाने सारा रहस्य समझ लिया। घटनाके प्रकाश होनेके भयसे व्रजमाईसे कुछ न कहा। पर उनकी भावमुद्रा विलक्षण प्रकारकी हो गयी। उनके दोनों नेत्रोंसे गंगा-यमुना बहने लगीं। ‘हा राधे! करुणामयी!’ कहकर वे दीर्घ निश्वास फेंकने लगे। गोपन रखनेकी चेष्टा बार-बार करनेपर भी घटना प्रकाशमें आ गयी।

एक बार कार्तिक मासमें बावाने श्रीमद्भागवत-पाठ करनेकी इच्छा प्रकट की। व्रजवासियोंने सहर्ष सारी व्यवस्था करदी। रास पञ्चाध्यायीका पाठ होने लगा। सूर्यकुण्डवासी एक डोमका बच्चा नित्य पाठ सुनने आया करता। उसे देख व्रजवासी नाना प्रकारकी आलोचना करते। पाठकी

समाप्तिके दिन वह बाबाकी गोदमें बैठकर पाठ सुनने लगा । पाठके बीचमें ही उसने पूछा—‘बाबा ! श्रीकृष्णने रासके पश्चात् विश्राम कहाँ किया ? सेवाकुञ्जमें या संकेत वनमें ?’

बाबा प्रश्नका उत्तर दे, उसके पूर्व बम फटने जैसा शब्द हुआ । उनके प्राण ब्रह्मरन्ध्र भेदकर निकल गये ! उसी स्थानपर उनकी समाधि आज भी विद्यमान है ।

श्रीजगन्नाथदास बाबाजी

(वृन्दावन/नवद्वीप)

‘यहाँ सिद्ध बाबा कहाँ रहते हैं ?’ नवद्वीपमें आये गोपीनाथ राय, जानकीनाथ राय प्रभृति भाग्यकुलके जमींदारोंने सिद्ध श्रीजगन्नाथदास बाबाके निकट जाकर पूछा ।

‘यहाँ सिद्ध बाबा कौन हैं, मैं नहीं जानता । आप लोग जैसे मनुष्य हैं, वैसा ही मैं भी एक मनुष्य हूँ’ सिद्ध बाबाने उत्तर दिया ।

‘नहीं, नहीं, आप ही हैं सिद्ध बाबा । हमारी बड़ी इच्छा है कि हमें कुछ सिद्धाईदिखायें’ उन लोगोंने विनयपूर्वक कहा ।

‘भैया, मैं क्या जानूँ सिद्धाई किसे कहते हैं’ कहते हुए सिद्ध बाबाने एक लाठी ७-८ बार भूमिपर मारी ।

‘चलो भाई चलें, बाबा रुष्ट हो गये’ कहकर भयभीत बाबू लोग जानेको प्रस्तुत हुए ।

‘नहीं, नहीं, तुम्हारे ऊपर रुष्ट होनेकी क्या बात है ? मैं तो ब्रजके श्रीराधाकुण्डमें श्रीलोकनाथ गोस्वामीकी भजन-कुटीमें एक बकरीको तुलसीका पौधा खाते देख उसे भगा रहा था’ बाबाने कहा ।

सुनकर बाबू लोगोंको विस्मय हुआ । उन्होंने उसी समय २०) रुपये खर्चकर एक जवाबी तार दिया इस घटनाकी पुष्टिके लिए । ब्रजसे उत्तर आया ‘श्रीलोकनाथ गोस्वामी-कुञ्जमें एक बकरीने तुलसीके पौधेको पूरी तरह चबा डाला है । उसके बाल अब भी वहाँ पड़े हुए हैं ।’

तार पाकर बाबू लोग फिर आये बाबाके निकट । हाथ जोड़कर क्षमा मांगी और चले गये । जब वे चले गये, सिद्ध बाबाने कहा—'ये लोग हैं कलिके जीव । बिना कुछ देवे विश्वास नहीं करते । इसीलिए दिखा दिया कुछ इन्हें । नहीं तो मरते न विचारे अपराधसे ।'

बाबू लोग मूर्ख थे । तभी न उन्होंने बाबासे ऐसी बात कही । बाबा तो आकृति-प्रकृतिसे ही थे सिद्धाईका भूतिमान स्वरूप । सवा सौ वर्षकी उनकी आयु, पिंडाकार शरीर, जैसे रीढ़की हड्डीके दोनों सिरे मिल जानेको हों ! नेत्रोंके नीचे तक झूलती हुई पलकें, जैसे नेत्रोंने प्राकृत जगतको न देखनेका संकल्पकर परदा डाल लिया ही ! दुर्बल, निश्चल टाँगें, जैसे उन्होंने गमनागमनसे मुक्त हो परमहंस वृत्ति धारण करली हो । फिर भी साधन-भक्तिमें उनका ऐसा आवेश ! नित्य समस्त रात्रि जागकर नाम करना ! नित्य प्रातः एक हजार दण्डवत्-प्रणाम करना ! नित्य सेवकको दोनों हाथोंसे अपनी दोनों पलकोंको उठाये रखनेका आदेश दे स्वयं गिरधारीको तुलसी अर्पण करना ! तीन-तीन दिन तक निर्जल उपवास रखतेहुए भी इन नियमोंका दृढ़तासे पालन करना ! पिंडाकार और निश्चल होते हुए भी संकीर्तनमें सीधे होकर उद्दाम नृत्य करते हुए पृथ्वीसे चार-चार हाथ ऊपर उछल पड़ना । यह सब क्या उनके सिद्ध स्वरूपका सहज परिचय नहीं था ?

महापुरुष सिद्धाई दिखानेमें रुचि नहीं रखते । पर कभी-कभी कलिके जीवोंमें श्रद्धा उत्पन्नकरनेके लिए, या किसी विशेष परिस्थितिमें जीव विशेष-पर कृपा करनेके लिए, उन्हें ऐसा करनेको विवश होना पड़ता है । सिद्ध श्रीजगन्नाथदास बाबाको कभी-कभी इसी प्रकार विवश होना पड़ता था ।

एक बार, जब सिद्ध बाबा नवद्वीपमें थे, सारा नवद्वीप बाबूसे डूब गया । सभी लोग अपना-अपना स्थान छोड़कर सुरक्षित स्थानोंपर चले गये । बाबा अपने स्थानपर हो बने रहे । उस समय उनके शिष्य श्रीगौरहरिदास बाबा, जो बड़ाल घाटमें रहते थे, खिचड़ी पकाकर उन्हें दे आया करते । कुछ दिन बाद, जब जलका प्रकोप और अधिक बढ़ गया, उनका जाना सम्भव न रहा । इधर बिहारीदास बाबा व्रजवासीको, जो सिद्ध बाबाके निरन्तर साथ रहकर उनकी सेवा करते थे, ज्वर हो गया । अवस्था क्रमशः खराब होती गयी । महाप्रभुके मन्दिरके श्रीप्यारीमोहन गोस्वामीने कलकत्ते तार देक

डाक्टरको बुलवाया । डाक्टरने देखकर कहा—‘हालत बहुत खराब है । आज रातमें ही शरीर छूट जायगा ।’

लालाबाबूने अपने कविराजको भेजा । उन्होंने भी यही कहा । तब सिद्ध बाबा बोले—‘अच्छा इसबार मैं इसकी चिकित्सा करूँगा ।’ गिरधारीकी चरण-तुलसी मँगा बिहारीदास बाबाके मुखमें दी । आप माला हाथमें ले उनके सिरहाने बैठ गये और बोले—‘मैं यहाँ बैठा हूँ । देखूँ किसकी ताकत है, जो इसे लेजाय । मैंने क्या भजन नहीं किया है ?’

बस वे माला करने लगे । आध घण्टे बाद बिहारीदासने आँखें खोलीं । सिद्ध बाबाने पूछा—‘क्योंरे, मुझे छोड़कर कहाँ जा रहा था ? उठ मैंने २२ दिनसे मुख भी नहीं धोया है । उठकर रसोई बना ।’

बिहारीदासजोने कहा—‘बाबा, बड़ी भूख लगी है ।’

उसी समय सिद्ध बाबा सूजी-चीनीसे मोहनभोग बना लाये । बिहारीदासने मोहनभोग खा लिया । तब बाबा बोले—‘जा, अब स्नान कर । रसोई बनाकर ठाकुरका भोग लगा ।’

बिहारीदासने उठकर बाबाका मुख धोया, स्वयं स्नान किया और उन्हें स्नान कराया । प्रसाद पानेके बाद बाबाने कहा—‘देख बिहारी, तेरे हाथका खानेसे मुझे भजनमें स्फूर्ति होती है । और किसीके हाथका खानेकी इच्छा नहीं होती ।’

बाबाकी इच्छा हुई बिहारीदास बाबासे श्रीचैतन्यचरितामृत सुननेकी । उन्होंने कहा—‘बिहारी, तू बँगला पढ़ना जानता है ?’

बिहारी बाबाके ना करनेपर उन्होंने कहा—‘अच्छा, चरितामृत खरीद ला ।’

चरितामृत ले आये तो बाबाने कहा—‘पढ़ तो, देखूँ ।’

बिहारी बाबा उनकी ओर देखते रह गये । उन्होंने कहा—‘अरे, ग्रन्थकी तरफ देख ।’

ग्रन्थकी तरफ देखते-देखते ही बिहारी बाबाको पहले अक्षर-ज्ञान हो गया, फिर संयुक्त अक्षरोंका ज्ञान और उसके साथ ही वे चरितामृत पढ़ने लगे । इसी प्रकार सिद्ध बाबाकी कृपासे उन्होंने खोल वजाना भी सीख लिया ।

सिद्ध बाबा अपने गुरु-पुत्र श्रीब्रह्मानन्द गोस्वामी प्रभुसे बहुत स्नेह करते। वृन्दावनसे नवद्वीप जाते समय पूर्णियामें उनके निवास-स्थानपर कुछ दिन रुककर उनका संग किया करते। एक बार जब वे पूर्णियामें प्रसाद पा रहे थे, माँ गोस्वामिनी परिवेषण कर रही थीं। वे पेटभर खा चुके तो भी माँ गोस्वामिनी बार-बार प्रसाद परसती गयीं। यह देख सिद्ध बाबाकी शंका हुई। वे समझे कि माँ चाहती हैं उनके द्वारा सेवित प्रसादका अवशिष्ट रखना। इसलिए उन्होंने इस बार परसे हुए प्रसादको शेषकर शीघ्र उन केलेके पत्तोंकी भी खा डाला, जिनपर प्रसाद परसा गया था और स्थानकी पानीसे लीपकर बैठ गये। इतनी फुर्तीसे यह सारा काम किया कि माँ और अन्य सभी लोग देखने रह गये। सब सिद्ध बाबाकी अलौकिक शक्तिकी मन ही मन प्रशंसा करने लगे।

महापुरुष अक्सर भावावेशमें भी प्राकृतिक नियमोंका अनायास अतिक्रमण कर जाते हैं। इसे चाहे हम उनकी सिद्धाईका परिणाम कहें या उस अप्राकृत भावका जो उनके भीतर खेलता होता है। पर इतना स्पष्ट है कि यह होता है उनकी अपनी इच्छाके बिना ही। सिद्ध बाबा अति वृद्ध होनेपर जब चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गये, तब जब भी उन्हें कहीं जाना होता, बिहारीदास बाबा उन्हें एक झप्यानमें रख अपने कन्धेपर ले जाते। एक दिन नवद्वीपमें उनकी भजन-कुटीके सामनेसे एक कीर्तनमण्डली नगर-कीर्तनकी जा रही थी। संकीर्तनकी ध्वनि सुन उन्होंने बिहारीदास बाबासे कहा बाहर ले चलनेको। बाहर जा संकीर्तनकी साष्टांग दण्डवत् किया। उसके पश्चात् भावाविष्ट हो स्वयं नृत्य करते हुए संकीर्तनके साथ-साथ जाने लगे। सड़ककी मरम्मत हो रही थी। उसपर कंकड़ बिछे हुए थे। सिद्ध बाबा एक-एककर संकीर्तनका पद सुनते और भावावेशमें दो-तीन हाथ उछलकर कंकड़ोंके ऊपर चित्त गिर पड़ते। कभी संज्ञाहीन हो जाते, कभी अर्धबाह्यावस्थामें अस्पष्ट शब्दोंमें कुछ कहने लगते। मुखसे फेन निकलता होता, नेत्रोंसे अश्रुधार। कीर्तनमण्डलीमें भी उस भावका संक्रमण हुआ। वह भी उन्मत्त हो उच्चस्वरसे कीर्तनके साथ नृत्य करते-करते जाने लगी। उसकी गति मंद पड़ गयी। छः-सात घण्टे लग गये बाबाकी भजनकुटीसे रानीघाटके बटतला तक जानेमें। इस बीच बराबर सिद्ध बाबाकी और कीर्तन-मण्डलीकी वही अवस्था रही। सब सुध-बुध छोड़कर एक अपूर्व अलौकिक आनन्द-समुद्रकी

लहरोके घात-प्रतिघातसे मदमस्त हो झूम-झूमकर अश्रुविसर्जन करते हुए और बीच-बीचमें हुंकारसे भूतलको विकम्पित करते हुए कीर्तन करते रहे ।

सिद्ध श्रीजगन्नाथदास बाबा वृन्दावनीय शृङ्गारवटके श्रीजगदानन्द गोस्वामीके शिष्य और गोवर्धनवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके वेश-शिष्य थे । छः महीने व्रजमें और छः महीने नवद्वीपमें रहते थे । व्रजमें वे कभी कहीं रहते, कभी कहीं । उनके बहुत-से प्रभावशाली शिष्य थे, जैसे—(१) श्रीबिहारीदास बाबाजी, (२) श्रीभगवानदास बाबाजी, (३) श्रीगौरहरिदास बाबाजी, (४) श्रीरामहरिदास बाबाजी, (५) श्रीरामदास बाबाजी, (६) बरसानेके श्रीनित्यानन्ददास बाबाजी और (७) कदमखण्डीके श्रीकृष्णदास बाबाजी ।

सिद्ध बाबा चातुर्मास्य किया करते । प्रथम मासमें सन्ध्याके पश्चात् चार केले खाते, द्वितीय मासमें अमरुद, तृतीय मासमें मठा और चतुर्थ मासमें बिना नमकके उबले हुए केलेके फूल ।

एक बार वे मन्त्र-पुरश्चरणके लिए हृषीकेश गये । उस समय प्रातः तीन बजे उठकर स्नान करते और दरवाजा बन्दकर मौन धारणकर सन्ध्या पर्यन्त जप करते । सन्ध्याके पश्चात् हविष्यान्न ग्रहण करते । अधोवायु त्याग होनेपर या लघुशंका होनेपर फिरसे स्नानकर जपमें बैठते । इस प्रकार दो मास करनेके पश्चात् हठात् एक दिन वे एक वृक्षकी ओर देखते हुए बोल पड़े—‘बिहारी देख, देख—कितना फल आया है !!’ इस प्रकार-व्रत भंग हो गया । तब उन्होंने फिरसे व्रत आरम्भ किया और तीन महीनेमें सिद्ध हो गये । वे कहा करते कि श्रीकृष्ण या श्रीगौरांगके इसी देहमें दर्शन करने हों, तो इस प्रकार पुरश्चरण करना चाहिये ।

सिद्ध बाबाका वैराग्य अतुलनीय था । वे पैसा-कौड़ी स्पर्श नहीं करते थे । एक बार बिहारीदास बाबा उन्हें कहीं ले जा रहे थे । किसी भक्तने एक रुपया दिया । बाबाने बिहारीदाससे उसे उठा लेनेको कहा । दो-तीन मील आगे जाकर उनसे फिर उसी स्थानपर लौट चलनेको कहा, जहाँ भक्तने उन्हें रुपया दिया था । वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस भक्तको बुलवाया और कहा—‘बाबा ! अपना रुपया वापस ले लो । सुना है तुम्हारे पास बहुत-से रुपये हैं । मैं एक रुपयेके काटनेकी पीड़ा सहन न कर सका । तुम इतने सारे रुपयोंके एक साथ काटनेकी पीड़ा कैसे सहते होगे !’

जो महात्मा भाव-राज्यमें सदा डूबे रहते हैं, उन्हें पार्थिव वस्तुका यत्किञ्चित् संकल्प-विकल्प भी असह्य होता है। रुपया तो बिहारीदास बाबाके पास था, पर काट रहा था सिद्ध बाबाको, उन्होंने उसे उठा लेनेकी आज्ञा देकर मानसिक रूपसे उसका स्पर्श किया था, इसलिए।

परम स्वतंत्र निरपेक्ष और निर्भीक सिद्ध बाबा अपने मनके राजा थे। अपने मनकी दुनियाँ में स्वतंत्रतापूर्वक विचारा करते थे। समाजके लोग कभी-कभी सामाजिक परम्पराओंके विरुद्ध उनके क्रिया-कलाप देख चिन्तित हो पड़ते थे। पर किसका साहस था उनसे कुछ कह सकनेका ?

एक बार वे जब काले बाबूके कुञ्जमें रह रहे थे, भंगी आया कुञ्जमें रोटी माँगने। बाबाने उससे कहा—‘बड़ी भूख लगी है, एक रोटी देजा।’

उसने उत्तर दिया—‘भंगी हूँ बाबा। ऐसे नहीं कहते।’

‘अरे मैं भूखा हूँ। देगा नहीं ?’ बाबाने रुष्ट होते हुए कहा।

उनका आग्रह देख भंखीने रोटी देदी। बाबाने खाली।

जगन्नाथदास बाबाने भंगीकी रोटी खायी है—यह खबर वृन्दावनमें विद्युद्गतिसे चारों ओर फैल गयी। समाजमें हलचल मच गयी। जैसे बाबाने सदियोंसे सुरक्षित खड़ी सामाजिक परम्पराओंकी फूसकी झोपड़ीमें जान-बूझकर आग लगादी हो।

सभी कहने लगे—‘बाबाने यह क्या किया ? इतने बड़े महात्मा ऐसा करेंगे तो क्या होगा समाजका ?’

बिहारीदास बाबाने कहा—‘बाबा ! मैंने अभी तो आपको रसोई करके खिलायी, फिर आपने ऐसा क्यों किया ?’

‘आज मेरा जन्म सार्थक हुआ !!’ सिद्ध बाबाने उत्तर दिया।

‘ब्रजमें आपकी रोटी बन्द हो जायगी’ बिहारीदासने कहा।

‘अच्छा, देखा जायगा’ कह बाबाके मुखपर एक हल्की-सी मुसकान खेल गयी।

थोड़ी देरमें श्रीनीलमणि गोस्वामी, श्रीगौरसिंह सुन्दरराय, श्रीगौर शिरोमणि, श्रीराधिकानाथ गोस्वामी आदि वृन्दावनके प्रमुख वैष्णव टोली बनाकर सिद्ध बाबाके पास आये। सिद्ध बाबाने बिहारीदाससे बाहर आसन

देनेको कहा । आसनपर सब चुप बैठे रहे । तब बाबाने कहा—‘आप लोग क्या कहना चाहते हैं ? कहिये न ।’

‘बाबा ! आप हैं चौरासीकोस ब्रजमण्डलके मुकुटमणि । आपने ऐसा क्यों किया ? लोग तरह-तरहकी बातें कह रहे हैं । हमारे प्राणोंको बड़ी व्यथा पहुँच रही है ।’

“लोग क्या जानें । द्वापर युगमें श्रीकृष्णने अवतार लेनेके पूर्व ८८ हजार मुनियोंसे कहा था—‘तुम लोग ब्रजमें जाकर जिस किसीके घर जन्म लेलो, मैं भी शीघ्र आता हूँ ।’ उन मुनियोंने ही इतर कुलोंमें जन्म लिया है । मैं किसीको भी भंगी नहीं जानता । आप लोग ब्रजमें वास कर रहे हैं किसलिए ? ब्रजरज पानेके उद्देश्यसे न ? भंगी दिन-रात रजकी सेवा करते हैं । रज उन्हें नहीं मिलेगी, तो क्या आप लोगोंको मिलेगी, जो पलंगोंपर सोते हैं ?”

अब कोई क्या कहता ? सब अपने-अपने स्थानको चले गये ।

एक बार बाबाका आही हुकुम हुआ—‘बिहारी, नवद्वीपकी यात्रा करनी है, अभी इसी क्षण ।’ आज्ञाकारी गुरुगत-प्राण बिहारीदास बाबा तत्काल ज्ञप्पानमें बाबाको कंधेपर चढ़ा यात्राके लिए प्रस्तुत हुए । कंधेपर चढ़ाते समय उन्हें लगा कि जैसे वे एक भारी पत्थर उठा रहे हों । पर कंधेपर ज्ञप्पान रखते ही लगने लगा कि जैसे एक प्रतला अँगोछा कंधेपर रखे हों । दिन-रात बराबर चलकर बिहारीदास बाबा नौ दिनमें नवद्वीप पहुँच गये । कहना कठिन है कि यह सिद्ध बाबाकी सिद्धाई थी, या बिहारीदास बाबाकी गुरु-भक्तिकी अलौकिक शक्ति, जो उन्हें इतने अल्प समयमें इतनी दूर ले आयी ।

भागलपुरके जंगलमें-से गुजरते समय बिहारीदास एकदम रुककर पीछेको चलने लगे । बाबाने गम्भीर स्वरमें पूछा—‘क्यों रे, क्या बात है ?’

बिहारीदासने भयसे कांपते हुए धीमे स्वरमें कहा—‘सामने बाघ सो रहा है !’

सिद्ध बाबा कड़ककर बोले—‘अरे बाघ नहीं, महाप्रभुका पार्षद है रे । तुझे देखने आया है ।’

देखते-देखते बाघ पथ छोड़कर चला गया । बिहारीदासके हाथमें था एक नारियलका कटोरा और कंधेपर सिद्ध बाबा सहित ज्ञप्पान । इसके

अतिरिक्त उनके पास और कुछ न था। मार्गमें उन्हें कहीं आटा, कहीं दाल, कहीं चावल, जो कुछ मिल जाता उसका एक डेला-सा पकाकर सिद्ध बाबाको दे देते। कुछ बाबा खा लेते, कुछ बिहारीदासके लिए छोड़ देते।

एक बार सिद्ध बाबाने खदिरवनके पास पेसाईकी कदम-खण्डीमें जाकर अपना आसन जमाया। गाँव वहाँसे बहुत दूर था। निकटमें केवल एक कच्चा कुण्ड था। दिनके समय भी वहाँ किसी आदमीकी परछाई नहीं दीखती थी। उस दिन दशमी थी। सिद्ध बाबा और बिहारीदास दोनों ही कुण्डका जल पीकर रह गये। दूसरे दिन एकादशीको भी यही किया। बिहारीदासने कहा—‘बाबा, अच्छे स्थानपर डेरा डाला। लगता है, यहाँ नित्य ही उपवास रखना होगा।’

‘चिन्ता क्यों करता है ? ठाकुरजी आप ही व्यवस्था करेंगे। तू रातमें कारतालकी ध्वनि तो करना जरा।’

बिहारीदासजीने वैसा ही किया। दूसरे दिन प्रातःकाल एक ब्रजवासी तरह-तरहके द्रव्य लेकर उपस्थित हुआ। उसके बाद इतनी सामग्री आने लगी कि दो-तीन मनकी खीरका उत्सव तक होने लगा।

एक दिन बिहारीदास रसोई कर रहे थे। सिद्ध बाबाके शिष्य रामहरिदास बाबा भी वहीं थे। उनसे सिद्ध बाबाने कहा जल इत्यादि लाकर बिहारीदासकी सहायता करनेको। पर वे माला लेकर जप करने बैठ गये। बिहारीदासने कहा—‘तुम भेक लेकर सिद्ध हो गये मालूम होता है। थोड़ा जल भी लाकर नहीं दिया।’

रामहरिदासने कहा—‘चुप, चुप। बाबा सो रहे हैं।’

सिद्ध बाबाने मुन लिया। वे चूल्हेकी तरफ दौड़े। एक जलती हुई लकड़ी निकालकर रामहरिदासके पेटपर रखते हुए बोले—‘बेटा, वृन्दावनमें मस्ती करने आया है। जल तो लाकर दिया नहीं, कहता है—चुप, चुप।’

कुछ दिन बाद सिद्ध बाबा सूर्यकुण्डमें जाकर रहने लगे। सूर्यकुण्डके ब्रजवासियोंने सूर्यकुण्डमें उनके रहनेके लिए एक पक्की कोठरी और ठाकुर-सेवाके लिए एक मन्दिरका निर्माण कर दिया। बिहारीदास बाबाने वंगालमे निताइ-गौरकी दो सुन्दर मूर्तियाँ लाकर मन्दिरमें पधरा दीं। मूर्तियोंको सोनेकी समझ एक दिन डकैतोंके एक दलने मन्दिरपर हमला

किया। सिद्ध बाबाके पास जाकर उन्होंने अपनी सब धन-सम्पत्ति निकालकर देनेको कहा। सिद्ध बाबा बोले—‘मेरे पास क्या रक्खा है बाबा। मैं तो सेवक ठहरा। मालिक भीतर बैठे हैं, उनके पास जाओ।’

डाकू मन्दिरके भीतर गये। वहाँ जो कुछ हाथ लगा उसे ठाकुर समेत एक कम्बलमें बाँधकर ले जाने लगे। जाते समय दरवाजेकी चौखटसे माथा टकराया। डाकू और ठाकुर दोनों भूमिपर गिर पड़े। यह देखकर कि सवेरा हो गया है, डाकू ठाकुरको छोड़ द्रव्य लेकर भाग गये। तब सिद्ध बाबाने बिहारीदास बाबासे कहा—‘इन ठाकुरोंको वृन्दावनमें किसीको दे आ।’

उन्होंने यह कहा सोनेके-से प्रतीत होनेवाले ठाकुरोंको चोरोंको आमन्त्रित करनेवाले जानकर, या और किसी प्रकारसे अपने भजनमें बाधक जानकर, यह तो बाबा ही जाने। बिहारीदास बाबा उन्हें वृन्दावन जाकर दो हजार रुपयोंके साथ मालदह जिलेके गयेसपुरकी माँ गोस्वामिनीको दे आये। यह ठाकुर इस समय गोपालबागके धोबीपाड़ेमें विराजमान हैं और ‘सोनार गौरांग’ नामसे प्रसिद्ध हैं।

कुछ दिन पश्चात् सिद्ध बाबा बोले—‘बिहारी ! ठाकुरके बिना न जाने कैसा-कैसा लग रहा है। जहाँसे भी हो ठाकुर ले आ।’ तब बिहारीदास बाबा राधाकुण्डके निकट मुखरा ग्रामके मनीपुरी वैष्णव दिनू बाबाजीकी षड्भुज महाप्रभुकी एक मूर्ति, जो गायोंके खानेकी भूसीके भीतर छिपी हुई थी, ले आये। उसका अङ्गरागादि करवाकर उसे यथाविधि बाबाकी कुटियाके मन्दिरमें पधरा दिया। दस वर्ष तक श्रीविग्रहकी सेवाकर एक दिन बाबा बोले—‘बिहारी, ठाकुरको वृन्दावनमें किसीको दे आ। मैं नवद्वीप जाऊँगा। मेरी हार्दिक इच्छा है कि यह देह गौरके पादपद्मोंमें समर्पित हो।’

बिहारीदास ठाकुरको गोपाल-गुरु मठके अधिकारी श्रीनरोत्तमदासको दे आये। यह ठाकुर निधुवनके निकट एक गलीमें आज भी विद्यमान हैं।

सूर्यकुण्डसे बाबा सदाके लिए नवद्वीप जा रहे हैं, यह संवाद पाकर ब्रजके विभिन्न स्थानोंसे श्रीनीलमणि प्रभु, श्रीराधिकानाथ प्रभु, अन्य वैष्णव बाबाजी और पंडितगण उनके दर्शनके लिए आये। उन्होंने पूछा ‘बाबा ! इतनी वृद्धावस्थामें आप ब्रज छोड़कर क्यों जा रहे हैं?’

उत्तर देते समय बाबा आविष्ट हो गये। उनका सारा शरीर फूल गया। वे बोले—‘आप लोग ब्रजमें रहें। मैं नवद्वीप जाऊँगा। मेरे जैसे

अपराधी जीवोंके लिए नवद्वीप ही उचित स्थान है। निताइ-गौरांग दयालु अवतार हैं। वे अपराधका विचार नहीं करते।'

कुछ दिन पूर्व एक भक्त बंगालसे वृन्दावन आये थे। उन्होंने बाबासे पूछा था—'बाबाजी महाशय ! श्रीकृष्णलीला तो कुछ-कुछ समझमें आती है, ऐसा लगता है। पर गौर-लीला समझमें नहीं आती। इसका क्या कारण है ?' बाबाने उत्तर दिया था—'गौर-लीला क्या इतनी सहज है। आगे ब्रजके कुछ बनो, तब गौर-लीला समझनेकी चेष्टा करना।' वस्तुतः श्रीगौर-लीला श्रीकृष्ण-लीलाकी ही चरम परिणति है। सिद्ध बाबा अपनी गौर-निष्ठामें अद्वितीय थे।

सूर्यकुण्डमे सिद्ध बाबाको कन्धेपर लेकर बिहारीदास बाबा मथुरा स्टेशन पहुँचे। बिना टिकट नवद्वीपके लिए गाड़ीपर सवार हुए। वर्धमानके निकट मेमारि स्टेशनपर उतरे। एक साहबने उन्हें हाथ पकड़कर फाटकके बाहर कर दिया। वहाँ नेपाल बाबूके स्थानपर कुछ देर विश्रामकर बैलगाड़ीसे अम्बिका कालनाके सिद्ध भगवानदास बाबाके स्थानपर गये। 'अहो ! मेरे बन्धु आये हैं !' कहकर भगवानदास बाबाने उन्हें गाढ़ आलिगन किया। दोनों बन्धु एक दूसरेके आलिगन पाशमें बँधे भूमिपर लोट-फोट होने लगे। रातके ग्यारह बज गये, फिर भी उनका प्रेमालिगन नहीं छूटा।

भगवानदास बाबाजीके शिष्य श्रीविष्णुदास बाबाने बिहारीदासजीसे कहा—'भाई, कोई उपाय करो।'

बिहारीदासने कहा—'तीन दिनसे बाबाने आहार नहीं किया है, और अब ग्यारह बज रहे हैं।' इतना कह उन्होंने जगन्नाथदास बाबाको अपनी बांहोंने भर लिया और उनकी छातीपर हाथ फेरने लगे।

कुछ देरमें बाबा बोले—'बिहारी, तूने कुछ खाया ?'

बिहारी बाबाने कहा—'आप लोगोंने किसीने कुछ नहीं खाया, तो मैं कैसे खाता। अब ग्यारह बजे हैं।'

सिद्ध बाबाने चीँककर कहा—'धुत ! अभी तो सन्ध्या हुई है।' सब लोग यह सुनकर हँस पड़े। सिद्ध बाबाकी उनकी हँसीपर आश्चर्य हुआ।

दस-ग्यारह दिन वहाँ रहकर जब सिद्ध बाबा नवद्वीप जानेकी हुए, तब सिद्ध भगवानदास बाबाने विष्णुदाससे कहा—'देख, इस बाँसके चोंगेमें क्या है ?' विष्णुदासने चोंगा उलटकर अठारह रुपयेकी रेजमी गिन डाली। तब

भगवानदास बाबाने कहा—‘बन्धु नवद्वीप जायेंगे, उन्हें दे दे ।’ बिहारीदासजी वह रेजगी लेकर बेलगाड़ीपर नवद्वीपके लिए चल पड़े । रास्तेमें सिद्ध बाबासे पूछा—‘नवद्वीपमें कहाँ ठहरेंगे, बड़े अखाड़ेमें ?’ उन्होंने कहा—‘नहीं, नहीं, किसी अखाड़ेमें नहीं जाऊँगा ।’

नवद्वीप पहुँचकर उन्होंने एक पेड़के नीचे आसन जमाया । बिहारीदास बाबाने श्रीकेदारनाथ दत्त, भक्तिविनोद ठाकुरकी सहायतासे भिक्षाकर उसी स्थानके निकट कुछ जमीन खरीदकर दो पर्ण-कुटियोंका निर्माण किया । पीछे राजर्षि बनमाली रायबहादुरने तीन पक्की कोठरियाँ बनवा दीं । उनके चारों ओर चहारदीवारी खिचवादी । सिद्ध बाबाने ३२ साल तक उस स्थानपर रहकर १४७ वर्षकी अवस्थामें नित्य-सीलामें प्रवेश किया ।

उनके आश्रममें एक केलिकदम्बका वृक्ष था, जिसके नीचे बैठकर वह भजन किया करते थे । उनके अन्तर्धानके पश्चात् वह सूखने लगा । छाल छूटकर गिरने लगी और उसके अङ्गपर अस्पष्ट अक्षरोंमें ‘हरे कृष्ण’ नाम लिखा दीखने लगा !

अप्रकट होनेके चार-पाँच दिन पूर्व सिद्ध बाबाने बिहारीदास बाबासे कहा—‘बिहारी, तूने मेरी बहुत सेवा की । पर मैं तेरे लिए कुछ न कर सका । अच्छा, आज तुझे चार-पाँच गाड़ी भरके धन दूँगा ।’

‘आपके पास तो एक दूटे करुवेके अतिरिक्त और कुछ है नहीं, चार-पाँच गाड़ी धन देने कहाँसे ?’ बिहारीदासने पूछा ।

‘अरे महाप्रभु तो मुझे दर्शन देने आयेंगे । उन्हें इंगितकर देनेसे ही वे भिजवा देंगे ।’ सिद्ध बाबाने कहा । फिर बोले—‘अच्छा बता तू धन चाहता है, या मुझे ?’

‘मैं आपको चाहता हूँ । धनका क्या करूँगा ।’ बिहारीदासने उत्तर दिया ।

तब सिद्ध बाबाने प्रसन्न होकर कहा—‘बहुत अच्छा । मुझे लेनेसे धन नहीं मिलेगा । पर कुछ अभाव भी नहीं होगा । सौ वर्षकी आयु होगी । सदा नाम करना । नाम कभी न भूलना । कबि तेरा कुछ न कर सकेगा ।’

बिहारीदास बाबाको सिद्ध बाबाने कई और बहुमूल्य उपदेश दिये । उन्होंने कहा—‘देख बिहारी, किसी अखाड़ेमें न्यौता खाने मत जाना ।’

बिहारीदासके कारण पूछनेपर उन्होंने कहा—‘अरे स्त्री संग, उसके संगीका संग और उसके संगीके संगीका संग नहीं करते ।’

एक और बड़े मर्मकी बात कही उन्होंने । बोले—‘देख, जिस राजाके राज्यमें रहे, उसका गुण गाना चाहिए । द्वापरमें था कृष्णका राज्य । इस समय है श्रीमन्महाप्रभुका राज्य । इस समय महाप्रभुका ही गुण गाना चाहिए । और देख, भिखारी किसी पुरुषके पास जाय भिक्षाके लिए, तो कुछ न भी मिले । पर स्त्रीके पास जाय तो एक मुठ्ठी अन्न मिल ही जाता है । स्त्री माने वृषभानुनन्दिनी । वृषभानुनन्दिनी ही हैं हमारे महाप्रभु । उनके पास जानेसे एक मुष्टि प्रेम ही मिलेगा । फिर हम श्रीकृष्णको क्यों सेवें । हम वृन्दावनमें रहेंगे तो भी वृषभानुनन्दिनीकी ही जय बोलेंगे । पर हममेंसे जो चतुर है, वे नवद्वीपमें ही वास करेंगे; क्योंकि वृन्दावनमें अपराधका विचार है । यहाँ क्षमा नहीं है । हमारे नवद्वीपमें अपराध नहीं है । देख न, दो पैसेकी मटकीके लिए माँ यशोदाने श्रीकृष्णको बाँध डाला था । पर निमाइने घरके सभी मटके-मटकियाँ फोड़कर कितने चावल-दालादिका नुकसान किया, तब भी शची माँने कुछ नहीं कहा । द्वापर युगके महामन्त्रमें भी अपराधका विचार है । पर हमारे महाप्रभुके मन्त्रमें इस प्रकारका कोई विचार नहीं है ।’ महाप्रभुका महामन्त्र, जैसे—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु निरूपानन्द ।

श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासाधि गौर भक्त वृन्ध ॥

साधकोंके लिए दो बड़े महत्वकी बातें बाबा प्रायः कहा करते—एक तो परमायु वृद्धि करनेकी बात, दूसरे भजन सिद्ध करनेकी बात ।

परमायु वृद्धिके उपायके सम्बन्धमें कहते—‘महादेव दो बार गस्तके लिए बाहर निकलते हैं—एक बार संध्यासे रात दस बजे तक, दूसरी बार भोर ३ बजेसे सूर्योदय तक । उस समय बैठकर नाम-जप करे, तो वे परमायुहरण नहीं करते ।

भजन सिद्ध करनेके उपायके सम्बन्धमें वे कहते कि जो नियम रखकर नाम करता है, उसका भजन सिद्ध होता है । पर नियमका पालन होना चाहिए दृढ़तासे । प्राण चले जायें, तो भी नियमकी रक्षा करनी चाहिए । इस प्रकार कमर कसकर जो नाम करता है, उसका भजन अवश्य सिद्ध होता है ।

पहले कष्ट होता है, पीछे आराम ही आराम, आनन्द ही आनन्द—श्रीगौर हरिके पादपद्मकी प्राप्ति !!

श्रीगौरकिशोर शिरोमणि

(वृन्दावन)

रामदासीकी माँ एक पतिव्रता स्त्री थीं । पतिके देहत्यागके समय उन्होंने सती होनेकी इच्छा प्रकट की । स्वजनोंने उन्हें समझाया । सती होनेमें कितना कष्ट होता है बताकर डराया । उसी समय उन्होंने अपनी एक उँगली घीमें डुबोकर दीपककी लौपर रख दी । उँगली धक-धककर जलने लगी । उसे दिखाकर उन्होंने कहा—‘देखो, मुझे कुछ भी कष्ट नहीं हो रहा है ।’ तब पतिकी ज्वलन्त चिताकी सात बार परिक्रमाकर वे उसमें कूद पड़ीं । आज भी वह स्थान, जहाँ वह सती हुई थीं, वर्धमान जिलेमें गुस्करा स्टेशनके निकट ओर ग्राममें ‘सती डांगा’ नामसे प्रसिद्ध है । चितारोहणके पूर्व उन्होंने कहा था ‘रामदासी विवाह योग्य हो जाय तो उसका विवाह काटोया तहसीलके अन्तर्गत चिताहाटी निवासी धनकृष्ण मुखोपाध्यायके पुत्र गौरचन्द्र शिरोमणिसे कर देना ।’

रामदासीकी उम्र उस समय डेढ़ वर्षकी थी । गौरचन्द्र भी बालक थे । पढ़ने-लिखनेसे उनका कोई सरोकार था नहीं । यूँ ही लीला-मण्डलियोंकी लीलाएँ देखते-सुनते इधर-उधर डोला करते । फिर भी सतीने उन्हें अपनी कन्याके योग्य वरके रूपमें वरण किया था । निश्चय ही उन्होंने अपने योगबलसे उनके अन्तरमें छिपे एक सिद्ध महापुरुषको देख लिया था । उनकी इच्छानुसार रामदासीके विवाह योग्य होनेपर उसका विवाह गौरचन्द्रसे कर दिया गया ।

बीस वर्षकी आयु तक गौरचन्द्रकी पुस्तकोंसे भेंट तक न हुई । एक दिन एक ग्रामवासीने कहा—‘गौर ! तू अपने कुलका कलंक वनकर रह गया ।’

बस उसी दिनसे उन्हें पढ़नेकी छटपटी लग गयी । किसी पण्डितसे

कुछ लिखना-पढ़ना सीखनेके पश्चात् काटोयामें पंचानन तर्करत्नकी टोलमें भरती हो गये । कुछ दिन बाद काटोयाके गौरांगवाड़ाके सखीचरनदास पंडित बाबाके निकट अध्ययनकर भक्ति-शास्त्रमें पारंगत हो गये । फरीदपुरके श्रीविनोदीलाल ठाकुर महाशयसे श्रीकृष्ण मन्त्रमें दीक्षा ली । तत्पश्चात् काटोयाके श्रीगौरांग महाप्रभुके नाट्य मन्दिरमें रहकर अध्ययन-अध्यापन करने लगे । कुछ ही दिनोंमें एक महान पंडितके रूपमें उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी ।

महाप्रभुके मन्दिरके सेवाइत श्रीबेनीमाधव ठाकुर एक प्रसिद्ध महात्मा थे । उनके संगसे शिरोमणि महाशय विशेष रूपसे प्रभावित हुए । एक दिन महाप्रभुके मन्दिरमें बहुत-से ब्रजवासी वैष्णव आकर ठहरे । उनकी सेवाका सुयोग पाकर बेनीमाधव ठाकुरका हृदय आनन्दसे नाच उठा । उन्होंने गृहणीसे उनके भोग-रागकी अच्छी व्यवस्था करनेकी कहा । बह बोली—‘आज भोग-रागके लिए घरमें है ही क्या ? आपने तो पहले ही वैष्णव-सेवाके आदेशमें सब खर्चकर दिया है ।’ यह सुन ठाकुर चिन्तामें पड़ गये । कुछ उपाय सोचने लगे । थोड़ी देरमें शिरोमणिजीने देखा कि उन्होंने अपने घरका एक बरवाजा निकाल लिया है और उसे सिरपर ढोकर वैष्णव-सेवाके हेतु बाजारमें बेचने जा रहे हैं । यह देख उनके नेत्र अश्रुसिक्त हो गये, देह कांपने लगा और वे मूर्छित हो गिर पड़े । उस दिन उन्होंने वैष्णव-सेवाका ओ पाठ सीखा, वह उनके दैनिक जीवनका एक अङ्ग बन गया ।

काटोयामें रहते समय शिरोमणि महाशय अरुणोदयमें श्रीगौरांगकी मंगल-आरतीके दर्शनकर प्रभाती स्मरण-कीर्तन, गङ्गा-स्नान, संन्यानाय-जप मन्त्र-स्मरण, लीला-चिन्तादि करते-करते दिनके दो बजे तकका समय अतिवाहित करते । तत्पश्चात् जिस स्थानपर वैष्णवगण मूत्र त्याग करते, उसे परिष्कार करते और गङ्गाके पथपर झाड़ू लगाते । झाड़ू लगाकर गङ्गा स्नान, महाप्रभु-दर्शन-परिक्रमादिकर समागत वैष्णव और गोस्वामीगणको दण्डवत् प्रणाम करते और मन्दिरके बाहर गढ़में पेंकी हुई वैष्णव-प्रसादीकी कणिका उठाकर मुखमें डालते । तब चार मुट्ठी चावल उवालकर, उसमें मेंघ्रा नमक डाल गिरधारीका भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करते । कोई कुछ कहता तो कहते—‘मुझे इसके अतिरिक्त और किसी प्रकारका प्रसाद सहा नहीं होता ।’ इसी बहाने जब उन्हें कहीं कोई निमन्त्रण देता, तो फेंके हुए वैष्णव-उच्छिष्टमेंसे कणिका लेकर उस निमन्त्रणकी रक्षा करते । तीसरे

प्रहर छात्रोंको लेकर अध्यापन करते । प्रतिदिन जिस विषयका वर्णन करते अन्तमें उसका श्रीगौरांगमें पर्यवसान और समन्वय दिखाते हुए पाठ पूर्ण करते ।

एक रहस्यकी बात यह है कि पाठके समय उनके पास बैठे रहते प्रसन्न मुद्रामें एक वृद्ध, अल्पवृद्ध, अति सरल हृदयके विद्वेषक जैसे महानुभाव । उन्हें लोग 'खेपा* ठाकुर' कहकर पुकारा करते । वे उनके पत्रवाहकका कार्य करते । पर लोगोंसे कहते—'शिरोमणि मेरा छात्र है ।' कभी-कभी वे उनकी भर्त्सना भी करते । फिर भी शिरोमणिजीको उनके सान्निध्यसे सुख मिलता और उन्हें शिरोमणिजीके सान्निध्यसे ।

काटोयामें शिरोमणि महाशयकी एक प्रसिद्ध गोष्ठी थी । श्रीविनोदीठाकुर तो उसके एक प्रमुख सदस्य थे ही । ढाकाके उथलिग्राम निवासी अष्टतयंशी श्रीवृन्दावनचन्द्र गोस्वामी प्रभु और उनके बड़े भाई जगद्वन्धु प्रभु भी गृह त्यागकर और श्रीकिशोरदास बाबाजी महाराजसे वेश ग्रहणकर उनकी गोष्ठीमें सम्मिलित हो गये । यह लोग पाठ-कीर्तन और इष्ट-गोष्ठी द्वारा परमानन्द लाभ करते । एक बार जगद्वन्धु प्रभुके अनुरोधसे शिरोमणि महाशयने पैंतीस दिन तक नित्य तीन घण्टे पाठकर 'जन्मादस्य' श्लोककी गौरपक्षसे सामंजस्य रखते हुए बड़ी अद्भुत व्याख्या की । उसे सुन प्रभुपादने कहा—'पाठ सुनकर धन्य हुआ । तुम्हारे ऊपर छः गोस्वामियोंकी पूर्ण कृपा है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ।'

एक ब्राह्मण जमींदारके आग्रहपर एक बार शिरोमणि महाशयको एक मासके भागवत्-पाठके लिए वर्धमानके निकटवर्ती बातोग्राममें सदलबल जाना पड़ा । वहाँ जाकर उन्हें पता चला कि इस ग्राममें विष्णु-सन्दिर या शालग्रामकी सेवा नहीं है । उसी समय उन्होंने जमींदारको बुलाकर कहा—'जिस ग्राममें विष्णुकी अर्चा-पूजा नहीं, उसमें मैं जल भी ग्रहण नहीं करता ।' शीघ्र वहाँसे लौटनेकी तैयारी करने लगे । इतने वैष्णवोंके गाँवसे भूखे लौटनेपर गाँवके अनिष्ट होनेके भयसे गाँवके सभी लोगोंने अनुनय-विनयकर उन्हें रोकनेकी बहुत चेष्टा की । पर उन्होंने एक न सुनी । तब जमींदारने एक अश्वारोहीको दस मील दूर किसी गाँवमें भेजकर किसी परिचित व्यक्तिके

यहाँसे शालग्राम मँगवाकर उनकी सेवा करवायी। शिरोमणि महाशयको उनका प्रसाद ग्रहणकर पाठ करनेको राजी किया।

एक बार मुर्शिदाबाद जिलेके काग्रामके तान्त्रिक ब्राह्मण शिरोमणि महाशयको उनकी वैष्णवताकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे, या उनका मखौल उड़ानेके उद्देश्यसे, भागवत-पाठके बहाने अपने गाँव ले गये। दो-चार दिनके पाठके पश्चात् उन्होंने विष्णु मन्दिरके पास पाठके स्थानपर काली पूजाके लिए पशुबलिका आयोजन किया। कालीपूजाके पश्चात् जब पशुबलि देना प्रारम्भ किया, तो प्रत्येक बार पशुपर दो आघात करना पड़ा। इससे अनिष्टकी आशंकाकर उन्होंने देवीकी शरण ली। देवीने स्वप्नमें पुजारीसे कहा—‘तुमने विष्णु-भक्तका अपमान किया है। मैं तुम्हारा सर्वनाश करूँगी।’

तब ब्राह्मणोंने शिरोमणि महाशयके पास जाकर अपने कृत्यके लिए क्षमा माँगते हुए रक्षाका कुछ उपाय करनेकी प्रार्थना की। शिरोमणि महाशयने उन्हें गङ्गा-स्नानकर हरिनाम ग्रहण करनेका आदेश दिया। ब्राह्मणोंने बिना कुछ और सोचे-विचारे गंगा-स्नान किया और शिरोमणि महाशयसे नाम ग्रहणकर देवीको प्रसन्न किया।

कुछ दिन बाद शिरोमणि महाशय सपरिवार वृन्दावन चले गये। वहाँ केशीघाटमें स्थित एक मकानमें, जिसे आज भी लोग ‘शिरोमणि-कुञ्ज’के नामसे पुकारते हैं, गिरिराजकी सेवा लेकर रहने लगे। उनके वृन्दावन आनेके पूर्व एक घटना घटी, जिसका विवरण श्रीकुलदानन्द ब्रह्मचारीने ‘सद्गुरु-सङ्ग’ नामक ग्रन्थके द्वितीय खण्डमें इस प्रकार दिया है—

‘शिरोमणि महाशय एक प्रवीण पण्डित थे। षड्दर्शन, स्मृति और पुराणादिमें उनकी विशेष ख्याति थी। एक दिन एक ब्राह्मणके घर वे श्रीमद्भागवतका पाठ सुनने गये। बहुत-से गणमान्य ब्राह्मण पण्डित उस सभामें उपस्थित थे। भक्त पाठकने भागवत-पाठके पूर्व गौर-वन्दना की। उसे सुन शिरोमणि महाशयने पाठकसे कहा—‘यह कैसा भागवत-पाठ? आप भागवत खोलकर देखते हुए गौर-वन्दना क्यों पढ़ रहे हैं? ब्राह्मण पण्डितोंकी सभामें शालग्रामको सामने रख भागवतकी यह मिथ्या आवृत्ति क्यों?’

भक्त पाठकने कर जोड़कर कहा—‘प्रभो! मैं भागवतका ही पाठकर रहा हूँ। जो मैं उच्चारण कर रहा हूँ वह समस्त भागवतमें लिखा है।’

शिरोमणि तब पाठकके निकट जाकर बोले “दिखाइये तो ‘अर्नपितचरी’ श्लोक भागवतमें कहाँ लिखा है।”

पाठकने लाइनोके बीच सादी जगहको दिखाते हुए कहा—‘यह देखिये।’

शिरोमणिने कहा—‘यहाँ तो कुछ भी नहीं लिखा है।’

पाठक बोले—‘आपमें दृष्टि-शक्ति ही नहीं, तो कैसे देखेंगे ? आँखें साफ करके देखिये न।’

शिरोमणि महाशयने गुस्सेमें भरकर कहा—‘आप शालग्राम सामने रख, भागवत स्पर्श करते हुए इतने पण्डितोके सामने इतना झूठ बोल रहे हैं।’

तब पाठक जोरसे बोले—‘चुप रहिये। मैं इस ब्राह्मण समाजमें शालग्रामको साक्षीकर कहता हूँ कि मैं सच कह रहा हूँ। भागवतमें प्रति दो लाइनोके बीच गौर-वन्दना लिखी है। मैं उसे स्पष्ट देख रहा हूँ। आपको नहीं दीखता, तो आप किसी सिद्ध महात्मासे दीक्षा लेकर आयें। सात दिन तक मैं जिन नियमोंको कहूँ, उनका पालन करें। आठवें दिन यहाँ आयें। तब भी यदि मैं भागवतके बीच-बीचमें गौर-वन्दना न दिखा सकूँ, तो अपनी जिह्वा काट दूंगा—यह मैं सबके सामने शपथ लेकर कहता हूँ।’

शिरोमणि महाशयने ऐसा ही किया। उन्होंने सिद्ध श्रीचैतन्यदास बाबाजीसे दीक्षा ली। सात दिन तक पाठकके बताये नियमोंका पालन किया। आठवें दिन उनके पास जाकर भागवत देखी, तो उन्हें स्पष्ट दो लाइनोके बीच स्वर्ण अक्षरोंमें गौर-वन्दना लिखी दीखी। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे रोते-रोते अस्थिर हो गये और भूमिपर लोट-पोट होने लगे। उसी समय सब छोड़कर वृन्दावन चले गये। तभीसे वहाँ रह रहे हैं। वे महातेजस्वी हैं। उनके जैसा दूसरा व्यक्ति इस समय वृन्दावनमें नहीं हैं।’

वृन्दावनमें शिरोमणि महाशय अपराह्णमें छात्रोंको श्रीमद्भागवत पढ़ाया करते। एक दिन वे चतुर्थ स्कन्धके दक्षयज्ञके प्रसंगका वर्णनकर रहे थे। एक छात्रने प्रश्न किया—‘सतीजीने किस प्रकार योगबलसे अपना शरीर भस्मीभूत कर दिया ?’ शिरोमणि महाशय उत्तरमें कुछ कहें, उसके पूर्व पासमें बैठे एक अपरिचित वैष्णवने, जो नित्य पाठ सुनने आते और

पाठ समाप्त होते हो दण्डवत् कर चले जाते, छात्रोंकी ओर देखते हुए कहा—
'आप लोग इसके उत्तरमें सुनना चाहते हैं या देखना चाहते हैं?'

छात्रोंने कहा—'देखनेको मिले तो सुनना कौन चाहेगा?'

'तो देखिये' कह वे उत्तर दिशाकी ओर मुखकर, आसन लगा बैठ गये और 'जय गौरांग !' कह ध्यानस्थ हो गये । कुछ देरमें उनके दाहिने पैरके वृद्धांगुष्ठसे योगाग्नि प्रज्ज्वलित हुई । वह धीरे-धीरे सारे शरीरमें फैल गयी और उन्हें भस्मीभूतकर दिया । शिरोमणि महाशय झोख पड़े—'हा ! कैसा सर्वनाश !!' छात्रोंने यमुनाजलसे अग्नि निर्वापित करनेकी बहुत चेष्टा की, पर वे सफल न हुए ।

शिरोमणि महाशय नित्य प्रातः सर्वप्रथम मेहतरानीको 'माँ' कहकर सम्बोधन करते हुए प्रणाम करते । शिष्योंके प्रश्न करनेपर कहते—'जानते नहीं, ये मेरी माँ है । शिशुकालसे मैं इनका ऋणी हूँ । तभीसे ये मेरा मल-मूत्र परिष्कार करती आ रही हैं । अब भी कर रही हैं । मातृरूपसे ये मेरी जैसी सेवा करती हैं उसे देख मेरा हृदय भर आता है । इसीलिए इन्हें प्रणाम करता हूँ ।'

वृन्दावनमें देश-विदेशसे आये गोविन्द-दर्शनार्थी यात्रियोंको भी शिरोमणि साष्टांग प्रणाम करते । उन्हें प्रणाम करनेके सम्बन्धमें जब कोई शिष्य पूछता, तो कहते—'अरे इन महाभाग्यवान यात्रियोंके मर्मको तू क्या जाने ! तुम लोग वृन्दावनमें रहते हो । नित्य यमुना-स्नान करते हो । तुम्हारे भाव-भक्ति-सूत्रमें गाँठ पड़ गयी है । यह यात्री बहुत दूर रहते हैं—कोई श्रीहट्ट, कोई ढाका, कोई मुलतान, कोई मद्रास । गोविन्दके भावमें विभावित हो श्रीवृन्दावन धामके दर्शन करने ये न जाने कितना कष्ट उठाकर आते हैं । ऐसा सुन्दर साधु-सङ्ग, ऐसे गोविन्द-विभावित देह-मन-प्राण और कहाँ मिलेंगे ? इसीलिए मैं भक्तिपूर्वक इन्हें प्रणाम करता हूँ और सोचता हूँ कि कब इनके समान मेरे देह-मन-प्राण भी गोविन्द भावमें विभावित होंगे ?'

शिरोमणि महाशयके साथ रास्ता चलना बहुत मुश्किल होता । वे रास्तेमें गाय, बैल, विल्ली, बन्दर, कुत्ता, स्त्री-पुरुष और विग्रहादिको समान भावसे दण्डवत् करते चलते । किसीकी मजाल थी जो उनके चरण स्पर्शकर सकता या उनके देखते उन्हें दूरसे भी पहले प्रणामकर सकता ?

एक दिन श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीपादके शिष्य श्रीधर उनके दर्शन करने गये। उस समय वे निद्रित थे। उसी अवस्थामें उन्होंने उनके चरणोंके निकट प्रणाम किया। प्रणामकर जैसे ही उठे, उन्होंने देखा कि उनके चरण निद्रित अवस्थामें ही अपने आप दूसरी ओर मुड़ गये हैं। उन्होंने फिर दूसरी ओर जाकर कुछ दूरसे चरणोंमें प्रणाम किया। इस बार भी चरण अपने आप दूसरी तरफ मुड़ गये। इस प्रकार तीन बार श्रीधरजीने उन्हें प्रणाम किया। तीनों बार निद्रित अवस्थामें ही उनके चरण दूसरी ओर मुड़ गये। श्रीधर अवाक् रह गये !

शिरोमणि महाशयको कहीं पाठ-कीर्तनमें जाना होता, तो श्रीअद्वैतदासबाबाजी (अन्नदाप्रसाद राय) आदि अपने संगी-साथियोंको साथ लेकर जाते। मार्गमें प्रत्येक मन्दिरमें पंचांग प्रणाम करते जाते। इसलिए पाठ-कीर्तनमें देरसे पहुँचते और सबके पीछे बैठ जाते। कोई आगे बैठनेके लिए आग्रह करता, तो कहते—‘आगे जाकर बैठनेमें किसीके पाँव लग जाय, तो सर्वनाश होगा। इसलिए पीछे बैठकर जो सुननेको मिल जाय वही ठीक है।’

कुछ दिन वृन्दावनमें रहनेके पश्चात् शिरोमणिजी ऐसे व्याधिग्रस्त हुए कि उनके जीवित रहनेकी आशा न रही। जीवनका अन्त होते देख उन्होंने मदनमोहन ठौरके सिद्ध श्रीनित्यानन्ददास बाबाजी महाराजसे वेश ले लिया। नाम हुआ श्रीगौरकिशोर शिरोमणि। कुछ दिनोंकी चिकित्साके बाद उनका स्वास्थ्य ठीक हो गया। तब सिद्ध श्रीवलरामदास बाबाजी महाराजकी आज्ञासे शिरोमणि कुञ्ज छोड़कर मदनमोहन ठौरमें गुरुदेवके निकट पृथक् भावसे रहते हुए भजन करने लगे।

वेश ग्रहण करनेके पूर्व ही शिरोमणि महाशय एक सिद्ध महात्माके रूपमें जाने जाते थे। उनके वेशाश्रयके पश्चात् उनके गुरुदेवकी ख्याति बहुत बढ़ गयी। लोग दूर-दूरसे उनके दर्शन करने आने लगे। भजनमें विघ्न पड़ने लगा। यह देख शिरोमणि महाशयने गुरुदेवकी सेवाका भार स्वयं लिया। दर्शनार्थी, जो अपने प्रश्न लेकर नित्यानन्द बाबाजी महाराजके पास आते, उनकी वे स्वयं ही सुन्दर मीमांसा कर दिया करते। जो लोग उनके दर्शनका आग्रह करते, उनसे शाम साढ़े-चार बजे, जब वे पाठके लिए अपनी कुटियादे बाहर निकला करते, दर्शन करनेको कहते। इस प्रकार गुरुदेवकी सेव

करनेके कारण उनके अपने एकान्त भजनमें बाधा पड़नेपर भी वे विरक्त न होते। दूसरे लोगोंको भी, संसारी हों या त्यागी, वे उपदेश करते,—‘हमें नौबत-खानेके कबूतरकी तरह भजन करना चाहिये। नौबतखानेमें सदा बाजा बजता रहनेपर भी कबूतर वहाँसे उड़ नहीं जाते। उसी प्रकार हमें सभी परिस्थितियोंमें बाधा-विघ्नों और समस्याओंको महाप्रभु द्वारा भेजी हुई जान उनका आदरपूर्वक समाधान करते हुए भजन करना चाहिये।’

शिरोमणि महाशयके वेशाश्रयके कुछ ही दिन बाद पण्डित रामकृष्णदास बाबाने सिद्ध श्रीनित्यानन्ददास बाबासे दीक्षा ली। सिद्ध बाबाने उन्हें उपदेश किया—‘शिरोमणि तुम्हारा गुरु-भाई है, तो भी उसमें गुरुबुद्धि रखना।’

उस समय वृन्दावनमें सिद्ध श्रीनित्यानन्ददास बाबा और पण्डित रामकृष्णदास बाबाके अतिरिक्त झाड़ूमण्डलके सिद्ध श्रीबलरामदास बाबाजी महाराज, शृंगारवटके श्रीब्रह्मानन्द गोस्वामीपाद, श्रीनृसिंहानन्द प्रभु, अद्वैतवंशके श्रीराधिकानाथ गोस्वामी प्रभुपाद, श्रीनीलमणि गोस्वामीपाद, श्रीहरचन्द्र गोस्वामीपाद, ताड़ासके श्रीगंगाप्रसाद राय, श्रीमदनमोहन मन्दिरके कामदार प्रसिद्ध कीर्तनीया श्रीहाजरामहाशय आदि अनेक सुप्रसिद्ध साधु और वैष्णव भक्त रहते थे। वे छोटे-बड़े सभी साधकोंके आचार-व्यवहारपर कड़ी दृष्टि रखते थे। यदि कोई साधु-वैष्णवकी मर्यादाका उल्लंघन करता, तो उसपर शासन करते थे।

वे सभी शिरोमणिजीको बड़ी श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। पर एक बार हेतमपुरकी रानी वृन्दावन आयी हुई थी। वे शिरोमणि महाशयका भागवत-पाठ सुनकर परमानन्दित हुई। पाठके पश्चात् उन्होंने उनके पास दक्षिणाके रूपमें कुछ द्रव्यके साथ फल-फूल और वस्त्रादि भेज दिये। उन्होंने सरल भावसे और रानीके हृदयको ठेस न पहुँचे इस विचारसे उन्हें स्वीकार कर लिया। तब वृन्दावनके वैष्णवोंने उनकी भर्त्सना की। शिरोमणि महाशयने दुःखित हो और अपने दोषके गुरुत्वकी उपलब्धिकर इस गहिर्त कार्यके लिए दण्ड दिये जानेकी प्रार्थना की। वैष्णवोंने आदेश किया कि वे एक वर्षके भीतर वृन्दावनमें जितने मन्दिर हैं सबमें विना आह्वानके भागवत-पाठ करें। वृन्दावनमें उस समय तीन हजार मन्दिर थे। एक-एक दिन कई मन्दिरोंमें पाठ किये बिना इस आदेशका पालन करना कठिन था।

वैष्णव चूड़ामणि शिरोमणि महाशयने इस कठोर आदेशका पूर्णरूपसे पालन किया ।

ताड़ासके प्रधान जमींदार राजर्षि बनमाली बाबू ब्राह्मधर्ममें दीक्षित थे । शिरोमणि महाशय और श्रीपाद राधिकानाथ गोस्वामीकी कृपासे भक्ति-पथपर आरुढ़ हो वे वृन्दावनमें रहकर अपने कुलदेवता श्रीराधाविनोदजीकी प्राणसे सेवा करने लगे । उनका अनुराग देख शिरोमणि महाशयने उन्हें इस प्रकार उपदेश किया—‘श्रीवैष्णव-सेवाके बिना कृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती । वैष्णवोंको उत्तम खाद्य-वस्त्रादि दान करना ही वैष्णव-सेवा नहीं है । कभी-कभी तो इस प्रकारकी सेवा उनके अनर्थकी सृष्टिका हेतु बन जाती है । उनका अभीष्ट है हरिकथा । हरिकथाके लिए श्रीमद्भागवत और गोस्वामीगणके ग्रन्थोंके अनुशीलनकी व्यवस्था होना आवश्यक है । तुम्हें भगवान्ने जो धन-सम्पत्ति दे रखी है, उसकी सार्थकता इसमें है कि तुम इसकी व्यवस्था कर दो । यह भी आवश्यक है कि जो अन्धे, वृद्ध या ऋण मधुकरी नहीं कर सकते, उनके औषधि, पथ्यादिकी समुचित व्यवस्थाकर उनके भजनमें सहायता करो । ऐसा करनेसे तुम्हें अचिरात् प्रेम लाभ होगा ।’

उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर बनमाली बाबूने बहुत-से वैष्णव-ग्रन्थोंका प्रकाशन किया, जिसके लिए वैष्णव समाज उनका आज भी विशेष रूपसे ऋणी है । उन ग्रन्थोंके अध्ययन-अध्यापनके लिए विद्यालयकी स्थापना की तथा वैष्णवोंकी चिकित्साके लिए चिकित्सालयकी व्यवस्था की ।

शिरोमणि महाशय कभी-कभी अपनी कुटियापर वैष्णवोंको आमन्त्रितकर उन्हें प्रसाद सेवन कराते । एक बार निमन्त्रित वैष्णवोंने एक वैष्णवके उनकी पंक्तिमें बैठनेपर आपत्ति की; क्योंकि, उसने कोई घृणित कार्य किया था । शिरोमणिजीने उन्हें समझाते हुए कहा—‘देखिये, माना कि इन्होंने कोई अन्याय आचरण किया है । पर उसके लिए आप इनपर इतना शासनकर रहे हैं । मैंने अपने जीवनमें कितना अन्याय आचरण किया है, उसके लिए आप मुझसे कुछ नहीं कहते ।’ इतना कह, उन्होंने अपने जीवनमें जो अनुचित कार्य किये थे, उन्हें निष्कपट भावसे सबको सुनाने लगे । तब वैष्णवोंने अपनी आपत्ति उठाली । जिसके विरुद्ध आपत्ति की गयी थी, वे भी आगेके लिए सावधान हो गये ।

शिरोमणि महाशयका हृदय-कलश गौर-प्रेमसे इतना परिपूर्ण था कि किसीके तनिक-सा भी हिलाने-डुलानेसे उथल पड़ता था । एक बार किसी वैष्णवने उनसे पूछा—‘भक्ति लाभ करनेका उपाय क्या है ?’ उन्होंने उत्तरमें भक्तिके विषयमें कुछ कहनेकी जैसे ही चेष्टा की, वैसे ही नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी, कण्ठ गद्गद हो गया, और शरीरमें पुलक हो आया । बहुत रोक-थामके पश्चात् वे बोले—‘श्रीगौरांग महाप्रभुका चरणाश्रय करनेके अतिरिक्त भक्ति लाभ करनेका कोई और उपाय नहीं है । इस कलियुगमें श्रीगौरांग ही हैं एकमात्र प्रेम-दाता । उनके चरणोंका आश्रय लो । भक्तिका अभाव दूर होगा ।’

शिरोमणि महाशय सदा ही भाव-समुद्रमें स्वच्छन्द तैरते रहते । थोड़ा-सा भी उद्दीपन होनेपर गहरी डुबकी लगा जाते । एक बार एक नर्तकी कहींसे नाच-गानकर लौट रही थी । उसे देख उन्हें ऐसा उद्दीपन हुआ कि भावाविष्ट अवस्थामें भूछित हो भूमिपर गिर पड़े ।

सांसारिक सम्बन्धसे आध्यात्मिक सम्बन्ध दृढ़तर होता है । इसीलिए सांसारिक सम्बन्धमें अपने प्रियजनोंके विछोहकी अपेक्षा आध्यात्मिक सम्बन्धमें प्रियजनोंका विछोह अधिक असह्य होता है । नवद्वीपके श्रीचैतन्यदास बाबाजी जिस दिन अन्तर्धान हुए, उसी दिन शिरोमणि महाशयने रात्रिमें स्वप्नमें सुना कि वे कह रहे हैं—‘शिरोमणि मैं आया !’ वे समझ गये कि बाबा देह छोड़ चुके हैं । उन्हें गहरा धक्का लगा ।

कुछ दिन बाद श्रीराधिकाप्रसाद गोस्वामी प्रभुपाद-गौड़मण्डल गये । उन्हें छोड़ने शिरोमणि महाशय बनमाली बाबू आदिके साथ मथुरा स्टेशन गये । गाड़ीने जैसे ही सीटी दी, शिरोमणि महाशय रोते-रोते प्लेटफार्मपर ही गिर पड़े ।

कदाचित् श्रीचैतन्यदास बाबा और श्रीराधिकानाथ गोस्वामी प्रभुका वियोग शिरोमणि महाशयको इतना असह्य हुआ कि श्रीराधिकानाथ गोस्वामीप्रभुके वृन्दावनसे चले जानेके चार-पाँच दिन बाद ही सन् १८६० में उन्होंने संसारसे प्रयाण किया ।



श्रीगौरचरणदास बाबाजी

(महावन)

श्रीमन्महाप्रभुके परिकर श्रीश्रीलोकनाथ गोस्वामीके वंशज सिद्ध श्रीगौरचरणदास बाबाजी महाराजका जन्म यशोहर जिलेके तालखाड़ी ग्राममें हुआ। अति अल्पवयसमें ही लोकनाथ गोस्वामी प्रभु और उनके शिष्य श्रीनरोत्तम ठाकुरकी गुण-गरिमासे प्रभावित हो वे गृह त्यागकर नवद्वीप चले गये। वहाँ सिद्ध श्रीचैतन्यदास बाबाका आश्रय लिया।* बहुत दिन श्रीगुरुदेवकी सेवामें रहनेके पश्चात् उन्होंने ब्रजमण्डल दर्शनकर आनेकी आज्ञा मांगी। गुरुदेवने कहा—‘जाओ, पर वहाँ जाकर उससे पीछा छुड़ा पाओ, तब न वापस आओगे।’

शिष्यने कहा—‘नहीं गुरुदेव, मैं चौरासी कोस ब्रजमण्डलकी परिक्रमाकर शीघ्र लौट आऊँगा। आप निश्चिन्त रहें।’

वृन्दावन जाकर श्रीगौरचरणदासने चौरासी कोसकी परिक्रमा की। अन्तमें महावन जा दाऊजीके दर्शन किये। रात्रि वहीं व्यतीतकर दूसरे दिन प्रातः ब्रजकी सीमा पारकर नवद्वीपमें श्रीगुरुदेवके पास चले जानेका निश्चय किया। रात्रिमें जब वे सो रहे थे दाऊजीने नाम लेकर उन्हें पुकारा और कहा,—‘देख ! तू मुझे बहुत अच्छा लगता है। यहाँ इस गुफामें रहकर भजन कर। तेरी सर्वार्थ सिद्धि होगी।’

भक्त भगवानका भजन करता है, इसलिए कि वे उसे अच्छे लगते हैं। पर जब भगवानको भक्त अच्छा लगने लगता है, तब क्या उसकी सर्वार्थ सिद्धिमें कुछ बाकी रहता है? बाकी रहती है केवल भक्त और भगवानके बीच मधुर प्रणय-लीला। गौरचरण बाबा सख्यरसके उपासक थे। इसलिए उनके और दाऊजीके मधुर मिलनके साथ स्वाभाविक था मधुर प्रणय-युद्धका छिड़ जाना। उन्होंने दाऊजीकी बातका प्रतिवाद करते हुए कहा—‘नहीं, मैं अपने गुरुदेवकी आज्ञानुसार गौड़मण्डल जाऊँगा। यहाँ नहीं रहूँगा।’

* किसी-किसीका मत है कि वे कालनाके सिद्ध श्रीभगवानदास बाबाजी महाराजके आश्रित थे।

‘मैं नहीं जाने-दूंगा ।’ दाऊजीने मुस्कराते हुए कहा ।

गौरचरण बड़े धर्मसंकटमें पड़ गये । दाऊजीकी आज्ञाका पालन करें या गुरुदेवकी आज्ञाका ? कुछ देर सोचकर बोले—‘नहीं, नहीं, मैं जाऊँगा । इसी क्षण जाऊँगा ।’

कहनेके साथ ही वे उठ खड़े हुए और झोला कन्धेपर डाल चल पड़े । अर्धरात्रिका समय था । चारों ओर अंधियारा छा रहा था । गौरचरण चले जा रहे थे गौड़देश । उनके कानमें कभी गूँज उठते गुरुदेवके शब्द—‘उससे पीछा छुड़ा पाओगे, तब न वापस आओगे,’ कभी सुनायी पड़ती दाऊजीकी मधुर ललकार—‘मैं नहीं जाने दूंगा ।’ दाऊजीका मुस्कराता हुआ मुखड़ा वे नहीं भूल पारहे थे । उनकी मुस्कराहट जैसे बरबस उन्हें अपनी ओर खींच रही थी । फिर भी वे चले जा रहे थे और लम्बे-लम्बे पैर रखते जा रहे थे । ‘कहीं वह आ तो नहीं रहा है पीछेसे’—यह सोचकर थोड़ी-थोड़ी देरमें पीछ मुड़कर देखते जा रहे थे । उन्हें ब्रजकी सीमा पार करके ही साँस लेनी थी । बहुत दूर तक इस प्रकार चलते-चलते उन्होंने सोचा—‘अब ब्रजकी सीमा अतिक्रमण कर चुका हूँ ।’ पर थोड़ी देरमें उजियारा होनेपर उन्होंने जो देखा, उसे देख वे भीचक्के रह गये । सहसा बोले—‘अरे ! क्या मैं सारी रात बलदेवकुण्डकी परिक्रमा देता रहा हूँ ?’

गुरुदेवकी बात सच निकली । गौरचरण बाबाने समझ लिया कि अब उनका दाऊजीसे पीछा छुड़ाना सम्भव नहीं । बिचारे वया करते, उनकी दिखायी गुफामें रहकर भजन करने लगे ।

वे नित्य बहुत सबेरे उठते । स्नानादिकर गुफामें चले जाते । उनके पास एक बहुत गड़ी जप-माला थी, जिसपर ‘रामकृष्ण’ नामका जप करते । जप करते-करते अपराह्न हो जाता, तब गुफासे बाहर निकलते । स्नानकर कुछ समय ग्रन्थालोचना करते । सन्ध्या समय मधुकरीको जाते । किसीसे भी वाक्यालाप न करते । न अन्यत्र कहीं जाते । बीस वर्ष तक इसीप्रकार एक आसनसे इस गुफामें भजन करते रहे । निद्रित अवस्थामें भी उनके मुखसे ‘रामकृष्ण’ नाम स्पष्ट सुना जाता ।

श्रीगौरचरणबाबा श्रीदामका छोटा और राधारानीका बड़ा भाई होनेका अभिमान रखते और इसी भावका भजन करते । दाऊजी और

श्रीकृष्णसे उनका सख्यभाव था । प्रसिद्ध है कि दाऊजी प्रत्यक्ष रूपसे उन्हें माखन-मिसरी खिला जाया करते ।

कुछ ही दिनोंमें एक सिद्ध महात्माके रूपमें उनकी ख्याति हो गयी । साहा जातिके एक सज्जन बंगदेशसे आये दीक्षा रूपमें उनकी कृपा प्राप्त करने । बाबा जब मधुकरीको जाते, तो वे नित्य उनकी गुफाके बाहर बैठे दीखते । पर बाबा उनसे कुछ वाक्यालाप न करते । इस प्रकार एक वर्ष बीत गया । तब एक दिन उन्होंने पूछा—‘तुम कौन हो, क्या चाहते हो ?’ साहा महाशयने अपना परिचय देते हुए कहा—‘मैं आपका कृपा-प्रार्थी हूँ ।’

‘बगलमें क्या लिये हो ?’

‘यह चैतन्य-चरितामृत है ।’

बाबा तत्काल उन्हें गुफाके भीतर ले गये और चैतन्य-चरितामृत सुनानेको कहा । तबसे लगातार एक वर्ष तक साहा महाशय उन्हें नित्य चैतन्य-चरितामृत सुनाते रहे । इसी बीच बावाने उन्हें दीक्षा दी । वेशाश्रय देकर नाम रखा श्रीदयालदास । दयालदास श्रीगौरचरणदास बाबाजी महाराजके प्रथम शिष्य थे । इसके पश्चात् और भी बहुत-से लोगोंने दीक्षा और वेश ग्रहण किया । उनमें मुख्य थे श्रीश्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज ।

चैतन्य-चरितामृत सुनते समय श्रीगौरचरणदास बाबा इतना प्रेम विभोर हो जाते कि प्रेमाश्रुओंसे उनका उत्तरीय और बहिर्वास सराबोर हो जाते । नित्य चरितामृत सुनते-सुनते वे गौर-प्रेममें इतना आविष्ट हो गये कि उनका ‘रामकृष्ण’ नामका जप छूट गया । वे जपने लगे गौर और उनके पार्षदोंका यह नाम—‘श्रीगौरांग नित्यानन्द श्रीअद्वैतचन्द्र । गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द ।’

स्वच्छ वस्त्रपर कोई भी रङ्ग आसानीसे चढ़ जाता है । पर जो वस्त्र रङ्गा हुआ होता है उसपर वही रङ्ग चढ़ता है, जो उससे गहरा होता है । राम-कृष्ण-रङ्गमें रंगी बाबाकी ओढ़नीपर गौर-रङ्ग कैसे चढ़ गया ? क्या अखिलरसामृत मूर्ति भगवान् कृष्णके माधुर्यसे महाभाववती राधारानीके भावमें भीगे भक्तरूपी भगवानका माधुर्य अधिक लोभनीय है !

एक वर्ष पीछे दयालदास बाबाजीकी इच्छा हुई नवद्वीपधाम दर्शन

करनेकी । उन्होंने श्रीगौरचरणदास बाबाजीसे अपनी अभिलाषा व्यक्त की । वे बड़े असमंजसमें पड़ गये । ऐसे प्रेमी भक्तका संग भला कौन छोड़ना चाहता है ? कुछ देर सोचनेके बाद बोले, 'अच्छा, जाओ । मैं तो गुरुदेवके निकट रत्न नहीं सका । तुम जाकर उनकी सेवा करो ।'

दयालदास चले गये । पर गौरचरणसे उनका विछोह सहन न हुआ । वे सोचने लगे कि दयालदासके रूपमें स्वयं श्रीगौरांग महाप्रभु छल करके उनके पास आये थे, उन्हें गौरभक्ति प्रदान करने । वे उन्मत्तकी-सी अवस्थामें 'दयाल, दयाल !' पुकारते बन-बन भटका किये ।

गौर-प्रेममें आविष्ट हो गौरचरण बाबा क्या राम-कृष्णको भूल गये ? भूलनेका तो प्रश्न ही नहीं । गौर-भक्तोंके लिए गौर श्रीकृष्णसे पृथक् ही नहीं । वे हैं उन्हींका एक और स्वरूप—उनका गौरकृष्णरूप, अपनी ही रूप-माधुरीका आस्वादन करनेके लिए, अपने ही प्रेम-भक्ति रसका आस्वादन करनेके लिए उनका अपना ही भक्त रूप । इसलिए कृष्ण-बलरामसे उनकी सख्यरसकी लीलाके अवसानका प्रश्न ही नहीं ।

एक बार सख्यरसके आवेशमें वे वृन्दावनमें गोविन्दजीके दर्शनको गये । कदाचित् उस दिन उन्हें श्रीमद्भागवतमें गोविन्दजीकी उस शक्तिका स्मरण हो आया, जिसमें उन्होंने कहा है—'मैं अपने भक्तोंके पीछे-पीछे इसलिए फिरा करता हूँ कि उनके चरणोंकी रज उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ—'अनुग्रजाम्यहं नित्यं पूयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः' । कदाचित् उन्होंने सोचा कि जिस रजके लिए गोविन्द इतना कष्ट उठाता है, उसे मैं जाकर स्वयं ही क्यों न दे आऊँ ।' उन्होंने गोविन्दजीके श्रीविग्रहके सामने जाकर अपना चरण बढाया और कहा,—'ले, चरणधूलि ले ले ।' गोविन्दजीके पुजारियोंने उन्हें पागल समझ मन्दिरसे बाहर निकाल दिया । बाहर जाते समय लोगोंने देखा कि वे मुड़-मुड़कर गोविन्दजीकी ओर देखते जा रहे हैं और कहते जा रहे हैं—'अच्छा, निकाल दे बाहर । अभी खेलने निकलेगा न । जान ले, मेरा नाम गौरचरण है । जब तक मेरी चरणधूलि न लो, देखूँगा किसके साथ खेलता है ।'

पाठक ! यदि आपको गौरचरण बाबापर रोष आ रहा है गोविन्दजीके प्रति उनके इस व्यवहारके कारण, तो आपको यह जानकर विस्मय होगा कि स्वयं गोविन्दजी उनके व्यवहारसे प्रसन्न हुए । उन्होंने श्रीमन्दिरसे उन्हें

निकाला ही था उनके प्रणय-रोषरसका आस्वादन करनेके लिए । वे अपने भक्तोंके मुखसे खरी-खोटी सुनकर जितना सुखी होते हैं, उतना वेद-स्तुतिसे भी सुखी नहीं होते ! यह उनका चिर स्वभाव है ।

श्रीगौरचरणदास बाबा कुछ दिन बाद कुंजरा ग्राममें जाकर रहने लगे । वे बहुत दिनों तक जीवित रहे । शेष अवस्थामें वृन्दावनमें अपने शिष्य श्रीकृष्ण चैतन्यदास (राय साहब श्रीकैलाशदास) के साथ मणिपुरी कुञ्जमें रहने लगे । इसी स्थानपर उनका अग्रकट्य हुआ ।



श्रीगौरदास बाबाजी

सन् १५६३ के आसपास नन्दग्राममें पावन-सरोवरके तीरपर श्रीसनातन गोस्वामीपादकी प्राचीन भजन-कुटीमें श्रीगौरदास बाबाजी भजन करते थे । वे सिद्ध पुरुष थे । नित्य प्रेमसरोवरके निकट गाजीपुरसे फूल चुन लाते थे । माला परोकर श्रीलालजीको पहनाते थे । फूल-सेवा द्वारा ही उन्होंने श्रीकृष्ण-कृपा लाभ की थी । कृपा-लाभ करनेके पूर्व चार-पाँच सालसे वे फूल-सेवा करते आ रहे थे ।

उन्हें अभिमान हुआ—‘इतने दिनसे फूल-सेवा करता आ रहा हूँ, फिर भी लालजीने कृपा नहीं की ! उनका हृदय कठिन है । पर वृषभानुनन्दिनीके मन्त्र-प्राण करुणा द्वारा ही गठित हैं । इतने दिन उनकी सेवा करता, तो वे अवश्य कृपा करतीं । मैं आज ही वरसाने चला जाऊँगा, यहाँ नहीं रहूँगा ।’

सन्ध्या समय कंधा आदि पीठपर लाद वे वरसानेकी ओर चल दिये । जब नन्दग्रामसे एक मील दक्षिणकी ओर एक मैदानमें-से होकर जा रहे थे, बहुत-से ग्वाल-बाल गोचारण करा गाँवको लौट रहे थे । एक साँवले रंगके सुन्दर बालकने उनसे पूछा—‘बाबा तू कहाँ जाय ?’

‘लाला हम वरसाने जाय रहे हैं’ बाबाने उत्तर दिया और उनके नेत्र डबडबा आये ।

बालकने रुककर कुछ व्याकुलतासे बाबाकी ओर निहारते हुए ऊँचे स्वरमें कहा—‘बाबा ! मत जा ।’

बाबा बोले—‘ना लाला, मैं छः वर्ष यहाँ रहा । मुझे कुछ नहीं मिला । अब और यहाँ रहकर क्या करूँगा ?’

बालकने दोनों हाथ फैलाकर रास्ता रोकते हुए कहा,—‘बाबा मान जा, मत जा ।’

बाबा झुंझलाकर बोले,—‘छोरा क्यों ऊधम करे है ? रास्ता छोड़ दे ।’

‘तो बाबा मेरी फूल सेवा कौन करेंगे ?’ बालकने और ऊँचे स्वरमें कहा ।

‘तू भीन है रे ?’ बाबाने आश्चर्यमें कहा । वैसे ही देखा कि न वह बालक, है, न उसके साथी और गायें !

बाबाके प्राण रो दिये । ‘हा, कृष्ण ! हा, कृष्ण !’ कह रोते-चीखते वे भूमिपर लोट-पोट होने लगे । चेतना खो बैठे । चेतना आनेपर फिर क्रन्दन और विलाप—‘कृष्ण ! छलिया ! हाय ! कृपा की तो भी छल ! यदि कुछ पल रुककर मुझे अपने नेत्र और प्राणोंको शीतलकर लेने देते, तो क्या तुम्हारी कृपाका भण्डार खाली हो जाता ? पर नहीं दीनवत्सल ! तुम्हारा नहीं, मेरा ही दोष है । इस नराधममें वह योग्यता ही कहाँ जो तुम्हें पहचानता, वह प्रेम और भक्ति ही कहाँ, जिसके कारण तुम रुकनेको बाध्य होते ।’

उधर पुजारीको आदेश हुआ—‘देख, गौरदास मेरी फूल-सेवा न छोड़े । मैं और किसीकी फूल-सेवा अङ्गीकार नहीं करूँगा ।’

श्रीगिरिधारीदास बाबाजी

साढ़ासके जमींदार राजर्षि बनमाली रायबहादुरके बड़े भाई अन्नदाप्रसाद रायकी धर्मपिपासा बाल्यकालसे ही प्रबल थी । पिता श्रीगंगाप्रसाद रायके देहान्तके पश्चात् उनका झुकाव इसाई धर्मके प्रति हो गया । तब परमा भक्तिमती माँने उन्हें गौरकिशोर शिरोमणि महाराजके

चरणोंमें समर्पित किया। शिरोमणि महाराजकी कृपासे वैष्णवधर्ममें उनकी हड़ निष्ठा हो गयी। शिरोमणि महाराजके देह-त्यागके पश्चात् सन् १८६० में उन्होंने गोविन्दकुण्ड, गोवर्धनके श्रीकृष्णदास बाबासे वेश ग्रहण किया और राधाकुण्डमें रहकर भजन करने लगे।

उनके तीव्र वैराग्य, मधुर विनयपूर्ण व्यवहार, और भजनावेशसे मुग्ध हो ब्रजवासी वैष्णव उन्हें 'महात्मा' कहकर पुकारा करते। 'कृष्णदास'—नामक एक वैष्णव महानुभावसे उनका गाढ़ प्रेम हो गया। उनके साथ दृष्ट-गोष्ठीकर वे परम तृप्ति लाभ करते।

कृष्णदासने किसी कारण बंगदेश जानेका निश्चय किया। एक दिन पूर्व उन्होंने गिरिधारीदासके निकट अपना निश्चय व्यक्त किया। गिरिधारीदास चुप रहे। अन्य विषयोंपर बातें चलती रहीं। पर उनके भीतर—एक ज्वालामुखी सुलगती रही। उसका उद्गार होते देर न लगी। वे भूमिपर लुठित हो फूट-फूटकर रोने लगे। कृष्णदासने विस्मित हो रोनेका कारण पूछा। कोई उत्तर नहीं। बार-बार पूछनेपर बोले—'हाय ! मैं बड़ा अपराधी हूँ, महानारकी और विषयी हूँ। हाय ! मैंने क्या किया ! एक निवृत्ति निरत, भक्तिनिष्ठ वैष्णवके भजनमें विघ्न उपस्थित किया। हा, पतितपावन प्रभो ! रक्षा करो !'

उनकी कातरोंक्ति सुन कृष्णदासने पूछा 'इतना कातर क्यों हो रहे हैं ?'

उत्तरमें गिरिधारीदासने कहा—'यह हृत्भागा ही आपके भजनमें विघ्नका कारण है। आपके हृदयमें बंगदेश जानेकी वासना मेरे ही संगदोषसे जागी है।'

कृष्णदासने रोते हुए कहा, 'आपका संग छुड़वाकर राधारानी मुझे ही दण्डित कर रही है।'

'यदि बंगदेश जाना ही है तो मेरी एक प्रार्थना है। आप कल न जाकर तीन दिन बाद जायें' गिरिधारीदासने विनयपूर्वक कहा।

कृष्णदास मान गये। गिरिधारीदासने तीन दिन अन्न-जल ग्रहण नहीं किया। केवल अपनी कुटीमें नाम-ग्रहण पूर्वक राधारानीसे प्रार्थना करते रहे—'हे राधारानी ! कृपा करो। कृष्णदास तुम्हारा धाम छोड़कर न जायें।'

तीन दिन तक उपवासी रहकर अपनी सुदीर्घ दैनिक भजन-क्रिया समाप्त कर पचीस हजार अतिरिक्त नाम-अप, १०८ साष्टांग दण्डवत् एवं चार बार राधाकुण्ड और श्यामकुण्डकी परिक्रमा करते रहे।

इधर कृष्णदास अपनी भजन-कुटीमें गिरिधारीदासके नाम-गुणादिका स्मरण कर विह्वल होते रहे। तीसरे दिन रात्रिमें उन्होंने तन्द्राके आवेशमें देखा कि उनके दीक्षा गुरु उनसे कह रहे हैं—‘गिरिधारीदास तीन दिनसे उपवासी रहकर राधारानीसे प्रार्थना कर रहे हैं।’

तन्द्रा भंग होनेपर कृष्णदास गिरिधारीदासकी कुटीकी तरफ भाग गये। कुछ दूर जाते ही उनकी रोदन ध्वनि सुनायी पड़ी। वे तुलसीके थामलेके पास भूमिमें लुठित हो कह रहे थे—‘हे वृन्दादेवी ! कृपा करो। कृष्णदास तुम्हारा धाम छोड़कर न जायें।’

यह सुन कृष्णदास अधीर ! महात्माके चरणोंमें गिरकर वे रोने लगे। महात्माने उन्हें हृदयसे लगा लिया। दोनों बन्धुओंके अश्रुजलसे कुण्डतट प्लावित हो गया। कृष्णदासजी बंगदेश नहीं गये। गिरिधारीदासके साथ आनन्दपूर्वक द्रष्टृगोष्ठीकर भजन रसास्वादन करने लगे।

‘राजर्षि वनमालीजी भी उसी समय कुण्डतटपर अपनी ‘राजबाड़ी’में रहकर ठाकुर श्रीराधाविनोदकी सेवा और भजन किया करते। सन् १६०१, पौष मासकी कृष्णा त्रयोदशी, दोपहरके ढाई बजे, किसी वैष्णवने उनसे आकर कहा—‘आज महात्माजी मधुकरीके लिए नहीं निकले। कुटीका दरवाजा बन्द है। पुकारनेसे भी उत्तर नहीं दे रहे !’

महात्मा प्रति दिन सन्ध्या-आरतीके समय श्रीराधाविनोदके दर्शनको जाते। राजर्षि बहादुरादिके साथ भगवल्लीला और साधन-भजन सम्बन्धी आलोचना करते। पिछले दिन भी वे गये थे और द्रष्टृ-गोष्ठी की थी। अस्वस्थताका कोई चिह्न उनके शरीरमें देखनेमें नहीं आया था। राजर्षि चिन्तित हो उठे। अपने मैनेजर श्रीकामिनीकुमार घौष और अन्य वैष्णवोंको साथ ले वे उनकी कुटीपर पहुँचे। दरवाजा तुड़काकर भीतर प्रवेश किया। देखा कि महात्मा जिस बेदीपर शयन किया करते थे, उसीपर दाहिनी करघटसे दाहिना हाथ सिरके नीचे रखे आनन्द-निद्रामें सो रहे हैं। भीगा हुआ कौपीन और बहिर्वास एक ओर पड़े हैं। सूखा कौपीन और बहिर्वास

धारण किये है । भीषण शीतकाल होते हुए भी शरीरपर और कोई वस्त्र नहीं है । चक्षु अर्धनिमीलित हैं । मुखपर अति उल्लासमय हँसी और रैन हैं ।

उसी अवस्थामें उन्हें बाहर लाया गया । उच्चस्वरमें नाम-कीर्तन किया गया । देहमें किसी प्रकारका स्पन्दन न हुआ । पर देह सस्त भी नहीं हुआ । उन्हें सिद्धासनसे बैठाकर कोई पीछेसे पकड़े रहा । उस समय भी उनका उल्लासमय मुखारविन्द देखकर ऐसा नहीं लगा कि उनके शरीरमें प्राण नहीं हैं । सब बाह्य अवस्था आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । पर बहुत देर तक प्रतीक्षा करनेपर भी जब बाह्यदशा न हुई, तो दाह करनेका निश्चय किया गया । किसी-किसीने सोचा कि शायद चितापर अग्निके संतापसे चेतना आ जाय । पर इस आशापर भी पानी फिर गया । निश्चय ही महात्माके नेत्र पथपर कोई अपूर्व लीला-छविका उदय हुआ था, जिसे उनका जड़-देह सह न सका ।

श्रीमनोहरदास बाबाजी

(गोविन्दकुण्ड)

नदिया जिला, माधवपुर ग्राम । सन् १८४७ की कार्तिक शुक्ला पंचमी । श्रीभोलानाथ अधिकारी महाशयकी पत्नी प्यारी सुन्दरीके गर्भसे महेन्द्र नामक पुत्रका जन्म हुआ । शिशुकालमें ही मातृदेवीका परलोक-गमन हुआ । छः वर्षकी अवस्थामें, महेन्द्रने स्वप्न देखा कि एक साधु उसे घरसे बाहर निकालकर वनमें ले गये और वनके चारों ओर आग लगा दी । तभीसे उन्हें संसारसे विरक्ति हो गयी । उन्होंने समझ लिया कि संसार एक वन है, जिसके चारों ओर आग लगी है । उसकी भीषण लपटोंसे परित्राण पानेके लिए श्रीहरिकी शरण लेना आवश्यक है ।

तेरह वर्षकी अवस्थामें पितृ-वियोगके पश्चात् उन्होंने अर्द्धत वंशके श्रीपाद नन्दकिशोर गोस्वामीसे दीक्षा-मन्त्र और उसके पश्चात् नवद्वीपके बड़े अखाड़ेके श्रीरूपदास बाबासे वेशग्रहण किया । वेशका नाम हुआ श्रीमनोहरदास ।

कुछ दिन नवद्वीपमें रह मनोहरदास बाबाने सिद्ध श्रीचैतन्यदास

बाबा और बड़े अखाड़ेके पण्डित श्रीनरोत्तमदास बाबाजी महाराजका संग किया। कालनाके सिद्ध श्रीभगवानदास बाबाके भी दर्शन किये। सन् १८८१ में वृन्दावनकी यात्रा की। पाँच वर्ष वृन्दावनमें रहकर श्रीराधारमणके सेवाइत श्रीपाद गोपीलाल गोस्वामीप्रभुसे भक्ति-शास्त्रका अध्ययन किया। झाड़ूमण्डलके सिद्ध श्रीबलरामदास बाबा, कालीबहूके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबा तथा मदनमोहन ठौरके सिद्ध श्रीनित्यानन्ददास बाबाका सङ्ग किया। तत्पश्चात् कुसुमसरोवर, काम्यवन और नन्दग्राममें रहकर भजन किया। अन्तमें १८८३ के लगभग स्वप्नादेश प्राप्तकर गिरिराज-तटवर्ती गोविन्दकुण्डमें जाकर भजन करने लगे। कुछ दिन पश्चात् वहीं एक गुफा निर्माणकर उसमें रहने लगे।

श्रीमनोहरदास बाबा निरन्तर हरिनाम करते। अष्टकालीय लीला-स्मरणमें सदा आविष्ट रहते। सोते बहुत कम, बिछौना भी नहीं बराबर रखते। आहारमें होती मधुकरीके आटेकी रोटी और नीमके पत्तोंका रसा। अन्तके कुछ दिनोंमें वह भी नहीं! केवल दूध, बहुत अल्प मात्रामें। बाहरके जगत्से कोई सम्बन्ध नहीं। एक मन्दिरका निर्माणकर मदनमोहनकी सेवा चलायी अवश्य, पर मन्दिरकी सेवा—परिचालनादिसे उदासीन रहे। वे लोकसंग त्यागकर एकाकी समय व्यतीत करते। बोलते बहुत कम। शिष्यादि करनेकी बात होती, तो अस्थिर हो जाते। जिसको देखते उसे दण्डवत् करते। सदा आत्मनिन्दा करते। किसीको चरण स्पर्श न करने देते। चरण धौते समय चरणोंका जल घिसकर रजमें मिला देते। कही कोई उस जलको चरणामृतके रूपमें ग्रहण न करले, इसलिए।

भजनावेशके कारण बाबा शरीरकी तरफ तो ध्यान देते ही नहीं। मच्छरोंसे परेशान हो दूसरे साधु मसहरीका व्यवहार करनेको बाध्य होते। पर बाबासे कोई मसहरी लगानेको कहता, तो कहते—‘वयों भाई! मच्छर हमारा क्या बिगाड़ता है? वह तो अधिक निद्रा आनेमें बाधा डालकर भजनमें हमारी सहायता ही करता है।’

एक बार ब्रजमें दारुण शीत पड़ी। ललिताकुण्डमें बर्फ तैरने लगी। बाबाके पास ओढ़नेके लिए एक फटी पिछौरीके सिवा और कुछ था नहीं। रात्रिमें भजन करते समय उनका शरीर थर-थर कांपने लगा। भजनमें निविष्टता न होते देख उन्हें शरीरपर क्रोध आया। उसी समय कुण्डके

बरफीले पानीमें जाकर खूब स्नान किया । निकटमें नवद्वीपदास बाबा रहते थे । उन्होंने अर्ध रात्रिमें कुण्डमें स्नान करनेका कारण पूछा, तो बोले—‘देह बड़ा पौषाकी हो गया है’, अर्थात् लिहाफ और रजाई माँगने लग गया है ।

किसी वैष्णवने उनसे पूछा—‘भजनमें जो विघ्न आते हैं, उनपर कैसे काबू पाया जा सकता है?’

उत्तरमें उन्होंने कहा—‘प्राणोंकी बाजी लगाकर भजनके लिए चेष्टा करनेसे भजनसे आये सभी विघ्न दूर हो जाते हैं । साधककी सरल ऐकान्तिक चेष्टा देखकर परमात्मा प्रसन्न होते हैं और भजनका दरवाजा खोल देते हैं । यह एक दिनमें नहीं होता । विघ्न भजन करते-करते क्रमशः अन्तर्धान होते हैं । भजनमें जैसी दृढ़ता और ऐकान्तिकताकी आवश्यकता है, वैसी ही धैर्य और सहिष्णुताकी । भजनके लिए उपयुक्त अवस्थामें चित्तको रखना बड़ा कठिन है । जड़ वस्तुसे आसक्ति जाये बिना चित्त शुद्ध नहीं होता । भक्ति नहीं होती । भक्ति हुए बिना चिद्वस्तुके स्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती । भजनके प्रभावसे जैसे-जैसे जड़ीय संस्कारोंका क्षय होता है, वैसे-वैसे चित्त निर्मल होता है और विघ्न दूर होते हैं ।’

सन् १९४७ की श्रावणी शुक्ला त्रयोदशीको बाबाने अप्रकट लीलामें प्रवेश किया । भक्तोंके कण्ठहार-स्वरूप दो ग्रन्थोंकी वे रचना कर गये—‘वेदगिर्विलास’ और ‘नामरत्नमालाला’ ।

श्रीदुर्लभदास बाबाजी

(गोविन्दकुण्ड)

श्रीगोविन्दकुण्डमें जब श्रीमनोहरदास बाबाजीने रहना प्रारम्भ किया, उस समय कुण्डके उत्तरी तटपर श्रीदुर्लभदास बाबाजी भजन करते थे । वृन्दावनमें प्लेगका प्रकोप हुआ । दुर्लभदास एक दिन दोपहरकी कड़ी धूपमें एक नीमके वृक्षके नीचे बैठे थे । हाथमें माला थी, नाम-जपकर रहे थे । सहसा उनके सामने धूम्रवर्णकी एक प्रकाण्ड भीषण मूर्ति उपस्थित हुई ।

वह उनके चारों ओर घूमने लगी। उन्होंने विस्मय भरे स्वरमें पूछा—‘आप कौन हैं? यहाँ किसलिए आये हैं?’

‘मैं कालदूत हूँ। आपको लेने आया हूँ’ उस छाया-मूर्तिने उत्तर दिया।

‘तो ठीक है। ले चलिये, मैं तैयार हूँ’ बाबाने प्रशान्त भावसे उससे कहा।

‘आप नाम-जप छोड़ दें। जब तक नाम-जप नहीं छोड़ेंगे, मैं आपको नहीं ले जा सकूँगा’ कहकर उसने अपनी लाचारी प्रकट की।

‘मैं नाम-जप नहीं छोड़ूँगा। आप मुझे ऐसे ही ले चले’ दुर्लभदासने दृढ़तापूर्वक कहा।

छायामूर्ति अन्तर्धान हो गयी। मनोहरदास बाबा जब गुफासे बाहर निकले, दुर्लभदासने उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वे बोले—‘तुम्हारा इस समय मृत्युयोग था। भजनके प्रभावसे टल गया और आयुमें वृद्धि हो गयी।’

नन्दग्रामके एक महात्मा और पुजारीका भूत

बहुत दिन हुए नन्दीश्वरके निकट यशोदाकुण्डके पास एक गुफामें एक महात्मा भजन करते थे। दिन डूबनेसे थोड़ी देर पहले गुफासे निकलते थे। शौचादिकर मधुकरीके लिए गाँवमें जाते थे। जो कुछ मिल जाता था उससे उबरपूर्तिकर फिर गुफाके भीतर भजनमें बैठ जाते थे। किसीसे बात नहीं करते थे।

वे कौन थे? कहाँसे आये थे? उनका नाम क्या था?—किसीको कुछ पता नहीं। वृद्ध होनेपर वे नन्दग्राम छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। पर एक बार गौवर्धनके एक बाबाजी अनुनय-विनयकर उन्हें चकलेश्वर ले गये, वहाँ नामयज्ञमें योगदान करनेके लिए। दो दिन वहाँ रहकर वे तीसरे दिन नन्दग्राम लौट आये। सन्ध्या समय निथमानुसार मधुकरीके लिए गाँवमें गये। मधुकरी लेकर गुफामें प्रवेश कर रहे थे, उसी समय किसीके करुणकण्ठकी आवाज आयी—‘ओ बाबा! मैं दो दिनसे भूखा हूँ।’

बाबा आश्चर्यचकितसे रुककर बोले—‘आप कौन हैं?’

‘मैं वह कुत्ता हूँ, जिसे आप नित्य एक टुकड़ा मधुकरी दिया करते हैं।’
बाबाने ब्रजधामके कुत्तेके अद्भुत और अप्राकृत स्वरूपका अनुभव करते हुए कातर स्वरसे कहा—‘आप अपने स्वरूपका ठीक-ठीक परिचय देनेकी कृपा करें।’

कुत्तेने कहा—‘बाबा ! मैं एक दुर्भाग जीव हूँ। पूर्व जन्ममें इसी नन्दीश्वरमें मन्दिरका पुजारी था। एक दिन भोगके लिए एक बड़ा लड्डू मिला। मैंने बिना भोग दिये ही उसे खा लिया। उसी अपराधके कारण मैं भूत हो गया। आप निष्किंचन वैष्णव हैं। आपकी दी मधुकरी खानेसे मेरी ऊर्ध्वगति होगी—इस लोभसे बहुत दिनोंसे आपके पास आता हूँ।’

कुत्तेका वृत्तान्त सुन बाबाने कौतूहलवश और विनयपूर्वक कहा—‘जो भी हो, आप तो अप्राकृत धामके भूत हैं। श्रीश्रीजुगलकिशोर और उनकी अप्राकृत लीलाके दर्शन तो आप करते ही होंगे?’

‘हाँ बाबा, दर्शन तो करता हूँ। पर आप लोग जिस प्रकार उनके रूप और लीलादिका आस्वादन कर सकते हैं, वैसा आस्वादन करनेकी मेरी योग्यता कहाँ?’

‘मुझे एक बार उनके दर्शन करा सकते हैं क्या?’ बाबाने कातर स्वरमें पूछा।

उत्तर मिला—‘नहीं, मुझमें वह योग्यता नहीं।’

‘तो किस प्रकार उनके दर्शन किये जा सकते हैं—यह बता सकते हैं?’ बाबाने कातर हो विनयपूर्वक फिर पूछा।

‘हाँ, यह बता सकता हूँ। देखिये आप कल गोधूलिके समय, जब श्रीकृष्ण गायें चराकर लौटते हैं, यशोदाकुण्डके पास बैठे रहें। गजओंके पीछे जो ग्यारिये आते दीखें, उनमें जो सबसे पीछे हों, उन्हें ही समझ लीजिये कि वे गोपाल हैं।’ इतना कह वह श्वानरूपी भूत अन्तर्धान हो गया।

बाबाको अब चैन कहाँ। रात जैसे-तैसे काटी। कभी गाते, कभी नाचते, कभी रो-रोकर अधीर होते। पौ फटते ही यशोदाकुण्डके निकट एक झाड़ीमें जा बैठे। बेचैनी बढ़ती गयी। मनमें तरह-तरहके संकल्प-विकल्पोंका संघर्ष चलता रहा। ‘क्या सचमुच श्रीकृष्ण मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करेगे?’

क्या मैं उनके दर्शनके योग्य हूँ ? नहीं, मुझ जैसे कुटिल और पाखण्डी व्यक्तिको भला वे दर्शन क्यों देने लगे' यह सोचकर वे कभी रोते-रोते मूर्छित हो जाते, कभी सोचने लगते—'यदि वे मुझपर कृपा कर दें तो उनका बिगड़ता ही क्या है ? वे करुणाके समुद्र हैं, पतितपावन हैं। अवश्य कृपा करेंगे।' यह सोचकर वे एक अनिवर्त्तनीय आनन्द-समुद्रमें डूबने और उतराने लगे। इसी उधेड़-बुनमें दोपहर बीत गयी। तीसरा पहर बीत गया। सूर्य धीरे-धीरे अस्ताचलकी ओर जाने लगा। गोधूलिकी बेला आ पहुँची। वृक्षोंके झुरमुटके बीच गोधूलि-रंजित आकाश दृष्टिपथपर उदय होने लगा। बाबा किसी प्रकार धैर्य धारण किये झाड़ीमें बैठे रहे। गाय-बछड़ोंके रंभानेका शब्द आकाशमें गूँजने लगा। कुछ देरमें उनके झुण्डके झुण्ड सामनेसे निकलते दीखे। उनके पीछे एक-दो कर ग्वाल-बाल अपनी-अपनी गइयोंको पृथक् करते दीखे। सबके पीछे दीखा एक ग्वाल-बालक, जिसका कृष्ण वर्ण था। हाथमें लकड़िया लिये, अपने गाय-बछड़ोंको पृथक्कर वह खञ्ज-गतिसे नन्दग्रामकी ओर जा रहा था। उसे देखते ही बाबाने कूदते-फाँदते जाकर उसे साष्टांग दण्डवत् किया। उसके दोनों चरणोंको अपनी भुजाओंमें जकड़ते हुए माथा उनपर टेक दिया।

भक्त और भगवान् दोनों एक-दूसरेके स्पर्शसे पुलकित हो उठे ! पर भगवान् स्वभावगत कपटता धारण करते हुए बोले,—'बाबा ऐसा क्यों करे है ? बाबा हैके ग्वारियाको प्रणाम करे है। छोड़, जान दे मोएँ।'

'दयामय ! दया करो, दया करो !' कह बाबा फूट-फूटकर रोने लगे। उनके अश्रुजलसे भगवान्के चरण सिक्त हो गये। रुँधे हुए कण्ठसे, अस्पष्ट शब्दोंमें, और न जाने वे क्या कहते रहे। भक्तकी भाषा भगवान्को समझते देर नहीं लगती। वे समझ गये। पर समझते हुए भी अनसमझे जैसे बोले—'बाबा, वावरो है रह्यो है। देख जान दे, देर हय रही है। मइया मारेगी।'

बाबाने चरण और कसके पकड़ लिये। भक्तकी भुजाओंमें इतना बल कहाँ, जो भगवान्को पकड़ रखें। पर उसके प्रेमके आगे वे विवश हैं। तो छुड़ाकर जानेके लिए इतना उतावले क्यों दीख रहे हैं ? यह तो उनका अभिनय है। भक्तके प्रेमरसका आस्वादन करनेकी उनकी अनोखी परिपाटी है। रुकना चाह रहे हैं, रुकनेको विवश हैं; पर जाना चाहनेका दिखावा कर रहे हैं।

‘नहीं, नहीं प्रभु, छल न करो । इस दीन-हीनपर कृपा करो, कृपा करो । छल-चातुरी छोड़ अपने स्वरूपके दर्शन दो । दयामय ! दया करो ।’

‘बाबा तेरे पाँय पड़ूँ, छोड़ दे । मेरे घर चल । तोये मधुकरी दऊँगो । माखन-मिसरी दऊँगो । और जो कहेगो बाई दऊँगो ।’

बहुत चेष्टा की भगवान् ने भोले भक्तको भुलाने-बहलानेकी । पर वह भुलावेमें आनेवाला कब था ? उसके हृदयमें ह्लादिनीका प्रकाश जो था । बहुत देर हो गयी भक्त और भगवान् के बीच प्रणय-युद्ध होते । आधी रात बीत गयी । आखिर भगवान् की हार हुई । वे बोले—‘अच्छा ! ले, मेरे स्वरूपके दर्शन कर !’

बाबा उनके त्रिभंग-मुरलीधारी रूपके दर्शनकर चमत्कृत हुए । पर इससे उनकी तृप्ति न हुई । वे बोले—‘प्रभो मैं जुगल उपासक हूँ । एकाकी आपके स्वरूपके दर्शन कर मेरी विरह-ज्वाला शांत नहीं होनेकी । एक बार सपरिवार दर्शन देकर मेरे तापित हृदयको शीतल करें ।’

तब बाबाके भाग्यकी चरम सीमाका अतिक्रमणकर उनके सामने उदित हुआ एक दिव्य प्रकाश ! उन्होंने देखा दिव्य वृन्दावनमें ललिता-विशाखादि सखियों सहित जुगलकिशोरका अपरूप रूप ! वे उस रूप-माधुरीमें चिरकालके लिए डूब गये ! उनका पार्थिव शरीर उसे धारण करनेमें असमर्थ होनेके कारण कई दिन पीछे उनसे विलग हो गया ।

श्रीराधावल्लभ गोस्वामी

(वृन्दावन)

श्रीमधु पण्डितके वंशधर श्रीराधावल्लभ गोस्वामीके माता-पिता बाल्यकालमें ही उन्हें छोड़कर चल दिये । उनके पढ़ने-लिखनेकी समुचित व्यवस्था न हो सकी । पर शास्त्रादिका उपयुक्त ज्ञान न प्राप्तकर सकनेपर भी उनका स्वभाव सरल और चरित्र निर्दोष बना रहा । बड़े होनेपर आत्मीयगणके उपदेशसे उन्होंने परम्परागत शिष्योंके घर जाना प्रारम्भ किया ।

जिस शिष्यके घर वे प्रथम बार गये, वह उस दिन कहीं अन्यत्र गया हुआ था । घरपर केवल उसकी अल्पवयस्का स्त्री और उसका शिशु थे । स्त्रीने रसोईका सब सामान जुटा दिया । गोस्वामीजीने रसोई बनाकर भोजन किया । शिष्याको प्रसाद दिया । उनके कुछ देर विश्रामकर चुकनेपर स्त्रीने कहा—‘प्रभु ! कुछ कृष्ण-कथा सुनाइये ।’

प्रभु महाविपदमें पड़ गये । वे क्या जानते थे कि शिष्यके घर जाकर कुछ शास्त्र-चर्चा भी करनी होती है ? वे तो इतना ही जानते थे कि शिष्यके यहाँ जाकर भोजन करना होता है, प्रसाद देना होता है और प्रणामी लेकर चले आना होता है । किसी प्रकार उन्होंने शिष्यासे पीछा छुड़ाया । मनमें संकल्प किया—‘बिना कृष्ण-कथा सीखे कभी किसी शिष्यके घर नहीं जाऊँगा ।’

पर कृष्ण-कथा सीखते कैसे ? कृष्ण-कथा सीखनेके लिए विद्याध्ययनकी और विद्याध्ययन करते समय अनाज-पानी जुटानेकी जो समस्या थी । समस्याका कोई हल न देख उन्होंने सब त्यागकर वृन्दावन चले जानेका निश्चय किया ।

वृन्दावन जाकर श्रीगोपीनाथके मन्दिरमें आश्रय लिया । मन्दिरसे उन्हें दोनों समय प्रसाद और एक रुपया महीना दिया जाता । वे मन्दिरके भण्डारका खाता लिखा करते ।

वैरागी साधुका वेश धारण किये बिना कैसे साधुताका जीवन व्यतीत किया जा सकता है, इसके गोस्वामीजी ज्वलन्त उदाहरण थे । नित्य प्रातःकृत्य समापन करनेके पश्चात् वे एक घण्टा चैतन्य-चरितामृत आदि बँगला ग्रन्थोंका प्रेमपूर्वक पाठ करते । उनके मुखसे पाठ सुनकर श्रोता बहुत सुखी होते । पाठमें जो भी चढ़ावा आता, उसे साधु-वैष्णवोंकी सेवामें लगा देते । वस्त्रादि कभी खरीदकर न पहनते । भक्तोंसे जो मिल जाता, उसीसे शरीर ढक लेते । किसीकी निन्दा कभी न करते । छोटेसे छोटे व्यक्तिको सम्मान देते । अपने सम्मानका प्रतिरोध करते । इस प्रकार दैन्य भावसे जीवन व्यतीत करते हुए सदा भगवान्‌का स्मरण करते । अपराधोंसे बहुत सतर्क रहते । उनका कहना था कि जो व्यक्ति धामकी शरण ले लेता है, उसके सारे अपराध क्षय हो जाते हैं । पर जो धामकी शरणमें आनेके पश्चात् अपराध करता है, उसे उन अपराधोंके फल अवश्य भोगने पड़ते हैं ।

अपराधोंके सम्बन्धमें वे दो घटनाओंका विशेष रूपसे वर्णन किया करते । वे दोनों घटनाएँ इस प्रकार हैं :—

१—एक वैष्णव बाबाजी शेषरात्रिमें पंचकोसी परिक्रमा किया करते थे । एक दिन उन्होंने देखा—राजपुर ग्रामके निकट वैष्णव-भोजन हो रहा है । वे कुछ रुके । किसीने पूछा—‘भोजन करोगे ?’

‘इस समय भोजन नहीं करेंगे, देओ तो ले जायेंगे ।’ बाबाजीने कहा । उस व्यक्तिने कुछ प्रसाद लाकर दिया । बाबाजी अँगोछोंमें बाँधकर ले आये और कुटीमें रख दिया । जब गमछा खोला तो उसमें खप्पर-खपरियाके सिवा और कुछ न था !

स्पष्ट है कि उस शेषरात्रिमें भोजन करनेवाले वैष्णव कौन थे । जो लोग धाममें रहकर अपराध करते हैं, उनका धाम-त्याग तो नहीं होता, उनकी सद्गति भी नहीं होती ।

२—वृन्दावनमें झाड़ूमण्डलमें दो वैष्णव बाबाजी रहते थे । उनमें परस्पर स्नेह था । एकका देहान्त हो गया । दूसरा एक दिन ग्रीष्मकालमें शेषरात्रिमें राधाकुण्ड जा रहा था । ज्योत्स्नामय मेघाच्छन्न रात्रि होनेके कारण उसे लग रहा था कि सबेरा हो गया ।

दिल्लीवाली सड़कसे पैदल राधाकुण्ड जाते समय रास्तेमें जैत नामक ग्राम पड़ता है । उसने वहाँ सड़कके पश्चिम ओर देखा कि साधुओंकी बड़ी जमात बैठी है । ठाकुर-सेवा हो रही है । घण्टे-घड़ियाल बज रहे हैं ।

बाबाजी बीड़ी पिया करते थे । उन्होंने सोचा उन साधुओंमें-से किसीके पास बीड़ी होगी । बीड़ी माँगनेके लिए वे जैसे ही उधर बढ़े, देखा कि उनके वही बाबाजी मित्र, जो भर चुके थे, उनकी ओर चले आ रहे हैं । वे उन्हें देखकर चकित और भयभीत हुए । उन्होंने कहा—‘डरो नहीं ! मेरा देह-त्याग हो गया है, पर अभीष्ट स्थानकी प्राप्ति नहीं हुई है ।’

‘तुमने तो निष्ठापूर्वक भजन किया । फिर तुम्हारी सद्गति क्यों नहीं हुई ।’ इन बाबाजीने साहस बटोरते हुए पूछा ।

उन्होंने उत्तर दिया—‘मैं जिस कुटियामें भजन करता था, उसमें आलेमें ईंटके नीचे दो रुपये रख छोड़े थे । सोचा था, उनमें वैष्णव-सेवा करूँगा, पर कर न सका । किसीसे वैष्णव-सेवा करनेको कह भी न सका ।’

इसी वासनाके कारण अटक गया हूँ। तुम आज वृन्दावन लौट जाओ। उन रूपयोसे वैष्णव-सेवाकर मेरा उद्धार करो। पीछे राधाकुण्ड जाना।' बाबाजीने ऐसा ही किया।

स्वयं गोस्वामीजीके पास अन्तिम समय दो रुपये दस आने पैसे थे। देह-त्यागका समय निकट आते देख उन्होंने उससे वैष्णव-सेवा करा दी। देह-त्यागके समय उनके मुखारविन्दपर परमशान्ति और अनिर्वचनीय आनन्दके स्पष्ट चिह्न थे। वृन्दावन धाममें सादा, सरल, आडम्बरशून्य, निरपराध जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् वे संसारसे इस प्रकार परमानन्द-पूर्वक और परम उल्लासके साथ सहज ही चले गये, जैसे उन्होंने धामकी पूर्ण कृपा प्राप्त कर ली हो।

श्रीनित्यानन्ददास बाबाजी

(गोवर्धन)

श्रीनित्यानन्ददास बाबाजीके गुरुकी आयु उस समय १०० वर्षसे भी अधिक हो चुकी थी। उन्हें कुछ दीखता न था। नित्यानन्ददास उनके ठाकुरकी सेवा करते थे। रसोई बनाकर भोग लगाते थे और गुरुदेवकी भोजन कराते थे। गुरुदेवकी अन्यान्य सेवा उनकी दो शिष्याएँ करती थीं। इसलिए नित्यानन्ददासको समय मिल जाता था। वे गुरुदेवके आश्रममें रहते हुए श्रीश्रीराधारमणके सेवाइत श्रीमधुसूदन गोस्वामीपादके निकट जाकर हरिनामामृत व्याकरण और श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंका अध्ययन करते थे।

नित्यानन्ददासकी दोनों गुरु-भग्नियाँ युवती थीं। वे भी युवक थे। आश्रममें और कोई रहता न था। गुरुदेव रहते हुए भी न रहनेके सदृश थे। ऐसी स्थितिमें नित्यानन्ददास अपने वैराग्यकी रक्षा कैसे करें? यह उनके लिए एक समस्या बनती जा रही थी।

उन्होंने कई महत् पुरुषोंसे परामर्श किया। उन्होंने कहा—'तुम्हारे गुरुदेव महापुरुष हैं। वे स्त्रियोंके हाथका जल भी ग्रहण नहीं करते। यदि तुम चले गये, तो उन्हें बहुत कष्ट होगा। तुम चिन्ता न करो। गुरु-सेवा ही तुम्हें बल प्रदान कर तुम्हारे वैराग्यकी रक्षा करेगी।'

नित्यानन्ददासकी उम्र उस समय २५ वर्षकी थी । कुछ समय उन युवतियोंके साथ रहते-रहते उनका चित्त विकारग्रस्त होने लगा । एक दिन विकारग्रस्त होनेपर वे एक युवतीकी कुटीकी ओर जाने लगे । जाते-जाते एकदम लौट पड़े । द्रुतगतिसे जाकर गोवर्धनमें पूछरीके निकट बनमें बिना अन्न-जलके प्राण-त्याग करनेके संकल्पसे एक गढ़में छिप गये । तीन दिन तक उसमें निराहार निर्जल पड़े-पड़े बहुत क्लान्त और दुर्बल हो गये ।

तीसरे दिन अर्ध रात्रिमें कोई उन्हें खींचकर बाहर निकाल लाया । बाहर लाकर कहा—‘मरता क्यों है ? जा, नाम संकीर्तन कर जाकर’ और अन्तर्हित हो गया ।

‘यह कौन था जो मुझे बरबस खींचकर बाहर ले आया । मेरे तन और मनमें नये प्राण फूंककर अन्तर्धान हो गया ?’ नित्यानन्ददास बाबाकी कुछ भी समझमें न आया । उन्होंने अनुमान किया कि यह कोई दैवी शक्ति हो रही होगी, जो आयी और मार्ग-प्रदर्शन कर चली गयी ।

अब उनका अन्तर एक नये बल, नयी स्फूर्ति और नये उत्साहसे परिपूर्ण था, जो उन्हें एक नयी दिशामें जानेको प्रेरित कर रहा था । उससे प्रेरित हो वे उच्च स्वरसे नाम-कीर्तन करते हुए मानस-गंगाकी ओर चल दिये । मानस गंगाके तटपर एक जीर्ण कुटी थी । उसमें रहकर नाम-कीर्तन करनेका निश्चय किया ।

पर वे एक धर्मसंकटमें पड़ गये । सोचने लगे—‘गुरुदेव मेरे बाग़में क्या सोचते होंगे ? उनके ठाकुरजी सेवा कौन करता होगा ? कौन उन्हें भोजन बनाकर खिलाता होगा ? क्या मैं गुरुदेवके पास लौट जाऊँ ? उनके चरणोंमें क्षमा प्रार्थनाकर पूर्ववत् उनकी सेवा करूँ ? या दैवी आदेशका पालन करते हुए इस कुटीमें रहकर नाम-कीर्तन करूँ ?’

इस उधेड़-बुनमें दो दिन बीत गये । तीसरे दिन एक वैष्णव आकर उनसे बोले—‘तुम्हारे गुरुदेवने मुझे भेजा है । तुम जिस दिन आश्रमसे चले आये, उसके दूसरे दिन प्रातः बंगदेशसे दो ब्राह्मणोंने आकर उनसे वेश ग्रहण किया और आश्रममें रहकर उनकी सेवा करने लगे । इसलिए उनकी सेवा तो भली प्रकार चल रहो है । फिर भी तुम्हें बुलाया है । अभी साथ ही ले आनेको कहा है ।’

नित्यानन्ददास विस्मित हो सोचने लगे—‘मैं जबसे यहाँ आया हूँ, इस जीर्ण कुटीके भीतर बैठकर नाम-कीर्तन कर रहा हूँ, किसी परिचित व्यक्तिके मुझे देख लेनेकी कोई संभावना नहीं जान पड़ती, निश्चय ही गुरुदेवने अपनी दिव्य-दृष्टिसे मेरे विषयमें सब कुछ जान लिया है। उनके लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं। आश्चर्य इस बातका है कि मेरे आश्रमसे चले आनेपर दूसरे ही दिन प्रातः दो वैष्णवोंने मेरा सेवा-भार सम्हालकर मुझे स्वतन्त्र कर दिया। मैं गुरुदेवकी तरफसे निश्चिन्त रहकर यहाँ भजन कर सकता हूँ। यह भी क्या उस दिव्य-शक्तिकी ही योजना और प्रेरणामे हुआ है? यदि ऐसा है तो गुरुदेवने मुझे बुलाया क्यों है? क्या उन नये शिष्योंकी सेवासे वे सन्तुष्ट नहीं हैं? क्या मेरे यहाँ रहकर स्वतन्त्र रूपसे भजन करनेके लिए गुरुदेवकी अनुमति नहीं है? जो भी ही, उनकी आज्ञा सर्वोपरि है। वे जैसी आज्ञा करेंगे वैसा ही करना होगा।’ वे उसी समय उस वैष्णवके साथ गुरुदेवके आश्रमको चल दिये।

गुरुदेवने उसी दिन एक महोत्सव किया। भजनानन्दो वृद्ध वैष्णवोंको उसमें आमंत्रित किया। उत्सवके अन्तमें वैष्णवोंको बिठाकर नित्यानन्ददाससे प्रत्येकके चरणोंमें दण्डवत् करनेको कहा। प्रत्येकका हाथ नित्यानन्ददासके सिरपर रखकर कहा—‘आप इसे आशीर्वाद करें, जिससे यह एकान्त भजन कर श्रीमन्महाप्रभुके चरणारविन्द लाभ कर सके।’ इसके पश्चात् नित्यानन्ददाससे कहा—‘जाओ, तुम गिरिराजकी तरेटीमें जाकर एकान्त भावसे भजन करो।’

नित्यानन्ददास वाञ्छाकल्पतरु श्रीगुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम कर मन ही मन उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए और अश्रु-गुलक सहित उच्च स्वरसे नाम-कीर्तन करते हुए उसी दिन मानस-गंगा लौट आये और उसी जीर्ण कुटीमें रहकर निरन्तर नाम-कीर्तन करने लगे।

नामरूपी भगवानकी शरण लेनेसे उनका मनोविकार दूर हो गया। जीव जब तक अपनी शक्तिसे मायासे जूझता रहता है, उसका सारा प्रयत्न विफल होता है। होगा ही, क्योंकि माया भी तो भगवान्की ही शक्ति है। जब वह भगवान्की शरण लेता है तो सहज ही उससे छुटकारा पा लेता है—‘मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।’ नामकी कृपासे, मायासे मुक्ति तो मिलती ही है, भगवान्की चिन्मय लीलाओंमें प्रवेशाधिकार भी प्राप्त होता है। नाम-कीर्तन करते-करते नित्यानन्ददासको लीला-स्फूर्ति होने लगी। श्रीकृष्ण-लीला रस-समुद्रमें वे स्वच्छन्द तैरने लगे।

एक दिन प्रातःकाल जब वे लीलारसमें डूबे हुए थे, एक बाबाजीने आकर कहा—‘तुम्हारे गुरुदेव आज मध्यरात्रिमें अप्रकट होंगे । तुम्हें देखनेको बुलाया है ।’ नित्यानन्ददासने सोचा—‘यह सब मायाका खेल है । मेरे लीला रस-आनन्दको भंग करनेके लिए मायाने उपाय किया है ।’

उस रसानुभूतिके लोभमें पड़कर उन्होंने गुरुदेवकी आज्ञाकी अवहेलना की । उसी दिन मध्यरात्रिमें हठात् उनकी लीला-स्फूर्ति बन्द हो गयी । नाम-कीर्तन भी बन्द हो गया । हृदयमें अन्धकार छा गया ।

वे व्याकुल हो गुरुदेवके आश्रमकी ओर चल दिये । जाकर देखा कि गुरुदेव सचमुच अप्रकट हो गये हैं । दारुण दुःख और पश्चात्तापकी अग्निसे उनका हृदय झुलसने लगा । लीलास्फूर्ति स्वप्नवत् हो गयी । विक्षिप्त व्यक्तिकी तरह वे नाना स्थानोंमें भटकने लगे । तत्कालीन वृद्ध महात्माओंसे उपाय पूछा, तो उन्होंने एकमत होकर कहा—‘गुरु-चरणोंमें अपराधके कारण हो तुम्हारी यह दशा हुई है । शिष्य भजन-साधनमें चाहे कितना उन्नत हो जाय, गुरुकी अवज्ञा करनेसे, उनके चरणोंका आश्रय छोड़ देनेसे उसकी यही दशा होती है । गुरु-चरण ही तो हैं भगवत्-कृपाके द्वार । श्रीकृष्ण गुरुके माध्यमसे ही कृपा करते हैं, स्वतन्त्ररूपसे नहीं । जो गुरु-चरणोंका आश्रय लेकर भजन करते हैं, उनका कृष्ण कभी त्याग नहीं करते—

‘आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहिं तजे, आर सब मरे अकारण ।’

‘तुम किसी निर्जन स्थानमें बैठकर गुरुकी आराधना करो । गुरुके लिए आसन बिछाकर उसमें उनके अधिष्ठानकी चिन्ता करो । उनकी दण्डवत् परिक्रमा करते हुए मन ही मन उनसे प्रार्थना करो । साथमें नाम-कीर्तन करो । गुरुदेव अवश्य भगवत्-कृपाका द्वार तुम्हारे लिए फिर खोल देंगे ।’

नित्यानन्ददासजीने एक वर्ष तक ऐसा ही किया । जिस दिन एक वर्ष पूर्ण हुआ, उन्हें आसनपर गुरुदेवके आविर्भावकी स्फूर्ति हुई । उन्होंने उनके चरणोंमें मस्तक रख दिया । गुरुदेवके नेत्रोंसे अश्रुविसर्जन होने लगा । उन्होंने कहा—‘हा वत्स ! उस समय तो तुम आये नहीं । अब मैं क्या करूँ ।’

इतना कह वे अन्तर्धान हो गये । नित्यानन्ददास मर्महित हो भूमिपर गिर पड़े । आशाकी एक किरण, जिसने उनके हृदयाकाशको कुछ-कुछ

आलोकित कर रखा था, वह भी धुँधली पड़ गयी। पर उन्होंने उस धुँधली किरणको जीवित रखा। गुरुदेवका ध्यान और नाम-कीर्तन वे पहलेकी भाँति करते ही नहीं रहे, और तीव्र कर दिया।

पूज्यपाद श्रीअद्वैतदास बाबाजी महाराज एक दिन गिरिराज-परिक्रमा कर रहे थे। कानमें कीर्तनकी ध्वनि आयी। वे सखी थरानलाके पुलपर बैठकर उसे सुनने लगे। कुछ देर बाद उस मधुर ध्वनिका अनुसरण करते हुए, वे पाँच-छः सौ हाथ आगे गये। देखा कि एक बाबाजी एक अति जीर्ण कुटीमें बैठ प्रेमावेशमें नाम-कीर्तन कर रहे हैं।

वे उस ध्वनिसे इतना मुग्ध हुए कि पाँच-सात दिनके लिए वहीं एक पासकी कोठरीमें ठहर गये। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नित्यानन्ददासजी सब समय कीर्तन करते रहते हैं। कब स्नान-शौचादि करते हैं—यह वे कुछ भी न जान सके।

नित्यानन्ददास बाबा उच्च स्वरसे स्पष्ट अक्षरोंमें एक लाख नाम नित्य करते। रात्रिमें केवल दो घण्टे सोते। अपने अप्राकट्यके एक वर्ष पूर्व उन्होंने श्रीअद्वैतदास बाबाजी महाराजसे कहा था—“मुझे स्फूर्तिमें गुरुदेवके फिर दर्शन हुए हैं, उन्होंने कहा है—‘तेरे दुःखके दिन अब अधिक वहीं रह गये हैं। एक वर्षमें पूरे हो जायेंगे।’” उसी वर्ष कार्तिक मासकी नियम-सेवाके पूर्व वे श्रीअद्वैतदास बाबाके पास गये। उनसे विदा माँगकर मानस-गङ्गा तटपर आये और रास-पूर्णिमाके दिन रासविहारीकी रास-लीलामें प्रवेश कर गये!



श्रीबलरामदास बाबाजी

(वृन्दावन)

वृन्दावनमें शृंगारवटसे कुछ दूर यमुना-तटपर झाड़ूमण्डल नामक स्थानमें एक अति प्राचीन वटवृक्षके नीचे व्यासासनपर विराजमान हैं एक तेजस्वी महात्मा, जिन्हें लोग सिद्ध बलरामदास बाबाके नामसे जानते हैं। उनके चारों ओर बैठे हैं अगणित श्रोता, जो नित्य दूर-दूरसे उनका श्रीमद्भागवत-पाठ सुनने आते हैं। वे तन्मय हो कथा-रसका आस्वादन कर रहे हैं। कथा अभी समाप्त नहीं हुई है। एकाएक बाबाने पाठ बन्द कर दिया। भागवतको कपड़ेमें लपेटकर डोर बाँधते हुए और अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे श्रोताओंकी ओर देखते हुए कातर भावसे कहने लगे—‘श्रीवृन्दावनमें यमुना-तटपर व्यासासनपर बैठ पाठ करते-करते मुझे एक स्त्रीका गुह्यांग देख कामोद्रेक हो गया। आप लोगोंकी धारणा है कि मैं एक सिद्ध बाबाजी हूँ। पर मैं अकपट सबके चरणोंमें निवेदन करता हूँ कि मैं आप लोगोंको मुख दिखाने योग्य भी नहीं हूँ। मैं महापापी और पाखण्डी हूँ। मेरा अब प्राण रखना ठीक नहीं। मैं इस पापके प्रायश्चित्त-स्वरूप अभी आपके सम्मुख यमुनामें कूदकर प्राण त्याग दूंगा।’

बाबाको मरनेके लिए प्रस्तुत होते देख वैष्णवोंने कहा—‘हमारो प्रार्थना है कि थोड़ा धैर्य धरें। हमारा विश्वास है कि आप निर्दोष हैं। आपके चित्त-चाञ्चल्यका निश्चय ही कोई विशेष कारण है। उसका हम अभी पता लगाते हैं। कृपाकर यह ती बताइये कि आज आपने प्रसाद कहाँ ग्रहण किया था।’

बाबाने कहा—‘आज गोविन्द-मन्दिरमें प्रसाद पाया था।’

उसी समय तीन वैष्णव गोविन्द-मन्दिर गये। पूछ-ताछ करनेपर पता चला कि उस दिनका महोत्सव कलकत्तेकी एक वृद्धा बेश्याके पापार्जित धन द्वारा अनुष्ठित हुआ था। उन्होंने सिद्ध बाबाके निकट जाकर उन्हें यह बताते हुए कहा—‘अब इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि आजके प्रसादका दोष ही था आपके चित्त-चाञ्चल्यका कारण।’ उस समयसे सिद्ध बाबाका महोत्सवोंमें प्रसाद पाना बन्द हो गया।

उस समय प्रभुपाद नीलमणि गोस्वामी व्रजमें रहते थे । एक दिन कलकत्तेके कई बाबू लोग कुछ स्त्रियोंके साथ वृन्दावन आये । उन्होंने गोस्वामीजीके ठाकुर-मन्दिरमें महोत्सवका आयोजन किया । महोत्सवमें वृन्दावनके सभी महात्माओंको आमन्त्रित किया गया । सिद्ध बाबाके तो महोत्सवमें सम्मिलित होनेका कोई प्रश्न ही न था । उनके लिए प्रसादकी दो पत्तलें उनके स्थानपर भिजवा दी गयीं । उनके सेवकोंका नियम था कि जब कभी कहींसे प्रसाद आता, बाबाको बताकर उसे कोठरीके भीतर एक छीकेपर रख दिया करते । इस बार भी उन्होंने ऐसा ही किया ।

सिद्ध बाबाने कोठरीके भीतर जाकर सम्मानपूर्वक प्रसादकी ओर दृष्टिपात किया । जैसे ही उनकी दृष्टि उसपर पड़ी, उसमें-से ताजे रक्तकी कुछ बूंदें टप-टपकर नीचे गिर पड़ीं ! जिस कपड़ेकी झोलीमें प्रसाद रखा था, उसका निम्न भाग खूनसे सन गया । उसी समय उन्होंने नीलमणि प्रभुको बुलवाया । गोस्वामीजी सिद्ध बाबाके आह्वानपर सब कार्य छोड़कर उसी समय भागे चले आये । उन्हें यथाविधि दण्डवत् प्रणाम कर और आसनपर बिठाकर धीरे-धीरे बोले—‘गोस्वामीजी ! मेरा सर्वनाश कर तुम्हें क्या मिलेगा ? मैं ठहरा रूखी-भूखी रोटीके टुकड़ोंका भिखारी । पर देखो तुमने यह सब क्या भेजा है ! तुम्हारे प्रसादमें रक्त कैसा टपक रहा है !’

जैसे ही गोस्वामीजीने छीकेपर नजर डाली, वे उसमें-से रक्तकी बूंदें टपकते देख अवाक् रह गये । उन्होंने अपने स्थानपर जब बाबू लोगोंसे पूछ-ताछ की, तो पता चला कि उस उत्सवका भी आयोजन वेश्यावृत्तिसे अर्जित धनसे ही किया गया था । सिद्ध बाबाने प्रसाद फिकवा दिया और स्थानको गोबरसे लिपवाकर भली-भाँति परिष्कार करवाया ।

प्रश्न यह है कि और लोगोंने भी तो उसी प्रसादका सेवन किया था । उन्हें किसीको इस प्रकारका अनुभव क्यों नहीं हुआ ? इसलिए कि उनकी आत्मा इतनी शुद्ध नहीं थी । गंदे कपड़ेपर दाग नहीं दीखता, स्वच्छपर झट झलक जाता है । भजननिष्ठ महात्माओंके भजनकी शक्ति वस्तुके वास्तविक स्वरूपको अपने आप प्रकटकर देती है ।

सिद्ध बाबा श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराजके शिष्य थे । सदाचार और वैराग्यका वे कटुतरतासे पालन करते थे । कभी स्त्री-सम्भाषण नहीं करते थे । स्त्रीका दर्शन भी नहीं करना चाहते थे । मन्दिरमें दर्शनके लिए

जाते समय नेत्रोंपर वस्त्र बाँध लेते थे और लठियाके सहारे पथपर चलते थे । एक दिन वे इसी प्रकार श्रीराधारमणजीके दर्शन करने गये । राधारमणजीके सेवाइत मधुसूदन गोस्वामीपाद मन्दिरके द्वारपर बैठे थे । सिद्ध बाबाको देख, वे सम्मानपूर्वक उठ बैठे और अभिवादन कर बोले— 'बाबा ! आप इतने वृद्ध हो गये हैं । आपका देह जैसे अस्थि-पिंजर हो रहा है, अस्थियोंसे मांस लटका पड़ रहा है । फिर आप स्त्रियोंसे इतना भय क्यों खाते हैं ?'

सिद्ध बाबाने कहा— 'महाप्रभुने कहा है कि वैरागी वैष्णव साधुके लिए स्त्रीदर्शन निषिद्ध है । जब तक देहमें हाड़, मांस और रक्त रहता है, तब तक काम प्रवृत्ति जागरूक रहती है । वैरागीको बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है ।'

सिद्ध बाबा किसीके सदाचारमें कोई त्रुटि देखते, तो उसपर शासन किये बिना न रहते । जो भी उनके पास जाता उसे इस बातका भय रहता कि उसकी कोई त्रुटि उन्हें न दीख जाये ।

उत्कलवासी श्रीजगदानन्ददास बाबा मदनमोहन ठौरके श्रीनित्यानन्ददास बाबासे वेष ग्रहण कर तीव्र वैराग्यके साथ रागानुगा भजन करते थे । एक दिन वे सिद्ध बाबाके दर्शन करने गये । उन्हें देख बाबा बोले— 'वैरागी बन गये हो, पर जाति-अभिमान अभी भी नहीं गया है । सम्मानित होनेके लिए ब्राह्मणपनेका चिह्न यज्ञोपवीत अब भी धारण किये हो ।' श्रीजगदानन्दजी अत्यन्त लज्जित हुए । उन्होंने उसी समय यमुनामें जनेऊ विसर्जन कर बाबाको दण्डवत् की । बाबाने भी सन्तुष्ट हो उन्हें आशीर्वाद किया ।

श्रीमाधवदास बाबाजी

(वृन्दावन)

बंगदेशमें महानन्दा और पद्मानदीके संगमपर बारधरिया ग्राम है । यहीं सन् १८५७ में श्रीमाधवदास बाबाका जन्म हुआ । अल्पावस्थामें पितृ-वियोग हो जानेके कारण उनकी शिक्षाकी समुचित व्यवस्था न हो सकी ।

पर साधारण लिखना-पढ़ना उन्होंने जल्दी ही सीख लिया और भक्ति-ग्रन्थोंके पाठ, कीर्तन तथा सत्संगमें अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगे।

उस क्षेत्रमें नामके वैष्णव तो बहुत थे। पर जैसे विशुद्ध वैष्णवका संग वे चाहते थे, वैसा संग उन्हें उपलब्ध न हुआ। इसलिए सत्ताईस वर्षकी अवस्थामें अपनी पत्नीसे परोक्ष रूपमें सदाके लिए विदा ग्रहण कर वृन्दावन चले गये। वहाँ शृंगारवटके श्रीपरमानन्द प्रभुपादके चरणाश्रित हो भजन करने लगे।

कुछ दिन वृन्दावनके विभिन्न स्थानोंमें रहनेके पश्चात् उनकी इच्छा हुई ब्रजके गाँवोंमें भ्रमण करनेकी। वे गुरुदेवकी अनुमति प्राप्त कर गाँवोंकी ओर चले गये। संकेतवट जाकर वहाँ वृन्दावनके सिद्ध श्रीनित्यानन्ददास बाबाके शिष्य श्रीजगदानन्ददासजीके साथ रहने लगे। श्रीजगदानन्ददास बाबाके आदर्श वैराग्यमय जीवनसे उन्हें बहुत कुछ सीखनेकी मिला। दोनों महात्मा पृथक्-पृथक् मधुकरीको जाते। रात्रिमें भजनकुटीके बाहर बैठकर भोजन करते।

एक दिन माधवदासजी बोले—‘मट्ठेके साथ थोड़ा नमक होता तो अच्छा था। जाऊँ थोड़ा नमक माँग लाऊँ’

जगदानन्ददासजीने कहा—‘सावधान, नमक माँगने न जाना, मत्त बड़ा लोभी है। आज इसे नमक दोगे, तो कल गुड़ माँगने लगेगा। खाते-खाते बिना नमकके ही अच्छा लगने लगेगा।’

एक दिन किसी ग्राममें उत्सव था। माधवदासजी वहाँ गये थे भोजन करने। वहाँसे लौटनेपर जगदानन्ददासजीने पूछा—‘ग्राम यहाँसे कितनी दूर है?’

‘दो कोस’ माधवदास बाबाने उत्तर दिया।

‘कितने मालपुआ खाये?’

‘आठ।’

‘अब शरीर कैसा लग रहा है?’

‘थकान आ गयी है। आलस लग रहा है।’

‘तो यहाँ वनमें क्यों पड़े हो? मालपुआ खानेके लिए इतनी दूर जाना पड़ता है। इससे तो वृन्दावन ही जाकर रहो न। वहाँ नित्य कहीं-न-

कहीं उत्सव होता रहता है । कचौड़ी, मालपुआ खानेके लिए दूर जानेका परिश्रम नहीं करना पड़ता ।'

श्रीसाधवदास बाबाजीने श्रीजगदानन्ददास बाबाकी इस फटकारके बाद उत्सवोंमें जाना छोड़ दिया ।

इसके पश्चात् वे उनके साथ कुछ दिन बरसाने भानुकुण्डके तटपर रहे ! बरसाने रहते समय उन्हें श्रीरामकृष्णदास पण्डित बाबाजी और श्रीहरिचरणदास बाबाजीका संग प्राप्त हुआ ।

बरसानेसे वे काम्यवन चले गये । वहाँ विमलाकुण्डके ऊपर सिद्धबाबाके स्थानसे थोड़ी दूर एक कुटीमें रहकर बहुत दिन तक भजन किया । एक दिन उनके मनमें विषाद उत्पन्न हुआ । सोचने लगे—'हाय ! मैं इतने दिनसे भजन कर रहा हूँ । मुझे अभी तक राधारानीकी कृपा प्राप्त नहीं हुई । इसमें उनका क्या दोष ही सकता है । वे तो स्वभावसे सरल और उदार हैं । मेरा ही हृदय कपटसे भरा है । मुझसे यथार्थ भजन नहीं बन सका ।'

यह सोचते हुए वे ओढ़कर लेट गये । उस दिन मधुकरीको नहीं गये । पश्चात्तापकी अग्नि उनके हृदयमें सुलग रही थी । वे फूट-फूटकर रो रहे थे । उसी समय एक किशोरी ब्राह्मण-बालिकाने दरवाजेपर आवाज लगायी 'बाबा ! ओ बाबा !'

उन्होंने दरवाजा खोला । देखा कि बालिका पूरी, कचौरी और नाना प्रकारकी खाद्य-सामग्रीसे भरा थाल लिये खड़ी है । थाल बाबाके सामने रखकर बोली—'तू आज मधुकरीको गयो नाई । मइयाने तेरे ताई भेज्यो है, पाय ले ।' बाबाने उसे सहर्ष अंगोकार किया । यह सोचकर कि ब्रजवासी मधुकरीमें प्राप्त पूरी-कचौरी और पकवान आदि बड़े प्रेमसे खाते हैं, उन्होंने बालिकासे भी खानेका अनुरोध किया ।

वह बोली—'मैं तो बनियाँके घर खीर-रोटी जेंके आयी । मेरो पेट फटो जाय है । मैं जाऊँ ।'

बालिका चली गयी । बाबाने उसकी लायी मधुकरी ग्रहण की, तो उसकी दिव्य गंध और स्वादसे वे चमत्कृत ही गये । अश्रु-कम्पादि सात्त्विक भावोंने वरबस उन्हें आ घेरा । बालिका चली गयी थी । पर अपना दिव्य प्रभाव छोड़ गयी थी । बाबाके नेत्रोंके सामने उसकी सलोनी छवि नाच रही

थी । वे सोच रहे थे—'उसके मुखारविन्दपर एक अपूर्व लावण्यकी आभा थी, नेत्रोंमें करुणा थी, वाणीमें मधुरिमा थी । निश्चय ही वह छया वेशमें मेरे हृदयकी अधीश्वरी थी । यदि वह कोई साधारण ब्राह्मण-बालिका होती, तो बनियेके घर खीर-रोटी क्यों खाती ? राधारानी जाति-पातिका विचार नहीं करतीं । जो भी प्रेमसे उन्हें कुछ देता है, उसे प्रेमसे आरोग्यती हैं । किसी भक्त बनियेने प्रेमसे खीर-रोटीका भोग लगाया होगा । तभी न उन्होंने प्रेमपूर्वक इतना पा लिया था कि उनका पेट फटा जा रहा था ।'

काम्यवनमें रहते समय श्रीमाधवदास बाबा ब्रजके सभी वैष्णवोंके प्रीतिभाजन हो गये । सबने मिलकर उन्हें काम्यवनके सिद्धबाबाके स्थानका महन्त बना दिया । बाबा तो भजननिष्ठ व्यक्तित्व थे । किसी प्रकारके बंधनमें बंधना नहीं चाहते थे । पर वैष्णवोंके आग्रहको ठुकराना भी उनके लिए कठिन था । इसलिए कुछ दिन महन्त पदपर रहकर वे फिर स्वतन्त्र रूपसे विचरण करने लगे ।

बहुत दिनों तक वे सिद्ध जयकृष्णदास बाबाके सेवित विग्रह श्रीश्रीमदनगोपालके मन्दिरके पुजारी महन्त श्रीधर्मदास बाबाके पास रहे । पर बीच-बीचसे वृन्दावन और ब्रजके अन्यान्य ग्रामोंमें जाकर रहते रहे । वृन्दावनमें कुछ दिन श्रीश्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीके समाधि-स्थानमें रहे, कुछ दिन लोटनकुञ्जमें और कुछ दिन झाड़ूमण्डलमें ।

झाड़ूमण्डलमें रहते समय एक दिन उनके मनमें एक विचार आया । उन्होंने सोचा—'लोग कहते हैं कि श्रीश्रीसनातन गोस्वामी ब्रजके कंगाल वैष्णवोंका प्रतिपालन करते हैं । देखू यह बात ठीक है या नहीं । आज मधुकरीको नहीं जाऊँगा । अयाचित भावसे मिला तभी ग्रहण करूँगा । नहीं तो भूखा सौ रहूँगा ।'

उस दिन जब वे श्रीश्रीगोपालभट्ट गोस्वामीके समाधि-स्थानके सामनेसे जा रहे थे, वहाँके सेवक श्रीमथुरादासजी दरवाजेपर खड़े जैसे उनकी बाट जोह रहे थे । उन्हें देखते ही वे बोले—'माधवदास ! मधुकरीको जा रहे हो । आज मत जाओ । भीतर चलो । मुझे ज्वर हुआ है । पूरी-तरकारी रखी है । ठाकुरजीको समर्पण कर समाधिका भोग लगाओ और स्वयं प्रसाद ग्रहण करो ।' माधवदासजीने ऐसा ही किया । श्रीश्रीसनातन गोस्वामीकी कृपाका अनुभव करते-करते उनका हृदय भर आया ।

श्रीमाधवदास बाबाजीका दैन्य और सेवा-भाव विशेषरूपसे सराहनीय था। वे अपनेको हीन और अस्पृश्य माननेके कारण सभी वैष्णवोंकी पंगतमें उनके साथ नहीं बैठते थे। यदि उन्हें गुरु-स्थानपर कभी किसी उत्सवमें जाना पड़ता, तो उनके गुरुदेव स्वयं उनके स्वभावको जानकर अन्य लोगोंके आपत्ति करनेपर भी, उनकी पत्तल वैष्णवोंसे पृथक् दीन-हीन कंगाल व्यक्तियोंके बीच डाल दिया करते। वे पाद-सम्वाहनादिमें बड़े निपुण थे। इस सेवाके द्वारा उन्होंने बहुत-से साधु-महात्माओंकी कृपा लाभ की थी।

श्रीमाधवदास बाबाजी अपने दैन्य, सेवा-भाव, स्वच्छ, सरल हृदय और स्नेहमय व्यवहारके कारण सहज ही छोटे-बड़े सभी लोगोमें घुल-मिल जाते थे। उस समयके व्रजके बड़े महात्माओंमें कोई भी ऐसा न था, जिसके मन-प्राण चुरानेमें उन्होंने कोई कसर रखी हो।

सन् १८६२ में श्रीराधिकानाथ गोस्वामीपाद वृन्दावन पधारे। उनके मुखसे हरिकथा सुनकर माधवदासजी मुग्ध हो गये। गोस्वामीपाद श्रीमाधवदासजीकी रसग्रन्थोंको समझनेकी अद्भुत शक्ति देख उनसे विशेष प्रीति रखने लगे। दोनों अधिकाधिक एक-दूसरेका संग करने लगे। माधवदासजी राधिकानाथ गोस्वामीमें गुरुबुद्धि रखने लगे और राधिकानाथ गोस्वामी उन्हें अपने अभिन्न-हृदय बन्धुके रूपमें जानने लगे। श्रीगोपीनाथके मन्दिरके श्रीराधावल्लभ गोस्वामी श्रीराधिकानाथ गोस्वामीपादके उत्तम और परमप्रिय श्रोताओंमें-से थे। प्रभुपादके निवास-स्थावपर इन तीनोंकी गोष्ठी हुआ करती। तीनों हरि-कथा-प्रसंगमें समयका ज्ञान खोकर घण्टों बैठे रह जाते। बीच-बीचमें अपने उन्मुक्त हास्यसे दिशाओंको कम्पित कर देते।

सन् १८६४ में ताड़ासके जमींदार राजर्षि बनमाली रायबहादुर वृन्दावन आये। श्रीराधिकानाथ गोस्वामीपादके घर श्रीमाधवदासजीसे उनकी भेंट हुई। उसी समयसे दोनोंमें ऐसी सहृदयता हो गयी कि जैसे दोनोंके प्राण एक हो गये। कुछ दिन बाद राजर्षिजी राधाकुण्डमें अपनी राजवाड़ीमें रहने लगे। उनसे श्रीमाधवदासजीके बगैर न रहा गया। वे राधिकानाथ गोस्वामीजीसे भिक्षारूपमें उन्हें माँगकर राधाकुण्ड ले गये। राधाकुण्डमें दोनोंको राधिकानाथ गोस्वामी प्रभुका वियोग असह्य होने लगा। ऐसा ही होता है समभाववाले सजातीय भक्तोंका अपार्थिव, निस्वार्थ प्रेम !

राजर्षि बहादुरको विवश होकर वृन्दावनमें एक मन्दिरका निर्माण करना पड़ा । सन् १६०४ से वे और माधवदासजी वृन्दावन रहने लगे । १६०५ के प्लेगमें राधिकानायजी और राजर्षि बहादुर गौड़मण्डल चले गये । पर माधवदासजी श्रीवृन्दावनका आश्रय लेकर वहीं बने रहे ।

सन् १६११ में श्रीराधिकानाथ गोस्वामी प्रभुका शरीर छूट गया । उसके कुछ दिन पूर्व उन्होंने राजर्षि बहादुरके मन्दिरके निकट केयारिवनमें निर्जनमें एक कुटीका निर्माण किया था, जिससे राजर्षिजीके साथ हरिकथा और इष्ट-गोष्ठीमें अनुकूलता हो । श्रीमाधवदासजी भी उसी कुटीके निकट दिल्लीवालोंकी बगीचीमें रहने लगे थे ।

कुछ दिन बाद नारायण मुनि नामके एक प्रतिष्ठित वेदान्ती संन्यासी भी उसी बगीचीमें आकर ठहरे । वे प्रायः मौन रहते । लोगोंसे मिलना-जुलना कम पसन्द करते । श्रीमाधवदास बाबाजी जहाँ भी रहते, नित्य चैतन्य-चरितामृत और चैतन्य भागवत आदिका पाठ किया करते । उनका पाठ सुनकर और पाठमें भावावेश देखकर मुनि उनसे बहुत प्रभावित हुए । उनका आग्रह देखकर माधवदासजी उन्हें चैतन्य-चरितामृतका अभिप्राय और रागानुगा भजनकी रीति बतलाने लगे । उन्हें चरितामृतकी कथा इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने थोड़े ही समयमें बँगला सीख ली और स्वयं समग्र चैतन्य-चरितामृतका पाठ किया । चैतन्य-चरितामृतका पाठ करनेके पश्चात् उन्होंने माधवदास बाबाजीसे कहा—‘उपासना तो यही सर्वोत्तम है । पर क्या कहूँ, मेरा संस्कार अन्य प्रकारका है, जो बाधा देता है ।’

इसी समय श्रीकृष्णानन्द नामके एक और संन्यासी श्रीमाधवदास बाबाजीसे प्रभावित हो उनसे श्रीकृष्ण-भजनका उपदेश लेने लगे और चैतन्य-चरितामृतका पाठ करने लगे । निष्ठा परिपक्व होनेपर उन्होंने गेरुआ वस्त्र त्यागकर श्रीश्रीप्राणगोपाल गोस्वामीसे दीक्षा ली और वृन्दावनमें रहकर भजन करने लगे । उन्होंने श्रीचैतन्यमृतका बहुत प्रचार किया और बहुत-से शिष्य किये । पर श्रीमाधवदास बाबाजीके प्रति बराबर उनकी गुरुवृद्धि रही ।

कालीयदहके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबा माधवदासजीसे बहुत प्रीति करते । जगन्नाथपुरीके सिद्ध श्रीश्रीराधारमणचरणदास बाबाजी महाराज (वड़े बाबा) जब वृन्दावन पधारे, तो वे भी उनके प्रीतिमय व्यवहारसे मुग्ध हुए

बिना न रहे । तभीसे उनके शिष्य श्रीश्रीरामदास बाबाजी महाराज भी उनके प्रति गुरुबुद्धि रखने लगे ।

श्रीमाधवदास बाबाजी वृन्दावनमें गोपीनाथ बागमें गोपाल छड़ीदारके ठौरमें १८-१९ वर्ष रहे । उनके उद्योगसे वहाँ नित्य पाठ-कीर्तन होता । उत्सव और वैष्णव-सेवा भी प्रायः होते ही रहते । मुंगेरके राजा श्रीरघुनन्दन प्रसादसिंहका इन उत्सवोंमें विशेष सहयोग रहता । रघुनन्दनप्रसादसिंहकी श्रीमाधवदास बाबाके प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी । एक बार जब वे बाबाके दर्शन करने आये तो उन्होंने कहा—‘रघुनन्दन ! मैं जब मरूँगा तब कामिनी बाबू (राजर्षि बनमाजी रायबहादुरके कामदार) और अन्यान्य भक्त मेरे उत्सवके लिए तुमसे धन चाहेंगे । तुम उन्हें कुछ मत देना । इस समय मुझे कुछ अधिक दो, जिससे मैं पाठ-कीर्तन सुनूँ ।’ रघुनन्दनप्रसादसिंहने उसी समय ५०० रुपयेके नोट उन्हें दे दिये ।

सन् १९३३ में श्रीप्राणगोपाल गोस्वामीकी गोदमें मस्तक रखे और प्रसिद्ध कीर्तनीया गणेशदासका कीर्तन सुनते-सुनते बहुत-से महात्माओं और वैष्णवोंके सान्निध्यमें उन्होंने पार्थिव शरीर त्यागकर दिव्य वृन्दावन धाममें प्रवेश किया ।

श्रीराधारमण घोष भागवतभूषण

(वृन्दावन)

ठाका-निवासी परम भक्त श्रीकृष्णगोविन्द घोषके पुत्र श्रीराधारमण घोष श्री० ए० पासकर महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरके स्टेटके प्रधान कार्याध्यक्षके पदपर नियुक्त हुए । कुछ दिन पश्चात् त्रिपुराधिपति श्रीवीरचन्द्र माणिक्य बहादुरके प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये । महाराज वीरचन्द्र परम गौरभक्त थे । राजकार्यमें व्यस्त रहते हुए भी वे यथासम्भव भगवत-भजन किया करते थे । राधारमण घोष उन्हें बहुत प्रिय थे; क्योंकि उनके समान सज्जन, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और असाधारण तीक्ष्ण बुद्धिवाला उनकी सभामें कोई न था । पर घोष महाशय वैष्णव विचारधाराके लोग न थे । उन्हें वैष्णवाचार और

वैष्णवीय दैन्य रुचिकर न था । वैष्णव राजाकी नौकरी करते थे, केवल इसलिए उसका कुछ-कुछ पालन करते थे ।

राजाके संगके प्रभावसे एक साधारण घटनाने घोष महाशयको वैष्णव पथावलम्बी बना दिया । महाराजा बीरचन्द्र प्रायः वृन्दावन जाया करते । वहाँ अपने कुञ्जमें रहकर वैष्णव-संग किया करते । एक दिन वे कुञ्जके दूसरे मंजिलके एक कमरेमें बैठे मित्रोंके साथ इष्ट-गोष्ठी कर रहे थे । बाहर बरामदेमें बहुत-सा सामान बिखरा पड़ा था । उसमें एक बहुमूल्य शाल भी था । सामने पेड़पर बैठे एक बन्दरकी दृष्टि शालपर पड़ी । वह कूदकर आया और शाल लेकर पेड़पर चढ़ गया । राधारमण बाबू और राजाके अन्य कर्मचारियोंने बहुत चेष्टा की किसी प्रकार उससे शाल छुड़ा लेनेकी; पर वे सफल न हुए । शोरगुल सुनकर महाराजा बाहर आ गये । वे चुपचाप खड़े बन्दरकी ओर देखते रहे । कर्मचारी बन्दरकी ओर रोटीके टुकड़े और अन्य खाद्य-सामग्री फेंक रहे थे, पर वह उधर भ्रूक्षेप भी नहीं कर रहा था । उसका स्वाभाविक लोभ आज न जाने कहाँ चला गया था । उसे आज उस शालके चीथड़े करके ही छोड़ना था । बन्दर राजाकी ओर देखता जाता और अपने पैंने दाँतोंसे उस शालको चीरता जाता । राजा शान्त, निस्तब्ध और निरुद्विग्न भावसे उसे देख रहे थे । उनका प्रशान्त बदन-मण्डल प्रेमाश्रुओंसे अभिषिक्त हो रहा था । कर्मचारी और अन्य सभी लोग राजाके इस रहस्यमय भावको देखकर चकित थे । किसीका साहस न हो रहा था उनसे कुछ पूछनेका ।

घोष महाशयके मनमें इस घटनाने एक अपूर्व हलजल पैदा कर दी । वे अवसर देख रहे थे एकान्तमें उनसे इस रहस्यका उद्घाटन करनेकी प्रार्थना करनेका । सन्ध्या समय वे उनके कमरेमें गये, जब वहाँ और कोई न था । प्रार्थनापूर्वक उनसे अनुमति माँगते हुए कहा—‘महाराज ! आजकी बन्दरवाली घटनासे हम सब बहुत लज्जित हैं । हमारी असावधानीके कारण इतना नुकसान हुआ । पर आपने किसीसे एक शब्द भी न कहा । इसके विपरीत लगता था कि आपके मनमें किसी अपूर्व भावका उदय हुआ, जिसके लक्षण आपके मुखारविन्दपर स्पष्ट दीख रहे थे । यह कौन-सा भाव था, क्या आप बतानेकी कृपा करेंगे ?’

महाराज हँसते हुए बोले—‘राधारमण ! यह वानर नहीं, वानरके रूपमें एक महापुरुष थे, जो कृपा कर आये और मुझे एक बड़ी शिक्षा देकर

चले गये । श्रीवृन्दावनमें निष्किञ्चन भावसे आना ही लाभप्रद है । मैं आया राजसी ठाट-बाटसे विषय-भोगकी सामग्रीका ढेर साथ लेकर । शालके टुकड़ेकर वानरने मुझे सावधान कर दिया । अब मैं राजसी द्रव्य लेकर और अपने राजापनेका अभिमान लेकर वृन्दावन कभी न जाऊँगा । यह शिक्षा प्राप्तकर मेरा हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया और वानररूपी महापुरुषके प्रति आभार व्यक्त करते हुए जलके कुछ बिन्दु मेरे नेत्रोंसे टपक पड़े ।

घोष महाशय सुनकर अवाक् ! उनके हृदयमें एक भाव-तरंग उमड़ पड़ी । सारा शरीर पुलकित हो गया । महाराजाने उपयुक्त अवसर देखकर कहा—‘राधारमण ! प्राकृत वैष्णव होना बहुत कठिन है । वैष्णव-धर्मका प्राण है दीनता । दीनताके ही अवतार हैं श्रीगौराङ्ग । उनकी कृपा दीन-हीन और कङ्गाल व्यक्तियोंपर ही अधिक होती है, उसी प्रकार जिस प्रकार वर्षाका जल जिस ओर स्थल जितना नीचा होता है, उस ओर उतना अधिक बहकर जाता है । मैं ठहरा महाराजा, घोर दारिद्र्य और विषयी । मेरे ऊपर क्या कभी उनकी कृपा-दृष्टि होगी ?’ इतना कहते ही महाराजाके गण्ड-स्थलपर अश्रुओंकी स्रोतस्विनी प्रवाहित होने लगी ।

घोष महाशय कुछ न बोले । वे चुपचाप उठकर चले गये और एक निभृत स्थानमें जा बैठे । महाराजाके हृदय-तूणीरसे निकला दैन्योक्तिरूपी सर उनके हृदयमें प्रवेश कर गया था । वैष्णवी दैन्यके प्रति विपरीत-भावकी उनकी हृदय-ग्रन्थिको उसने छल्ल-भिन्न कर दिया था । वे सोच रहे थे—‘जो धर्म मनुष्यको इतने उच्च-स्तरपर ले जा सकता है, जो उसके हृदयको कुसुमके समान सुकोमल कर सकता है, वही सर्वश्रेष्ठ है । मैं उसी धर्मको ग्रहणकर दीन-दुःखियोंके एकमात्र प्रभु श्रीगौराङ्गको उपासना करूँगा ।’

घोष महाशय अब पहलेके घोष महाशय न रहे । वे जितने दिन वृन्दावन रहे, वृन्दावनके निर्जन प्रान्तोंमें भ्रमण करनेमें या साधु-वैष्णवोंका संग करनेमें समय व्यतीत करते रहे ।

एक दिन, जब वे किसी निर्जन स्थानमें भ्रमण कर रहे थे, भाग्य-क्रमसे उन्हें एक निष्किञ्चन वैष्णवके दर्शन हुए । वे वैष्णव एक तमाल वृक्षके नीचे आसन लगाये, वृक्षकी ओर मुंह करके बैठे श्रीमद्भागवत पाठ कर रहे थे । उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु विसर्जित हो रहे थे । श्रोता थे तमाल वृक्ष-रूपी श्रीकृष्ण । वे नित्य-प्रति इसी प्रकार तमाल-रूपी श्रीकृष्णको भागवत सुनाया करते । दैवक्रमसे यदि कोई दूसरा श्रोता आ

जाता, तो उसकी ओर लक्ष्य न करते । उसका सम्भवतः उन्हें पता भी न होता ।

घोष महाशय उन महापुरुषके पीछे बैठकर चुपचाप पाठ सुनने लगे । पाठ समाप्त होते ही महापुरुषके बिना जाने चुपचाप उठकर चले गये ।

घोष महाशयने अनेक बार राजसभामें, राजमहलमें और अन्यत्र भागवत-पाठ सुना था, पर टीका-टिप्पणीके साथ ऐसा सर्वांग सुन्दर और भावपूर्ण पाठ उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था ।

दूसरे दिन भी उसी समय वे उस स्थानपर गये और उसी प्रकार पाठ सुनकर चले आये । यह क्रम कुछ दिन तक ऐसे ही चलता रहा । एक दिन किसी प्रकार महापुरुषकी दृष्टि उनपर पड़ गयी । उन्होंने आदरपूर्वक उन्हें अपने निकट बैठाया और ग्रन्थकी समाप्ति तक प्रतिदिन पाठ सुननेको कहा । घोष महाशय उस दिनसे उनके निकट इस प्रकार बैठकर पाठ सुनने लगे, जिससे उनके और उनके प्रधान श्रोता उस तमाल वृक्षके दर्शन एक साथ होते रहें । पाठके अन्तिम दिन एक अपूर्व घटना घटी । तमाल वृक्षका तना फट गया । उसके भीतर एक अपूर्व इन्द्र नीलमणि छुत्तिके बीच द्विभुज मुरलीधर श्रीश्यामसुन्दरके दर्शन हुए । दर्शन करते ही घोष महाशय मूर्च्छित हो गये । महापुरुषकी क्या अवस्था हुई, इसका उन्हें कुछ पता न चला ।

मूर्च्छा भंग होनेपर उन्होंने देखा कि वे उस तमालके नीचे महापुरुषकी गोदमें सिर रखे लेटे हैं । बाह्यज्ञान होते ही वे उठ बैठे और प्रगाढ़ भक्तिपूर्वक महापुरुषको प्रणाम किया । महापुरुषने बड़े स्नेहसे उनके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—‘राधारमण ! तुम्हें मेरे राधारमणने कृपाकर साक्षात् दर्शन दिये हैं । मेरा आदेश है कि तुम नित्य भागवत-पाठ किया करना । पाठ सुनाना भागवत रूपी श्रीकृष्णकी ही । तुम्हें निश्चित रूपसे भागवत-पाठके प्राकृत फलकी प्राप्ति होगी ।’

उस दिनसे घोष महाशय अपने घर या एकान्तमें किसी वृक्षके नीचे बैठकर भागवत-पाठ द्वारा भागवतरूपी श्रीकृष्णकी सेवा करते । कभी अकेले होते, कभी उनके पाँच-सात अन्तरङ्ग भक्त उनके समीप होते । उनके पाठमें श्रुतकी वर्षा होती । वे भागवतके प्रत्येक श्लोककी गौरपरक व्याख्या करते । उनके भक्त डाक्टर श्रीसत्यनारायणदाससे सुना गया है कि पाठके समय उनमें श्रीजीवगोस्वामी या श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपादका आवेश होता ।

कठिन-से-कठिन दार्शनिक सिद्धान्तोंकी वे इतनी सहज और सरस गौरांग महाप्रभुके पक्षमें व्याख्या करते कि बड़े-से-बड़े पाखण्डीके संशय दूर हो जाते और उसकी महाप्रभुके चरणोंमें रति-मति उत्पन्न होती ।

घोष महाशयकी चेष्टासे ही महाराजा श्रीवीरचन्द्रमाणिक्य बहादुरके आर्थिक सहयोगसे श्रीरामनारायण विद्यारत्न द्वारा श्रीमद्भागवतकी चार टीका और अनुवाद सहित वरहमपुरवाला संस्करण और अन्यान्य बहुत-से वैष्णव ग्रन्थ प्रकाशित हुए । उसके लिए आज भी भक्त-समाज उनका विशेष रूपसे आभारी है ।



श्रीरामहरिदास बाबाजी

(वृन्दावन/राधाकुण्ड)

श्रीरूपगोस्वामीने सर्वसाधारणको एक चेतावनी दी है । उन्होंने कहा है—'बन्धु ! सावधान ! यदि तुम नहीं चाहते कि तुम्हारे सम्बन्धी तुमसे छूटें, तो एक काम कभी भूलकर न करना—वृन्दावनमें केशीघाटके निकट अपने रक्तिम अधरोंपर बंशी रखे, सिरमें मोर-पुच्छ धारण किये, विशाल बकिम नेत्रोंसे देखते और मंद-मंद मुसकाते त्रिभंग मुद्रामें गोविन्द नामकी जो मूर्ति विराजमान हैं, उसे न देख लेना—

स्मेरां भङ्गीत्रयपरिचितां साचिबिस्तीर्णर्दष्टि
बंशीन्यस्ताधरकिञ्चलयामुञ्ज्वलां चन्द्रकेण ।
गोविन्दाख्या हरितनुमितः केशीतीर्थोपकण्ठे
सा प्रेक्षिष्ठास्तव यवि सखे ! बन्धुसंगेऽस्ति रङ्ग ॥

(भक्तिरसामृत सिन्धु १/२/२३६)

श्रीरूपगोस्वामीका आशय है कि उसे यदि एक बार देख लिया, तो उसमें ऐसी मोहिनी शक्ति है कि वह धर-द्वार छुड़वाकर तुम्हें पथका भिखारी बना देगी ।

पर वह यदि स्वयं ही सामने आकर खड़ी हो जाय तब ?

श्रीरामहरिदास बाबाजीके साथ ऐसा ही हुआ । श्रीपाट शान्तिपुरमें

सन् १८४७ में उनका जन्म हुआ । माता-पिताने अल्पावस्थामें ही विवाह कर दिया । साधारण गृहस्थकी तरह वे संसारका निर्वाह करने लगे । कीर्तनमें उनकी रुचि अवश्य थी । बाल्यावस्थासे ही वे जहाँ-वहीं कीर्तनकी ध्वनि सुन पाते, वहाँ भागे चले जाते । पर वृन्दावन जाकर गोविन्दका दर्शन करनेकी या घर-द्वार छोड़कर गोविन्दका भजन करनेकी छटपटी उन्हें नहीं थी । इसलिए केशीघाटके गोविन्दको देख लेनेका कोई प्रश्न ही नहीं था । यदि वे चाहते भी उनका दर्शन करना, तो शान्तिपुरसे वृन्दावन बहुत दूर था । माता-पिता पहले ही उनके कीर्तन-प्रेमसे सशक्त थे । इसलिए उन्होंने उनका विवाह छोटी अवस्थामें कर दिया था । वे उन्हें वृन्दावन जाने ही क्यों देते ?

पर गोविन्दजी पहले ही उनके निष्कपट हृदय और सरल स्वभावपर रीझ चुके थे । वे जिसपर रीझ जाते हैं, उसे अपनेसे दूर रख नहीं सकते । उनके लिए न शान्तिपुर दूर था, न रामहरिदासकी तरह उनपर माता-पिताका कोई प्रतिबन्ध ही था । बस एक दिन वे आ गये शान्तिपुर और रामहरिदासको दीख गये उनके घरके पास एक सहजनके वृक्षके ऊपर, नृत्य-भंगीमें मंद-मंद मुसकाते हुए !

उसी क्षणसे उनका घर-द्वार और बन्धु-बान्धवोंको छोड़ वृन्दावन जानेका सूत्रपात हो गया । उनका मन घरमें बिल्कुल न लगता । वे विक्षिप्तकी भाँति इधर-उधर डोला करते । गोविन्द नामकी उस मूर्तिकी यादमें निरन्तर अश्रु-विसर्जन किया करते । माता-पिता बार-बार उन्हें धेरकर घर ले जाते ।

इस अशान्तिसे परित्राण पानेके लिए एक दिन वे गृह त्याग करनेके उद्देश्यसे भागकर नवद्वीप चले गये । वहाँ सिद्ध श्रीजगन्नाथदास बाबाके चरणोंमें आत्म-समर्पण कर क्रन्दन करने लगे । उस समय श्रीखण्ड निवासी श्रीराधिकाविलास गोस्वामी महाशय जगन्नाथदास बाबाकी भजन-कुटीमें ठहरे हुए थे । बाबाने उनसे दीक्षा दिलवाकर स्वयं उन्हें वेश दे दिया । वेशाश्रय संस्कारके पश्चात् वे वृन्दावन चले गये । कठोर वैराग्यका पालन करते हुए भजन करने लगे । बारह वर्ष वे राधाकुण्डमें रहे । उसके पश्चात् कुछ दिन काला बाबूके कुञ्जमें ।

श्रीरामहरिदास बाबा स्नेहकी मूर्ति थे । सभीके प्रति उनकी प्रीति

जैसे उमड़-उमड़कर उन्हें आप्लावित किये देती थी । उनके स्थूल देहके कारण लोग उन्हें 'भोलानाथ' कहते । परन्तु वे भक्त-मण्डलीमें गौरकथा कहते-कहते इतना भावाविष्ट हो जाते कि रमणी सुलभ मृदुमन्द स्वरमें सबसे कहते—'तुम लोग मुझे 'दीदी' कहा करो ।' लोग उनकी आज्ञाका पालन करते ।

वे प्रतिदिन भक्त-मण्डलीमें किसी गौर-परिकरके चरित्रकी आलोचना करते । आलोचना करते समय उनके देहमें सात्विक भावोंका उदय होता । चैतन्य-मंगल कीर्तन उन्हें बहुत प्रिय था । शिष्योंको वे श्रीलोचनदासकी धामाली नित्य पाठ करनेका आदेश करते । चैतन्य-मंगलका भी कीर्तन करते-करते वे जिस प्रकार गौरांगकी निभूत रासलीलाका वर्णन करते, वैसा कही सुननेमें नहीं आता ।

उन्हें हृदय रोग था । इसलिए चिकित्सकोंने उच्च स्वरसे कीर्तन करनेको मना कर रखा था । पर खोल-करतालकी ध्वनि सुनते ही उनसे न रहा जाता । वे छलाँग मारकर कीर्तन-मण्डलीसे जा मिलते और मुमधुर नृत्य करने लगते । कीर्तनमें बहिर्वास और चट्टर शरीरसे उतर जाते, तो भी उन्हें पता न चलता ।

उनका गौर-अनुराग इतना प्रबल था कि किसीके मुखसे गौर नाम सुनते ही उसे प्रेमार्तिगन करते । यदि कोई नवद्वीप धामवासी वृन्दावन जाकर उनके दर्शन करता, तो उसे माला-चन्दन अर्पण कर अपनी गोदमें बैठाते और मग्न हो जाते । कुछ देर पश्चात् अपनेको सम्भालकर नवद्वीप-प्राणनाथ और उनके दास-दासियोंके कुशल-क्षेमके सम्बन्धमें पूछते । यदि वह व्यक्ति उनका भाव देखकर उन्हें सुस्थ रहनेके उद्देश्यसे कहता—'आपके प्राणनाथ और उनके दास-दासी आपको देखनेके लिए उत्कण्ठित हैं' तो वे फिर भाव-विभोर हो जाते । यदि कोई गौड़देशसे जाता उनके दर्शन करने तो उससे पूछते—'तुमने नवद्वीप-धामके गौरांग महाप्रभुके दर्शन किये हैं ?' यदि वह कहता 'नहीं', तो उसे अविलम्ब जाकर उनके दर्शन करने और उनके भक्तोंका संग करनेका परामर्श देते ।

वे जब अपने आश्रममें रहते, सदा गोरा-नाम-सुधारस पान करते । इस रममें इतना विभोर हो जाते कि भावावेशमें उनका सर्वांग सञ्चालित होने लगता । ऐसेमें उनकी कटिकी ईषत् लटकन बहुत मनोहर लगती ।

आश्रमसे स्थानान्तर जाते समय गाते जाते—‘राइ जय-जय राधे-राधे ।’ अन्तरमें बेलता रहता कोई अपूर्व अभिमान और बीच-बीचमें गाते जाते—‘राइ अंगेर छटा लेगे श्याम हलो गौरा (राधाके अङ्गकी छटा लगनेसे श्याम हुए गौर) ।’

प्रायः मभी समय वे भावमें विभोर रहते । प्रसाद सेवन करते समय भी इतना भावमें डूबे रहते कि बहुत धीरे-धीरे प्रास मुंहमें देते-देते आधा बाहर गिर पड़ता, जिससे सर्वांग प्रसादसे लिस जाता ।

शिष्योंको अपने पास बिठाकर वे उनके ‘स्वरूप’के विषयमें बताते और उसका ध्यान करनेको कहते । किसको ध्यानमें क्या स्फूर्ति हुई, उससे सुनते । वे कहने कि अपने स्वरूपको स्फूर्ति होनेसे रसमय गौर-लीलामें सेवाधिकार प्राप्त होता है । चलते समय यदि शिष्योंमें-से किसीका पदशब्द होता तो कहते—‘यह खाली ढोर चरादेगा ।’ उनकी शिक्षा थी कि खाते-पीते, चलते-फिरते हर समय स्वरूप जगानेकी चेष्टा करनी चाहिये और उसके अनुरूप व्यवहार करना चाहिये ।

न जाने कितनी बार वे इष्ट-वस्तु-दर्शनजनित प्रेमानन्दमें विभोर हो, उस वस्तुकी हृदयमें धारणकर, भूमिपर लोट-पोट हो जाते । उनका देह ऐसे सार्विक भावोंसे विभूषित हो जाता, जिन्हें कभी किसीने देखा या सुना भी न हो ।

एक बार जब वे राधाकुण्डमें थे, राजाषि वनमाली रायबहादुरके ठाकुर श्रीश्रीराधाविनोदका प्रसाद ग्रहण करते समय न जाने कौन-सी न्नीलाका स्फुरण हो आया, वे भावावेशमें अपनी उँगलीकी नोकपर एक कणा चावल और एक कणा दालका लेकर उठ खड़े हुए और ‘गौर, गौर !’ कहकर उच्च स्वरसे कीर्तनके साथ मधुर नृत्य करने लगे । कीर्तनकी ध्वनि सुन गौर्गतप्राण बृद्ध श्रीमथुरादास बाबाजी महाराज, श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामीपादके शिष्य श्रीज्ञजवाला महाराज, पूर्वाश्रमके राजाषि वनमाली रायबहादुरके बड़े भाई सिद्ध श्रीगिरधारीदास बाबाजी, और सिद्ध श्रीमाधवदास बाबाजी महाराज भी वहाँ गये और कीर्तनमें योगदान करने लगे । मौर-प्रेममें दीवाने सिद्ध महात्माओंकी इस टोलीके कीर्तनकी तुमुन ध्वनिसे राधाकुण्डका आकाश गूँज उठा । जिसके भी कानमें यह ध्वनि पड़ी, वह स्थिर न रह सका । भावावेशमें आकर कीर्तनमें सम्मिलित हो उद्दाम

नृत्य करने लगा । एक अपूर्व भाव-तरंगने समस्त राधाकुण्डको प्लावित कर दिया ।

सन् १९०७, भाद्र मासकी शुक्ला चतुर्थीके दिन एक प्रहर व्यतीत होनेपर श्रीरामहरिदास बाबाजी महाराजने अपने शिष्योंको बुलाकर कहा— 'श्रीवास पण्डितके आँगनमें श्रीगौरांग और उनके परिकर विलासिनीके भावमें विभोर हो नृत्य कर रहे हैं । मुझे भी वहाँ जाना है । शीघ्र स्नान कराकर तिलकादि कर दो ।'

स्नान, तिलकादि करनेके पश्चात् नेत्र मूंदकर ध्यानमें बैठते ही वे अप्राकृत देहसे श्रीवास-आँगनमें महाप्रभुके नृत्य-कीर्तनमें जाकर सम्मिलित हो गये । उनका पार्थिव शरीर जहाँ था, वहीं पड़ा रह गया ।

श्रीसीतानाथदास बाबाजी

(गोवर्धन)

पूर्वाश्रमके उत्कलवासी गोप, श्रीसीतानाथदास बाबाजी महाराज अनपढ़, पर अति सरल और उदार थे । गोविन्दकुण्ड, गोवर्धनमें श्रीनाथजीके मन्दिरके उत्तर एक कुटियामें रहते थे । शेष रात्रिमें स्नानादिकर गिरधारीकी सेवाके पश्चात् उनके सामने पाँच घण्टे लगातार क्रन्दन करते हुए नृत्य-कीर्तन करते थे । उसके पश्चात् तुलसीकी सेवा-पूजाकर श्रीनाथजीके सम्मुख उत्कल भाषामें रो-रोकर प्रार्थनादि करते थे । दोपहर २ बजे मधुकरीको जाते थे । ज्येष्ठ मासमें सूर्यकी प्रखर किरणोंसे गिरिराज तटकी बालुका अतिशय तप्त हो जाती थी । फिर भी बाबाके नियममें कोई परिवर्तन नहीं होता था । बिना छत्र-पादुकाके घर-घर मधुकरीके लिए जाते थे । लौटते समय प्रत्येक वैष्णवकी कुटियामें जाकर कुछ-कुछ मधुकरी दे आते थे ।

उन्हें कुछ गोप-गीत याद थे । उन्हींका वे अधिकांश समय बड़े मधुरभावसे कीर्तन करते । नियमपूर्वक दो बार गोविन्दकुण्डमें स्नान करते । रात्रिमें दो बजे उठ बैठते और तीन बजे प्रथम स्नान करते । एक बार श्रीअद्वैतदास बाबाजीने, जो उनके निकट रहते थे, कहा—'इस समय स्नान करना उचित नहीं, क्योंकि यह आंसुरिककाल होता है ।' उन्होंने उत्तर

दिया—‘मैं क्या करूँ ? बिलकुल अस्वतन्त्र हूँ । श्रीनाथजी, जिस समय जगा देते हैं, उसी समय उठ बैठता हूँ ।’

जिस दिन सीतानाथजी अप्रकट हुए, उसके दो-तीन दिन पहलेसे उन्हें सान्निपातिक ज्वरातिसार था । उसमें भी उनका स्नानादिका नियम नहीं छूटा । अन्तिम रात्रिमें वे अवश हो शय्यापर पड़े थे । माघ मासकी भयंकर शीत थी । उस रात श्रीअद्वैतदासजी बराबर जागते रहे । ठीक तीन बजे कुण्डमें किसीके डुबकी लगानेका शब्द हुआ । बाहर निकलकर देखा तो वृद्ध सीतानाथ बाबा स्नान कर रहे थे ।

बारह बजे दिनमें वे श्रीअद्वैतदाससे बोले—‘अद्वैतदास ! मुझे श्रीनाथजीके सामने ले चलो ।’

‘मैं अकेला कैसे ले चलूँ ?’ अद्वैतदासने उत्तर दिया ।

‘सहारा तो लगा सकोगे ।’ उन्होंने फिर आग्रह किया ।

श्रीअद्वैतदास बाबा हाथ पकड़कर उन्हें श्रीनाथजीके सामने ले गये । श्रीनाथजीके सामने वरुण वृक्षके नीचे बेदीपर बैठा दिया । तब वे बोले—‘कुण्डका जल लाकर स्नान करा दो ।’ स्नानके पश्चात् कहा—‘तिलक कर दो ।’ तिलक हो जात्रैपर पूछा—‘सब लोगोंने प्रसाद पा लिया है ?’

अद्वैतदासजीने कहा—‘पा लिया है ?’

तो तुलसीजीको स्नान करा स्नानीय जल मुझे पान करा दो ।’

तुलसीका स्नान-जल जैसे ही उनके मुखमें दिया, उन्होंने शरीर छोड़ दिया । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वृन्दादेवीने उन्हें ले जाकर राधारानीके चरणोंमें समर्पित कर दिया ।

वृन्दादेवीका साक्षात्कार उन्हें पहले ही हो चुका था; यह बात सर्वविदित थी । एक बार श्रीअद्वैतदास बाबासे उन्होंने कहा, वृन्दादेवीकी माधुरीका वर्णन करनेको । वे बोले—‘मैं क्या जानूँ उनकी माधुरी । मैंने क्या उन्हें देखा है ?’

‘तो मुनो’ श्रीसीतानाथ बाबाने कहा और भावाविष्ट हो वृन्दादेवीकी रूपमाधुरीका इस प्रकार वर्णन किया कि उसकी स्फूर्ति श्रीअद्वैतदास बाबाके हृदयमें स्वतः होने लगी ।

वृन्दादेवीकी उनपर कितनी कृपा थी, यह इस बातसे भी स्पष्ट है कि जिस तुलसीके पीधेको कीड़ा चाट जाता और जिसके हरा होनेकी कोई सम्भावना न रहती, वह उनके स्नान कराने मात्रसे फिर हरा-भरा हो जाता ।

श्रीवृन्दावनदास बाबाजी

(बरसाना)

श्रीवृन्दावनदासजी बरसानामें रहते । नित्यप्रति शेषरात्रिमें उठकर स्नानाह्निकादि कर श्रीहरिनामकी माला-झोली हाथमें ले वृन्दावन जाते । प्रसिद्ध सातों देवालियोंमें ठाकुरके दर्शनकर तथा श्रीचरणतुलसी, श्रीरज और श्रीचरणामृत ग्रहणकर बरसाना लौट आते । सन्ध्या समय मधुकरीको जाते । निमन्त्रणमें कभी कहीं न जाते ।

एक बार वृन्दावनमें गोविन्द-मन्दिरमें विराट उत्सव हुआ । उस दिन जब वे गोविन्दजीके दर्शन करने गये, तो वहाँके वैष्णव बाबाजी गोविन्दजीका प्रसाद पानेके लिए विशेष आग्रह करने लगे । उनके बहुत मना करनेपर और हाथ-पैर जोड़नेपर भी उन्होंने एक न मानी । हारकर वैष्णव अपराधके भयसे उन्हें प्रसाद ग्रहण करना पड़ा । दूसरे दिन शेषरात्रिमें जब वे नित्य-कृत्य समापनकर हाथमें माला-झोली ले वृन्दावन जानेकी प्रस्तुत हुए, तो यह देखकर उनकी चिंता और आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि उनके दाहिने हाथका अँगूठा जड़ और निश्चल हो गया है । व्यथा-वेदना, ज्वाला-यन्त्रणा कुछ नहीं, पर माला नहीं पेर सक रहा है ! ऐसा क्यों हो रहा था, उनकी कुछ समझमें न आया । वे भागे-भागे गोविन्दकुण्डके श्रीमनोहरदास बाबाजीके पास गये और उनके चरणोंमें गिर रोदन करने लगे । उन्होंने पूछा— 'क्यों रे ! तुझे क्या हुआ है ?'

'बाबा, मेरा सर्वनाश हो गया है । न जाने क्यों नाम-जप करनेमें दाहिने हाथका अँगूठा काम नहीं करता । बताइये क्या करूँ ?' वृन्दावनदास बाबाने रोते-रोते कहा ।

'कल कहाँ प्रसाद पाया था ?' मनोहरदास बाबाने फिर पूछा ।

‘वृन्दावनमें श्रीगोविन्दजीके मन्दिरमें।’ उन्होंने उत्तर दिया।

‘अच्छा आज पूछकर आना कि कल किसके अर्थसे गोविन्दजीका भोग लगाया गया था।’

वृन्दावनदास बाबाने वृन्दावन जाकर गोविन्दजीके पुजारीसे पूछा, तो उन्होंने बताया कि भोग किसी वेश्याके द्रव्यसे लगाया गया था। वृन्दावनदासने मनोहरदास बाबाको जाकर जब यह बताया, तो वे बोले— ‘तेरे पेटको इस प्रकारका अन्न कब सह्य हो सकता है ! जा तीन दिन तक नित्य श्रीकुण्डमें स्नानकर भीजे कपड़ेसे गिरिराजकी परिक्रमा लगा। मार्गमें जो मिले उसके अतिरिक्त और कुछ न खाना।’

बाबाने ऐसा ही किया। चौथे दिन उनके अँगूठकी जड़ता जाती रही।

श्रीपाद नवकिशोर गोस्वामी

एवं

श्रीपाद लोचनानन्द गोस्वामी

(गोवर्धन/काम्यवन)

श्रीपाद नवकिशोर गोस्वामी और श्रीपाद लोचनानन्द गोस्वामी ढाकाके श्रीश्रीनित्यानन्द परिवारके श्रीपाद लक्ष्मीकान्त गोस्वामी प्रभुके पुत्र थे। श्रीनवकिशोर गोस्वामी अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीकृष्णकिशोर गोस्वामीसे दीक्षित थे और श्रीलोचनानन्द गोस्वामी श्रीनवकिशोर गोस्वामीसे। परस्पर गुरु-शिष्य होते हुए भी दोनों प्रभु जैसे दो देह एक प्राण थे। दोनों षड्दर्शनाचार्य, वैराग्यवान् और भजनानुरागी थे।

दोनों कुमार अवस्थामें संसार त्यागकर वृन्दावन चले गये। गोवर्धनके सिद्ध कृष्णदास बाबाके शरणागत होना चाहते थे। उन्हें अपना यथार्थ परिचय देने तो वे शिष्टाचारके नाते इन्हें अपना पूज्य जानकर इनपर कृपा न करते। इसलिए उनके निकट जा अपनेको अति नीच कुलका बतलाते हुए उनकी कृपाकी प्रार्थना की। सिद्ध बाबाने इनके तेज, रूप, गुण और अनुरागसे मुग्ध हो इनकी बातका विश्वास किया और इन्हें अपने आश्रममें रखकर भजनमुद्राकी शिक्षा देने लगे।

सिद्ध बाबा तब बहुत वृद्ध हो चुके थे । उन्हें इनके जैसे श्रद्धालु सेवकोंकी बड़ी आवश्यकता थी । वे इनसे निःसंकोच सेवा ग्रहण करने लगे । ये भी बड़े अनुरागसे उनकी सब प्रकारकी सेवा, उनके मल-मूत्रादिका परिष्कार तक बड़े अनुरागसे करने लगे ।

कुछ दिन बाद उनके कनिष्ठ भ्राता उनका पता लगाते-लगाते गोवर्धनमें सिद्ध बाबाके पास आये । तब सिद्ध बाबा उनका ठीक परिचय प्राप्तकर क्रोधसे लाल हो उठे । उस समय दोनों भाई मानस-गङ्गामें स्नान करने गये हुए थे । लौटनेपर देखा कि उनके छोटे भाई सिद्ध बाबाके पास बैठे हैं । सिद्ध बाबाके नेत्र और मुख क्रोधसे लाल हो रहे हैं । उन्हें बाबाके क्रोधका कारण समझनेमें देर न लगी । वे उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा-प्रार्थना करने लगे । सिद्ध बावाने क्रोधसे काँपती हुई आवाजमें कहा—‘इतनी प्रवञ्चना ! भजनमुद्रादि तुम्हारा ही तो धन है । तुम्हींको इसे पानेका अधिकार है । फिर इतनी प्रवञ्चना क्यों ?’

वे बोले—‘प्रभो ! हम जन्म-जन्मके अपराधी हैं । इसीलिए उच्च कुलमें हमारा जन्म है । लाभ-पूजा-प्रतिष्ठादि शूकरी-विष्ठा ही हमारी जीविका है । अकिञ्चना भक्तिमें हमारा अधिकार नहीं । अधिकार हो, तो भो ! विना महत्-सेवाके उसे पाना सम्भव नहीं । इसीलिए हमने प्रवञ्चना की । आप परम वैष्णव और परमदयालु हैं । हमारे अपराधका जो भी दण्ड हो, हमें दें ।’

इससे सिद्ध बाबा भीतर-भीतर प्रसन्न हुए । पर बाहरसे क्रोध दिखाते हुए बोले—‘तुम्हारा दण्ड यह है कि तुम दोनों हाथसे अपने चरण धोकर चरणामृत मेरे आगे रखो ।’

महापुरुषका क्रोध शान्त करनेके लिए उन्हें अनिच्छापूर्वक यह करना पड़ा । सिद्ध बावाने चरणामृत ग्रहण किया और प्रसन्न होकर बोले—‘कृष्ण बड़े कृपानु हैं, जो तुम्हारे जैसे महत् पुरुषोंका संग मुझे दिया है । अब और वञ्चना न करना । तुम्हारे भीतर जो दैन्य-भक्ति है, उसका लेश भी मुझमें नहीं है । तुम लोग यहाँ रहकर स्वच्छन्दतासे भजन करो । मैं धन्य होऊँगा ।’

वे बोले—‘प्रभो ! अब हमारा एक मुहूर्त भी यहाँ रहना न हो सकेगा ।’

तीनों भाई सिद्ध बाबासे विदा लेकर काम्यवनके पश्चिम पशुप-नामक निर्जन ग्राममें रहकर भजन करने लगे । कभी-कभी वे काम्यवनके

सिद्ध जयकृष्णदास बाबाके पास भी जाते । इन्हींके नित्य-सेवित विग्रह श्रीश्रीराधामदन-मोहन अपनी इच्छासे श्रीजयकृष्णदास बाबाके पास रह गये थे, जैसा श्रीजयकृष्णदास बाबाके चरित्रमें पहले उल्लेख किया गया है ।

पशुप-वनमें कनिष्ठ भ्राताका शरीर छूट गया । कुछ दिन पश्चात् संवाद मिला कि उनके वंशका कोई भी नहीं रहा और ढाकामें ठाकुर-सेवा नहीं चल पा रही है । इसलिए उन्हें बाध्य होकर ढाका जाना पड़ा । ढाकामें ठाकुरने स्वप्नादेश किया—'चट्टग्राम जिलेके हाटहाजारी थानाके अन्तर्गत फरदावाज ग्राममें एक नाथवंशीय भक्त जमींदार है । उसके वंशका शीघ्र लोप हो जायगा । मुझे वहाँ शीघ्र ले चलो । उसकी जमींदारीकी आयमे मेरी सेवाका निर्वाह हुआ करेगा ।'

आदेश पाते ही दोनों भाई चट्टग्राम गये । वहाँपर वे प्रसिद्ध कविराज भक्त-प्रवर कार्तिक अधिकारीके घर ठहरे । कार्तिक अधिकारी उक्त जमींदार परिवारके विश्वस्त चिकित्सक थे । उन्होंने ठाकुरके स्वप्नादेश और दोनों प्रभुओंके आनेका समाचार जमींदारको दिया । जमींदारने प्रसन्न हो अपनी सारी भू-सम्पत्ति ठाकुरके नाम लिख दी और ठाकुर-सेवाकी सुव्यवस्था कर दी ।

एक दिन कार्तिक अधिकारीके घर संकीर्तन था । बहुत-से भक्त एकत्र थे । कीर्तनमें नृत्य करते-करते श्रीपाद लोचनानन्दप्रभुको ऐसा आवेश हुआ कि वे द्रुतगतिसे भागकर न जाने कहाँ लोप हो गये । कीर्तनकी समाप्तके पश्चात् भी जब वे न लौटे तो उनकी खोज होने लगी । कहीं कुछ भी पता न लगा । तब हताश हो दूसरे दिन अधिकारी महाशयने नवद्वीप, नीलाचल और वृन्दावन लोगोंको भेज दिया । तीन दिन बीछे जब अधिकारी महाशय अपनी बैठकमें अन्यान्य लोगोंके साथ बैठे थे, उन्होंने देखा कि थोड़ी दूरपर एक कूड़ेके गड़हेके किनारे कुछ गायें विस्फारित नेत्रोंसे गड़हेमें देख रही हैं । कुछ किसी वस्तुको सूँघ रही हैं और कुछ पूँछ उठाकर नृत्य कर रही हैं । सब लोग उत्सुकतापूर्वक उस गड़हेके निकट गये, तो देखा कि लोचनानन्दप्रभु सिरके बल गिरे पड़े हैं । उनका सारा शरीर कीचड़ और कूड़ेमें गड़ा हुआ है । केवल चरण बाहर दीख रहे हैं । गत रात्रि कोई पाँच सौ लोगोंके उच्छिष्ट सहित कदलीपत्र गड़हेमें फेंके गये थे, जिससे उनके चरण भी ढक गये थे । गायें उच्छिष्ट और कदलीपत्र खानेके लिए गड़हेमें गयी थीं । कदलीपत्र

खाते खाते चरण अनावृत हो गये थे । उन्हें वे सूँघने और चाटने लगी थीं । चाटते-चाटते हठात् एक अपूर्व आनन्दसे उन्मत्त हो ऊपर जाकर पूँछ उठाकर नृत्य करने लगी थीं । प्रभुको देख सबने उन्हें गड़हेमें-से निकालकर उनका शरीर धोया-पोंछा । सब उन्हें मृत जानकर शोक करने लगे । ऐसे महापुरुषके प्राण इस प्रकार तीन दिन कूड़ेके गड़हेमें पड़े रहकर निकल जायें, यह सबके लिए दुःखकी बात थी । परन्तु अधिकारी महाशय विज्ञ चिकित्सक थे । उन्होंने अच्छी प्रकार परीक्षा करनेके पश्चात् कहा—‘प्रभुके प्राण निकले नहीं हैं । उनकी प्राणवायुका शरीरमें निरोध भर हो गया है । तीन दिन तक मृत शरीर अविकृत और इस प्रकार कान्तियुक्त नहीं रह सकता । तुम लोग सब फिरसे कीर्तन करो ।’ सबने कीर्तन आरम्भ किया । कीर्तनके आरम्भ होते ही प्रभु झट उठकर नृत्य करने लगे । जब उन्हें बाह्यज्ञान हुआ, तब लोगोंने उनसे उनकी पूर्वावस्थाके बारेमें जानना चाहा । उन्होंने केवल इतना कहा—‘मुझे उसका कुछ पता नहीं ।’

चट्टग्राम जिलेके अन्तर्गत सीताकुण्ड चन्द्रनाथमें शिव-चतुर्दशीके उपलक्षमें १५ दिन तक मेला होता है । मेलेमें सहस्रों यात्रियों और साधुओंका समागम होता है । अर्धरात्रिमें शम्भुनाथके दर्शन होते हैं । एक बार लोचनानन्द प्रभुपाद कुछ भक्तोंके साथ वहाँ गये । अर्धरात्रिमें जब वे भक्तोंको लेकर शम्भुनाथके दर्शन करने जा रहे थे, व्यासकुण्ड और कालभैरवके मन्दिरके निकट पहुँचते ही उन्होंने एक योगीश्वरको बाहर निकलते देखा । उसका पाँच हाथ लम्बा गहरे काले रङ्गका स्थूल देह ऊपरसे नीचे तक झूल रही थी । दोनों नेत्र उल्कावत्-जाज्वल्यमान थे । कपालपर त्रिपुण्ड्र तिलक चमक रहा था । उसे देख सब लोग भयभीत हो गये । पर वह प्रभुके सामने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर दैन्य भावसे कहने लगा—‘प्रभो ! मैं यहाँका देवता हूँ । नाम है—कालभैरव । मनुष्योंके पाप ग्रहण करते-करते मैं भी पापग्रस्त हो गया हूँ । आपके यहाँ आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था । मेरा निस्तार कैसे हो—कृपाकर उपदेश करें ।’ तब प्रभुने काल-भैरवको कृष्ण-मन्त्रका उपदेश किया । यह देखकर संगी भक्तोंका भय जाता रहा । योगीश्वर प्रभुके चरणोंमें एक स्वर्ण मुद्रा अर्पणकर और दण्डवत् प्रणामकर अन्तर्धान हो गया । स्वर्ण स्पर्श हो जानेके कारण प्रभुने स्नान किया । तब वे शम्भुनाथके दर्शनको गये ।

अधिकारीजीके घरसे आधा मील दूर एक नदी थी । शेषरात्रिमें प्रभु नित्य-कृत्यादिके लिए उस नदीपर जाते । लौटते समय ठाकुर-सेवाके लिए जल लाते । एक बार गाँवमें भयानक विस्मृचिका रोग फैला हुआ था । बहुत-से लोग मीतके घाट उतर रहे थे । प्रभु स्नानके पश्चात् नदीसे जल लेकर लौट रहे थे । उस समय अति कुत्सित वेशमें अति दुर्गन्धमयी एक वृद्धाने आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । प्रभुने क्रुद्ध होकर कहा—‘तू कौन है री ? नदीसे ठाकुरके लिए जल लेकर आ रहा था । तूने मुझे स्पर्श कर जल नष्ट कर दिया ।’ वृद्धा डरती हुई बोली—‘प्रभो ! मैं बड़ी पापिन हूँ । जीवहिंसा ही मेरा काम है । उसपर भी आपके चरणोंमें महा-अपराध कर चुकी हूँ । मेरी क्या गति होगी प्रभु ?’

‘पर तू है कौन ?’ प्रभुने फिर डाँटकर पूछा ।

‘मैं विस्मृचिका देवी हूँ’ उसने उत्तर दिया । प्रभुने विस्मित हो उसे कृष्ण-नामका उपदेश दिया । तब वह बोली—‘प्रभो ! आप मेरे गुरु हैं । मैं कुछ गुरु-दक्षिणा देना चाहती हूँ ।’

‘तो तुम इस ग्रामसे इसी मुहूर्त चली जाओ । इस ग्राममें फिर कभी न आना । यही तुम्हारी दक्षिणा है ।’ प्रभु फिर नदीमें स्नान करने गये । उस दिन घर लौटनेमें विलम्ब हुआ देख अधिकारी महाशयने कारण पूछा, तो प्रभुने सारी घटना कह सुनायी और बोले—‘अब तुम्हारे गाँवको विस्मृचिकाका कोई भय नहीं है ।’ उसी मुहूर्तसे ग्राममें जितने रोगी थे सब स्वस्थ हो गये । आज भी उस ग्राममें कभी विस्मृचिका रोग नहीं होता । किसी दूसरे ग्रामसे यदि कोई विस्मृचिकाका रोगी वहाँ आ जाता है, तो वह भी निरोग हो जाता है ।

कुछ दिन बाद दोनों प्रभु जगन्नाथपुरी रथयात्रा दर्शन करने गये । श्रीश्रीजगन्नाथजीकी पाण्डु विजयके समय उनके दर्शन करते-करते बड़े प्रभु अप्रकट हो गये । छोटे प्रभु तब उनके चरण-तले बैठकर बोले—‘प्रभो ! मातृ-गर्भसे लेकर आज तक सेवकको छायाकी तरह साथ रखा । अब क्या उसे अकेले छोड़ जायेंगे ?’ इतना कह वे भी उनके अनुगामी हो गये !!

श्रीगवारिया बाबा

(वृन्दावन)

‘अरे निकल, तुझे घड़ियाल खा जायेंगे ! अरे ओ बाबा ! सुनता नहीं, तेरी मौत आयी है ? देखता नहीं तालाबमें घड़ियाल तैर रहे हैं ?’ राजा दतियाका चौकीदार चीख-चीखकर कह रहा था । पर उस नवयुवक बाबाके कानमें जूँ नहीं रेंग रही थी । वह निश्चल, निःस्पन्द तालाबमें समाधिस्थ जैसा न जाने किस ध्यानमें खड़ा था । उसे न घड़ियाल देख रहे थे, न चौकीदारकी आवाज सुनायी पड़ रही थी । चौकीदारने हारकर राजाके पास खबर भेजी ।

राजा कुछ कर्मचारियोंको ले भागे आये । युवकको अब भी वैसे ही खड़ा देख उन्हें उसकी निर्भीकतापर आश्चर्य हुआ । उनके डाँट-छपट करनेपर भी, जब वह तालाबसे न निकला, तो कर्मचारियोंको आज्ञा दी—‘उसे जबरदस्ती निकालकर राजमहल भेज दो ।’

नवयुवक बाबा दतिया राज्यमें सबकी चर्चाका विषय बन गये । किसीने कहा—‘वह पागल है, नहीं तो जान-बूझकर मौतके मुँहमें क्यों जाता और क्यों राजाज्ञा-उल्लंघन करनेका साहस करता ? राजा उसे दण्ड अवश्य देंगे ।’ किसीने कहा—‘वह अपने जीवनसे असंतुष्ट कोई हतभाग है । आत्महत्याके उद्देश्यसे मगरोवाले तालाबमें उतरा था ।’ किसीने कहा—‘युवक कोई महापुरुष है । देखते नहीं उसके चेहरेपर कितना तेज हैं !’

राजाको समझनेमें देर न लगी कि वे सचमुच एक महापुरुष हैं । वे उनकी निर्भीकता, वैराग्य, निष्ठा-भक्ति और बुद्धिमत्तासे विशेष प्रभावित हुए । उन्होंने बहुत अनुनय-विनयके साथ उनसे दतियामें ही रह जानेका आग्रह किया । बाबा उनका आग्रह न टाल सके । वे दतियामें रह गये ।

राजा अधिक-से-अधिक उनका संग करते । राज्यका संचालन भी उनकी सलाहमे करते । दतियामें एक नये युगका आरम्भ हुआ । गाँव-गाँवमें कथा-कीर्तन और सत्संगकी बाढ़ आ गयी ।

बाबाका जन्म सन् १८४३ के लगभग बुन्देलखण्डके एक ब्राह्मण-

परिवारमें हुआ था। बचपनसे ही उनमें संसारसे उदासीनता और असाधारण भगवत्-अनुराग था। यह देख उनके पिताने सोलह वर्षकी आयुमें ही एक रूपवती कन्यासे उनका विवाह कर दिया था। पर प्रसव-कालमें पत्नीकी पीड़ा देखकर उनके बैराग्यकी अग्नि इतनी प्रचण्ड ही उठी थी कि उन्हें उसी रात गृह-त्याग करनेको बाध्य होना पड़ा था। तभीसे वे बहुत दिनों तक जङ्गलों और पहाड़ोंमें श्रीकृष्णकी खोजमें भटकते रहे थे। श्रीकृष्णके प्रति उनका सख्य भाव था। वे उन्हें 'यार' कहा करते थे। यारकी यादमें और उस यादकी जगत्की भुला देनेवाली मस्तीमें घूमते-घूमते वे दतिया जा पहुँचे थे।

बाबाको संगीतसे बड़ा प्रेम था। वे स्वयं भी अच्छे संगीतज्ञ थे। पर उन्हें 'नाद-सिन्धु' का साक्षात्कार प्राप्त करनेकी धुन थी। इस धुनमें वे एक दिन दतियासे लोप हो गये। निकटवर्ती पर्वतोंके गुप्त स्थानोंमें रहकर तीन वर्ष तक कठोर तपस्या करते रहे। अन्तमें संगीतकी अधिष्ठातृ देवीकी कृपासे उनकी मनोकामना पूर्ण हुई।

नाद-सिन्धुका दर्शन प्राप्तकर वे वृन्दावन चले गये। वहाँ रास-मण्डलियोंके स्वरूपों तथा अन्य लोगोंकी संगीतकी शिक्षा देकर संगीतका प्रचार करते रहे। संगीताचार्यके रूपमें उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। बड़े-बड़े संगीतज्ञ संगीत-शास्त्रकी गुत्थियोंको सुलझानेके लिए उनके पास आने लगे। एक बार तत्कालीन भारतके संगीत-सम्राट श्रीविष्णु दिगम्बर उनके पास आये। उस समय वे यमुना-तटपर बैठे यारकी मधुर लीलाओंके चिन्तनमें मग्न थे। बाह्य-दशा प्राप्तकर, जब उन्होंने आँखें खोलीं, तब विष्णुदिगम्बरजीने उनके चरणोंमें माथा टेककर कहा— 'भूहाराज ! एक सरगम नहीं ठीक बैठ रहा है। बहुत दिन हो गये प्रयत्न करते-करते।'।

बाबाने सहज भावसे कहा— 'पद बोलो।'।

श्रीविष्णु दिगम्बर पद कहने लगे। उसी क्षण बाबाने बालुकामें सरगम लिख दिया। विष्णुदिगम्बरजीको यह देखकर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी। वे समझ गये कि उनकी त्रुटि कहाँ थी।

परन्तु संगीत बाबाके दैनिक जीवनका मुख्य अङ्ग न था। उनका संगीत-प्रेम तो उनके कृष्ण-प्रेमका ही परिणाम था। मनुष्य जिसका चिन्तन

करता है, उसीका-सा हो जाता है, उसीके गुणोंका विकास उसमें होने लगता है । बाबा जिसका चिन्तन करते थे, वह एक नन्दग्रामका ग्वारिया था । इसलिए उनकी वेश-भूषा, रहन-सहन, बोल-चाल सब ब्रजवासी ग्वारिये जैसी हो गयी थी । इसलिए लोग उन्हें 'ग्वारिया बाबा' पुकारने लग गये थे । ग्वारिया बाबा जिसका चिन्तन करते थे, वह बड़ा संगीत-प्रेमी भी था । तो क्यों न उन्हें भी संगीतसे प्रेम होता ?

उनका कृष्ण-प्रेम दिनों दिन बढ़ता गया । श्रीकृष्णके विग्रहमें वे कभी ब्रजरजमें लोट-पोट होते; कभी यमुना किनारे पवित्र बालुकामें बैठकर घण्टों कृष्ण-कीर्तन करते; कभी रासमें घण्टों खड़े रहकर रास-विहारीकी ओर एकटक देखते रहते; कभी हँसते, कभी रोते, कभी स्फूर्तिमें उनके दर्शनकर दोनों हाथ बढ़ाकर उन्हें अंकमें भरनेके लिए दौड़ पड़ते और स्फूर्ति भंग होनेपर 'हा कृष्ण ! हा श्यामसुन्दर ! हा मदनमोहन !!' कहते-कहते सूँछित हो भूमिपर गिर पड़ते ! उनके नेत्र श्रीकृष्ण-दर्शनके लिए निरन्तर अश्रु बहाया करते, कर्ण उनकी बंशी सुननेके लिए उत्कर्ण रहते और अंग-प्रत्यंग उनके कमनीय कलेवरका स्पर्श करनेकी व्याकुल रहता । वे श्रीकृष्णका अन्वेषण करनेके लिए कभी नन्दग्राम जाते, कभी गोकुल, कभी गोवर्धन, कभी कालीयदह, कभी सेवाकुञ्ज, कभी निधिवन ।

बहुत दिन हो गये ऐसे ही भटकते-भटकते, यारकी यादमें तड़पते-तड़पते । पर उसके दर्शन न हुए । तब उनका अभिमान जागा—'सुना था, तू बड़ा दयालु और प्रेमी है, जो एक पग तेरी ओर बढ़ाता है, तू दस पग उसको ओर दौड़ आता है । पर धोखा हुआ । तू बड़ा निर्दयी और क्रूर है । तुझसे यारी करना पछताना है, मरुस्थलमें प्यासेकी तरह रो-रोकर, तड़प-तड़पकर मर जाता है । बस हो गयी तेरी-मेरी यारी । तुझे अपने युवराजपनेका अभिमान है, तो मैं भी ग्वारिया हूँ । कभी मिलेगा, तो तुझसे बात भी न करूँगा, तेरी ओर मुँह उठाकर देखूँगा भी नहीं ।'

ग्वारिया बाबाने मन्दिरोंमें जाना, रास देखना, कृष्ण-कीर्तन करना इत्यादि सब बन्द कर दिया । दूसरे लोगोंको वे इन कार्योंमें प्रवृत्त होते देखते, तो कहते—'दादा भट्टया ! मेरी मानौ तो बाके चक्करमें मति पड़ो । कछु हाथ नहिँ आवैगो । बड़ो निष्ठुर है । बस गोपियनके संग हुड़दंगो करबो जानै है । हमनकी सुध लेवैकी वाको कहा पड़ी है ?'

श्रीकृष्ण अपने प्यारे सखाके दर्शन-कीर्तनादिसे वंचित हो जानेके कारण व्याकुल हो उठे । वह स्वयं तो रुठा था ही, दूसरे भक्तोंको भी बहकानेका उपक्रम करने लगा था । दोनों बातें उनके लिए असह्य थीं ।

एक दिन अचानक गोधूलिके समय जब ग्वारिया बाबा रमणरेतीमें भ्रमण कर रहे थे, उन्होंने देखा कि सामनेसे गायोंका झुण्ड चला आ रहा है । बीचमें एक किशोर अपने सजल-जलद-नील-कलेवरकी ज्योति विखेरता, वांसुरीके मधुर स्वरसे वायुको विकम्पित करता आ रहा है । निकट आनेपर दीखे उसके मदमत्त मधुप-पंक्तिके समान काले-घुघराले कुन्तल, सपराग-पद्म-पल्लवके समान अधर, नील-नलिनसे मदभरे नेत्र, गलेमें बन्धमाला, और सिरपर मोर-पुच्छ !

‘अरे यह तो यार है !’ बाबाके शरीरमें एक आनन्दकी लहर व्याप्त हो गयी । उनका सारा अभिमान जाता रहा । वे यारके मिलनेपर उसकी तरफ मुंह उठाकर न देखनेकी अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा भूल गये । स्तब्ध खड़े रहकर सजल नेत्रोंसे निनिमेष उसकी रूपमाधुरीका पान करते रहे । श्रीकृष्ण भी थोड़ी देर अपने प्यारे सखाका स्नेह भरे नेत्रोंसे एकटक देखते रहे । फिर दोनोंने एक-दूसरेकी अपनी भुजाओंमें कसकर लपेट लिया । दोनों आत्महारा हो गये । कुछ सुस्थ होनेपर श्रीकृष्ण गद्गद कण्ठसे बोले—‘ग्वारिया ! मैं कबहीं तोसे मिलिबेके लिए छटपटाय रहूँगा, तू अब आयी है !’

यह सुन बाबाका सोया हुआ अभिमान जाग पड़ा । ‘रहन दे, झूठ काहे कूं बोलै ? तू मिलना चाहतो, तो आय न जातो मेरे पास । तू तो ब्रजकी युवराज है न, मेरे पास काहेको आवेगौ ।’ इतना कह वे चल दिये ।

श्यामसुन्दरने पुकारा—‘ग्वारिया, अब कब मिलैगौ ?’

‘मैं जाऊँ कहाँ हूँ । याही वृन्दावनमें रहूँ, जब तोय जरूरत होय मिल लियी कर’ कहते हुए बाबा आगे बढ़ लिये ।

अबसे श्यामसुन्दरके साथ ग्वारिया बाबाकी मैत्रीका एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ । श्यामसुन्दरकी उनके साथ परस्परके हास्य, व्यंग्य और उपालम्भ भरी न जाने कितनी लीलाएँ हुईं । श्यामसुन्दर कभी उनसे प्रत्यक्षरूपसे मिलते, कभी छद्म रूपसे ।

एक बार बाबा जयपुर राज्यकी वैराट तहसीलके तहसीलदार श्रीरघुनाथप्रसाद ओर श्रीचौथमलजी गिरदावलके साथ वैराट नगरकी सैर

करने गये । रात १० बजेके लगभग नन्दग्राम लौटे । थके हुए थे, और खानेको कुछ व्यवस्था पहलेसे थी नहीं । इसलिए यारका स्मरण कर सोनेकी तैयारी करने लगे । उसी समय एक बालक दूधका लोटा लेकर आया और बोला— 'बाबा ! यह दूध रामकलीने भेजा है ।' बाबाको थोड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्दी उनके आनेका संवाद रामकलीको कैसे मिल गया । उन्होंने दूध ले लिया और थोड़ा-थोड़ा साथियोंमें बाँटकर पी लिया । उसीसे सबकी तृप्ति हो गयी । दूधके अपूर्व स्वादसे सब चमत्कृत हो गये । दूसरे दिन बाबा दूधका लोटा लेकर रामकलीके घर गये और बोले— 'लै री अपनो लोटा । तेरो रात कूँ दूध तौ बड़े हो स्वादको लाग्यो ।'

रामकली भाँचक्की रह गयी । बोली 'बाबा ! मैं दूध कब भेज्यौ । मोय का मानूम आप आये हो । जा लोटा तो मन्दिरकी सौ लागै ।'

तब बाबा मन्दिरकी ओर चल दिये । उन दिनों सेवाकी बारी श्रीकिशनलालजीकी थी । वे बाबाके हाथमें लोटा देखकर बोले— 'अरे बाबा ! तुम जाय लोटा कहाँ लै गये ? मैं तो जाके मारे परेशान है गयो । मन्दिरके सब लोगन सौ पूछतौ डोल रह्यौ हैं । कल ठाकुरकी दूधको भोग लगायके लोटा आलेमें भूल गयो ।' अब दूधके लोटेका सारा रहस्य बाबाकी समझमें आ गया । उनकी आँखें वरस पड़ीं । वे मन्दिरमें श्रीविग्रहके सामने जाकर गद्गद कण्ठसे न जाने क्या-क्या कहने लगे ।

एक बार ग्वारिया बाबा गिरदावलजी और ब्रह्मचारी श्रीराधेश्यामजीको लेकर नन्दग्रामकी होलीके दर्शन करने गये । किशनलालजीके यहाँ ठहरे । बाबाने चार सेर गुलाब-जामुन और चार बड़े पपीते खरीदे । उसी समय एक रासमण्डलीके दो स्वरूप उनके पास आकर बोले— 'बाबा ! बड़ी भूख लगी है । कुछ खायबेको दे ।' बाबा दोनों स्वरूपोंको अपनी गोदमें बिठाकर प्रेमसे गुलाब-जामुन खिलाने लगे । एक हड़िया गुलाब-जामुन खानेके पश्चात् स्वरूप बोले— 'बाबा बस कर' और उनसे आज्ञा लेकर वापस चले गये । दूसरे दिन बाबाने उसी मण्डलीके सब स्वरूपोंको बुलाया । वे दोनों स्वरूप भी आये । उन्हें पहचानकर बाबा बोले— 'देखो इन दोनों स्वरूपनने तौ कल गुलाब-जामुन ते पेट भर राख्यौ है । इनके बटके तौ केवल पपीता मेरे पास हैं, और उनके गुलाब-जामुन और पपीता दोनों हैं ।' वे दोनों कह उठे 'बाबा झूठ काहे कूँ बोलें ? हमें न देने होय तौ बैसे ही नाई कर दें । हमें न तेरे आयबेकी पतौ, न हम तेरे गुलाब-जामुन खायबे

आये ।' बाबाके साथियोंने कहा—'भैया, झूठ तो तुम बोल रहे हो । हमारे सामने हो तो कल बाबाने तुम्हें गोदमें बिठा अपने हाथसे गुलाबजामुन खिलाये ।' इन लोगोंकी बात सुनकर मण्डलीके स्वामी और दूसरे स्वरूप सब बोल पड़े—'ये कल हमारे पाससे कहीं गये हो नहीं । तब आपकी गुलाब-जामुन कैसे खा गये ?' तब बाबा समझ गये कि कृष्ण-बलराम दोनों भाई उनका रूप धारण कर आये थे और उनकी गोदमें बैठकर उनके हाथसे गुलाबजामुन खा गये थे । उसी क्षण वे प्रेम-विभोर हो अपनी सुध-बुध खो बैठे । सचेत होनेपर दोनों स्वरूपोंको गोदमें बिठाकर पहलेकी तरह गुलाब-जामुन खिलाने लगे ।

एक दिन बाबा प्रातःकाल वृन्दावनमें बिहारीजीके मन्दिरका दरवाजा खुलते ही भीतर गये और घुसकर बैठ गये मन्दिरके आंगनमें एक ओर रखे हुए कटघरेमें, जो गमियोंमें फुहारेके चारों ओर रखनेके काम आता था । बिहारीजीका राजभोग हो गया, आरती भी हो गयी । बाबा बराबर कटहरेमें बैठे बिहारीजीको ओर देखा किये । दर्शनार्थी जो बिहारीजीके दर्शन करने आते, कभी बिहारीजीके दर्शन करते, कभी बाबाके । किसीको उनसे पूछनेकी हिम्मत न होती कि कटहरेमें क्यों बैठे हैं । थोड़ी देरमें श्रीब्रजवल्लभ गोस्वामी आये । उन्होंने बाबासे पूछा—'बाबा ! आज क्या बात है ?'

'बात कहा है ? यारकी आज्ञा है ।' उन्होंने उत्तर दिया ।

कदाचित् यारने आज जो भरके अपने भक्तके दर्शन करनेके लिए उसे अपने सामने बिठा रखा था । इसमें आश्चर्य ही क्या था ? भक्तकी कभी तृप्ति नहीं होती भगवान्के दर्शन कर, तो भगवान्की तृप्ति कब होती है भक्तके दर्शन कर ? बाबा राजभोगकी आरतीके पश्चात् भी कटघरेमें बैठे रहे । यारकी आज्ञा जो थी । सन्ध्या समय फिर दर्शन खुले । आंगन दर्शकोंकी भीड़से खचाखच भर गया । दर्शन खुलते ही 'बिहारीजी महाराजकी जय', 'श्रीनिकुञ्ज-बिहारीजीकी जय', 'श्रीहरिदासके साइतेकी जय'की ध्वनिसे आकाश गुँज उठा । उसी समय ग्वारिया बाबा कटघरेमेंसे निकलकर बिहारीजीके सामने आये और तयारी चढ़ाकर लगे कहने—'वाह रे यार ! हमसू तो कहै अबई और बन्द रहै और आप आनन्द सौ बैठ्यौ जय-जयकार करिवाय रह्यौ है !'

श्यामसुन्दरके सखा होनेके नाते बाबापर किशोरीजीकी कृपाका होना

भी स्वाभाविक था । एक बार वे श्रीचौथमल आदि कुछ व्यक्तियोंके साथ रङ्गजीका मेला देखने गये । सन्ध्या समय, जब रथ लौट रहा था, उनकी दृष्टि एक किशोरीपर पड़ी । उसे देखते ही वे मूर्च्छित हो गये । आध घण्टा उसी अवस्थामें पड़े रहे । बाह्यदशा होनेपर जब चौथमलजीने पूछा—‘बाबा आपको क्या हो गया था ?’ तब वे बोले—‘श्रीजी वंशीवटकी ओर अकेली जा रही थीं । उन्हें पहुँचाने गया था ।’

ग्वारिया बाबा अपने यारकी तरह बड़े कौतुकी और विनोदी थे । पर उनके विनोदमें सदा जन-कल्याणके लिए शिक्षाका पुट रहता था । बाबाको जब वृन्दावनमें रहते-रहते बहुत दिन हो गये, तब दत्तिया-नरेशको संवाद मिला कि वे वृन्दावनमें हैं । वे वृन्दावन आये और विनीत भावसे उनसे दत्तिया चलनेके लिए आग्रह करने लगे । उन्होंने जानेको मना किया । जब राजा उनके पीछे हो पड़ गये, तब उन्होंने कहा—‘अच्छा, तू नाय माने तो चलींगी ।’ जानेका दिन निश्चित हो गया । उस दिन प्रातःकाल वे राजाके पास पहुँच गये । राजा उन्हें देखकर सन्न रह गये । उन्होंने अपने मुँहपर कालिख पोत रखी थी और वे गधेपर चढ़े हुए थे । राजाके निकट आकर बोले—‘चलो महाराज ! मैं तैयार हैकै आय गयी हूँ ।’ राजाने पूछा—‘महाराज ! ऐसा रूप क्यों बनाया है ?’ बाबाने उत्तर दिया—‘जो एक बार वृन्दावन आय कै फिर कहीं और जायबे की विचार करै है; वाको यही रूप है जाय है ।’

राजा तत्काल उनके चरणोंमें गिरकर बोले—‘बाबा ! मेरा आपसे कोई आग्रह नहीं है । मेरा अपराध क्षमा करें । मैंने आपको बहुत कष्ट दिया ।’

जयपुरके महाराजा माधोसिंहने वृन्दावनमें एक विशाल मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया । ग्वारिया बाबा भी वहाँ मजदूरोंमें मिलकर काम करने लगे । दिन भर काम करनेके पश्चात् जो मजदूरी मिलती, उससे गुड़-चना खरीदकर मजदूरोंमें बाँट देते । संयोगसे एक दिन महाराजा स्वयं मन्दिरका काम देखने आये । उनकी दृष्टि एक गौरवर्णके तेजपूर्ण और हृष्ट-पुष्ट मजदूरपर पड़ी, जो और मजदूरोंकी अपेक्षा अधिक लगन और प्रसन्नतासे काम कर रहा था । निकट आकर देखा, तो वे उन्हें पहचान कर उनके चरणोंमें गिर पड़े और बोले—‘बाबा ! यह आप क्या कर रहे हैं ?’

बाबाने उत्तर दिया—‘भगवान्की सेवा तुम धनसों करो हौं, हम तनसों करै हैं । जामें तुम्हारौ कहा झगरौ ?’

महाराज लज्जित हुए और बोले—‘बाबा आप जयपुर पधारनेकी कृपा करें।’

‘यारकी इच्छा नाथ कि मैं वृन्दावन परित्याग करूँ।’

‘आपको श्रीगोविन्दजीने याद किया है। मैं उनका सन्देश लेकर आया हूँ।’

‘जि बात है, तो ग्वारिया गोविन्दकी न्यौती अवश्य मानेंगी।’

बाबा महाराजाके साथ जयपुर चले गये। कुछ दिन वहाँ रहनेके पश्चात् वे अस्वस्थ हो गये। राजवैद्य उनकी चिकित्सा करने लगे। अस्वस्थ अवस्थामें ही उन्होंने एक पत्र गोस्वामी गोवर्धनलालजी महाराज, टीकायतको नाथद्वारा भेजा। उसमें लिखा—‘मैंने एक शेर पकड़ी है, सो तुम बाय राखिबेके लिए एक पिंजरा बनवाओ।’

पत्र लिखनेके पश्चात् एक दिन वे नाथद्वारा जानेको तैयार हुए। महाराजने कहा—‘अभी आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, कुछ दिन और विश्राम करें।’ पर वे न माने। वैद्यने एक माहकी औषाध उनके साथ रख दी। बाबा उस औषाधको एक ही खुराकमें खा गये और बोले—‘अब तो रोग दूर होयगी ही होयगी।’ वास्तवमें रोग उसी समय ठीक हो गया।

बाबा नाथद्वारा पहुँचे। गोवर्धनलालजीने कहा—‘बाबा! आपने लिखा था शेर पकड़ा है, सो वहाँ है?’ बाबाने पूछा—‘पिंजरा कहाँ है?’ उन्होंने ले जाकर पिंजरा दिखाया। बाबा स्वयं उसमें जा बैठे और बोले—‘शेर पिंजरेमें बैठ्यो है!’

नाथद्वारामें रहते समय बाबा शेरके समान स्वतन्त्र थे। मनमें आना सो करते। उनपर किसी प्रकारकी रोक लगानेका प्रश्न ही न था। एक दिन टीकायतके सुपुत्र दामोदरलालजी कोट-पेंट-टाईमें क्रिकेटका बल्ला धुमाते हुए जाते दीखे। बाबाने उन्हें अपने पास बुलाया। वे पास आये और अकड़कर खड़े हो गये। बाबाने चाँटा गालपर मारा और कहा—‘यही तुम्हारी वंश-परम्परागत पोशाक है?’

उसी समय वे जेलरके पास जाकर बोले—‘मैंने अपराध किया है। मोकूँ जेलमें बन्द करी।’ जेलर उनसे हाथ जोड़कर मना करने लगा। पर आप जेलमें घुस पड़े और वहाँ अपराधियोंके समान रहने लगे। टीकायत महाराजको पता चला, तो वे स्वयं जेलमें गये और अपने लड़केकी ओरमें

क्षमा माँगते हुए बोले—‘बाबा आपने बहुत अच्छा किया, जो लड़केको भ्रष्ट देख उचित शिक्षा दी। अब कृपा कर चलें यहाँसे।’ बाबा जेलसे निकल आये और वृन्दावनके लिए चल दिये।

वृन्दावन जाकर वे इस बार सिद्ध श्रीरामकृष्णदास बाबाके आश्रममें रहने लगे। एक दिन, जब वे सेवाकुञ्जकी गलीसे जा रहे थे, सामने एक कुमारी बंगाली युवतीको अपने पिताके साथ जाते देख उसके पितासे बोले—‘अपनी जा कन्याके संग हमारी ब्याह कर दे।’ बंगाली महाशय शिष्ट और पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। उन्हें क्रोध आया और वे खरी-खोटी सुनाने लगे। बाबा हँसते हुए चल दिये। आश्रम पहुँचकर पण्डित रामकृष्णदास बाबामें बोले—‘भैया ! आज मेरी ब्याह है, तुम बरातकी तैयारी कर लेओ।’ फिर यमुना किनारे जा लकड़ियाँ चुनी और एक चिता बनाकर उसपर बैठ गये। वृन्दावनमें शोर हो गया कि ग्वारिया बाबा चितापर जलने जा रहे हैं। सब लोग उधर दौड़ पड़े। बंगाली महाशयको इस बीच पता चला कि जो उनकी पुत्रीसे विवाहकी कह रहे थे वे एक सिद्ध महात्मा हैं। किसीने उनसे कहा—‘शायद वे इसीलिए चितापर जलने जा रहे हैं कि तुमने विवाहको मना कर दिया। वे क्या सचमुच विवाह थोड़े ही कर लेते।’

वे उसी समय यमुना-तटपर गये और बाबासे बोले—‘बाबा ! मैं अपनी कन्याका विवाह आपसे करनेको तैयार हूँ। आप चितामें न जलें।’

बाबा हँसकर चितासे उतरते हुए बोले—‘कहा मेरी ब्याह करैगौ ?’

इतना कह वे यमुना किनारे-किनारे न जाने कहाँको चल दिये।

सिद्ध महात्माओंकी क्रिया-मुद्रा समझना बड़ा कठिन है। न जाने बाबाने किस उद्देश्यमें यह लीला की। शायद अवोध शिशुके समान बिना किसी उद्देश्यके ही, जैसे शिशु किसी स्त्रीको अच्छे गहने-कपड़े पहने देखकर उससे ब्याह करनेको मचल जाय और ब्याह न होनेपर रूठ जाय। सिद्ध महात्माओंकी लीला भी कभी-कभी बालकोंकी लीलाके समान निरुद्देश्य होती है, पर कभी-कभी उसमें कोई गूढ़ उद्देश्य छिपा होता है, जिसे समझना साधारण लोगोंके लिए कठिन होता है।

एक बार बाबा बरसानेमें एक बगीचीमें रात देर तक बैठे यागका चिन्तन करते रहे। निकटसे कुछ फुसफुसाहट सुनायी दी। कान लगाकर सुना, तो मालुम हुआ कि कुछ चोर गुसाईंके यहाँ चोरी करनेकी सलाह कर रहे

हैं । वे उनके पास जाकर बोले—‘मैं ऊँ चोर हूँ । तुम्हारे संग चोरी करिबे चलूँगी ।’

चोर सहमत हो गये । बाबाको साथ ले वे गुसाईंके घरमें घुस गये । चोर साल समेटने लगे । बाबाकी दृष्टि एक कोनेमें ठाकुरजीके मन्दिरपर पड़ी । उन्होंने मन्दिरका दरवाजा खोला, तो देखा ठाकुरजी सो रहे हैं । वे बोले—‘यार हम तौ तेरे घर आये, तू सोय रह्यौ है । उठ, कछु कलेऊ-बलेऊ करवावै नाय ?’

ठाकुर गहरी नींदमें सो रहे थे । उन्होंने कोई उत्तर न दिया ।

बाबा बोले—‘ऐसे नाय जागेगो’ और पासमें रखे घण्टेको जोरसे बजाने लगे । चोर बटोरे हुए सामानको छोड़ भाग निकले ।

बाबा मथुरामें रहकर मूंगामलजीको संगीत सिखाते थे । मथुरामें ‘भूत महल’के नामसे प्रसिद्ध एक बड़ा मकान था । उसमें कोई ब्रह्म-राक्षस रहता था । जो कोई भी उस मकानमें रहने जाता, उसे वह जिंदा न छोड़ता । इसलिए वह बरसोंसे बन्द पड़ा था । बावाने वह मकान ५०) रुपये महीने किरायेपर ले लिया । मूंगामलसे कहा किसी मजदूरको बुलाकर उसकी सफाई करानेको । मूंगामलने १००) रुपये सफाईके लिए देनेको कहा । फिर भी कोई मजदूर तैयार न हुआ । बड़ी मुश्किलसे बाबाके यह कहनेपर कि ‘मैं भी तेरे साथ सफाई करूँगा । तुझे किसी प्रकारका भय नहीं,’ एक मजदूर तैयार हुआ । सफाई हो जानेपर बाबा उसमें जाकर रहने लगे ।

एक दिन वे मूंगामलसे बोले—‘भूतमहलके भूत कू बाजी सिखाइवौ आरम्भ कियो है । तोकू सुननो होय तो आजा ।’ मूंगामल उनके साथ चले गये । बावाने बाजा निकालकर कमरेमें रखा । वैसे ही बाजेके रीडकी चावियाँ खुल गयीं, पर्दा चलने लगा, और बाजेकी आवाजसे कमरा गुँज गया । मूंगामलको भयभीत देख थोड़ी देरमें बावाने भूतको संकेत किया, तब बाजा बन्द हो गया । भूतके उस कमरेसे चले जानेपर बावाने एक परचा मूंगामलको देते हुए कहा—‘जामें जितनो सामान लिख्यौ है लै आओ । मैं भूतकी अन्तिम संस्कार करूँगी । जि अपनी उद्धार चाहै है ।’ मूंगामल वह सारा सामान ले आये । बावाने विधिवत् उसका संस्कार कर उसे मुक्त कर दिया । भूतमहल अब भूतमहल नहीं रहा ।

भूतके उद्धारकी घटनाके बाद बाबाके दर्शनके लिए असंख्य लोगोंकी

विशेष रूपसे स्त्रियोंकी, भीड़ लगने लगी । बाबाके लिए यह एक समस्या बन गयी । वे इसका समाधान करनेका उपाय सोचने लगे । एक उपाय सूझा । वे मथुराकी प्रसिद्ध वेश्या पन्नाके पास गये और बोले—‘तुम हमारे साथ दो-चार दिन बाजारमें हवा खाइबे कूँ चली । तुम जो माँगोगी हम दिये ।’

दूसरे दिन लोगोंने देखा कि बाबा बड़ी प्रसन्न मुद्रामें पन्ना वेश्याके साथ बगधीमें बैठे चले जा रहे हैं । इस घटनाका भी वैसे ही सारे क्षेत्रमें शीघ्र प्रचार हो गया, जैसे भूतके उद्धारका हुआ था । बाबाके पास लोगोंने जाना बन्द कर दिया । वे चैनकी नींद सोने लगे ।

महाराज माधोसिंहजीने अपने जन्मोत्सवके अवसरपर ग्वारिया बाबाको आमन्त्रित किया । गोविन्दजीके दर्शनका लोभ उन्हें वहाँ ले गया । महाराजने कहा—‘आज सब लोग गोविन्दजीका प्रसाद यहाँ ग्रहण करेंगे । आप भी यहीं प्रसाद पाइयेगा ।’

बाबा बोले—‘प्रसाद का पार्मिगे ? श्री गोविन्दजीके खीर तो फीकी भोग लग रही है ।’ महाराजने रसोइयेको बुलाया तो मालूम हुआ कि वह सचमुच खीरमें बुरा डालना भूल गया था ।

एक बार ग्वारिया बाबाने ब्रह्मचारीजीके मन्दिरमें एक कमरा किरायेपर लिया । उसमें कीमती-से-कीमती गलीचे बिछाये । दीवारोंपर बड़े-बड़े शीशे और सुन्दर-सुन्दर चित्र लगाये । छतपर रंग-बिरंगे झाड़-पानूस लटकाये । बीचमें सुन्दर रेशमी वस्त्र पहनकर, चारों ओर मसनदे लगाकर बैठ गये । उसी समय गिरदावलजी आये । वे गह नया परिवेश देखकर भौचक्के रह गये ! कुछ अपनेको सम्हालकर बोले—‘बाबा ! आज तो बड़े ठाट हैं ।’ बाबाने उत्तर दिया—‘मैं राजा है गयी हूँ ।’

दूसरे दिन ब्रजवासियोंको बुलाकर कहा—‘कमरामें जा कछु है सब लूट ले जाओ ।’ ब्रजवासी, जिसके हाथ जो पड़ा, ले गये । बाबा हाथ झाड़कर कहीं और चल दिये । कई बार बाबाने नयी कुटियाका निर्माण करवाया, कई बार पुरानी कुटियोंको मरम्मत करवायी, उन्हें सजाया और उनमें कुछ ही दिन रहकर उन्हें किसी ब्रजवासीको देकर दूसरी जगह चल दिये । वे स्वयं अधिक दिन कहीं भी न रहे ।

किसी महोत्सवके अवसरपर जतीपुरामें श्रीविग्रहका अभिषेक था । वल्लभकुलके गोस्वामीजी अभिषेक करा रहे थे । ग्वारिया बाबा भी वहाँ

उपस्थित थे । पहले बारी-बारीसे दूत, औषधियाँ आदि श्रीविग्रहपर उड़ेली गयीं । फिर बूरेसे उन्हें पाट दिया गया और धीरे-धीरे जलकी धार डाली जाने लगी । धारसे बूरा पिघलनेपर जैसे ही श्रीविग्रहका कोई अंग दीखता, दर्शक जय-जयकार कर उठते । उसी समय ग्वारिया बाबा जोरसे चीख उठे—‘जल्दी करौ, जल्दी करौ, यारकी दम घुट्यौ जाय !’ उनकी भाव-चेष्टासे ऐसा लगने लगा, जैसे उन्हींका दम घुटा जा रहा है । उनकी चीख सुनते ही गोस्वामीजीने सारा जल एक साथ उड़ेल दिया । तब बाबाने ठण्डी सांस ली । गोस्वामीजीसे उन्होंने कहा—‘ऐसी मति कियौ करो । श्रीविग्रहके प्राण होय हैं ।’

रंगजीके मन्दिरमें ग्वारिया बाबाके नामका एक कमरा था । उसमें वे कभी-कभी ठहरा करते । एक दिन मन्दिरके प्रांगणमें उन्होंने एक सभा की । बहुत-से लोगोंको आमन्त्रित किया । लोग आने लगे । किसीको पता नहीं कि सभा किस उपलक्ष्यमें है । जब सब लोग आ गये, तो बाबा बोले—‘भइयाओ ! आज हमारी शोक सभा मनाओ । जान लेओ मैं मर गयी हूँ ।’ यह सुन सब हँस पड़े । सबने समझा बाबाने आज अच्छा मजाक किया है । पर यह बाबाका मजाक नहीं था । उन्होंने आग्रह किया—‘देखौ भइया, जा कछु मेरे पीछे करौगे, सो अबहीं कर लेओ, जासौ मैं हूँ देख लेऊँ । पीछे कछु मत करियो ।’ लोगोंको उनकी शोक सभा मनानी पड़ी । तरह-तरहके भाषण दिये गये । बाबा प्रसन्न मुद्रामें बैठे सुना किये ।

कुछ ही दिन बाद बाबा श्रीराधावल्लभके मन्दिरमें फूल-बैंगला देखने गये । संयोगवश श्रीचौथमलजी भी उसी समय दर्शन करने गये थे । बाबा दर्शन करते-करते चौथमलजीसे बोले—‘दादा भैया ! यारने हमारौ तवादलौ कर दियो है । परसौ तबादलौ है जायगी । रमनरेतीमें बिहारीदास बाबाके ज्यौं हमारौ सामान पर्यौ है । वही तेई जायबोकौ विचार है । तुमसौ मिल लियो हूँ ।’ चौथमलजी कुछ पूछना चाहते थे, पर बाबा इतना कहते ही चल दिये ।

दो दिन बाद आषाढ़ शुक्ल १४, सन् १६३८ को वृन्दावनका सारा जन-समुदाय रमणरेतीकी तरफ उमड़ा चला जा रहा था । सबके चेहरे उदास थे । सारा वातावरण शोकाच्छन्न था । ग्वारिया : का तवादला हो चुका था । उन्हें उनके यारने अपने पास बुला लिया था ।

श्रीलाला बाबू

(वृन्दावन/गोवर्धन)

कलकत्ता शहर है और शीतकालकी सन्ध्याकी बेला । अस्ताचलगामी सूर्य अपनी मधुर किरणें बिखेर रहा है । पवन मन्द-मन्द बह रहा है । लालाबाबू पालकीपर निकले हैं सैर करने । पालकीके आगे हैं बन्दूकची और पीछे सिपाहियों और नौकरीकी टोली । गंगा-तटपर पहुँचकर पालकी उतारी गयी लता-पताओंके बीच एक सुरम्य और सुरभित स्थानमें । हुक्काबरदारने झट चिलम भरकर लालाबाबूके सामने फरसीपर रख दी । कीनखाबमण्डित नरम तकियेका सहारा लेते हुए उन्होंने फरसीकी नली मुँहमें दवा ली । छल-छल करती बहती सुरधुनीके मधुर स्वरमें हुक्केकी गुड़-गुड़ बीच-बीचमें सुर मिलाने लगी । मुखसे निकला सुगन्धित अम्बरी तमाकूका धुआँ कुंडली बाँधकर आकाशमें उड़ने लगा । लालाबाबूका मन एक अनिर्वचनीय आनन्दके झूलेमें झूलता हुआ धीमे-धीमे पेंग भरने लगा । उसी समय उनके हृदयमें लगी एक चिनगारीने विस्फोट किया और आनन्दका उत्सविषादमें विलीन हो गया ।

पासकी एक झोपड़ीमें दिनके परिश्रमसे क्लान्त, सोते हुए धीमरको जगाते हुए उसकी कन्या कह रही थी—‘बाबा, उठो ! दिन शेष হয় গলো’—‘बाबा, उठो ! दिन डूब चला ।

धीमर-कन्याका आह्वान तिर्यक् गतिसे जाकर भेद गया लालाबाबूके मर्मस्थलको । ‘बाबा, उठो दिन शेष হয় গলো’ यह शब्द बार-बार उनके हृदयाकाशमें गूँजने लगे । उनकी मोह-निद्रा भंग हुई । फरसीकी नली मुँहसे छूट गयी । महा ऐश्वर्यशाली, महाविलासी लालाबाबू अब वह लालाबाबू न रहे । सब कुछ त्यागकर कंगालवेशमें वृन्दावन जानेके लिए कृतसंकल्प हो वे चल दिये घरकी ओर । किसी तरह रात व्यतीत की । दूसरे दिन कहा घरके लोगोसे—‘मेरे जीवनकी सन्ध्या आ गयी है । दिन डूबनेको है । राधारानीकी पुकार सुन पड़ी है । मैं जा रहा हूँ वृन्दावन ।’ पत्नी, पुत्र, परिजनोके अनुरोध और कातर क्रन्दनकी उपेक्षाकर वे चल दिये वृन्दावनकी ओर ।

लालाबाबूका असली नाम था श्रीकृष्णचन्द्र सिंह । आनुमानिक सन् १७७५में उनका जन्म हुआ । उनके दादा गंगागोविन्द सिंह थे अंग्रेज गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्सके शासनकालमें बंगाल, बिहार और उड़ीसाके शीवान । उन्होंने अपनी असाधारण योग्यतासे अपने वंशके लिए अर्जित की थी विशाल जमींदारी और अपरिमेय धनराशि । उनके भाई राधागोविन्द भी बहुत बड़ी धन-सम्पत्तिके मालिक थे । कृष्णचन्द्र सिंहके पिता प्राणकृष्ण थे दोनों भाइयोंकी सम्पत्तिके एकमात्र उत्तराधिकारी और उस समयके पूर्व भारतके सबसे बड़े धनी-मानी व्यक्ति । कृष्णचन्द्र उनके इकलौते बेटे थे । दादा गंगागोविन्दसिंह उन्हें प्यारसे 'लाला' पुकारा करते थे । नौकर-चाकर और अन्य सभी लोग उन्हें आदरपूर्वक 'लाला बाबू' कहते थे । इसलिए वे इसी नामसे समग्र भारतमें विख्यात हुए ।

लाला बाबूकी मेधा तो असामान्य थी ही, उनके पिताने बड़े-में-बड़े विद्वानोंको उन्हें अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत पढ़ानेको नियोजित किया । कलस्वरूप अल्प समयमें ही उन्होंने इन भाषाओंमें द्युत्पत्ति हासिल कर ली । श्रीमद्भागवतसे उन्हें बहुत प्रेम था । उनमें इतनी दक्षता थी कि वे उसके किसी श्लोककी सुन्दर और रसमयी व्याख्या कर लोगोंको चमत्कृत कर सकते थे ।

उनका हृदय इतना कोमल था कि वे किसीका दुःख नहीं देख सकते थे । एक गरीब आदमी अर्थाभावके कारण अपनी कन्याका विवाह नहीं कर पा रहा था । दुःखी होकर उसने उनसे प्रार्थना की । उन्होंने खजानचीको आदेश दिया (१०००) उसे तुरन्त दे देनेका । खजानचीने प्राणकृष्ण सिंहसे पूछा, तो उन्होंने कहा—'जब लालाने उस व्यक्तिको वचन दे ही दिया, तो इस बार तो उसे (१०००) दे दो । पर लालासे कह दो कि इस प्रकार दान तभी करे जब स्वयं कुछ कमायी करने लगे या जमींदारीकी आय बढ़ा ले ।'

लाला बाबूको पिताकी यह बात शूलकी तरह चुभ गयी—'कोटिपति गंगागोविन्द सिंहका पौत्र होते हुए मुझे इतना भी अधिकार नहीं कि मैं किसी गरीबकी सामान्य सेवा कर सकूँ । तो ठीक है, अब अपने पैरोंपर खड़ा होकर ही कुछ करूँगा ।'

वे अपने संकल्पपर दृढ़ रहे । कुछ ही दिनोंमें माता-पिताके रोने-धोनेकी उपेक्षा कर वर्धमान चले गये । फारसी और अंग्रेजी भाषाओंका अच्छा ज्ञान

उन्हें था ही । वर्धमान कलेक्टरीके सेरेस्तादार पदपर उनकी नियुक्ति हो गयी । कार्यमें असाधारण दक्षता प्रदर्शन करनेके कारण पदोन्नति भी जल्दी-जल्दी होने लगी । इसी समय उन्होंने विवाह किया । एक पुत्र-रत्न भी उत्पन्न हुआ ।

सन् १८०३ में उड़ीसा प्रदेश अंग्रेजी सरकारके अधिकारमें आ गया । तब उनकी नियुक्ति उड़ीसाके सर्वोच्च दीवानके पदपर हो गयी । श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीला-स्थली श्रीधाम पुरीमें रहनेका अवसर मिला । भक्तिलता-बीज, जो जन्मसे ही उनमें रोपित था, अंकुरित हो उठा और क्रमशः पल्लवित और पुष्पित होने लगा । राज-काजको छोड़ उनका बाकी समय भक्ति-शास्त्राध्ययन, नाम-जप और कीर्तनादिमें बीतने लगा ।

कुछ दिन बाद घरसे संवाद आया पिता श्रीप्राणसिंहके परलोक-गमनका । घर छोड़नेके पश्चात् लालाबाबूने घर लौटकर जानेको पिताका आग्रह कई बार ठुकरा दिया था । वे अपने इकलौते बेटेको एक बार फिरसे देख लेनेकी अपूर्ण साध लिये ही परलोक सिधार गये थे । इसलिये लालाबाबूके हृदयमें यह संवाद शूल-सा चुभकर रह गया । नेत्रोंसे बह पड़ो अविरल अश्रुधारा । हृदयमें धधक उठी अनुतापकी प्रबल ज्वाला ।

कलकत्ते जाकर उन्होंने पिताका पारलौकिक कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न किया । पिताकी जमींदारी और धन-सम्पत्तिकी देखभालका भार अब उनके ऊपर आ पड़ा । इसलिये वे उड़ीसाकी दीवानीका काम छोड़कर स्थायी रूपसे कलकत्ते रहने लगे ।

पर उनके जीवनमें होने लगा एक अन्तर्द्वन्द्व । बार-बार मनमें उठता एक प्रश्न—यह धन, ऐश्वर्य, मान-सम्मान सब किसलिये ? यह क्या चिरस्थायी हैं ? यदि नहीं, तो क्यों नहीं इन्हें त्यागकर उस पथका सन्धान किया जाय, जिससे चिर-शान्ति मिल सकती है ? पर संसारके प्रति उनके दायित्व और कर्तव्यकी भावना हर बार इस प्रश्नको दबा देती । उसी समय उन्हें प्राप्त हुआ उस धीमर कन्याके माध्यमसे राधारानीका दिव्य आह्वान ।

वृन्दावन जाकर उन्होंने अपनाया त्याग, तितिक्षा और कठोर व्रतमय साधन जीवन । सारा दिन भजन करते । सन्ध्या समय एक बार मधुकरीको जाते । जो मिल जाता उसीसे उदरपूर्ति करते ।

वृन्दावनमें भग्न मन्दिरों और विग्रहोंकी सेवा-पूजाकी दुर्दशा देख

उनके प्राण रो दिये । कितना अच्छा होता यदि इनकी दशा सुधारनेके लिए वे कुछ कर सकते । पर वे ठहरे कंगाल । उनकी लाचारी उन्हें कचोटने लगी । फिर खेल उठी मनमें एक नयी तरंग—‘कंगाल मैं हूँ । प्रभु तो कंगाल नहीं । उनकी विपुल सम्पत्ति मैं छोड़कर आया हूँ । उसमें-से पत्नी और पुत्रका हिस्सा निकालकर अपना हिस्सा प्रभुकी सेवामें लगाऊँ और स्वयं भिक्षा-वृत्तिसे जीवन निर्वाह करूँ, तो भजनकी दृष्टिसे क्या कोई हानि होगी ? देव-देवालयोंकी सेवा होगी, वृन्दावनके धार्मिक अनुष्ठानोंका उज्जीवन होगा ।’

उन्होंने तदनुरूप कार्य करना प्रारम्भ कर दिया । थोड़े ही समयमें उनकी बंगाल और उड़ीसाकी जमींदारीसे पच्चीस लाख रुपयेकी धनराशि आ गयी । उनके कर्मचारियोंने वृन्दावनमें बहुत-सी जमीन-जायदाद खरीदना प्रारम्भ किया । धीरे-धीरे ब्रजमण्डलके चौहत्तर परगने उन्होंने क्रय कर डाले । इनकी आयसे भग्न मन्दिरोंकी मरम्मत, नये मन्दिर और धर्मशालाओंका निर्माण और जगह-जगह देव-सेवाकी सुव्यवस्था करनेकी एक बिराट योजना बनायी गयी । इस योजनामें वृन्दावनमें एक ऐसा सुरम्य मन्दिर बनवानेकी परिकल्पना भी सम्मिलित थी, जिसमें राधा-कृष्णके अति सुन्दर विग्रहोंकी स्थापना हो और शत-शत साधु-महात्माओं और गरीब दुःखियोंके नित्य महाप्रसाद ग्रहण करनेकी सुव्यवस्था हो ।

मन्दिरका निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ । जयपुर अञ्चलसे कीमती पत्थर क्रय करनेके लिए लालाबाबूका कभी-कभी राजस्थान जाना होता । मार्गमें पड़ता भरतपुर । भरतपुरके महाराजा उनके पुराने बन्धु थे । उनके विशेष आग्रहके कारण उन्हें आते-जाते एक-दो दिन उनके यहाँ ठहर जाना पड़ता ।

महाराजाके साथ घनिष्टता होनेके कारण उन्हें एक बार बड़ी विपदामें पड़ना पड़ा । उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी राजस्थानके राजाओंके साथ एक सन्धिकी बातचीत चल रही थी, जिसमें भरतपुरके महाराजाकी प्रधान भूमिका थी । किसी कारण उन्होंने सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर करनेसे मना कर दिया । सर चार्ल्स मेटकॉफ उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी तरफसे दिल्ली दरबारके रेजिडेंट पदपर नियुक्त थे । उन्हें उनके कुछ कर्मचारियोंने समझा दिया कि महाराजा हस्ताक्षर करनेको प्रस्तुत थे परन्तु लालाबाबूकी कुमन्त्रणाके कारण नहीं किये । मेटकॉफने क्रुद्ध हो

लालाबाबूको बन्दी बनाकर दिल्ली बुलवा मँगाया । विचारकी व्यवस्थाकी जाने लगी ।

लाला बाबूकी गिरफ्तारीका संवाद सारे ब्रजमण्डलमें फैल गया । इसका विरोध करनेके लिए सहस्रों ब्रजवासी दिल्लीकी ओर उमड़ पड़े । लाला बाबूकी लोकप्रियता और उनके प्रभावको देख मेटकाँफ बहुत चिंतित हुए । उनके और उनके परिवारके सम्बन्धमें गुप्तरूपसे जाँच-पड़ताल करवायी । पता चला कि उनके पूर्वपुरुष सदा ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हितैषी रहे हैं । उसका उपकार भी उन्होंने बहुत किया है । मेटकाँफकी आँखें खुल गयीं और लालाबाबूको मुक्त कर दिया । इतना ही नहीं, उन्हें महाराजाकी उपाधि देना चाहा, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया ।

धीरे-धीरे वृन्दावनका विशाल मन्दिर बनकर तैयार हो गया । मुरलीधर श्रीकृष्णचन्द्रकी नयनाभिराम मूर्ति स्थापित हो गयी । अतिथिशालामें सैकड़ों लोगोके प्रसादकी व्यवस्था भी कर दी गयी । पर लालाबाबू स्वयं कंगाल वैष्णवोंकी तरह ही जीवनयापन करते हुए भजन करते रहे ।

माघका महीना था । कड़ाकेकी शीत पड़ रही थी । मन्दिरके एक कोनेमें खड़े लालाबाबू दर्शन कर रहे थे श्रीकृष्णचन्द्रकी भुवनमोहन श्रीमूर्ति का । भावावेशमें उनका देह विकम्पित हो रहा था । नेत्रोंसे बह रही थी प्रेमाश्रुधारा । उनके अन्तरमें जाग उठी एक विचित्र अभिलाषा । उन्होंने भोगके थालमें-से एक टिकिया मक्खनकी उठाकर पुजारीको दी और कहा— 'यह मक्खन श्रीमूर्तिकी चाँदपर रखना तो ।'

पुजारी सुनकर अवाक् ! वह चुपचाप लालाबाबूके मुखकी ओर देखता खड़ा रह गया । लालाबाबूने फिर कहा— 'हाँ, हाँ, रखो तो, देखते क्या हो । मुझे आज श्रीमूर्तिकी परीक्षा करनी है । इसकी विधिवत् प्राण-प्रतिष्ठा हुई है, सेवा भी षोडशोपचारसे विधिवत् हो रही है । तो देखना है कि इसमें सचमुच प्राण हैं या नहीं । यदि हैं, तो इनके मस्तकके तापसे मक्खन पिघल जाना चाहिये ।'

पुजारी क्या करता । उसने आज्ञाका पालन करते हुए मक्खनकी टेक्की श्रीमूर्तिकी चाँदपर रख दी और पूर्ववत् सेवा-पूजाका कार्य करने लगा ।

कुछ देर पश्चात् सचमुच मक्खन धीरे-धीरे पिघलकर श्रीमूर्तिके

अङ्गपर बहने लगा । ऐसी भयंकर शीतमें मक्खनका अपने-आप गल जाना सम्भव नहीं था । निश्चय ही उसका पिघलना इस बातका प्रमाण था कि श्रीबिग्रह जीवित है ।

श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दसे मक्खन बहता देख पुजारी और दर्शकगण जयध्वनि करने लगे । लालाबाबू भावावेशमें मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पड़े ।

एक और दिन लालाबाबूके मनमें एक और ढंगसे श्रीमूर्तिकी परीक्षाकी बात आयी । उन्होंने सोचा कि यदि श्रीमूर्तिके सिरमें ताप है तो नासिकामें निःश्वास भी होगा अवश्य । क्यों न इसकी भी परीक्षा की जाय । उन्होंने पुजारीको थोड़ी-सी रुई देकर कहा—'इसे थोड़ी देर श्रीमूर्तिकी नाकके नीचे लगाकर हाथसे पकड़े रहना । देखना कि श्रीमूर्तिमें निःश्वास है या नहीं ।'

पुजारीने हँसते-हँसते रुई श्रीमूर्तिकी नाकके नीचे लगा दी । देखा कि रुईमें कम्पन होने लगा ।

लालाबाबूके आनन्दकी सीमा न रही । वे भावाविष्ट हो श्रीमूर्तिके सामने नाट्य-मन्दिरमें लोट-पोट होने लगे ।

एक दिन स्वप्नमें श्रीकृष्णचन्द्रने लाला बाबूसे कहा—'मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ । पर मुझे कुछ और भी भिक्षा चाहिये तुमसे ।'

लाला बाबूने चौंककर कहा—'भिक्षा ? ऐसे क्यों कहते हो प्रभु ? आज्ञा करो न तुम्हारी और क्या सेवा करनी है मुझे ?'

'जानते नहीं लालाबाबू ! मैं जन्मका भिखारी हूँ ? घर-घर भिक्षा माँगता डोलता हूँ ? मेरे लिए एक और मन्दिरका निर्माण करना है तुम्हें ।'

'एक और मन्दिर ? मैं तो सर्वस्व दानकर चुका हूँ प्रभु । मेरे पास अब बचा ही क्या है नये मन्दिरके लिए ? घरसे अपने हिस्सेके जो २५ लाख रुपये मँगाये थे, उसमें-से तो अब कुछ भी नहीं बचा है ।'

'मैं जिस मन्दिरकी बात कह रहा हूँ उसका निर्माण साधकके पास जो कुछ है उसे सबको दे चुकनेके बाद ही होता है । सर्वस्व दानकर चुकनेके बाद भक्त अपने हृदयमें जो मन्दिर बनाता है, वही मेरे रहनेका प्रिय स्थान है । तुम हृदयकी वेदीपर मेरे रहने योग्य ऐसे हो एक प्रेम-मन्दिरका निर्माण करो । मैं तुमसे यह भिक्षा लेनेके लिए ही आज तुम्हारे द्वारपर खड़ा हूँ ।'

‘तो प्रभु ! आप ही कृपाकर बतायें, इस हृदयको किस प्रकार बनाऊँ आपकी अवस्थितिके योग्य ?’

‘तुम ब्रजमण्डलके सब तीर्थोंका दर्शन करो । उसके पश्चात् गोवर्धनमें जाकर भजन करो ।’

‘प्रभु ! मेरे द्वारा स्थापित इस श्रीमूर्तिमें तो आप जाग्रत हो उठे हैं । इसे छोड़कर कैसे कहीं जाऊँ दयामय ?’

‘तुम समझते हो कि मेरा लीला-विलास तुम्हारे द्वारा स्थापित इस मूर्तिमें ही निबद्ध है । वह तो सभी विग्रहोंमें रूपायित है । श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके पार्षद श्रीरूप-सनातन आदिने जिन लीला-स्थलोंका ब्रजमें अन्वेषण किया है, वे क्या तुम्हारे द्वारा स्थापित विग्रहसे कम जाग्रत हैं ?’

लालाबाबूके सन्देहके लिए अब कोई स्थान न रहा । वे ब्रजके सभी तीर्थोंका दर्शन करनेके पश्चात् गोवर्धनमें एक कच्ची गुफाके भीतर रहकर भजन करने लगे । नित्य प्रातः गोवर्धनकी परिक्रमा करते । दिन भर भजनमें रहते । सन्ध्या समय एक बार मधुकरीको जाते ।

उस दिन, जब वे गोवर्धनकी परिक्रमा कर रहे थे, मन्दिरका पुजारी बोला—‘बाबा ! आज आप मधुकरीको न जायें । मैं सन्ध्या समयका ठाकुरका भोग-प्रसाद आपको पहुँचा दूंगा ।’

सन्ध्या समय घनघोर वृष्टि हुई । प्रसाद लेकर बाहर जाना सम्भव ही न रहा । रात्रिमें भी देर तक वृष्टि होती रही । पुजारी बड़े संकटमें पड़ गया । सोचने लगा—‘बाबा कबसे भूखे प्रतीक्षामें बैठे होंगे !’ वृष्टि जब कम हुई, वह गया मन्दिरके भीतर । यह देखकर अवाक् रह गया कि जो थाल बाबाके लिए सजाकर रखा था ठाकुरके सामने, वह वहाँ नहीं है ! क्या हुआ ? कोई तो मन्दिरके भीतर गया नहीं । पर अब सोच-विचारका समय कहाँ ! पुजारीने एक दूसरे थालमें सजाया भोग-प्रसाद और चला गया बाबाके पास ।

उसे देखते ही बाबा बोले—‘यह क्या पुजारी बाबा ? और क्या ले आये ? पहलेका ही बहुत-सा बच रहा है । वह देखो !’

पुजारी मन्दिरके भोगका थाल और खाद्य सामग्री गुफामें रखा देखकर चौंक पड़ा—‘यह थाल यहाँ कहाँसे आया ? कौन दे गया ?’

‘यह आप क्या कह रहे हैं ? आप ही तो दे गये हैं !’

‘मैं दे गया हूँ । मैं शपथ खाकर कहता हूँ—मैं तो वृष्टिके कारण मन्दिरसे बाहर ही नहीं हो सका । वृष्टि कम होनेपर गया मन्दिरके भीतर, तो देखा, वहाँ थाल है न थालमें रखी सामग्री । फिर दूसरे मिट्टीके थालमें, जो फलादि मन्दिरमें थे, लेकर आया हूँ ।’

यह सुन लालाबाबूका देह सात्विक प्रेम-विकारोंसे परिपूर्ण हो अचेतावस्थामें भूमिपर पड़ गया । चेतना आनेपर अश्रु-गद्गद कण्ठसे वे कहने लगे—‘हाय प्रभु ! इस अक्षमके लिए इतना कष्ट किया ! और यह पहचान भी न सका । पहचानता भी कैसे ? यदि आप पहचानमें न आना चाहें, तो किसकी शक्ति हैं, जो आपको पहचान सके । आपने क्यों इतने छलके साथ कृपा की प्रभो ? कृपा की तो कृपामें कृपणता क्यों कृपा-सिन्धु ?’

मथुराके कृष्णदास बाबाजीकी उन दिनों सिद्ध महात्माके रूपमें बड़ी ख्याति थी । उनका भक्तमालका बँगला अनुवाद बँगला-भाषी लोगोंमें बहुत प्रिय था । लाला बाबूने बहुत दिनोंसे मन ही मन उन्हें गुरुरूपमें वरण कर रखा था । उस दिन जब वे गोवर्धन-परिक्रमाके लिए गोवर्धन गये, तो उन्होंने उनके चरणोंमें गिरकर दीक्षाके लिए प्रार्थना की । वे बोले—‘मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा । पर अभी समय नहीं हुआ है । तुम्हारे विषयी जीवनके सूक्ष्म संस्कार अभी कुछ शेष हैं । उन्हें तीव्र वैराग्यकी अग्निमें भस्म करना होगा । उपयुक्त समयपर मैं स्वयं ही आकर तुम्हें दीक्षा दूँगा । तुम्हें मेरे पास आनेकी आवश्यकता नहीं ।’

कुछ दिनोंके लिए कौपीन-कन्याधारी लाला बाबू वृन्दावन जाकर रहने लगे । उनका वैराग्य और भजन दिनों-दिन बढ़ता गया । दिन भर भजनमें रहते । सन्ध्या समय एक बार मधुकरीको जाते । बहुत दिन हो गये इस प्रकार पूर्ण वैराग्यमय जीवन व्यतीत करते-करते । पर गुरुदेवकी कृपा फिर भी न हुई ।

वे सोचने लगे कि उनमें कौन-सा ऐसा दोष है, जिसके कारण वे गुरुदेवकी कृपासे अब तक वंचित हैं । एकाएक मनमें आया—‘मैंने सारे ऐश्वर्यका त्याग कर कंगाल वेश तो धारण किया है, पर क्या मैं अपने अभिमानका पूर्ण रूपसे त्याग कर पाया हूँ ? मैं मधुकरीके लिए कितने मन्दिरों और कुञ्जोंमें जाता हूँ; पर उस सेठके कुञ्जकी ओर क्या मेरे पैर कभी बढ़े हैं ?’

रंगजीके विशाल मन्दिरके निर्माता सेठ लक्ष्मीचन्दजी लाला बाबूके प्रतिद्वन्द्वी थे । मन्दिर निर्माण, साधु-वैष्णव-सेवा और दान-दक्षिणा आदिमें उनसे बराबर होड़ लगी रहती थी । जमीन-जायदादको लेकर उनसे मुकदमा भी चल चुका था, जिसमें उनकी हार हुई थी । उनके प्रति पहलेका द्वेष, सूक्ष्मरूपमें अब भी बना हुआ था । यही कारण था कि लाला बाबूके पैर उधर नहीं पड़ते थे ।

एक दिन रंगजीके मन्दिरमें भिखारियोंकी बड़ी भीड़ थी । भीड़में कन्धेपर भिक्षाकी झोली डाले एक कनक कान्तिपूर्ण दीर्घ देहधारी भिखारी भी था । वह करताल बजा-बजाकर उच्च स्वरसे कृष्णनाम कीर्तन कर रहा था । उसे पहचानते किसीको देर न लगी । तुरन्त दरवाने सेठजीसे जा कहा—‘लालाबाबू आपके द्वारपर भिक्षाके लिए खड़े हैं ।’

सेठजी यह सुनकर चकित-स्तम्भित रह गये । कुछ ही देरमें वे स्वयं बाहर आये एक थालमें दाल, चावल, फल-मूल और सी अर्शफियां लेकर । लालाबाबूके सामने आदरपूर्वक मस्तक झुकाकर बोले—‘बाबूजी, आपके पदार्पणसे आज इस दीनकी कुटी पवित्र हुई । कृपाकर भिक्षामें यह थाल ग्रहण करें, जिससे मैं कृतार्थ होऊँ ।’

लालाबाबूने उत्तर दिया—‘मैं तो भिक्षाके लिए आया था सेठजी । आप जो दे रहे हैं यह तो भिक्षा नहीं ।’

‘आपने ठीक समझा । यह भिक्षा नहीं है । मेरी क्या सामर्थ्य जो आपको भिक्षा दे सकूँ । आप राजा हैं, राज-भिखारी होकर आपने मुझे पराजित कर दिया है । आपसे यह मेरी दूसरी पराजय है । इसलिए यह नजराना है ।’

‘यह नहीं हो सकता, सेठजी कंगाल ती सदा कंगाल है । आपका यह थाल स्पर्श करने योग्य मैं नहीं हूँ । इसमें-से एक मुट्ठी चावल मेरी झोलीमें डाल दें । इसके अतिरिक्त एक और भिक्षा देनेकी कृपा करें । जाने-अनजाने यदि मुझसे कभी कोई अपराध बन गया हो आपके चरणोंमें, तो क्षमा करें और आशीर्वाद दें, जिससे श्रीकृष्ण-भक्ति मेरे हृदयमें उदित हो ।’

लालाबाबूके इतना कहते ही दोनोंने एक दूसरेको अपनी बांहोंमें भरकर एक दूसरेको प्रेमाश्रुओंसे अभिषिक्त कर दिया ।

लालाबाबू रङ्गजीके मन्दिरसे अपनी भजन-कुटीको लौट रहे थे। उसी समय पथमें प्रसन्न मुद्रामें आते दीखे महात्मा कृष्णदास। भक्ति-पूर्वक उन्हें प्रणाम कर जैसे ही उठे, महात्माने प्रेमपूर्वक उन्हें आलिंगन कर लिया और कहा—‘लाला ! अब समय हो गया है तुम्हारी दीक्षाका।’

शुभ लग्नमें लालाबाबूकी दीक्षा हो गयी। दीक्षाके उपरान्त उपदेश देते हुए गुरुदेवने कहा—‘अब गोवर्धनमें उसी गुफामें आकर निरन्तर भजन करो। गुफासे तब तक न निकलना जब तक अभीष्टकी प्राप्ति न हो जाय। इस बीच किसी मनुष्यका मुख भी न देखना।’

लालाबाबू आज्ञानुसार रात-दिन गुफामें रहकर भजन करने लगे। कई वर्ष बाद उन्हें इष्टदेवके दर्शन हुए। उनकी दिव्य लीलाओंके भी दर्शन उन्हें होने लगे। उनकी निभृत तपस्याका अन्त हुआ। ब्रजमण्डलके सिद्ध महात्माके रूपमें उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। लोग दूर-दूरसे उनके दर्शन करने आने लगे।

एक बार सिधिया महाराज ब्रज गये वहाँके तीर्थोंके दर्शन करनेके उद्देश्यसे। वे जहाँ भी गये वहाँ उन्होंने प्रशंसा सुनी लालाबाबूके असाधारण त्याग, वैराग्य, भक्ति-भाव और परमार्थमें उनकी असाधारण उपलब्धियोंकी। उनके हृदयमें उत्कण्ठा जागी उनसे दीक्षा लेनेकी। वे सद्गुरु गोवर्धन पहुँचे। लाला बाबूके सामने प्रणत हो उनसे दीक्षाके लिए प्रार्थना की।

उन्होंने कहा—‘महाराज ! यदि भगवान्‌को पाना चाहते हैं, तो केवल दीक्षासे कुछ न होगा। उन्हें पानेके लिए दोनों हाथ बढ़ाने होंगे। एक हाथसे संसारको पकड़े रहेंगे, दूसरेसे उनके चरण स्पर्श करना चाहेंगे, तो उनके चरणोंकी प्राप्ति कभी न होगी। आप दोनों हाथ बढ़ानेको तैयार हैं क्या ?’

सिधिया महाराज तो दोनों हाथ बढ़ानेको तैयार थे नहीं। उन्होंने कहा—‘आप ठीक कहते हैं महाराज। यह पथ सबके लिए नहीं है। इसके लिए चाहिये पूर्वजन्मकी साधना और सुकृति।’ इतना कह वे लालाबाबूके चरणोंमें प्रणाम कर गोवर्धन चले गये।

इसी प्रकार जो भी ब्रजमें आता, लाला बाबूकी प्रशंसा सुन उनके दर्शन अवश्य करता। उनकी गुफाके सामने इतनी भीड़ होने लगी कि उन्होंने चूपचाप किसी निजन स्थानमें चले जानेका निश्चय किया।

अर्धरात्रिमें अपनी गुफासे बे चल पड़े । उसी समय ग्वालियरसे कुछ अश्वारोही आ रहे थे उनके दर्शन करने । दुर्भाग्यसे रात्रिके अँधियारेमें एक घोड़ेके खुरसे उनका पैर कुचल गया । कुछ ही दिनोंमें घाबने असाधारण रूप धारण कर लिया ।

भक्त लोग उन्हें वृन्दावनके मन्दिरमें ले गये । बहुत दिनों तक चिकित्सा चलती रही । पर कोई लाभ न हुआ । भक्तोंने प्रश्न किया— 'प्रभु ! आपके प्राणप्रिय विग्रह श्रीकृष्णचन्द्रके सान्निध्यमें भी आपको इतना कष्ट ! ऐसा क्यों ?'

रोगाक्रान्त लालाबाबूका मुखारविन्द एक अपूर्व आनन्द-किरणसे मुकुलित हो उठा । उन्होंने कहा— 'तुमने तो मेरे प्रभुका दिया यह दुःख हो देखा है । तुमने कब देखा है उनका दिया वह दिव्य आलोक, जो सदा मेरे हृदयमें झलमल करता रहता है, जिसमें श्रीकृष्णचन्द्र और राधारानीका सुमधुर लीला-विलास चलता रहता है ? कौन-सा पलड़ा भारी है—दुःखका या आनन्दका ?'

धीरे-धीरे महाभागवत लालाबाबूकी जीवन-धारा क्षीण पड़ने लगी । उनके इङ्गितपर लोग उन्हें ले गये यमुना-तटपर । वहाँ युगलकी प्रेममयी लीलाका दर्शन करते-करते उन्होंने लीलामें प्रवेश किया ।

पिसी माँ गोस्वामिनी और गोपेश्वर गोस्वामी (वृन्दावन)

पश्चिम बंगालमें सिउड़ी जिलेके अन्तर्गत सरकार रायपुर नामक ग्राम है । यहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षद श्रीमुरारीगुप्तके सेवित बालरूप श्रीनिताई-गौर विग्रहोंकी सेवा उनके भाईके वंशजों द्वारा कई पीढ़ियोंसे होती आ रही थी । एक समय ऐसा आया जब उस वंशमें श्रीविग्रहोंकी सेवा करनेवाला कोई न रहा । ग्रामके सब लोग महामारी और मलेरियाके प्रकोपके कारण ग्राम छोड़कर चले गये । कुछ दिनोंमें ग्रामने जंगलका रूप धारण किया । निताई-गौरका मन्दिर ध्वंस हो गया । श्रीविग्रह कूड़ेके नीचे दब गये । पासके ग्रामोंके लोग इस जंगलका उपयोग ढोर चरानेके लिए करने लगे ।

कुछ वर्ष बाद एक ग्वालेने, जो वहाँ नित्य गायें चराने जाया करता, देखा कि उसकी गायोंमें-से जो सबसे अधिक दूध देती है, वह एक निश्चित स्थानपर खड़ी होकर रोज थनसे दूध टपकाया करती है । यह बात आस-पासके गाँवोंमें फैल गयी । लोगोंने उस स्थानकी खुदायी की तो नितार्ई-गौरके श्रीविग्रह निकले । श्रीविग्रहोंकी चौकियोंके नीचे खुदा था—‘दासमुरारीगुप्त’ ।

सिउड़ीके लोगोंने श्रीमूर्तियोंके अंगराग और अभिषेकके पश्चात् उनकी सेवाकी उत्तम व्यवस्था की । कुछ दिन बाद तीर्थयात्राको निकले उड़ीसा निवासी सिद्ध बलरामदास बाबाजी महाराजको स्वप्नादेश हुआ । तदनुसार वे सिउड़ीमें रहकर इन मूर्तियोंकी सेवा करने लगे ।

श्रीमती चन्द्रशशी गोस्वामिनी नदिया जिलेके अन्तर्गत डेलग्रामके प्रसिद्ध और धनी मुखोपाध्याय वंशकी कुलवधू थीं । वे अपनी जमींदारीके किसी कामसे सिउड़ी गयीं । गौर-नितार्ईके मन्दिरके निकट एक मकान लेकर रहने लगीं । नित्य-प्रति बालरूप गौर-नितार्ईकी मनोहर मूर्तियोंके दर्शन करतीं और एक मन दूधकी खीरका भोग लगातीं । एक दिन स्वप्नमें देखा कि गौर-नितार्ई दोनों भाई उनसे कह रहे हैं—‘माँ ! हमें बड़ी भूख लगी है । तू अपने हाथसे खीर पकाकर खिला ।’ भाग्यवती ब्राह्मण कन्याने जब बलरामदास बाबाजीसे स्वप्नकी बात कही, तब वे बोले—‘वैष्णव-शास्त्रोंके अनुसार किसी अदीक्षित व्यक्ति द्वारा ठाकुरकी रसोई नहीं बनायी जा सकती ।’ चन्द्रशशीदेवीने श्रीबलरामदास बाबाजीसे मन्त्र ग्रहण किया और अपने हाथसे खीर पकाकर गौर-नितार्ईको भोग लगाया । उसी रात उन्होंने देखा कि दोनों बालक उनके पास आकर उनका आँचल पकड़कर कह रहे हैं—‘माँ ! तुम जाओ नहीं । तुम चली जाओगी तो हमें खीर कौन खिलाया करेगा ? तुम हमारी माँ हो, हम तुम्हें जाने न देंगे ।’ चन्द्रशशीने प्यारसे कहा आँचल छोड़नेको, पर उन्होंने न छोड़ा । खींचातानीमें आँचल फट गया । उसका एक टुकड़ा गौरके हाथमें रह गया । चन्द्रशशीकी निद्रा भंग हुई तो देखा कि सचमुच उनके आँचलका एक कोना फटा हुआ है । उसी समय उन्होंने बलरामदास बाबाजीसे जाकर स्वप्नका सारा वृत्तान्त कहा ।

अभी सूर्योदय हुआ ही था । मन्दिरका द्वार खुला नहीं था । बलरामदास बाबाजीने झट जाकर द्वार खोला और श्रीविग्रहको जगाया । सभीको देखकर विस्मय हुआ गौरके हाथमें चन्द्रशशीके आँचलका फटा हुआ

अंश ! सभी प्रेमानन्दमें विभोर ही गये । सब चन्द्रशशीके भाग्यफली सराहना करने लगे । चन्द्रशशी तन-मनकी सुध खोकर एक अपूर्व भाव-मुद्रामें डूबने और उत्तराने लगीं ।

चन्द्रशशीने देश जानेका विचार सदाके लिए त्याग दिया । धन-सम्पत्ति और आत्मीय स्वजनोंका मोह भी छोड़ दिया । मन्दिरमें रहकर अपने प्राणधन गौर-निताईकी सेवा करने लगीं । उनकी आयु इस समय २० वर्षकी थी । इतनी अल्पावस्थामें घर-द्वार छोड़कर मन्दिरमें बाबाजीके साथ रहनेके कारण लोग उनके सम्बन्धमें तरह-तरहकी बातें कहने लगे । इससे उन्हें असह्य दुःख हुआ । एक रात वे अपने दुःखकी बात गौर-निताईसे कहते-कहते सो गयीं । स्वप्नमें गौर-निताईने उनके गलेमें बाँहें डालते हुए कहा—‘माँ हमें लेकर वृन्दावन चलो ।’

अति शीघ्र चन्द्रशशी और बलरामदास बाबाजी गौर-निताईको लेकर नौका द्वारा वृन्दावन पहुँचे । जिस समय नौका घाटपर आकर लगी, नदिया जिलेकी भक्ता नामकी एक भक्तिमती रमणी यमुना-स्नान कर रही थी । वे बड़े आदरसे गौर-निताई और उनकी सेविकाको वनखण्डी मोहल्लेमें अपने घर ले गयीं । चन्द्रशशी उनके घर रहकर गौर-निताईकी सेवा परमानन्दपूर्वक करने लगीं । भक्तिमती भक्ता सेवा-कार्यमें उनकी सहायता करने लगी । चन्द्रशशी भक्तादेवीको दीदी कहकर पुकारतीं । मोहल्लेके लोग भक्तादेवीको पिसीमाँ (बुआजी) कहकर पुकारते । इसलिए चन्द्रशशीको भी वे ‘पिसी माँ’ कहने लगे ।

पिसी माँ गोस्वामिनी किस प्रकार निताई-गौरका पुत्रवत् लालन-पालन करतीं और निताई-गौर कितना उनकी सेवासे प्रसन्न रहते, यह सिउड़ीकी ही एक घटनासे स्पष्ट है । एक दिन निताई-गौरके लिए रसोई करते-करते उन्हें मासिक स्त्री-धर्मके लक्षण दीख पड़े । वे रसोईघरसे बाहर जाकर मन्दिरके सामने आँगनमें लेट रहीं और निताई-गौरकी ओर देख-देख अश्रु प्रवाहित करने लगीं । ‘आज मेरे निताई-गौरको मेरे हाथकी रसोईका भोग न लग सकेगा ।’ इस बातका दुःख करते-करते उन्होंने जैसे जागृत अवस्थामें ही स्वप्न देखा । निताई-गौर दोनों भाइयोंने उनके निकट आकर कहा—‘माँ दुःखकी कोई बात नहीं । तुम हमारी माँ ही और हम तुम्हारी प्रतिपाल्य सन्तान । तुम भी वही करो जो साधारण जननी ऐसी अवस्थामें

किया करती हैं । उसमें कोई दोष नहीं । उठो, स्नान कर हमें खानेको दो । बड़ी भूख लगी है । अबसे तुम इस रोगसे मुक्त हो जाओगी ।' पिसी माँने आदेशानुसार कार्य किया । उसके बादसे उन्हें कभी मासिक-धर्म नहीं हुआ ।

वृन्दावन आनेके पश्चात् कौतुकी नितार्ई-गौर भाँति-भाँतिकी लीला कर पिसी माँ और अन्य भक्तोंको सुखी करने लगे । उन्हें कभी किसी वस्तुकी आवश्यकता होती, कभी किसी वस्तुकी । वे कहीं-न-कहींसे माँग-जाँचकर उसकी पूर्ति कर लेते । सर्वेश्वर्य परिपूर्ण होते हुए भी प्रभु प्रेमके राज्यमें सदा कंगाल हैं । प्राकृत जगतकी अच्छी-मे अच्छी और कीमती-से-कीमती वस्तुका भी कोई मूल्य नहीं, यदि वह प्रेम-पुष्पकी गंधसे सुवासित नहीं है, यदि उसे किसी प्रेमीके कर-कमलने स्पर्श नहीं किया है । ऐसी वस्तु प्रभुको अपने प्रेमी भक्तोंके अतिरिक्त और किससे प्राप्त हो सकती हैं ? उनके अपने भंडारमें तो इसके होनेका कोई प्रश्न ही नहीं । इसीलिए तो वे भक्तोंके आगे सदा हाथ पसारे रहते हैं । भूखा क्या न करता ? प्रेमसे दी हुई वस्तुकी उनकी भूख इतनी प्रबल होती है कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके अधिपति होते हुए भी भक्तोंके आगे भिखारी बननेमें उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता !

गौर-नितार्ईके पास खड़ाऊँ नहीं थीं । माँसे खड़ाऊँ ला देनेको कहते तो शायद वे कहतीं—'खड़ाऊँ क्या करोगे ? तुम्हें कहाँ जाना-आना रहता है ?' वे कब चाहतीं कि उनके बाजक उन्हें छोड़कर एक क्षणके लिए भी कहीं जायें । इसलिए वे किसी दूसरे भक्तकी बाट देखते रहे । श्रावणके महीनेमें सेरपुर बगुड़ासे संध्रान्त बंगाली परिवारकी एक महिला झूलनके दर्शन करने वृन्दावन आयीं । वे गौर-नितार्ईके मन्दिरके निकट चिड़ियाकुञ्जमें रहने लगीं ।

उस दिन तीसरे पहर कुछ-कुछ वृष्टि हो रही थी । मन्दिरके बरामदेमें बैठी पिसी माँ बाँये हाथसे नितार्ई-गौरका पंखा खींच रही थी, दाहिने हाथसे माला कर रहो थीं । वृष्टि तेज होने लगी । पिसी माँको तन्द्रा-सी आ गयी । उसी समय उन्होंने देखा कि नितार्ई मन्दिरसे निकले और पानीमें भीगते हुए आँगनमें उतरे । गौरने उनका अनुगमन किया । वे चीख पड़ीं—'ओरे नितार्ई-गौर ! कहाँ जा रहे हो भीगते-भीगते ? सर्दी हो जायगी ।' उन्हें लगा कि जैसे उन्होंने जाग्रतमें स्वप्न देखा हो । वे फिर पंखा खींचने लगीं और फिर तन्द्रा आ गयी । नितार्ई-गौर चिड़ियाकुञ्जमें जा पहुँचे । पूर्वोक्त महाभाग्यवती सेरपुर बगुड़ा निवासिनी महिला भी उस समय सो रही थीं ।

निताई-गौर उनके सिरहाने जा बैठे । उनका सिर हिलाते हुए बोले—‘यहाँ सोने आयी है ? उठ ।’ स्वप्नावस्थामें वे बोलीं—‘कौन हो तुम ?’

‘हमारा नाम निताई-गौर है । हम बनखण्डीकी पिसी माँके बेटे हैं ।’

‘तुम पिसी माँके बेटे ? किस प्रकार ?’

‘मोहल्लेके लोग हमें पिसी माँके बेटे ही कहते हैं । वृन्दावनके सब लोग जानते हैं, हम उनके बेटे हैं ।’

‘तो तुम यहाँ कैसे ?’

‘हमारे पास खड़ाऊँ नहीं हैं । देख न हमारे पैर कीचड़में कैसे सने हैं । हमें खड़ाऊँ दे ।’

महिला निताई-गौरका अपरूप रूप देखकर मुग्ध हो गयीं । उन्होंने ऐसे रूपकी पहले कभी कल्पना भी नहीं की थी । तन्द्रा भंग होनेपर वह उन दोनों बालकोंका स्मरण कर रोने लगीं । रोते-रोते घरसे निकलीं । वृष्टि अभी भी हो रही थी । पथमें जिसे देखती उसीसे पूछतीं—‘पिसी माँके बेटे निताई-गौरका घर कहाँ है ?’ एक ब्रजवासीने बनखण्डीके निताई-गौरका मन्दिर दिखा दिया । महिलाने भीतर प्रवेश किया । पिसी माँ उस समय भी पंखा खींच रही थीं और माला जप रही थीं । उसने पूछा—‘यह क्या निताई-गौरकी पिसी माँका घर है ?’

‘हाँ माँ ! यह पिसी माँके बेटे निताई-गौरका घर है ।’ पिसी माँने उत्तर दिया और पूछा—‘तुम रो क्यों रही हो माँ ?’

‘तुम्हारे दोनों बेटे कहाँ हैं ? मैं उन्हें देखना चाहती हूँ ।’ महिलाने छटपटी दिखलाते हुए विनयपूर्वक कहा ।

पिसी माँने महिलाको आदरपूर्वक बिठाकर मन्दिरका द्वार खोल दिया । ठीक अपने स्वप्नके निताई-गौरके मन्दिरमें दर्शन कर महिलाके प्राण रो दिये; अंग पुलकसे परिपूरित हो गया । वह कुछ भी कर न सकी । बड़ी देर तक मूर्च्छित अवस्थामें भूमिपर पड़ी रही । होश आनेपर आत्म-सम्बरण कर पिसी माँसे स्वप्नका सब वृत्तान्त कहा । पिसी माँने भी तन्द्रावस्थामें जो कुछ देखा था, कहा । दोनों एक दूसरेसे गले मिलकर बड़ी देर तक आनन्दाश्रु विसर्जित करती रहीं ।

भाग्यवती महिलाने चाँदीकी खड़ाऊँ बनवाकर निताई-गौरको भेंट की ।

आज भी मन्दिरमें वह खड़ाऊँ वर्तमान हैं । नितार्ई-गौर प्रेमसे उसका व्यवहार करते हैं ।

सेरपुर बगुड़ाकी ही प्रसन्नदासी नामकी एक महिला वृन्दावन-वास करती थीं । उन्होंने एक दिन स्वप्नमें देखा कि गौर-नितार्ई अलंकारीसे भूषित हो उसके सम्मुख आये हैं । अपने विरंचि-वाञ्छित, ध्वजवज्रांकुश-चिह्नित चरणोंकी दिखाकर कह रहे हैं—‘देख हमारे पास सब आभूषण हैं, पर नूपुर नहीं हैं । हमें नूपुर दे ।’ निद्रा भंग होनेपर प्रसन्नदासी पिसी माँके पास गयीं और प्रेमाश्रु विसर्जित करते हुए स्वप्नका वृत्तान्त कहा । सोनेके नूपुर नितार्ई-गौरको पहनाकर वे कृतार्थ हुई ।

कुछ दिनोंसे नितार्ई-गौरके प्रिय सेवक एक बाबाजी उनकी सेवामें पिसी माँका हाथ बटा रहे थे । उनके मनमें एक कुवासना जागी । रात्रिमें मन्दिरका दरवाजा खोलकर नितार्ई-गौरके ५००) रुपयेकी कीमतके स्वर्णाभूषण उतार ले गये । प्रातः उठकर पिसी माँने जब मन्दिरका दरवाजा खोला तो श्रीविग्रहोंकी बिना आभूषणके देख उन्हें बहुत दुःख हुआ । वे मन ही मन कहने लगीं—‘हाय ! यह कुकार्य किसने किया ? ऐसा भी पापी जीव जगत्में कोई है ?’

चितित अवस्थामें वे मन्दिरके दालानमें लेट गयीं । कुछ तन्द्रा आ गयी । तन्द्रामें उन्होंने गौर-नितार्ईसे कहा—‘बोलो न रे ! तुम्हारे गहने कौन ले गया ?’

उत्तरमें उन्होंने कहा—‘माँ ! वह वैष्णव बड़ा दरिद्र है । हम दोनों भाइयोंको उसने बहुत रबड़ी खिलायी है । अलंकार हमने उसे दे दिये हैं । उससे कुछ कहना मत ।’

माँ क्या करतीं ? अपने लड़ते बेटोंकी बात तो उन्हें माननी ही थी । पर वे अलंकार कहाँसे लायेंगी ? स्वयं तो वे अपने अतुल ऐश्वर्यको तिलाञ्जलि देकर कंगालिनी वेशमें केवल नितार्ई-गौररूपी धनसे धनी होकर वृन्दावन चली आयीं हैं । उन्होंने हँसकर कहा—‘ठीक है । तुम्हारी वस्तु तुम किसीको दे दो या रक्खो । मेरा उसमें क्या ? तुम्हें जरूरत होगी तो फिर कहींसे ले आओगे । माँगनेमें तुम्हें लज्जा तो है नहीं । ब्राह्मणोंके बेटे जो ही ।’

एक रात नितार्ई-गौरने पिसी माँसे स्वप्नमें कहा—‘हमें चौरासी कोसकी

‘व्रज-परिक्रमा करा लाओ ।’ दूसरे दिन ही उन्होंने नितार्ई-गौरको बिठाया पालकीमें, साथमें लिया मथुरादास और कृष्णदास नामक अपने अनुगत दो वैष्णवोंको और निकल पड़ीं संकीर्तन करते हुए व्रज-परिक्रमाके लिए । मार्गमें नितार्ई-गौरको जो आनन्द हुआ, उसकी कोई सीमा नहीं । तीस-चालीस दिनमें परिक्रमा लगभग शेष की । मथुराके निकट पहुँचनेपर पिसी माँ कृष्णदासको साथ ले आगे-आगे मथुरा शहरमें जाने लगीं नितार्ई-गौरकी सेवाका पहलेसे कुछ प्रबन्धकर रखनेके उद्देश्यसे । पीछे-पीछे आ रहे थे मथुरादास पालकीके साथ । उस समय मथुरामें अंग्रेज सैनिकोंका वास था । कुछ सैनिकोंको लाल कपड़ेसे ढकी उस पालकीको देख कौतूहल हुआ । उन्होंने मथुरादाससे पूछा—‘इसमें क्या है ?’

‘इसमें ठाकुर हैं ।’

‘हम ठाकुर देखेंगे ।’ सैनिकोंने जोर देते हुए कहा ।

मथुरादासको भय हुआ कि कहीं म्लेच्छ सैनिक ठाकुरको छु न लें । उन्होंने विनयके स्वरमें उत्तर दिया—‘अभी ठाकुरके दर्शन न हो सकेंगे ।’

सैनिकोंकी समझमें यह बात न आयी । वे जबरदस्ती दर्शन करनेको उद्यत हुए । उसी समय पालकीमें-से विद्युत्के समान बिषम तेज निकला, जिससे सैनिकोंके नेत्र झुलस गये । वे भयसे ‘ओ गॉड !’ कहकर चीख मारते हुए भाग गये ।

पिसी माँसे जब मथुरादासने सारा वृत्तान्त कहा तो वे बोलीं—‘मेरे बेटे अब आत्मरक्षामें समर्थ हो गये हैं—यह जानकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ । अब मुझे कोई चिंता नहीं ।’

इसी प्रकार नितार्ई-गौरकी आत्मवत् सेवा करते-करते बहुत दिन बीत गये । अब पिसी माँकी आयु १०० वर्षकी हो गयी । अभी तक वे नित्य तीन बार यमुना-जलसे स्नान कर नितार्ई-गौरकी सेवा स्वयं करती रहीं । पर अब सेवा करना कठिन हो गया । उन्होंने नित्यानन्द वंशके श्रीपाद गोपेश्वर गोस्वामी प्रभुको सेवा-कार्यमें नियुक्त किया । गोपेश्वर गोस्वामी बड़े निष्ठावान् भक्त होते हुए भी प्रेम-सेवाकी परिपाटीसे अनभिज्ञ थे । गौर-नितार्ईको शीतकालमें उष्ण जलसे स्नान कराया जाता था । गोपेश्वर गोस्वामीने उन्हें शीतकालके प्रारम्भमें एक दिन शीतल जलसे स्नान करा दिया । उन्हें सर्दी हो गयी । नाक बहने लगी । पर गोपेश्वर गोस्वामीका

इधर लक्ष्य ही नहीं। होता भी कैसे ? पिसी माँ जैसे उनके प्राण होते तब न होता। मातृवत्सल बाल नितार्ई-गौरने दुःखी हो माँकी याद की। माँ अब अधिकतर मन्दिरके दूसरे मञ्जिलपर रहने लगी थीं। उतरने-चढ़नेमें उन्हें कष्ट होता था। इसलिए नीचे कम ही आया करती थीं। पर बच्चोंका वायरलेस मिलते ही वे नीचे उतर पड़ीं। मन्दिरके सामने जाकर देखा दोनों बालकोंकी आँखें लाल हो रही हैं, नाकसे श्लेष्मा निर्गत हो रहा है। निकट जाकर स्पर्श किया तो देखा कि देह भी गरम ही रहा है। यह देख उन्हें बहुत कष्ट हुआ। आँचलसे नाक पोंछते हुए उन्होंने गोस्वामीको पुकारा। रोते-रोते उनसे कहने लगीं—‘तूने यह क्या किया ? ठण्डे जलसे स्नान कराकर बच्चोंको बीमार डाल दिया। देख कैंसी सर्दी हुई है, कैंसी नाक बह रही है !’ इतना कह उन्होंने श्लेष्मा भरा अपना आँचल उन्हें दिखाया। गोपेश्वर गोस्वामीको विश्वास न हुआ। उन्होंने अविश्वास व्यक्त भी कर दिया। पिसी माँने कुछ क्रोध और अभिमानमें भरकर आँचलका दूसरा सिरा गौरकी नाकसे लगाकर कहा—‘बेटा सिनक तो !’ उसी समय श्लेष्मा फिर नाकसे निकल पड़ा। श्लेष्माकी अलौकिक गन्धसे मन्दिर महक उठा। गोपेश्वर गोस्वामी सन्तप्त हो पिसी माँके चरणोंमें गिर पड़े।

कृष्णदास बाबा गोपेश्वर प्रभुके शिष्य थे। वे विष्णुपुर निवासी थे। गोपेश्वर प्रभुने उन्हें अपने साथ नितार्ई-गौरकी सेवामें नियुक्त कर रखा था। वे परम गौर-भक्त थे। एक दिन भोगके समय वे मन्दिरके द्वारपर बैठे ध्यान कर रहे थे। ध्यानमें देखा कि विष्णुपुरके दक्षिण भुतुमुड़ा ग्राममें हारान और मधु नामके सौंतालों*के घर एक कैथेका वृक्ष है। सौंतालोंकी दो लड़कियाँ वृक्षपर चढ़कर फल तोड़ रही हैं। नितार्ई-गौर वृक्षके नीचे खड़े उनसे फल माँग रहे हैं। वे पके-पके फल तोड़कर फेंक रही हैं और नितार्ई-गौर आनन्दपूर्वक खा रहे हैं। दो और सौंताल कन्याएँ उन्हें उस फलका लोभ दिखाकर अपने ग्राम ले जाना चाह रही हैं और यह गीत गाते हुए मधुर नृत्य कर रही हैं—

तुरा कि मोदेर बाड़ी जाबिरे ?

तुरा कि मोदेर बाड़ी जाबिरे ?

पाका-भाका क्याँद दिवो, तोलाय बसे खाबिरे ।

* बंगालकी एक नीच जाति ।

तोलाय वसे खाविरे ।

‘तुम क्या हमारे घर जाओगे ? जाओगे तो हम पके-पके कैंधे देंगे, तुम वृक्ष तले बैठकर खाओगे ।’

भोगके पश्चात् कृष्णदास वावाने नितार्ई-गौरका पत्र और पुष्पोंसे सौतालोंके ही भावोपयोगी अति सुन्दर शृङ्गार किया और मन्दिरके दरवाजेपर बैठकर आनन्दसे गाने लगे सौताल कन्याओंका वही गीत—
तुरा कि सोदेर वाड़ी जाविरे ?

गोपेश्वर प्रभुने पूछा—‘कृष्णदास आज बड़ा आनन्द हो रहा है । क्या बात है ?’ कृष्णदासने अपने ध्यानकी घटनाका सब वृत्तान्त सुनाया । गोपेश्वर प्रभुके पिता सिद्ध पुरुष थे । उन्होंनेकी कृपामें विष्णुपुरके निकटस्थ ग्रामोंके सौताल गौर-भक्त हुए थे । उन्होंने विष्णुपुरके अपने किसी व्यक्तिसे पत्र लिखकर पूछा कि क्या उस दिन उस गांवमें कृष्णदास वावाके अनुभवमें आयी घटना-जैसी कोई घटना हुई थी । उत्तर आया कि उस दिन उस गांवमें सौतालके एक उत्सवमें गौर-नितार्ईको लेकर ठीक उसी प्रकारका एक लीलाभिनय किया गया था ।

पिसी माँके लाड़-प्यारके कारण उनके बालक कुछ ढीठ हो गये थे । उनकी इच्छाके अनुसार सबको चलना होता था । कुछ भी उनकी इच्छाके विरुद्ध होता तो वे रुष्ट हो जाते और अपने रोषका प्रदर्शन करनेमें कोई कसर न रखते । उनके रोषकी दो लीलाएँ सुनिये । मन्दिरके दरवाजेपर १० बत्तियोंका दीप जलाया जाता था । कोजागर पूर्णिमाके दिन नितार्ई-गौर वरामदेमें विलास करते थे । उस दिन कोजागर पूर्णिमा थी । गोपेश्वर प्रभु सन्ध्याके बाद ही दस बत्तियोंका दीप बुझाकर कहीं बाहर चले गये, इस कारण कि उसमें तेल अधिक खर्च होता । वरामदेमें भी उस दिन नितार्ई-गौरको नहीं लाया गया । मन्दिरके भीतर पीतलकी बड़ी दीवटपर एक बत्तीका घृत-दीप जल रहा था । पिसी माँ वरामदेमें बैठी हरिनाम कर रही थीं । एकाएक जोरका शब्द हुआ । मन्दिरमें अन्धकार छा गया । गौरने दीवटको उठाकर मन्दिरके कोनेमें फेंक दिया । पिसी माँको गौरके रोषका कारण समझनेमें देर न लगी । गोपेश्वर प्रभुके आनेपर उन्होंने कहा—‘गोपेश्वर ! तू आज नितार्ई-गौरको वरामदेमें नहीं लाया । दस बत्तियों वाला दीपक भी बुझा गया । देख इसलिए गौर गुस्सेमें दीवट फेंक-फाँक अंधेरेमें बैठा है । ऐसे क्यों करता है तू ?’

पिसी माँको गोपेश्वर गोस्वामीको आज्ञा थी किसीको प्रणामी लेकर प्रसाद न देनेकी । एक दिन एक व्यक्तिने दो आने ठाकुरके सामने भेंटकर प्रसाद माँगा । गोपेश्वर गोस्वामीको पिसी माँकी आज्ञाका ध्यान न रहा, या उन्होंने भेंटकी ओर लक्ष्य नहीं किया । उन्होंने उस व्यक्तिको प्रसाद दे दिया । पिसी माँ उस समय भी बरामदेमें बैठी जप कर रही थीं । उन्होंने देखा कि मन्दिरके भीतरमें चन्दन घिसनेका चकला बरामदेमें इस प्रकार आकर गिरा, जैसे किसीने जोरसे फेंक दिया हो । बरामदेसे टकराते-टकराते वह बगलके कमरेमें रखे चावलके घड़ेसे जा लगा । घड़ा टूट गया, चावल बिखर गये । पिसी माँने गोपेश्वर प्रभुको बुलाकर कहा—‘देखा; उस दुअग्रीके पीछे गौरका गुस्सा ? मेरा इतना बड़ा घड़ा तोड़ दिया और चावल बिखेर दिये ! तू क्यों उसे गुस्सा दिलानेका काम करता है ?’ गोपेश्वर प्रभु गौर-निताईकी सेवामें पहलेसे अधिक तत्पर और सावधान रहने लगे ।

पिसी माँकी अवस्था १०६ वर्षकी हो गयी । उन्होंने गोपेश्वर गोस्वामीसे कहा कि वे अमुक दिन देह-त्याग देंगी । उसी दिन पूर्ण स्वस्थावस्थामें मन्दिरके बरामदेमें बैठी गौर-नाम जप करते-करते, गौर-निताईके सुन्दर चन्द्रवदनोंका दर्शन करते-करते उन्होंने अपना पार्थिव देह त्यागकर नित्य-लीलामें प्रवेश किया ।

उस समय श्रीधामपुरीके श्रीराधारमणचरणदास बाबाजी महाराज (बड़े बाबा) वृन्दावनमें उपस्थित थे । उन्होंने अपनी भक्तमण्डलीके साथ कीर्तन करते हुए पिसी माँको लेकर वृन्दावनकी परिक्रमा की । वृन्दावनकी सभी कीर्तन-मण्डलियोंने उस कीर्तनमें योग दिया । प्रत्यक्षदर्शी वैष्णवोंका कहना है कि वैसा कीर्तनानन्द वृन्दावनमें कभी नहीं हुआ । उनका यह कहना है कि दाहके समय यमुनाघाटपर पिसी माँके शवसे एक अपूर्व ज्योतिका प्रकाश हुआ ।

पिसी माँके अप्राकट्यके पश्चात् गोपेश्वर प्रभु एक बार भयानक चेचक रोगसे आक्रान्त हुए । लगातार एक महीने तक शय्यागत रहे । अन्तमें उनका बोल बन्द हो गया । उनकी बाह्यज्ञानशून्य अवस्थाको देखकर लगने लगा कि प्राण अब निकले, अब निकले । पर उस अवस्थामें भी वे परमानन्दपूर्वक नाना प्रकारके सुख-स्वप्न देखते रहे । कभी देवलोकमें जाकर आनन्दपूर्वक विचरते, कभी भूलोकमें आकर निताई-गौरकी सेवा करते । ओपरान्तिमें उन्होंने देखा कि राक्षसीके समान कराल-वदना एक स्त्री उन्हें

कहीं ले जानेका उद्योग कर रही है। उसी समय पिसी माँ गोस्वामिनी नितार्ई-गौरके साथ उनकी शय्याके पास आकर खड़ी हुई। राक्षस-मूर्ति उन्हें देखकर अन्तर्हित हो गयी। परम दयालु नितार्ई उनके अङ्गपर श्रीहरस्त फेरते हुए बोले—‘दादा ! उठो, तुम ऐसे पड़े रहोगे तो कौन हमें खानेको देगा ? उठो, बड़ी भूख लगी है।’ थोड़ी देरमें गोपेश्वर प्रभुको होश आया। उनकी छातीमें जमा ढेर-का-ढेर कफ स्वतः निकल पड़ा। वे उठकर बैठ गये। उन्हें लगा कि उनके शरीरमें कोई व्याधि नहीं है।

श्रीगोपेश्वर गोस्वामी प्रभु बाल-ब्रह्मचारी थे। नितार्ई-गौरकी सेवामें आनेसे पूर्व वे तीर्थोंमें भ्रमण करते रहते थे। एक स्थानपर बँधकर बैठना उनके स्वभावके विपरीत था। इसीलिए नितार्ई-गौरकी सेवाका भार वे नहीं लेना चाहते थे। पर पिसी माँके विशेष आग्रह और नितार्ई-गौरकी इच्छासे विवश होकर उन्हें सेवा लेनेको बाध्य होना पड़ा था।

सेवा-भार ग्रहण करते ही वे एक बड़ी विपदमें पड़ गये। नितार्ई-गौरकी बाल-मूर्तियाँ वात्सल्यमयी पिसी माँके वात्सल्य-रसके अनुरूप थीं। श्रीपाद गोपेश्वर प्रभु परम गौर-भक्त थे। पर वे सख्यरसके साधक थे। बाल-गौर और बाल-नितार्ईकी सेवामें उनके प्राण नहीं भरते थे। कुछ लोगोंका कहना है कि उन्होंने निरन्तर नितार्ई-गौरसे प्रार्थना की, जिसका फल-स्वरूप वे धीरे-धीरे बढ़ने लगे और कई वर्षोंमें पूर्ण किशोर अवस्थाका प्राप्तकर अपना वर्तमान रूप धारण किया।

पर ‘गौड़ीय-वैष्णव जीवन’के लेखक प्रातः स्मरणीय श्रीहरिदासने लिखा है कि श्रीगोपेश्वर गोस्वामीने स्वयं उनसे कहा था—“मैंने पिसी माँसे कहा—‘इतनी छोटी मूर्तिकी प्रीतिपूर्वक सेवा मुझसे नहीं होती।’ उसी समय मन्दिरमें गयीं और दोनों भाइयोंकी चिवुक पकड़कर जैसे ही उठाया वैसे ने उनका वर्तमान आकार हो गया।” जो भी हो, जिन लोगोंने नितार्ई-गौरको जेनों अवस्थाओंमें देखा है, वे साक्षी भरते हैं कि उनका आकार पहले बहुत गेटा था।

गोपेश्वर प्रभु प्रीतिपूर्वक सख्य भावसे उनकी सेवा करने लगे। झार, भोग, आरती, कीर्तनादिसे लेकर वर्तन माँजने तकका सारा काम देने हाथसे करते। कभी-कभी सेवा कार्यसे थककर नितार्ई-गौरको खरी-टी भी मुनाते।

पिसी माँके अप्राकट्यके बहुत दिन बाद एक दिन सेवा करते-करते उनके मनमें आया—‘इनकी सेवा करनेसे क्या लाभ ? इतने दिन हो गये सेवा करते-करते, कुछ भी तो नहीं हुआ । एकान्तमें भजन करता तो कुछ होता ।’ यह सोचकर उन्होंने सेवाके लिए एक और व्यक्ति नियुक्त कर दिया । स्वयं भजन करनेके उद्देश्यसे कुसुम-सरोवर चले गये ।

तीसरे दिन अर्धरात्रिमें जब वे सरोवरके तटपर एक बकुल वृक्षके नीचे बैठे भजन कर रहे थे, उन्होंने देखा—सरोवरके बीचों-बीच एक नयनरसायन आलोक । आलोक धीरे-धीरे निकटवर्ती होने लगा । जैसे ही तटके निकट आया, उन्होंने देखा कि नितार्ई-गौर आ रहे हैं । बकुलवृक्षके नीचे आकर वे उनके सम्मुख खड़े हो गये और बोले—‘दादा ! आज तीन दिनसे हमने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया है, चलो ।’ स्पष्ट है कि गोपेश्वर प्रभुका भजन पूरा हो गया । फलकी प्राप्ति भी साथ ही साथ हो गयी । जानेमें अब उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी ? वे चल पड़े । गोवर्धनमें एक महात्माने उन्हें देखते ही कहा—‘अरे गोपेश्वर ! तुम आ गये, कल रात स्वप्नमें नितार्ई-गौरने मुझसे कहा कि तीन दिनसे उन्होंने आहार नहीं किया है । इसलिए भाई, वृन्दावन जाओ और दोनोंकी सेवा करके उन्हें सुखी करो ।’

गोपेश्वर प्रभुने सोचा—‘अच्छा ! ये दोनों जगह-जगह जाकर मेरी वुराई कर रहे हैं ।’ अभिमानमें भरकर उन्होंने महात्मासे कहा—‘मैं वृन्दावन नहीं जाऊँगा । यहीं भजन करूँगा ।’

महात्माने उनसे प्रसाद पाकर कुछ विश्राम करनेको कहा । कुछ देरमें जब उनका रोष कम हुआ, तो समझा-बुझाकर वृन्दावन जानेको राजी किया । उनके दत्तिया ग्राममें पहुँचते-पहुँचते सन्ध्या हो गयी और मूसलाधार वृष्टि होने लगी । रात्रि वहीं व्यतीत करनेके उद्देश्यसे वे ब्रजवासीके घर रह गये ।

उधर नितार्ई-गौर बेचैनीसे इनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे एक-एक क्षण उन्हें भारी पड़ रहा था । सबेरा होते ही एक तंगेवाले गोपेश्वर गोस्वामीकी खोजते-खोजते उस ब्रजवासीके घर पहुँच गया और उससे बोला—‘गोपेश्वर गोस्वामी कहाँ हैं ? मुझे उन्हें वृन्दावन ले जा है । ऐसा मुझे स्वप्नादेश हुआ है ।’

गोपेश्वर प्रभु तंगिमें सवार हो वृन्दावन पहुँचे । मन्दिरकी इयोड़ीपर पहुँचते ही भीषण दुर्गन्धका अनुभव किया । सेवकसे पूछा—‘यह दुर्गन्ध कैसी है रे ?’

उसने उत्तर दिया—‘पता नहीं, तीन दिनसे इस दुर्गन्धके मारे मन्दिरके भीतर नहीं जा सका हूँ ।’

गोपेश्वर प्रभुने मन्दिरके भीतर जाकर चारों तरफ अन्वेषण किया, तो देखा कि ठाकुरकी मसहरीके ऊपर एक चूहा मरा पड़ा है । उन्होंने मन्दिरकी अच्छी तरहसे सफाई की । सब धो-पोछकर सेवाकी व्यवस्था की ।

उन्होंने अपना शेष जीवन बराबर नितार्ई-गौरकी सेवामें तन्मयतासे संलग्न रहकर व्यतीत किया ।

श्रीदुर्गी माँ

दुर्गी माँ और उनका लाड़ला बेटा श्रीविग्रहरूपी गोपाल कुछ दिनोंसे रङ्गजीके मन्दिरके बाहरी परकोटेके एक कक्षमें रहने लगे थे । दोनों उस एकान्त स्थानको प्राप्तकर बहुत प्रसन्न थे । दोनोंकी प्रेम-लीला वहाँ निविध्न चला करती थी । वात्सल्यमयी माँ गोपालको प्राप्तकर विश्वको भूल चुकी थी । उनका सारा विश्व सिमटकर गोपालके नन्हें चरणोंमें समा गया था । वे गोपाल और उसकी सेवाके सिवा और कुछ जानती ही न थी । गोपाल भी उनके सिवा और कुछ नहीं जानता था । गोपाल उनका सर्वस्व था और वे गोपालकी ।

पर दुर्गी माँ अब बहुत बूढ़ी हो गयी थी । उन्होंने एक दिन गोपालसे कहा—‘गोपाल अब मुझमें तेरी सेवा नहीं होती । तू मेरी सेवा किया कर ।’

गोपालको और क्या चाहिये था ? वह प्रेमसे माँकी सेवामें जुट गया । माँ उसके प्रेममें बहोश-सी बैठी-बैठी अश्रु-विसर्जन किया करती और वह उनकी सेवा किया करता । उनकी सेवा तो करता ही, घरको झाड़-डुहारकर ठीक रखा करता ।

दुर्गी माँकी अनन्य भक्ता थीं भक्तिमती ऊषाजीकी माँ श्रीमती प्रामादेवी । एक दिन उन्होंने दुर्गी माँसे कहा—‘माँ, तुम्हारा घर पहले

जितना गन्दा रहता था, उतना ही अब साफ रहने लगा है । कौन सफाई करता है?’

‘मेरे पास और है ही कौन गोपालके सिवा ?’ दुर्गी माँने बड़े सरल और सहज स्वभावसे उत्तर दिया ।

गोपाल माँकी सेवा तो करता । पर उन्हें खिजलाया भी बहुत करता । खिजलानेका उसका स्वभाव ही जो ठहरा ।

कितने ही दिनोंसे माँ अयाचित वृत्तिसे रहने लगी थीं । एक दिन वे गोपालसे बोलीं—‘गोपाल, आज तेरे भोगको मेरे पास कुछ नहीं है । तू किसी गोपीके घर चला जा ।’

गोपालने उस दिन किस गोपीके घर जाकर उसे धन्य किया, यह तो वही जाने । पर जब वह खा-पीकर लौटा तो बड़ी देर तक माँके कक्षके बाहर बरामदेमें बैठा रहा । माँको पता भी नहीं । वे कक्षके भीतर बैठी उसकी प्रतीक्षामें आँसू बहाती रहीं ।

इतनेमें श्रीरङ्गजीके मन्दिरके महन्तकी पत्नी पूज्या श्रीगुरुमाँ बाहर निकलीं । उन्होंने देखा कि माँके कक्षका दरवाजा बन्द है और उनका गोपाल बरामदेमें पालनेमें झूल रहा है । उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ ।

उन्होंने दरवाजेको हल्का-सा धक्का दिया, तो वह खुल गया । देखा कि दुर्गी माँ ध्यानमें बैठी हैं । उनके नेत्रोंसे अश्रुधार प्रवाहित हो रही है । उन्होंने कहा—‘माँ, आज गोपालको बाहर क्यों निकाल दिया ?’

‘क्या वह आ गया ?’ कहती हुई माँ भागकर बाहर आयीं । गोपालको उठाकर छातीसे चिपटा लिया । एक अनिर्वचनीय आनन्दकी हिल्लोलसे उनका हृदय भर गया । गोपालको भी माँके आलिगनसे अपूर्व सुख हुआ ।

क्या वियोगके बाद संयोगके इस आनन्दका उपभोग करना ही था गोपालके चुपचाप आकर बरामदेमें बैठे रहनेका मुख्य उद्देश्य ? रंगिय गोपालके सिवा इसे और कौन जान सकता है ?

एक बार दुर्गी माँने गोपालके साथ गोवर्धनकी परिक्रमा की । उनमें सिरपर थी एक कपड़ेकी पोटली । पोटलीमें उन्होंने गोपालको आराम लिटा रखा था । थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह सिरसे पोटली उतारकर दे

लेती कि गोपाल कहीं चला तो नहीं गया; क्योंकि गोपाल बहुत चंचल था, देर तक एक स्थानपर चुप-चाप पड़े रहना उसके स्वभावके प्रातिकूल था। फिर गिरि-गोवर्धनके तरु-लता, पशु-पक्षियों और गोप-बालक-बालिकाओंका आकर्षण भी उसे कम न था। वे जब वृन्दावन लौटीं और सिरसे पोटली उतारकर अपने कक्षका ताला खोलने लगीं तो ताला न खुला। उन्होंने सोचा कि गोपालके साथ कुछ देर बरामदेमें हो विश्राम करें। फिर कोई दीख जायगा तो उससे ताला खोलनेको कहेंगी।

पोटली खोली तो देखा गोपाल नहीं! वे लगीं चीख-चीखकर रोने—‘हाय मेरा गोपाल कहीं चला गया?’

उसी समय वेणु कुञ्जके श्रीमनोहरदास बाबाजी कहीं निकटसे दुर्गी माँका परिचित शब्द सुनकर वहाँ आ गये। उनसे रो-रोकर माँने अपनी व्यथा कही। उन्होंने ताली लेकर कक्षका ताला खोलनेका प्रयास किया। ताला खुल गया। जैसे ही दरवाजा खोला तो देखा गोपाल भीतर पालनेमें सो रहा है। उन्होंने कहा—‘माँ, तुम्हारा गोपाल तो भीतर सो रहा है। तुम व्यर्थ दुःखी हो रही हो।’

कोई और होता तो सोचता कि बुढ़ियाका दिमाग खराब हो गया है। गोपालको कक्षमें सुलाकर भूल गयी है और रोदन कर रही है। पर मनोहर बाबा जानते थे कि उसका गोपाल उसके साथ नित्य ऐसी ही लीलाएँ किया करता है।

दुर्गी माँ आनन्दके साथ कुछ रोषमें भरकर भीतर आयीं गोपालको डाँटती-डपटती। पर उसे गहरी नींदमें सोते देख चुप रह गयीं। न जाने गोपाल सचमुच गहरी नींदमें सो रहा था, या माँको चुप रखनेके लिए मक्कर गाँठकर पड़ा हुआ था और मन-ही-मन माँकी खीजका आनन्द ले रहा था।

दुर्गी माँ कौन थीं? इस प्रश्नका प्राकृत उत्तर तो आपको मिल हो चुका है। वे गोपालकी माँ थीं और गोपाल उनका बेटा था। पर उनका सांसारिक परिचय भी आप जानना चाहेंगे, जो इस प्रकार है।

उनका जन्म सन् १८५८ में कश्मीर प्रान्तके अन्तर्गत जम्मू जनपदके मीरपुर सिदड़े ग्राममें एक सुतार परिवारमें हुआ था। माँ श्रीमती शिवाबाई ७ वर्षकी अवस्थामें ही उन्हें छोड़कर परलोकवासिनी हो गयी थीं। पिता श्रीमोतीचन्दजी बड़े भक्त थे। वे अपनी पुत्रीको ले तीर्थाटनके लिए निकल

पड़े। एक वर्ष बाद तीर्थान्तसे लौटकर उन्होंने उसे अपनी ननिहाल पलबहाल भेज दिया।

दुर्गीवाई नानीके लाड़-प्यारमें पलने लगी। वह नानीकी ठाकुर-सेवामें उनका हाथ बटाती। घण्टों उनका अनुकरण कर कृष्ण-नामका जप करती।

१३ वर्षकी अवस्थामें जम्भू जनपदान्तर्गत लूनी नामक ग्रामके श्रीसरनूभाईके साथ उसका विवाह कर दिया गया। सास, ससुर, ननदादिका स्वभाव बड़ा तीखा था। भगवान् और भक्तिसे उनका कोई सरोकार था नहीं। दुर्गीवाई सहज और सरल स्वभावकी भक्तिमती बाला थीं। उनके जन्मजात भक्तिके संस्कार अब प्रबल होने लगे थे। उनके लिए यह नया वातावरण अनुकूल न था। फिर भी वे घरके सभी लोगोंको प्रसन्न रखनेकी प्रायः-पणसे चेष्टा करतीं। सबकी छोटी-बड़ी सेवाका ध्यान रखतीं। सबके शयनोपरान्त अपनी भजन-साधनामें लग जातीं।

पर यह उनके पतिको कब सुहाता? उसकी वे विवाहिता पत्नी थीं। उनके ऊपर उसका एकक्षत्र अधिकार था। वही उनके हृदयका स्वामी, उनका भगवान् था। उसके लिए किसी दूसरे भगवान्को उस हृदयमें स्थान देना उसके माथे विश्वासघात करना था। वह उनके प्रति कठोर व्यवहार करने लगी।

परिणाम-स्वरूप दुर्गीवाईकी चित्त-वृत्ति अन्तर्मुखी होने लगी। वे जो स्मरण-चिन्तन एकान्तिक क्षणोंमें किया करतीं वह उनके जीवनके प्रत्येक पलका साथी बन गया। वृत्ति जितनी अन्तर्मुखी होती गयी, उतना ही भाव ताना होता गया। कभी-कभी काम करते-करते उनकी चेतना लुप्त हो जाती और वे एक अनिर्वचनीय भाव-समाधिमें डूब जातीं। तब वे क्षण उनके लिए बहुत कठोर बनकर आते। उनके ऊपर गालियों और लात-घूसोंकी बीछार होने लगती।

किसी प्रकार दुर्गी माँने इस नारकीय जीवनमें १७ वर्ष व्यतीत किये। सात बच्चोंको जन्म दिया। तीस वर्षकी अवस्थामें एक दिन अर्धरात्रिमें वे घरमें निकल पड़ीं। मार्गमें बहुत कष्ट उठाते हुए देहरादून पहुँचीं। वहाँ धर्मशालामें जम्भूके एक वृद्ध सज्जनसे भेंट हुई। वे उन्हें अपने साथ जम्भू ले गये। उनके घर दो वर्ष तक रसोई बनानेका काम करती रहीं। किसी प्रकार सरनूभाईकी इतका पता चल गया। तब वे सीधी स्टेशन गयीं और

जो गाड़ी पहले मिली उसपर बैठकर लाहौर पहुँचीं ।

लाहौरमें भी एक सज्जनके यहाँ सालभर तक चौका-बर्तन और रसोईके साथ उनकी क्षयरोग-ग्रस्त पत्नीकी सेवा करती रहीं । जब पत्नीका देहान्त हो गया, तब वे हरिद्वार चली गयीं । वहाँ जम्मूवाली धर्मशालामें रहकर एक स्कूलमें लड़कियोंको घरसे लाने और पहुँचानेकी नौकरी कर ली ।

इस नौकरीमें उन्हें भजनके लिए पर्याप्त समय मिलने लगा । उनके भक्ति-भावमें दिनोंदिन उन्नति होने लगी । कभी-कभी वे दिन-दिन भर धर्मशालामें अपने कमरेमें बैठी रह जातीं । नौकरीका समय भी निकल जाता और उन्हें बाह्यज्ञान न होता । कमरेका दरवाजा सुबहसे शाम तक बन्द देखकर धर्मशालाके मैनेजरको चिन्ता होने लगती ।

इसी बीच उनकी सासका देहान्त हो गया । सरनूभाई हरिद्वार आये माँकी अस्थियाँ विसर्जन करने । हरकी पौड़ीपर दुर्गीबाईमें साक्षात्कार हुआ । पर दुर्गीबाई मौन धारण किये रहीं । उनसे एक शब्द भी न बोलीं । वे हारे जुआरीकी भाँति उन्हें छोड़कर घर चले गये ।

दस वर्ष इस प्रकार हरिद्वारमें व्यतीत कर वे वृन्दावन चली आयीं । वृन्दावनमें वे कुछ दिन केशोघाटपर जम्मूवाली कुञ्जमें और कुछ दिन जगन्नाथ घाटपर जगन्नाथजीके मन्दिरमें रहीं । फिर श्रीरामानुज हयग्रीव मन्दिर, बड़ा खटलामें रहने लगीं और वहींके तत्कालीन महन्त श्रीमच्छ्री स्वामीजीसे दीक्षा लेकर गोपालजीकी सेवा करने लगीं ।

जीविकाके लिए पहले तो उन्होंने 'भगवान् भजनाश्रम'का सहारा लिया । वहाँ आठ घण्टे कीर्तन करतीं और उसके बदले जो कुछ मिलता उसीसे किसी प्रकार अपना और गोपालका काम चलातीं ।

कुछ दिन बाद उन्होंने यह सोचकर कि भजनाश्रममें कीर्तनकर उसके बदले जोविका निर्वाह करनेके लिए कुछ लेना ठीक नहीं, उन्होंने भजनाश्रम जाना छोड़ दिया । श्रीरसिक बिहारीके मन्दिरमें एक सेठानीके यहाँ पाँच रुपये महीनेपर नौकरी कर ली । उतनेमें ही वे ठाकुरके भोग-रागकी किसी प्रकार व्यवस्था कर संतुष्ट रहने लगीं ।

पर उनका भजनमें अभिनिवेश अब इतना प्रबल हो गया कि नौकरी करना सम्भव न रहा । आश्रममें रहना भी मुश्किल हो गया । तभी वे

रङ्गजीके मन्दिरके इस एकान्त कक्षमें चली आयीं । तबसे हर समय गोपालकी सेवामें रहने लगी ।

वे अपनी जीविकाके लिए किसीसे याचना न करतीं । अपनी साधनाके सम्बन्धमें भी किसीसे कुछ न कहतीं । यथासम्भव अपनेको छिपाकर रखनेकी चेष्टा करतीं ! सबसे प्रभुके दर्शन और अक्षय वृन्दावनवासकी भीख मांगती । परन्तु कुछ लोग उन्हें जान गये थे । वे उनकी सेवा करते रहते । उसीमें उनका काम चलता ।

फिर भी कभी-कभी ऐसा होता कि उनके पास ठाकुरके भोगके लिए कुछ न रहता । जो रहता उसे कुछ लोग चुरा ले जाते । तब उन्हें विवश हो गोपालमें अपनी व्यवस्था आप करनेके लिए कहना पड़ता । कभी ऐसा भी होता कि कुछ अधिक पैसे पासमें हो जाते । तब वे गोपालको दिखानेके लिए रासका आयोजन कर देतीं या सन्तोंकी सेवामें उन्हें खर्च कर देतीं । संचय करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं था ।

गोपालको भी माँकी बराबर चिन्ता रहती । उन्हें जब जिस वस्तुकी आवश्यकता होती, वह किसी-न-किसीको प्रेरणा देकर किसी-न-किसी प्रकार उसे जुटा देता । एक बार माँकी चमेलीके तेलकी आवश्यकता थी । उनके सिरमें न जाने कबसे तेल नहीं पड़ा था । खुशकी बहुत हो गयी थी, जिसके कारण सिरमें दर्द रहने लगा था । उनके एक भक्त श्रीगिरधारीलालजी अमृतसर रहते थे । उस वार जब वे वृन्दावन आ रहे थे, उन्होंने नौकरमें मालिशके लिए एक शीशी सरसोंका तेल लानेको कहा । नौकर भूलमें चमेलीका तेल ले आया । चमेलीका तेल उनके कामका था नहीं, क्योंकि वे सिरमें तेल नहीं डालते थे । तो क्या करते ? गाड़ीका समय हो गया था । वे तेलकी शीशी झोलेमें डालकर चल दिये । सोचने लगे यदि यह तेल दुर्गी माँकी सेवामें लग जाय तो अच्छा हो ।

वृन्दावन पहुँचकर वे सीधे दुर्गी माँके पास गये । दण्डवत् कर बैठे ही थे कि वे बोलीं—‘गिरधर, तू चमेलीका तेल लाया है न । मेरे सिरमें डाल दे ।’

गिरधारीलालने अपने हाथसे उनके सिरमें तेल डाला । उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनके सिरने तेलकी पूरी शीशी सोखली ।

दुर्गी माँकी शेष अवस्था रङ्गजीके मन्दिरके इस कक्षमें बड़ी भावभीनी

अवस्थामें बीती । मन और प्राण गोपालकी सेवामें तन्मय रहते । नेत्र निरन्तर सजल रहते । थोड़े-से भी उद्दीपनसे वे बाह्यज्ञान खोकर किसी अनिर्वचनीय आनन्द-समुद्रमें डूब जातीं । श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजकी अमृतवर्षिणी कथामें उन्हें कई बार मूर्च्छित होते देखा गया । एक बार सेवाकुञ्जके निकट वे किसीकी वंशी-ध्वनि सुनकर आठ घण्टे बेसुध हो पृथ्वी-पर पड़ी रहें ।

यमुनामें स्नान करते समय उन्हें अक्सर कृष्णकी गोपियोंके साथ जलकेलिका उद्दीपन हो जाता । वे घण्टों जलमें ध्यानमग्न अवस्थामें खड़ी रह जातीं । कछुए काट जाते तो भी उन्हें पता न चलता । बाह्यज्ञान होनेपर यमुनाजीसे निकलकर यमुना-मट्ठी घावोंपर लगा लेतीं । बेसुध अवस्थामें रास्ता चलते समय कई बार पागल कुत्तोंने उन्हें काट लिया । तो भी उन्होंने यही उपचार किया और कुत्तेके विषका उनपर कोई असर न हुआ ।

दुर्गी माँपर जो भगवत्-कृपा थी उसका एकमात्र कारण था उनका अति सरल, निरभिमानी, निष्कपट व्यक्तित्व और भगवन्नाम-कीर्तनमें उनकी अनन्य निष्ठा । वे अपने कक्षका दरवाजा बन्दकर कीर्तन किया करतीं । कभी-कभी लोग दरवाजेके पास कान लगाकर कीर्तन सुनते, तो दो ध्वनियाँ स्पष्ट सुनायी पड़तीं । एक तो होती स्वयं दुर्गी माँकी परिचित ध्वनि । दूसरी किसी किशोर कण्ठकी बड़ी मधुर और आकर्षक ध्वनि । दूसरी ध्वनि उनके गोपालके सिवा और किसकी हो सकती थी ? आहा, कैसा मधुर होता होगा भक्त और भगवान्का दिव्य संकीर्तन !!

दुर्गी माँ एकान्तमें गोपालसे जो बातें किया करतीं, वह भी लोग कभी-कभी कक्षके बाहरसे सुन लेते । एक बार एक महिला भक्तने सुना उन्हें गोपालसे कहते—‘गोपाल, सुन तो मुझे नामकी ध्वनि आ रही है । मेरे रोम-रोमसे नामकी ध्वनि निकल रही है !’

दुर्गी माँ साधारणतया अपने अनुभवोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहतीं । पर कभी-कभी अपने प्रेमीजनोंसे दो-एक बातें कह दिया करतीं । डिप्टी कलेक्टर श्रीनिर्जनदास धीर उनके बड़े भक्त थे । एक बार उनसे उन्होंने कहा था—‘मुझे चमचमाते दिव्य वृन्दावनके तीन बार दर्शन हुए हैं ।’

पर उनके जीवनके शेष दिनोंमें तो लगता था कि जैसे वे ही हर समय दिव्य वृन्दावनमें थीं । उनका कक्ष ईंट-पत्थरका बना हुआ साधारण

कक्ष नहीं था। वह तो चिन्मय वृन्दावनका मणिमय कुञ्ज था, जिसमें चारों ओर कमल खिल रहे थे, भ्रमर गुञ्जार रहे थे, मोर नृत्य कर रहे थे और कोकिलें पञ्चम स्वरसे गान कर रही थीं। एक दिन जैसे ही श्यामादेवीने उनके कक्षमें प्रवेश किया, वे उन्हें सावधान करके बोलीं—‘धीरे ! धीरे ! इधरसे !’

‘क्या बात है माँ ?’ श्यामादेवीने चौंककर कहा।

‘देखो न, उधर कमल खिल रहे हैं।’

श्यामादेवीको तो कमल दीख नहीं रहे थे। और कोई होता तो कहता कि दुर्गी माँको मतिभ्रम हो गया है या उनकी दृष्टि दूषित है। पर वे जानती थीं कि दृष्टि दुर्गी माँकी ही ठीक है, उनकी अपनी दृष्टि दूषित है, जड़ है।

दुर्गी माँकी दृष्टि अब ऐसी हो गयी थी कि उन्हें हर वस्तुमें उनके ठाकुर और हर जगह उनके धामके सिवा और कुछ दीखता ही नहीं था। एक बार वे श्यामादेवीके घर गयीं, जब उनके घर केरल स्वामी नामके एक सन्त विराजते थे। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया और कातर स्वरसे उनकी कृपाकी याचना की।

स्वामीजीने कहा—‘मेरे पास देनेको क्या है माँ। मेरी झोली बिल्कुल खाली है।’

पर दुर्गी माँ उन्हें सहजमें छोड़नेवाली तो थी नहीं। उन्होंने कहा—‘प्रवञ्चना न करें प्रभु। इस दासीको कृपाके रूपमें कुछ दें अवश्य।’

स्वामीजीने जब उन्हें बार-बार आग्रह करते देखा, तो उनके हाथमें जो मुँघनीकी शीशी थी, उसे उनकी गोदीमें डालते हुए कहा—‘अच्छा, तो लो।’

दुर्गी माँने उस शीशीको अपने सम्प्रदायके आचार्य रामानन्द द्वारा दिये गये ठाकुर समझ बार-बार अपने हृदयसे लगाया और भाव-विभोर हो गयीं।

किसीने कहा—‘माँ, यह ठाकुर नहीं है। यह तो स्वामीजीने विनोदमें अपनी मुँघनीकी शीशी आपको दी है।’

पर दुर्गी माँ कब माननेवाली थीं। जो दुनियाँके लिए मुँघनीकी शीशी थी, वह उनके लिए उनके ठाकुरकी श्रीमूर्ति थी। वे लोगोंकी कही

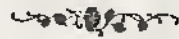
अब किसकी हिम्मत थी जो उनसे शीशी वापस ले लेता । शीशीकी तो बात कुछ नहीं । पर दुर्गी माँ ठाकुर समझकर उसका पूजन करें, यह लोगोंको अच्छा नहीं लगा । सबने पंजाबसे आये सुदामा बाबा नामके एक सन्तसे प्रार्थना की कि किसी प्रकार शीशी उनसे ले लें । सुदामा बाबासे दुर्गी माँका स्नेह था । एक दिन वे उनकी कुटियापर गये और शीशी यह कहकर उठा लाये कि 'सब ठाकुरोंकी सेवा तुम्हीं करोगी ? हमें नहीं करने दोगी ।'

एक दिन श्यामा माँसे दुर्गी माँने कहा—“बहिन अब मेरा शरीर नहीं चलता । गोपालसे कहा—मुझे ले चल, तो जानती हो क्या बोला—‘तुझे रेशमी साड़ी पहननी होगी, माँगमें सिंदूर भरना होगा, मेरे साथ व्याह करना होगा, तब ले चलूंगा ।’”

श्यामादेवीने हँसकर कहा—‘तो रेशमी साड़ी आ जायगी । उसमें दिक्कत क्या है ?’

‘अरे तो माँके साथ कोई व्याह करता है ? उसे ऐसी बात कहनी चाहिये ?’ दुर्गी माँने झुंझलाते हुए उत्तर दिया ।

दुर्गी माँके शेष जीवनमें उनकी भाव-मुद्रासे लगता था कि उनका दिव्य वृन्दावनसे सम्बन्ध घनिष्ठ होता जा रहा है और प्राकृत वृन्दावन उनसे छूटता जा रहा है । अन्तमें ५ अगस्त सन् १९७७ को ११९ वर्षकी अवस्थामें वे अपने प्राकृत शरीरको प्राकृत वृन्दावनमें छोड़कर अप्राकृत, सिद्ध गोपीदेहसे सदाके लिए दिव्य वृन्दावनमें प्रवेश कर गयीं ।



श्रीश्यामदास बाबाजी

(मुंशिदाबाद/वृन्दावन)

सिद्ध श्रीश्यामदास बाबाजी गंगाके मार्गमें यात्राको निकले हैं । लकड़ीके लट्ठोंको रस्सीमें जोड़कर बनायी हुई एक नौका है, जिसे शायद उन्होंने अपने हाथोंसे-तैयार किया है । नौकापर वे हैं और उनके गोपालजी, जो उन्हें गङ्गाके गर्भसे प्राप्त हुए थे । गोपालजीकी सेवाके लिए कुछ पात्र हैं । बाबाका एक फटा कम्बल और एक बेंतकी डौलचो है । नौका कहाँसे आ रही है, कहाँ जा रही है, कोई नहीं जानता ।

नौका जाकर लगी मुशिदाबादके एक घाटसे । घाटपर कासिम बाजारकी रानी स्वर्णनयीके दीवान श्रीराजीवलोचन रायकी कोठी थी । बाबा नावपरसे उतरे कम्बल लपेटे, हाथमें डोलची लिये, भिक्षाके उद्देश्यसे । सीधे प्रवेश किया राजीवबाबूकी कोठीमें । राजीवबाबूको उनका तेजःपुञ्ज कलेवर देखकर श्रद्धा हुई । उन्होंने कुछ चावल और सब्जी भिक्षामें दिये । बाबाने रसोई बनाकर गोपालजीका भोग लगाया । प्रसाद स्वयं ग्रहण किया ।

दूसरे दिन बाबाके पास अतिथि रूपमें चार वैष्णव आ गये । यथायोग्य अभ्यर्थनापूर्वक उन्हें बैठाकर वे भिक्षाको निकले । उस दिन भी पहले राजीवलोचन बाबूके घर गये । उनसे बोले—‘राजीव ! तेरा भाग्य अच्छा है । चार मूर्ति वैष्णव आये हैं ।’ राजीवबाबू सुनते ही दस रुपये देने लगे । बाबा बोले—‘इतना क्या होगा ?’ उन्होंने केवल दो रुपये ले लिये ।

बाबाको घाटपर रहते कुछ दिन हो गये । उनका निष्किञ्चन भाव देख लोगोंने उनके लिए आश्रम और गोपालजीके लिए एक मन्दिरका निर्माण करवा दिया ।

बाबाके आश्रमसे कोई अतिथि वैष्णव कभी भूखा नहीं लौटता । परन्तु वे कुछ भी संचय करके न रखते । जिस दिन जी भी मिलता सबकी रसोई बना लेते । यदि आवश्यकतासे अधिक होता तो भी । सोचते आज गोपालने इतनी रसोईकी व्यवस्था की है, तो इतने ही वैष्णव भी आते होंगे । सचमुच रसोईकी मात्राके अनुरूप वैष्णव आ जाते । फिर भी वे अपनी इच्छासे कभी आवश्यकतासे अधिक भिक्षा न करते ।

बाबाकी प्रेम-परिपाटीसे लुब्ध हो नितार्ई-गौर, राम-सीता आदि और भी कई विग्रह उनके मन्दिरमें आकर उनकी सेवा ग्रहण करने लगे ।

क्यों ? बाबाने आह्वान किया था इन्हें ? नहीं, आह्वान नहीं किया था । बाबाकी कुटियापर आकर भीतर प्रवेश करनेकी अनुमति मांगी थी इन्होंने ? नहीं, अनुमति भी नहीं मांगी थी । तो ऐसे ही घुस पड़े ? शिष्टाचार बिलकुल नहीं जानते ये ? जानते तो हैं पर मानते नहीं । चिरकालसे यही रीति है इनकी । साधारण शिष्टाचारसे बिलकुल उलटी—कभी कोई बुलाये तो भी न जाना, कभी कोई न बुलाये तो भी घुस पड़ना । ऋषि, मुनि, ज्ञानी, योगियोंके कितना बुलानेपर भी न जाना और सिद्ध बाबा-जैसे भक्तोंके घर

बिना बुलाये घुस पड़ना, बिना किसी प्रकारका संकोच किये, बिना लोकाचार या शिष्टाचारका विचार किये । हाँ, बिना कुछ सोचे-विचारे, सीधे सरल स्वभावसे, जैसे मधुकर मधुके लोभसे निःसंकोच जा बैठे कमलके ऊपर या भिक्षुक अन्नके लोभसे बिना बुलाये पहुँच जाय वहाँ, जहाँ सदाव्रत बटता हो । बाबाके यहाँ भी तो सदाव्रत ही लगा हुआ था । अन्न-जलका नहीं, रसमयी प्रेम-सेवाका सदाव्रत । जो भी वहाँ पहुँच जाता, वह उस रसका पानकर तृप्त हो जाता । फिर यह लोग ठहरे उस रसके परम लोभी, उसके चिरभिखारी । इनका मन उसका आस्वादन करनेके लिए क्यों न मचल पड़ता ? इनके ऐश्वर्य-प्रधान वैकुण्ठ-लोकमें इस रसके पाये जानेकी बात तो दूर, इसका देखना-सुनना भी क्या होता है कभी ? तभी न ये घुस पड़े बाबाकी कुटियामें और जमकर बैठ गये वहाँ, 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' की कहावतको सार्थक करनेके लिए ।

पर नितार्ई-गौर, राम-सीता और अन्य, यह सभी अतिथि थे कि अपनी सेवा-पूजाकी सामग्री अपने आप जुटा लिया करते थे । बाबाको उसके लिए चिंता नहीं करनी पड़ती थी ।

एक बार सारे दिन बहुत जोरकी वृष्टि होती रही । बाबा भिक्षाको न जा सके । अतिथि वैष्णव भी कई आए हुए थे । श्रीविग्रह और अतिथि सब भूखे रहेंगे, यह जानकर बाबा दुःखित हुए । श्रीविग्रहोंकी तरफ देखकर हँसते हुए बोले—'आज क्या इच्छा है ? पेटसे पट्टी बाँधोगे ?' इतना कह वे बहुत-से तुलसी-पत्र चयनकर लाये । ठाकुरोंको समर्पण कर अतिथियोंके सामने रखे । बोले—'आज तो भाग्यमें यही दीखता है । यदि पीछे गोपालने कुछ ला दिया तो देखा जायगा ।' आश्चर्य ! उसी समय बहरमपुरके जमींदार विष्णुचरणसेन महाशयके पिताको बाबाजी और उनके अतिथियोंकी चिंता होने लगी । उन्होंने प्रचुर परिमाणमें खाद्य-सामग्री चार-पाँच आदमियों द्वारा बाबाके पास भेज दी । बाबाने तत्काल रसोई बनाकर ठाकुरोंका भोग लगाया और अतिथियोंका सत्कार किया । बाबाके साथ इस प्रकारकी घटनाएँ प्रायः होती रहतीं ।

कुछ दिन पश्चात् मुशिदाबादके एक भक्त वृन्दावन गये दर्शन करने । इधर सिद्ध श्यामदास बाबाने गंगा-तटपर शरीर छोड़ दिया । आश्रममें उनकी समाधि बना दी गयी । समाधिकी यथायोग्य सेवा-पूजा होने लगी ।

श्रीवृन्दावनगामी भक्तको पता नहीं था कि श्रीश्यामदास बाबा अप्रकट हो चुके हैं। एक दिन हठात् वृन्दावनके किसी मार्गपर श्रीश्यामदास बाबासे उनकी भेंट हुई। दण्डवत् प्रणामकर उन्होंने पूछा—‘आप कब आये?’ उन्होंने जो तिथि बतायी, वह वही थी जिसको उन्होंने शरीर छोड़ा था। बाबाने भी भक्तका कुशल-क्षेम जाननेके पश्चात् पूछा—‘तुम कब घर लौटोगे?’

‘मैं शीघ्र ही लौटूँगा’ भक्तने उत्तर दिया।

‘तो देखो, मन्दिरमें कांसर (काँसेका घण्टा) नहीं है। एक कांसर खरीद दूँ, लेते जाना।’ तत्काल बाबाने कांसर खरीदकर दे दिया। ‘भक्त जब घर लौटकर गये, उन्होंने मन्दिर जाकर सेवाइतको कांसर देते हुए बाबाका सारा वृत्तान्त कहा। सेवाइत और अन्य सभी लोग विस्मयसागरमें डूब गये। उन्होंने भक्त-यात्रीसे कहा—‘बाबाका शरीर तो कभी छूट गया। यह देखो उनकी समाधि है।’ यात्री भी भौंचक्का रह गया।

भक्तका मरना कब होता है? उसका शरीर चिन्मय होता है।

श्रीपादब्रह्मानन्द गोस्वामीप्रभु

(शृङ्गारवट, वृन्दावन)

श्रीपादब्रह्मानन्द गोस्वामीप्रभु वृन्दावनमें श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुकी गद्दीके प्रतिष्ठाता श्रीपरमानन्द व श्रीनन्दकिशोर गोस्वामीप्रभुकी चौथी पीढ़ीमें थे। प्रभुके प्रिय भक्तोंकी पहचान जिन गुणोंसे होती है, वे सभी उनमें विद्यमान थे। आकर्षक तेजपूर्ण कलेवरकी झलमलाती कान्ति, कीर्तनमें परमाविष्टता, व्यवहारमें उदारता, दैन्य, मिष्टभाषिता और भक्ति-शास्त्रोंमें पारदर्शिता उनके व्यक्तित्वके पारलौकिकत्वकी सूचना देते थे।

श्रीनृसिंहानन्द प्रभु उनके ताऊ श्रीपूर्णानन्द गोस्वामीप्रभुके लड़के थे। वे और श्रीनृसिंहानन्द प्रभु जब कीर्तनमें खड़े होकर नृत्य करते, तो लगता कि जैसे उनमें नितार्ई-गौरका आविर्भाव हुआ हो। उनके कीर्तनकी सूचना पाकर स्त्री-पुरुष शृङ्गारवटकी ओर दौड़ पड़ते। प्रभुपाद कीर्तनमें इतना

तन्मय हो जाते कि उन्हें समयका ज्ञान ही न रहता । दर्शकगण भी उसी प्रकार तन्मय हो भूखे-प्यासे लम्बे समय तक बैठे रहते । कभी-कभी रात्रि १२ बजे तक दर्शकोंको इस स्थितिमें बैठा देख उन्हें कुछ वाह्य-चेतना होती, तो कार्य-परिचालक श्रीयुगलदासको समागत भक्तोंके प्रसादकी व्यवस्था करनेका इंगित करते । श्रीयुगलदास प्रभुपादके अनुगत थे । उनकी आज्ञाका पालन करनेमें सदा तत्पर रहते थे । वे ऐसे अवसरोंके लिए पहलेसे ही कुछ-न-कुछ व्यवस्था कर रखते । न जाने कब प्रभुपादका इस प्रकारका इंगित हो जाय ।

ऐसे आयोजन शृङ्गारवटमें अक्सर होते ही रहते । इसके अतिरिक्त ब्रह्मानन्द प्रभुके पास जो कोई कुछ माँगने आता, वह खाली न जाता । एक बार श्रीनृसिंहानन्द प्रभुके छोटे भाई श्रीप्रमानन्द प्रभुने अपने शिष्य श्रीमाधवदास बाबासे उनके विषयमें कहा था—‘दादाजि अपने प्रभावसे कम-से-कम दो लाख रुपयेका उपार्जन किया, पर एक पैसा भी नहीं रखा ।’

प्रभु-सन्तान होनेके कारण ब्रह्मानन्द प्रभु सभीके पूज्य थे । पर वे अपने स्वाभाविक दैन्यके कारण सभीको पूज्य मानकर उनकी सेवामें तत्पर रहते थे । उस दिन उनके पिताका उत्सव था । उस समयके प्रसिद्ध कीर्तनिया श्रीकृष्णदास बाबाजी उत्सवमें कीर्तन करने आये थे । सारा दिन कीर्तन हुआ । दूसरे दिन नगर-कीर्तन था । रात्रिमें प्रभुपादने श्रीकृष्णदास बाबाजीकी गय्या अपने निकट बिछवायी । दिन भरके परिश्रमसे क्लान्त बाबाजीको झट नींद आ गयी । तब प्रभुपाद शय्यासे उठकर धीरे-धीरे उनका वदन दवाने लगे । कुछ देर बाद बाबा चौककर बोले—‘कौन ?’

प्रभुपादने कहा—‘भाई गोलमाल मत करो । कल तुम्हें नगर-कीर्तन करना है ।’

श्रीप्रभुपाद भक्तिराज्यकी जिस भूमिकापर अवस्थान करते थे, उसका संकेत उनके जीवनकी दो-एक घटनाओंसे मिलता है । एक बार जब वे श्रीपाट पुरुनियामें थे, उनके ज्येष्ठ पुत्रका ठीक मध्याह्नमें परलोकवास हो गया । उसी समय वे आह्लिकसे उठे थे । आत्मीय स्वजन शोकार्त हो क्रन्दन कर रहे थे । पर प्रभुपादने उधर दृष्टिपात भी नहीं किया । वे ठाकुर-गृहमें प्रवेश कर गये । ठाकुरका भोग लग जानेके पश्चात् पुजारीमें प्रसाद माँगकर ग्रहण किया । उसके पश्चात् दैनिक भजनमें संलग्न हो गये, जैसे पुत्रने

मरनेकी घटनासे उनका कोई सम्बन्ध ही न हो। जिसकी वस्तु थी, उसने ले ली। इसमें इनके चिन्ता करनेकी क्या बात थी? वे तो उसीकी सेवा-पूजामें लगे थे, जिससे उनका नित्य सम्बन्ध था। बन्धु-बान्धवोंने पुत्रके मृत देहका सत्कार किया। इसके पश्चात् अक्रोध परमानन्द प्रभुपादके मुखसे किसीने इस प्रसंगमें कुछ नहीं सुना।

वे जैसे परमानन्द स्वरूप थे, वैसे ही अदोषदर्शी भी। एक बार उनके आश्रित किसी भक्तके चरित्र-दोषके सम्बन्धमें उनसे किसीने कुछ कहा। वे बोले—‘भाई, इसमें उसका क्या दोष है। दोष तो मेरा है। यदि मैंने यथासमय उसके सम्बन्धमें अपने कर्तव्यका पालन किया होता, तो मुझे यह बात क्यों सुननी पड़ती।’ इतना कह उन्होंने उस व्यक्तिको बुलाया। उसे दस रुपये देकर कहा—‘तुम कुछ दिन मेरी बहनके घर जाकर रहो। मैं बुलाऊँगा, तब आना।’

एक बार गोवर्धनके सिद्ध कृष्णदास बाबाके शिष्य द्वितीय सिद्ध कृष्णदास बावाने श्रीब्रह्मानन्द प्रभुपादको श्रीराधाकी स्नान-शृंगारलीला सुनाना प्रारम्भ किया। श्रोता और वक्ता दोनों ऐसे भाव-विभोर हो गये कि एक प्रातःकालसे दूसरे प्रातःकाल तक निरन्तर श्रीराधा-रसरसार्णवमें डूबते-उतराते रहे।

प्रभुपाद श्रीराधारस-समुद्रके ही मत्स्य थे। वे कथा-कीर्तन, पूजा-आत्मिकादिके बहाने सदा उसीमें डूबे रहते। बाह्य-जगतसे उनका सम्बन्ध केवल उतना ही था, जितना शरीर-रक्षाके लिए आवश्यक था। सन् १८८८ की ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशीके दिन उन्होंने उसमें ऐसी डुबकी लगायी कि उसके आनन्दमय अतल तलमें सदाके लिए प्रवेश कर गये।



श्रीप्रेमानन्द गोस्वामीप्रभुपाद

(शृङ्गारवट, वृन्दावन)

शृङ्गारवटके श्रीनृसिंहानन्द गोस्वामीप्रभुपादकी वृन्दावन प्राप्तिके पश्चात् उनके संसारके संचालनका भार उनके छोटे भाई श्रीप्रेमानन्द गोस्वामीप्रभुपर पड़ा । अल्पवयसमें विपुल धन-सम्पत्ति और सम्मान प्राप्त करनेके कारण वे उच्छृङ्खल हो गये । जब उन्होंने लगभग सारा धन खर्च कर डाला, तब एक दिन पुराने मदनमोहन मन्दिरके एक महात्माने एकान्तमें उनसे कहा—‘प्रभु, भला ऐसे कब तक चलेगा ? आप तो श्रीमन्महाप्रभुके अभिन्न विग्रह श्रीनिताईचाँदके वंशधर हैं । उन्होंने जिस कार्यके लिए आपको जगत्में भेजा है, उसे करेंगे कब ?’

प्रभुपाद बहुत लज्जित हुए । उसी समयसे उनका जीवन वैराग्यमय हो गया । वे एक धोतीके दो टुकड़े कर बहिर्वासकी तरह उसे धारण करते । शीतकालमें एक साधारण कम्बल और ग्रीष्ममें एक मोटी चादर व्यवहार करते । घरके बाहर बैठकखानेमें शयन करते । कोई उन्हें देखकर यह न समझ पाता कि वे स्वयं प्रभु हैं या उनके घरके कोई नौकर-चाकर । यदि कोई उनसे परिचय पूछता तो अपनेको शृङ्गारवटका शिष्य और परिवारक तलाते । सबको प्रणाम करते । कोई विशिष्ट व्यक्ति आकर पूछता—‘प्रभु, हाँ हैं ?’ तो उसे प्रभुपाद श्रीब्रह्मानन्द गोस्वामीके पास ले जाते ।

सिद्ध श्रीमाधवदास बाबाजी उन्हींके शिष्य थे । उन्होंने प्रभुपादकी वाका कुछ भार अपने ऊपर ले रखा था । एक दिन प्रभुपादने उनसे ठण्डाई ना लानेको कहा । वे ठण्डाई बना लाये । प्रभुपादने उसका पान किया । सरे दिन प्रातः, जब वे उन्हें प्रणाम करने गये, तो वे बोले—‘हाँ बाबा, मैं प्रणाम पर्यन्त ही ठीक हूँ । सेवा करनेको कहूँगा, तो कुछ-न-कुछ ताईचाँदकी सम्पत्तिकी बरवादी ही करोगे । जानते नहीं, कल ठण्डाई गते समय तीन गोल मिर्च फेंक गये थे ?’ इसके एक दिन पूर्व अपनी लिखी शाहखर्चीपर पश्चाताप करते हुए उन्होंने कहा था—‘मैंने ताईचाँदका न जाने कितना धन व्यर्थ लुटा दिया । यदि वे पहले ही मुझे

सद्बुद्धि दे देते, तो उस धनसे प्रभुका कितना कार्य होता। पर उनकी इतनी कृपा क्या कम है? उनके भण्डारमें अब भी एक लाख रुपये मौजूद हैं।

एक लखपती व्यक्तिके लिए तीन गोल मिर्चोंका क्या मूल्य? पर वे अब समझ गये थे कि उनके संसारमें कोई चीज उनकी अपनी नहीं है। सर्भ कुछ प्रभुका है और उनकी सेवाके लिए है। जिस सम्पत्तिको वे पहले दोनों हाथोंसे निःसंकोच लुटाया करते थे, उसे अब प्रभुकी सेवाकी वस्तु जान दे प्राणमें भी अधिक सम्हाल कर रखते थे। इसीलिए तीन गोल मिर्चोंके फेंके जानेका उन्हें इतना दुःख था।

एक बार उनकी जमींदारीसे कुछ लोगोंने आकर शिकायत की—‘मथुराकी घोड़ा-पलटनके घसियारे आकर खेत काट ले जाते हैं। मना करनेपर भी नहीं मानते।’ उन्होंने तुरन्त हुक्म दिया—‘जो नितार्ईचाँदका खेत काटने आये, उसे मारकर भगा दो, पर ध्यान रहे कि किसीका खून न हो।’ प्रजाने ऐसा ही किया। घसियारोंने अपने मालिकोंसे जा कहा। दूसरे दिन कई घुड़सवार वारण्ट समेत प्रभुकी पकड़ने आ गये। प्रभुपाद दरवाजेपर एक सिपाहीको छोड़ स्वयं मन्दिरमें नितार्ई-गौरके पास जा बैठे। सिपाहीने घुड़सवारोंमें कह दिया—‘प्रभु पूजामें हैं। इस समय नहीं मिलेंगे।’ घुड़सवार नौट गये। इसी प्रकार दो-तीन बार हुआ। उसके बाद कोई उन्हें पकड़ने न आया। मुकदमा भी खारिज हो गया। सरकार चाहती तो अवश्य प्रभुके अदालतमें हाजिर करा सकती थी। पर क्यों नहीं कराया नितार्ईचाँदके सिवा और कौन जान सकता है?

नितार्ईचाँदकी सम्पत्तिके विषयमें इतना सावधान रहनेपर भी प्रभुपाद वैष्णवोंकी सेवामें उसका जी खोलकर उपयोग करते। किस वैष्णवकी पीड़ा-विपत्तिके बारेमें सुनते हो उसके निकट जाते। उसे चिकित्साव आवश्यकता होती तो चिकित्साकी व्यवस्था करते, अर्थकी आवश्यकता होती तो अर्थकी व्यवस्था करते, सेवककी आवश्यकता होती तो सेवाकी व्यवस्था करते। साधु-वैष्णवोंको कोई जमात बाहरसे आती तो शिष्य द्वारा उनका संस्थापक पता लगाकर उनके लिए पक्के भोजनकी सामग्री बनवाकर भे देते। अपना कोई परिचय न देते।

उनके वैराग्य और दैन्य-भक्तिके कारण उनके प्रभावका दूर-दूर तक

विस्तार हुआ। बंगाल, बिहार, पंजाब और काबुल तकके लोगोंने उनके चरणोंका आश्रय लिया।

पर दैन्य-भक्तिकी मूर्ति होते हुए भी वे मर्यादाकी रक्षामें सदा तत्पर रहते और शिष्योंको तदनुकूल शिक्षा देनेमें कभी संकुचित न होते। एक बार प्रभुपादके गुरु श्रीनृसिंहानन्द गोस्वामीप्रभुके उत्सवमें परिचारिका घरके भीतरसे आयी उनके भतीजे बालक श्रीसदानन्दके जल-पानके लिए कुछ सामग्री लेने। उन्होंने माधवदास बाबाको आज्ञा की उसे कुछ प्रसाद देनेकी। माधवदास बाबाने बरामदेमें-से नीचे खड़ी परिचारिकाको प्रसाद दे दिया। उसी समय प्रभुपादने माधवदास बाबाको बुलाकर कहा—‘किसीको प्रसाद देना हो तो ऊँचे स्थानपर खड़े होकर नहीं, निम्न स्थानपर या समभूमिपर खड़े होकर प्रसाद देना चाहिये। नहीं तो अपराध होता है। अपराधसे भक्ति क्षीण होती है।’

सन् १८६६ में ज्येष्ठी शुक्ला तृतीयाके दिन प्रभुपादने वृन्दावन लाभ किया।

श्रीजगदीशदास बाबाजी

(वृन्दावन)

श्रीधाम वृन्दावनमें कालिन्दीतटपर प्राचीन कालीयदहके विशाल कदम्ब वृक्षके पीछे वृक्ष-लताओंसे परिपूर्ण रमणीक स्थानके बीच एक जीर्ण कुटीके सम्मुख विराजमान हैं एक विशालकाय, वयोवृद्ध, परम तेजस्वी महात्मा। परिधानमें है केवल एक बहिर्वास। गलेमें है तुलसीकी कण्ठी और हाथमें जपकी माला। गोधूलिकी बेलामें उनके नग्न शरीरकी गौर कान्ति उमड़ते हुए अन्धकारको अतिक्रमण करती जान पड़ रही। उनकी उद्ग्रीव द्रुत, अपलक नेत्र और मन्द स्मितसे लग रहा है कि वे दूर दिशामें किसी दिव्य और मनोरम दृश्यको देख आत्म-विभोर हो रहे हैं। पासमें बैठे हैं एक तेज-इशकीस वर्षीय नवीन महात्मा, जिनका टाटका बहिर्वास परिचय दे रहा है उनके वैराग्यका, उदीयमान सूर्यकी अरुणिमाके समान तेजपूर्ण गोल

मुखारविन्दकी अरुणिम आभा उनके ब्रह्मचर्यका और नामजपमें रत ओष्ठोंद स्पन्दन तथा अनवरत भीगे-भीगे-से छल-छलाते नेत्र उनके नवानुरागका ।

नवयुवक एक बार वृद्ध बाबाकी ओर देखते हैं, एक बार उस ओ जिस ओर बाबा देख रहे हैं । पर उस ओर कुछ न देख पाकर कौतूहलवश बाबाके मुखारविन्दकी ओर एकटक देखते रह जाते हैं । बाबा एकदम बोर पड़ते हैं—‘देख, गोपाल देख ! लालजीकी शोभा कैसी हो रही है ! दोनों भइया झूमते-झामते कैसे चले आ रहे हैं ! गइयोंके खुरोंसे उड़े रज-कण अलकावलियोंपर कैसे शोभायमान हैं ! रंग-विरंगे फूलोंके आभूषण उनवें गौर-नील अङ्गोंपर कैसे अच्छे लग रहे हैं !’

नवयुवक पीड़ा भरे शब्दोंमें कहते हैं—‘मेरे ऐसे भाग्य कहाँ बाबा, जें मैं देखूँ ।’ बाबा स्नेहसे नवयुवकके गालपर चाँटा मारते हुए कहते हैं—‘तुझे दीखेगा । जा, मैंने कह दिया, तुझे दीखेगा ।’

वृद्ध महात्मा हैं कालीयदह वृन्दावनके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबा और नवयुवक श्रीसुभाषचन्द्र बोसकी जन्मभूमि सुभाषग्राम (चाँगडीपोता) के प्रसिद्ध जमींदार श्रीभूपेन्द्रनाथ चक्रवर्तीके पुत्र और क्रान्तिकारी नेता श्रीफणीन्द्रकुमार चक्रवर्तीके भाई श्रीधीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, जो रमणरेती वृन्दावनके सिद्ध श्रीगौराङ्गदास बाबाजीके नामसे विख्यात हुए । उन्हें श्रीजगदीशदास बाबा स्नेहवश गोपाल कहकर पुकारा करते थे ।

श्रीजगदीशदास बाबा पूर्वाश्रममें एक बड़े डॉक्टर थे । वर्धमानके एक कुलीन ब्राह्मणवंशमें उनका जन्म था । कालनामें वे प्रैक्टिस किया करते थे वे एक दीर्घकाय गौर-वर्ण पुरुष थे । कालनाके सिद्ध श्रीभगवानदास बाबाजी महाराजसे दीक्षा ग्रहणकर ५० वर्षकी अवस्थामें संसार त्यागकर वृन्दावन चले आये थे । वृन्दावनमें श्रीमदनमोहनके पुराने मन्दिरमें रहकर भजन करते थे । कुछ दिन बाद कालीयदहके पास एक छोटी-सी कुटियामें रहने लगे थे ।

श्रीजगदीशदास बाबा बड़े वैराग्यसे रहते थे । मधुकरी द्वारा जीव निर्वाह करते थे । नमक नहीं खाते थे । हर समय भजनावेशमें किसी प्रकारव व्यवधान न हो, इस उद्देश्यसे यथासम्भव परापेक्षारहित जीवन व्यतीत कर थे, यहाँ तक कि क्षौर कार्यके लिए नापितपर निर्भर करना भी पसन्द नः

करते थे । अपने पास एक कैंची रखते थे । आवश्यकता होनेपर सिर और दाढ़ीके बाल अपने-आप काट लिया करते थे ।

उनके गुरु सिद्ध श्रीभगवानदास बाबा सभीको हरि-नाम-जप और माधारण भक्ति-याजनका उपदेश करते थे । पर उन्हें अधिकारी जानकर रागानुगा भक्तिका उपदेश किया था । इसलिए वे रागानुगा पद्धतिसे भजन करने हुए सदा श्रीकृष्णलीला-स्मरणमें तल्लीन रहते थे । उन्हें प्रायः बाह्यज्ञान नहीं रहता था । कभी-कभी सन्ध्या समयका उनके सामने रखा हुआ भोजन सवेरे तक रखा रह जाता था । कभी ऐसा भी होता था कि कोई उनके पास आना और दण्डवत्-प्रणामकर सामने बैठ जाता, तो भी उन्हें पता न चलता । बाह्यज्ञान होनेपर जब उनसे कोई कहता कि अमुक व्यक्ति आया था, दण्डवत् कर कुछ देर बैठा रहा, फिर चला गया, तो वे अपनेको अपराधी जानकर बहुत दुःखी होने । इसलिए प्रायः वे जब कुटियाके बाहर बैठते, तो अपने सामने शालिग्रामकी वटिया रखते, जिससे यदि कोई आकर दण्डवत् करे, तो दण्डवत् शालिग्रामको ही और उन्हें प्रतिदण्डवत् न करनेका अपराध न लगे ।

श्रीजगदीशदास बाबाके लीला-स्मरणमें जब कोई बाधा उपस्थित होती या उन्हें भजनोत्सास न होता, तो वे वैष्णव महानुभावों और उनकी पवित्र चरण-रजका सहारा लेने । वे मधुकरीके लिए प्रतिदिन शृङ्गारवटमें श्रीनित्यानन्दप्रभुकी गद्दीपर जाते । श्रीप्रेमानन्दगोस्वामी उस समय गद्दीके अधिपति थे । एक दिन जब जगदीशदास बाबा मधुकरीके लिए वहाँ गये, तो उन्हें देखते ही वे बोले—‘आज आपके मुखपर रोज जैसा उल्लास नहीं दीख रहा, क्या बात है ?’ बाबाने हँधे कण्ठसे उत्तर दिया ‘प्रभुपाद ! सब कुछ तो आपके हाथमें है । आज मेरा भाग्य मन्द है ।’ प्रभुपाद समझ गये कि आज इन्हें लीला-स्फूर्ति नहीं हो रही है । उन्होंने कहा—‘अच्छा, मधुकरीका झोला रखकर यहाँ रजमें थोड़ा लोट लो ।’ बाबाने वैसा ही किया ।

उस समय यमुना शृङ्गारवटको देरकर बहती थी । वृन्दावन परिक्रमा करनेवाले भक्तोंको शृङ्गारवटके प्रांगणमें होकर जाना होता था और उनकी चरण-धूलि वहाँ पड़ती थी । धूलिमें लोट-पोट होते ही बाबाके मनमें भजनोत्सास होने लगा । प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् एक बार फिर जब उनकी लीला स्फूर्तिमें बाधा उपस्थित हुई, तब वे प्रातःकाल प्रभुपादके

शिष्य श्रीमाधवदास बाबाजीके पास केशीघाट स्थित श्रीगोपालकृष्ण गोस्वामीकी समाजमें गये । माधवदास बाबाजीने उन्हें उदास देखकर उनके असमय आनेका कारण पूछा । उन्होंने पूर्वोक्त घटना सुनाते हुए और अपनी तत्कालीन मानसिक स्थिति बतलाते हुए कहा—‘प्रभुपाद तो मेरे दुर्भाग्यसे अब प्रकट हैं नहीं । तुम मुझे उनकी समाधिपर ले चलो ।’ माधवदास बाबा उन्हें प्रभुपादके समाधि-स्थलपर ले गये । वहाँ जैसे ही वे रजमें लोट-पोट हुए, प्रभुपादकी कृपासे उन्हें लीला-स्फूर्ति होने लगी ।

श्रीजगदीशदास बाबा श्रीकृष्ण-लीला-समुद्रमें मीनके समान सदा तैरते, डूबते और उतराते रहते । यह उनकी बाह्यदशासे भी स्पष्ट प्रतीत होता । उनके हृदयमें जिन नये-नये भावोंका संचार होता, वे उनके शरीरके तदनुरूप बदलते हुए वर्णोंमें दृष्टिगोचर होते । जब किसी कारणवश लीला-स्फूर्ति बन्द हो जाती, तब वे जलसे निकली मछलीके समान तड़फड़ाते । उनकी विरह-वेदना इतनी असह्य हो जाती कि एक क्षणके लिए भी प्राण धारण करना कठिन हो जाता । एक बार ऐसी ही अवस्थामें उन्होंने श्रीगौरांगदासजीसे कहा—‘गोपाल ! एक काम करेगा ?’

‘आज्ञा कीजिये बाबा !’—गोपालने उत्तर दिया ।

‘देख, मैं कुएँके पास खड़ा हो जाऊँ । तू मुझे धक्का देकर विरह-वेदनासे मेरी रक्षा कर ।’

गोपालको जीवनमें पहली बार जगदीशदास बाबाकी आज्ञाकी अवहेलना करनेको विवश होना पड़ा । इतना ही नहीं, उस दशामें सदा उनके निकट रहकर विशेष रूपसे इस बातकी सावधानी रखनी पड़ी कि कहीं वे विरह दशामें व्याकुल हो आत्महत्या न कर लें ।

गौरांगदासजी गोवर्धनमें रहते हुए बीच-बीचमें वृन्दावन जाकर श्रीजगदीशदास बाबाकी देख-रेख करते और उनके सत्संगका लाभ उठाते । एक दिन रात्रिमें वे श्रीजगदीश बाबाकी चरण-सेवा कर उनकी शय्याके समीप भूमिपर शयन कर रहे थे । उसी समय बाबाका वात्सल्य-समुद्र उमड़ा और उन्होंने अपने चरण-कमल उनकी छातीपर रख दिये । चरणोंका स्पर्श पाते ही उन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण-लीलाके दर्शन होने लगे । उसी समयसे उनके हृदयमें श्रीकृष्ण-लीलाकी स्वतः स्फूर्ति होने लगी ।

एक बार राधाकुण्डमें उन्हें एक साधुका आतिथ्य स्वीकार कर उसकी

कुटियापर प्रसाद ग्रहण करने और रात्रि वहीं व्यतीत करनेका संयोग हुआ । साधु कुपथगामी था । गौरांगदासजीको भी अपने मार्गपर ले आनेके उद्देश्यसे उसने एक योजना बनायी थी । गौरांगदासजीको जैसे ही इसका आभास हुआ, उन्होंने उसकी भर्त्सना की और उसका संग त्याग दिया । पर थोड़ी देरके उसके संगके प्रभावसे या उसके अन्नके प्रभावसे उन्हें लीला-स्फूर्ति होना बन्द हो गया । उनकी वही अवस्था हो गयी जो कृपण व्यक्तिकी अपना सारा धन खो बैठनेपर या मछलीकी तालाबका जल सूख जानेपर होती है । दूसरे दिन कड़ी धूपमें भी वे गिरिराजकी परिक्रमाको चल दिये । दिन भर परिक्रमा कर गिरिराजसे प्रार्थना करते रहे । सन्ध्या समय क्लांत हो उद्धवकुण्डकी सीढ़ीपर लेट गये । थोड़ी देरमें आँख लग गयी । यदि करवट बदलते तो सीढ़ियोंसे लुढ़कते हुए कुण्डमें जा गिरते । किसी व्यक्तिने उन्हें गोदमें उठाकर ऐसे स्थानपर लिटा दिया, जो सुरक्षित था । उसी समय उनकी निद्रा भंग हुई । लगा कि किसीने उन्हें उठाकर दूसरी जगह लिटा दिया है । चारों ओर मुड़कर देखा, पर दूर तक कोई न दीखा । वे आश्चर्यचकित रह गये !

दूसरे दिन वे जगदीशदास बाबासे पास गये । उन्हें देखते ही वे क्रुद्ध होकर बोले— 'मुखकी तरह जहाँ-तहाँ सो जाता है । तुझे इतना भी ज्ञान नहीं कि कहाँ लेटना चाहिये, कहाँ नहीं ।' वे समझ गये कि उन्होंने ही उन्हें उद्धवकुण्डपर उठाकर दूसरी जगह लिटाया था । उनका हृदय भर आया और नेत्रोंसे आँसू टपकने लगे । उन्होंने समझ लिया कि किस प्रकार गुरुदेव छायाकी तरह शिष्यके साथ रहकर कठिन परिस्थितियोंमें उनकी रक्षा करते हैं ।

उन्होंने राधाकुण्डके साधुसे मिलनेका और अपनी लीला-विस्मृतिका सारा हाल बाबासे कहा और उनके कृपा-आशीर्वादकी प्रार्थना की । बाबाने उन्हें आशीर्वाद दिया । उसी समयसे उन्हें लीला-स्फूर्ति फिर होने लगी ।*

श्रीजगदीशदास बाबा विशेष रूपसे सावधान रहते कि कभी कहीं जाने-अनजाने किसीके भी प्रति कोई अपराध न बन जाय । साधारणतया भजनानन्दी महात्मा भजनमें आवेशके कारण आगन्तुक लोगोंसे बात-चीत

* श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजके दिव्य चरित्रसं सम्बन्धित सभी घटनाओंका विस्तारसे वर्णन किया गया है लेखक द्वारा प्रणीत 'बाबा श्रीगौरांगदासजी' नामक ग्रन्थमें ।

करना पसन्द नहीं करते । परन्तु जगदीशदास बाबा आगन्तुकोंकी कभी उपेक्षा न करते । यदि कोई उन्हें इसके विपरीत परामर्श देता, तो कहते— 'मेरा नाम जगदीश दास है । आगन्तुकोंके रूपमें जगदीशकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है । महाप्रभु लोगोंको मेरे पास भेजते हैं उनकी शंकाओंका समाधान कराने और भजन सम्बन्धी उपदेश दिलानेके लिए । यदि मैं उपदेश देकर उनकी सेवा न करूँ, तो उनके प्रति अपराधका भागी तो बर्नूंगा ही, महाप्रभुके प्रति भी अपराध करूँगा ।' वे अपनी कुटियापर ग्रन्थ-पाठ या कथादिका आयोजन भी इसी भयसे न करते कि कहीं कोई व्यक्ति पाठके समय उनके पास अपनी जिज्ञासा लेकर आये और पाठ होता देख निराशापूर्वक वापस चला जाय । इसलिए जब वे बाह्यदशामें होते और आगन्तुक उनके पास होते, तो उनका समय इष्ट-गोष्ठीमें ही व्यतीत होता । गोष्ठीमें वे बीच-बीचमें स्वयं प्रश्न करते और उसका उत्तर दे देते, तब दूसरे लोगोंसे अपना मत प्रकट करनेके लिए कहते । वे नहीं चाहते कि पहले दूसरे लोग अपना मत व्यक्त करें और उन्हें उसका प्रतिवाद करना पड़े ।

एक दिन राजर्षि वनमाली रायवहादुरसे उन्होंने प्रश्न किया— "चैतन्य-चरितामृतका वाक्य है—'सर्वत्यागी जीवेर कर्तव्य कांहां बास ? श्रोत्रुन्दावन भूमि जांहां नित्य लीला-रास ।' (अर्थात् सर्वत्यागी व्यक्तिको रहना चाहिये वृन्दावनमें जहाँ रास-लीला नित्य होती है ।) तुमने तो सर्वत्याग किया नहीं है, फिर तुम यहाँ क्यों रहते हो ?" प्रश्न सुनकर राजर्षिका माथा चकरा गया । पर वे कुछ उत्तर दे उसके पूर्व ही वाचाने कहा—'प्रभु तुम्हें यहाँ लाये हैं उन लोगोंकी सेवाके लिए जो सर्वत्यागकर यहाँ रह रहे हैं और भजन कर रहे हैं ।' राजर्षि वनमाली बाबू बहुत अर्थ व्यय कर वृन्दावनमें साधु-वैष्णवोंकी सेवा किया करते थे ।

श्रीजगदीशदास बाबासे जब कोई विदा लेता, तब वे उसके मुखकी ओर देखकर यह जागनेकी चेष्टा करते कि वह प्रसन्न मनसे विदा हो रहा या नहीं । यदि कुछ शंका होती तो पूछ लेते कि उनकी वार्तामें उसे कुछ कष्ट तो नहीं पहुँचा है । एक बार अकस्मान् उनके छोटे भाई बंगालमें आये । बाबाने उनका यथायोग्य आदर किया और उनके प्रति स्नेह प्रदर्शन किया । भाईने जब उन्हें यह संवाद सुनाया कि उनकी स्त्रीका देहान्त हो गया है, तब वे बोले—'बलो अच्छा हुआ, संसार-बन्धनसे तुम्हें मुक्ति मिली । अब आ जाओ, दोनों भाई साथ रहकर भजन किया करें ।'

भाईके जानेके पश्चात् वे सोचने लगे—जाते समय वह कुछ प्रसन्न नहीं दीख रहा था । मैंने उसे सान्त्वना देनेके बजाय कहा—‘अच्छा हुआ ।’ कहीं उसने मेरी बातका बुरा तो नहीं माना ? वे भाईसे पूछना भूल गये थे कि वे कहाँ ठहरे हैं । उन्होंने किसी प्रसंगमें कहा था कि वे एक-दो दिनमें चले जायेंगे । इसलिए वे उनसे क्षमा माँगनेके उद्देश्यसे दो-तीन दिन लगातार वृन्दावन स्टेशन गये । पर उनसे भेंट न हुई । तब उन्होंने अपने परिचित वर्धमानके एक वकील साहबको पत्र लिखकर आग्रह किया कि वे भाईसे पूछकर लिखें कि उसने उन्हें क्षमा कर दिया है या नहीं । वकील साहबने लिखा कि भाई उनकी बातसे जरा भी दुःखी नहीं हुए थे । उनके पास फिर इस भयसे नहीं गये कि उनके भजनमें व्याघात होता । तबसे बाबा जो कोई उनके पास आता उसका पता पहले पूछ लेते ।

किसीमें दोष-दृष्टि रखते या किसीकी निन्दा करते बाबाको कभी किसीने नहीं देखा । दोष-दृष्टि रखनेकी बात तो दूर, वे ऐसे अवसरोंको ही न आने देनेकी यथासम्भव चेष्टा करते, जिनमें दोष-दृष्टिकी सम्भावना हो । वे कहीं पाठ आदि सुनने भी नहीं जाते इस भयसे कि कदाचित् पाठकर्त्ताकी कोई बात उन्हें अच्छी न लगे और उनमें दोष दीखने लगे । जब किसीकी निन्दा या त्रुटिका कोई प्रसंग आता, तो वे गुरुदेव श्रीभगवानदासकी एक बात कहकर उसका समाधान किया करते । वे कहते कि एक दिन श्रीभगवानदास बाबाके किसी भक्तने उनसे कहा—‘अमुक भक्त आपके पास आकर बड़ी लम्बी-चौड़ी हाँकता है । पर आप जानते हैं कि नहीं, उसने मछली खाना भी अभी नहीं छोड़ा है ?’ बाबाने उत्तर दिया—‘तुम भी तो कभी मछली खाया करते थे, अब नहीं खाते । जो दोष तुम्हारे अपने भीतर रहा हो उसके कारण दूसरेको दोषी कहना ठीक नहीं । जीवमात्रकी उन्नति क्रमशः होती है, यह सोचकर किसीका भी दोष नहीं देखना चाहिये ।’

श्रीजगदीशदास बाबा अन्तर्मुखतासे सदा लीला-रसमें निमग्न रहनेके कारण उत्सवादि पसन्द नहीं करते थे । अपने गुरुदेवकी तिथिपर एक सेर मालपुआ मँगाकर भोग लगा देते थे और जो कोई आता था उसे उसमें-से एक टुकड़ा प्रसादका दे देते थे । एक बार गुरुदेवकी तिरोभाव तिथिपर उनकी इच्छा हुई वैष्णव-सेवा करनेकी । किनूबाबू नामक एक व्यक्ति उन्हें उत्सवके लिए ४०) रुपये दे गये । बाबा स्वयं जाकर मालपुआके लिए २०) रुपयेका गुड़ खरीद लाये । गुड़ कुटियामें रखवाकर सामनेके कुएँपर पैर धोने गये ।

पर कुटियाकी साँकल लगाना भूल गये । इस बीच बन्दरोकी एक टोलीने कुटियामें प्रवेश किया । उसी क्षण गुड़का महोत्सव प्रारम्भ हो गया । जगदीश बाबा दूरसे बानररूपी वैष्णवोंकी गुड़-भोजन-लीला देखकर प्रसन्न हुए और हरिध्वनि करने लगे । जब बानर महानन्दपूर्वक गुड़-महोत्सव समाप्तकर अपने-अपने स्थानको जाने लगे, बाबाने उन्हें दण्डवत् प्रणामकर आनन्दपूर्वक विदा किया ।

सन्ध्या समय जब कुटियापर भक्त-समागम हुआ और किनूबाबूने महोत्सवकी बात पूछी, तो बाबाने उत्तर दिया—‘आज तुम्हारी कृपासे बहुत-से वैष्णवोंकी सेवा हुई । कुल २०) रुपये खर्च हुए । बाकी २०) रुपये यह लो । प्रसाद चाहिये तो कुटियामें जाकर देखो, गुड़-प्रसादके कण भूमिपर छिटके पड़े होंगे, या गुड़की बोरीमें चिपके होंगे ।’

एक दिन बाबाके मनमें वासना जागी कि श्रीकृष्णलीला-स्थली कालीयदहमें प्राचीन दहके स्मृति-चिह्नके रूपमें एक विशाल दीघिकाका निर्माण कराया जाय । उन्होंने राजर्षि वनमाली रायबहादुरके मैनेजर श्रीकामिनीकुमार बाबूसे इसे व्यक्त किया । कामिनीबाबूके माध्यमसे इस बातका धनी-समाजमें प्रचार होते ही दीघिकाके लिए धन एकत्र होने लगा । दूसरे ही दिन भक्त-श्रेष्ठ श्रीलालाबाबूके वंशकी एक विधवा रमणीने ७५ हजार रुपये देना स्वीकार किया । हेतमपुरके राजाने २५ हजार रुपये देनेका वचन दिया । बाकी खर्चका भार राजर्षि बाबूने ले लिया । जगदीशदास बाबासे परामर्श कर एक सुन्दर और सुवृहत् दीघिकाका एस्टिमेट तैयार कर लिया गया ।

उस दिन रात्रिमें बाबाका भजन न हो सका । प्रस्तावित दीघिकाकी चिन्तामें ही सारी रात बीत गयी । उन्हें इतना क्षोभ हुआ कि वे रात्रिमें ही कुटिया छोड़कर किसी वनमें चले गये । चार-पाँच दिन तक लोग उन्हें खोजते रहे, पर पता न चला । एक दिन अकस्मात् वे भजन-कुटीमें आकर उपस्थित हुए । दीघिका खोदनेके लिए जब उनसे अनुमति माँगी गयी, तो वे गम्भीर होकर बोले—‘दीघिकाकी वासना लेकर मेरे भजनमें भयंकर बाधा उपस्थित हो गयी थी । यदि इसका कार्य आरम्भ ही गया तो मेरा सभी कुछ चला जायगा । इसलिए मैं निषेध करता हूँ कि अब कभी भी इसके विषयमें मुझसे कोई कुछ न कहे । यदि किसीकी इच्छा हो तो मेरे मरनेके बाद मेरी वासनाकी पूर्ति भले ही कर दे ।’

श्रीजगदीशदास बाबा महाप्रभुके 'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना । अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः' श्लोककी साक्षात् मूर्ति थे । उनसे यदि कोई पूछता कि प्रेम-भक्ति लाभ करनेका सबसे सरल और अचूक उपाय क्या है ? तो वे कहते कि जो इस श्लोकके साँचेमें अपने जीवनको ढालनेमें जितना समर्थ होगा, जो जितना अपनेको तृणसे भी तुच्छ मानकर वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होकर, स्वयं सम्मानकी अभिलाषा न रखते हुए और दूसरोंको सम्मान देते हुए निरन्तर हरि-कीर्तनमें रत रहकर जीवन व्यतीत करनेमें समर्थ होगा, वह उतना प्रेम-भक्तिके निकट होगा । जिस दिन वह पूर्णरूपसे अपने-आपको इस साँचेमें ढाल लेगा, उस दिन निश्चित रूपसे प्रेम-भक्ति प्राप्त कर लेगा । स्पष्ट है कि जिसका जीवन इस प्रकार ढला होगा, उसका हृदय वासना-शून्य होगा । इसलिए इसी प्रकारके एक प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने एक बार कहा था—'तुम्हारे हृदयमें जब प्रेम-भक्तिके सिवा अन्य किसी वस्तुकी चाह न रहेगी तभी तुम प्रेम-भक्ति लाभ कर सकोगे ।'

श्रीजगदीशदास बाबाकी आयु अब लगभग १०० वर्षकी हो गयी थी । वे अपनी प्रकट-लीला समाप्त करनेको थे । उस समय श्रीगौरांगदास बाबा उनके पास थे । उनके स्नेहके कारण उनके पास रहते लीला समाप्त करना उनके लिए सम्भव न था । इसलिए उन्होंने उन्हें आज्ञा दी—'तुम बरसाने जाओ । भानुखर सरोवरको झाड़ू-बुहारीकी सेवा किया करो ।' उनके विदा होते समय उन्होंने कहा—'मेरी तीन बातें याद रखना । जीवनमें कभी किसीके आगे हाथ न पसारना । किसीसे अपने हृदयकी बात न कहना । साधु-बैष्णवोंकी पंगतमें बैठकर प्रसाद न पाना ।'

गौरांगदासजी बरसाने जाकर नियमसे भानुखर सरोवरकी सेवा करने लगे । कुछ दिन पश्चात् उन्होंने श्रीजगदीशदास बाबाके ज्योतिर्मय स्वरूपके वहाँ दर्शन किये । वे कुछ दूरपर उनके सामने खड़े थे । गौरांगदास जब उनकी ओर बढ़े तो उन्होंने हाथ मिलाकर मना किया और अन्तर्धान हो गये । गौरांगदास समझ गये कि बाबाने देह त्याग दिया है । वे विरह-वेदनासे पीड़ित हो तुरन्त वृन्दावनकी ओर चल पड़े । मार्गमें पता चला कि १५१५ ई० आषाढ़ शुक्ला पक्षीको वे नित्यलीलामें प्रवेश कर गये ।



पण्डित रामकृष्णदास बाबाजी

(वृन्दावन)

बालक रामप्रतापकी आयु उस समय चार या पाँच वर्षकी थी । जयपुरके श्रीगोविन्ददेवके मन्दिरके प्रांगणमें वह नित्य खेलने जाया करता । खेलके साथी थे गोविन्दजीके सेवाइत श्रीकिशोरीमोहन गोस्वामीके बालक कृष्णचन्द्र और राधाचन्द्र । गोविन्दजीपर तो नित्य उसकी दृष्टि पड़ती ही । वह सोचता—यह भी एक गोस्वामी-बालक है । इसे वे सबसे अधिक प्यार करते हैं । तभी इसे इतने अच्छे-अच्छे कपड़े, गहने और मोर-मुकुट आदि पहनाते हैं, इसकी आरती उतारते हैं, इसे खेलनेको बांसुरी और अच्छे-अच्छे खिलौने देते हैं । कितना अच्छा होता यदि यह भी मेरे साथ खेला करता । पर यह तो कभी मन्दिरसे बाहर निकलता ही नहीं !

उस दिन न जाने क्यों कृष्णचन्द्र और राधाचन्द्र खेलने नहीं आये । रामप्रताप प्रांगणमें खड़ा अपने दोनों हाथोंमें गोलियाँ खड़खड़ाता हुआ गोविन्दजीकी ओर निहार रहा था । पर गोविन्दमें किसी प्रकारकी प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी । वह उनके सामने अपनी रंग-बिरंगी गोलियोंसे स्वयं खेलने लगा । खेलते-खेलते कभी एक रंगकी गोली उठाकर उन्हें दिखाता, कभी दूसरे रङ्गकी ।

आखिर गोविन्दजीको लोभ हो ही आया । सोचा, सामने धालमें रखी अपनी सोनेकी गोली लेकर उतर पड़ें सिंहासनसे और आंगनमें आकर जुट जायें रामप्रतापके साथ खेलमें । पर जायें कैसे ? उन्हें पुजारी और दरवानका भय जो था ।

उसी समय प्रभुकी डच्छा देख उनकी अघटन-घटन-पटीयसी योगमाया शक्तिने अपने प्रभावका विस्तार किया । पुजारी और द्वार-सेवकादि किसी कार्यसे बाहर चले गये । दरवानको शौचका वेग हुआ । वह भी बाहरका फाटक बन्द कर चला गया ।

अबसर देख गोविन्दजी अपनी गोली ले आंगनमें उतर पड़े और लगे रामप्रतापके साथ खेलने । कुछ देर बाद दरवानको आते देख वे फिर

सिंहासनपर जा विराजे । अपनी गोली तो ले ही गये, रामप्रतापकी भी ले भागे ।

रामप्रतापने 'मेरी गोली, मेरी गोली !' कह चीख-चीखकर रोते हुए गोविन्दका पीछा किया । द्वारिक पीछेसे भागता आया और उसे भीतर जानेसे रोक दिया ।

उसी समय गोस्वामीजी आये श्रृङ्गार-आरती करने । रामप्रतापको रोते देख उन्होंने उससे रोनेका कारण पूछा । उसने कहा—'गोविन्दा मेरी गोली लेकर भाग आया है।' उन्होंने विस्मयकी हँसी हँसते हुए कहा—'अच्छा, रुको । मैं देखता हूँ ।'

वे जैसे ही मन्दिरके भीतर गये, उन्होंने देखा कि गोविन्दजीकी सोनेकी गोलीके साथ एक और गोली भी थालमें रखी है । वे आश्चर्यमें डूब गये । उनका शरीर रोमांचित हो गया । उन्होंने मन-ही-मन रामप्रतापके भाग्यकी सराहना की और गोली लाकर उसे दे दी ।

रामप्रतापको दैवी सम्पत्ति परम्परासे उत्तराधिकारमें प्राप्त थी । उसके पितामह राजस्थानके कामठ ग्राममें रहते थे । वे श्रीरामानुज सम्प्रदायके वैष्णव थे और 'श्रीनारायणकवच'में सिद्ध थे । सभी शास्त्रोंका उन्हें अच्छा ज्ञान था । जयपुर महाराज श्रीरामसिंहजी उनके भुणोंसे मुग्ध थे । उन्होंने उन्हें जयपुर बुलाकर युवराजके अध्यापकके रूपमें उनकी नियुक्ति कर दी थी । राजमहलके निकट उनके लिए एक गृहका निर्माण कर दिया था और दो गाँव जागीरमें उनके नाम लिख दिये थे ।

जयपुरमें उनके एक पुत्रका जन्म हुआ । नाम हुआ श्रीलक्ष्मीनारायण । लक्ष्मीनारायणको थोड़े ही समयमें सर्वशास्त्रव्युत्पन्न और सर्वगुणसम्पन्न देख पिताके आनन्दकी अवधि न रही । पर वे अधिक दिन इस आनन्दका उपभोग न कर सके । लक्ष्मीनारायणको अल्पावस्थामें ही असहाय छोड़कर नित्यधामको चले गये ।

पिताके अन्तर्धानके पश्चात् लक्ष्मीनारायणको तीव्र वैराग्य हुआ । वे घर छोड़कर वनमें चले गये । श्रीराम-जानकीके दर्शनकी लालसासे राम-मन्त्रका जप और ध्यान करने लगे । कहते हैं कि एक दिन अश्वारोही रामचन्द्रने भ्राताओंके साथ उन्हें दर्शन दिये और विवाह करनेका आदेश

देकर अन्तर्धान हो गये । इष्टदेवकी आज्ञा शिरोधार्य कर लक्ष्मीनारायण घर लौट गये ।

महाराज रामसिंह प्रसन्न हो उनके लिए योग्य कन्याकी खोज करने लगे । उसी समय वल्लभकुलकी एक दौहित्र-सन्तानको रामचन्द्रका स्वप्नादेश हुआ—‘तुम अपनी कन्या कमलाका विवाह श्रीलक्ष्मीनारायण जोशीसे कर दो ।’ कमलादेवीका लक्ष्मीनारायणसे विवाह सम्पन्न हुआ ।

शुभ सम्बत् १६१४, भाद्र मासमें कमलादेवीने एक पुत्र प्रसव किया । पुत्रका नाम रखा श्रीरामप्रताप ।

कदाचित् प्रतापी रामप्रतापका जन्म कराना ही था श्रीरामचन्द्रकी लक्ष्मीनारायणके विवाहकी योजनाका मुख्य उद्देश्य । रामचन्द्रके मनोभ्रष्टकी पूर्तिके पश्चात् एक दिन लक्ष्मीनारायण नित्य कृत्यके समय ध्यान करने-करते समाधिस्थ हो गये । उनकी समाधि चिर-समाधि सिद्ध हुई ।

रामप्रतापकी अवस्था उस समय ३ वर्षकी थी । वर्ष-दो वर्ष बाद ही उसकी गोविन्दजीसे मैत्री हो गयी । साथ ही फूट पड़ा उनके साथ खेल-कूदका आनन्दमय उत्सव । गोविन्दजीकी स्फूर्तिमें वह कभी-कभी उन्मादग्रस्त बालककी तरह घण्टों अकेले बैठा रहता । यह देख उसकी माँ और ताईको चिंता होने लगी । ताई कई दिन तक निकटके हनुमानजीके मन्दिरमें धरना देकर पड़ी रहीं । आदेश मिला—‘चिंता न करो । बालक पागल नहीं है । वह भगवानका नित्य परिकर है ।’

एक दिन रामप्रताप पतंग उड़ा रहा था । किसीने पतंग काट दी । वह भूमिपर लोट-पोट हो रोने लगा । उसी समय गोविन्दजी भागे आये । उसे बहुत-सी डोर और पतंगें देकर चले गये । रामप्रताप प्रसन्न हो घर गया । माँने इतनी सारी डोर और पतंगें देखकर कहा—‘ये कहाँसे लाया रे ?’

‘गोविन्दाने दी हैं,’ उसने हँसते हुए उत्तर दिया । माँको शंका हुई कि वह गोविन्दजीके जगमोहनसे भेटके पैसे चुराकर डोर पतंग लाया है । उसकी ताड़ना-भर्त्सना की और मन्दिरमें जाकर खेलनेकी मनाही कर दी ।

कुछ बड़े होनेपर रामप्रतापजीका खेल-कूदमें आवेश जाता रहा और विद्याध्ययनमें आवेश हो आया । अतिशय मेधावी होनेके कारण उन्होंने

दस-ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही पाणिनीके सूत्र, सारस्वत व्याकरण और अमरकोष कण्ठस्थ कर लिये। उर्दू और बँगला भाषाएँ भी सीख लीं।

ग्यारह वर्षकी अवस्थामें उपनयन संस्कारके पश्चात् सावित्रीदाता छोटे लाल राजपुरोहितने उन्हें सावित्री पुरश्चरण करनेका आदेश किया। यथारीति पुरश्चरण करनेके पश्चात् सावित्रीके दर्शन हुए। सावित्री उन्हें वृन्दावन जानेका आदेश देकर अन्तर्धान हो गयीं।

तभीसे वे घर छोड़कर वृन्दावन जानेका प्रयत्न करते रहे। परन्तु माँ और राज-सरकार द्वारा बाधित होनेके कारण उनके प्रयत्न विफल होते रहे। तेरह वर्षकी अवस्थामें किसी प्रकार वे वृन्दावन जानेसे सफल हुए। वहाँ श्रीगोविन्ददेवके मन्दिरके निकट गोविन्दजीके गोस्वामियोंके आश्रममें रहने लगे।

अध्ययनमें उनका आवेश अब भी जारी रहा। उन्होंने रंगजीके मन्दिरके श्रीसुदर्शन शास्त्रीसे न्याय, करौलीकुञ्जके श्रीनृसिंहदासजीसे श्रीमद्भागवत्, श्रीगोपीलाल गोस्वामीजीसे हरिभक्तिविलास, और श्रीनीलमणि गोस्वामीजीसे षट्संदर्भादि भक्ति-ग्रन्थोंका अध्ययन किया। षट्संदर्भका अध्ययन करते समय वे नित्य गोपेश्वर महादेवकी पचास अध्याय श्रीमद्भागवतके सुनाते। बीस वर्षकी अवस्थामें उन्होंने अध्ययन समाप्त किया।

वृन्दावन जानेके पूर्व उनका जयपुरके श्रीनृसिंहदासजीसे परिचय हो चुका था। नृसिंहदासजी तैलंगदेशीय ब्राह्मण और षट्संदर्शनाचार्य थे। वे सामवेदगान और वीणावादनमें सुनिपुण थे। उनका कण्ठ स्वर गन्धर्वोंके समान था। श्रीगीतगोविन्द और श्रीकृष्णकण्ठमृतादिके गानेमें वे आविष्ट हो जाया करते थे। एक दिन श्रीगोविन्दजीने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा— 'मैं तुम्हारे मुखसे सामवेद गान सुनना चाहता हूँ। पर तुम पहले वृन्दावन जाकर श्रीनित्यानन्ददास बाबाका शिष्यत्व ग्रहण कर आओ।' स्वप्नादेश प्राप्तकर नृसिंहदासजी संसार त्यागकर वृन्दावन चले गये। सिद्ध बाबासे दीक्षा और वैष ग्रहणकर वे जयपुर गये। गोविन्दजीको सामवेद-गान सुनाया। उनका सामवेदगान और वीणावादन सुन जयपुराधिपति श्रीरामसिंह और श्रीकिशोरीमोहन गोस्वामी मुग्ध हो गये। उन्होंने आग्रहकर उन्हें जयपुरमें ही रख लिया।

रामप्रताप वृन्दावनमें अध्ययन करनेके समय बीच-बीचमें माँके आग्रहसे जयपुर जाया करते और श्रीनृसिंहदासजीका सत्संग करते। उनके सत्संगसे सिद्ध श्रीनित्यानन्ददास बाबाजीके प्रति उनकी विशेष श्रद्धा हो गयी। अध्ययन समाप्त होनेपर उन्होंने उनसे दीक्षा और वेष ग्रहण किया। वेशका नाम हुआ श्रीरामकृष्णदास। पर उनके असाधारण पाण्डित्यके कारण लोग उन्हें 'पण्डित बाबा' कहकर पुकारने लगे।

गुरुदेवकी आज्ञासे उन्होंने गोवर्धन जाकर सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाजीसे स्मरण-मनन-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् बरसाने रहकर भजन करने लगे।

बरसानेमें प्रसिद्ध कीर्तनिया श्रीगौरचरणदास बाबाजी रहते थे। उनसे वे बड़ी तालका बिहागड़ा कीर्तन सीखने लगे। कीर्तन सीखनेमें उनका आवेश बढ़ता गया। भजनमें आवेश कम होता गया। गुरुदेवको जब इसका पता चला, उन्होंने कीर्तन बन्द कर भजनमें लग जानेका आदेश किया। पर बहुत चेष्टा करनेपर भी उनका भजनमें मन न लगा। तब उन्होंने गुरुदेवकी आज्ञासे उद्धवक्यारीमें रत्नसिंहासनके सामने बाई ओरके कदम्बके नीचे एक आसनपर सत्रह दिन तक बैठे रहकर अष्टादशाक्षर मन्त्रका पुरश्चरण किया। पहले तीन दिन उन्होंने दूधके अतिरिक्त और कुछ भी ग्रहण नहीं किया। उसके पश्चात् बारह दिन तक केवल जल ही लिया। पीछे जल भी छोड़ दिया। लय-विक्षेपरहित मनसे मन्त्र-जप करते रहे। सत्रहवें दिन राधा-कृष्णके साक्षात् दर्शन हुए।

इस घटनाकी पुष्टि एक बार उन्होंने शेषावस्थामें स्वयं अपने मुखारविन्दसे की थी। तब वे वृन्दावनमें दाऊजीके बगीचेमें रहते थे। एक दिन वे बगीचेमें टीनके छप्परके नीचे चुपचाप लेटे थे। निकट बैठे श्रीप्रियाशरण बाबाजी, श्रीकृपासिन्धुदास बाबाजी, श्रीललितमोहन गोस्वामी आदि आपसमें धीरे-धीरे बाबा द्वारा किये गये पुरश्चरणके बारेमें बात कर रहे थे। किसीने कहा, पुरश्चरणमें उन्हें श्रीकृष्ण और दाऊजीके दर्शन हुए। उसी समय वे बोल पड़े—'हट, प्रिया-प्रियतमके।'

प्रिया-प्रियतमने दर्शन देते समय कहा—'बाबा, हम तोते प्रसन्न हैं। बोल तू कहा चाहे?'

वे बोले—‘मैं तो गुरुनकी आज्ञा ते भजन कर रही हूँ। जानू नयों कहा चाहूँ। तुम दोउनकी प्रसन्नता छाड़के और चाहियेकी कहा है?’

प्रियाजीने मुस्कराते हुए कहा—‘बाबा, राघवकी गुफा* में भजन कियो कर।’ इतना कह दोनों अन्तर्धान हो गये।

तबसे बाबा पूछरीमें राघवकी गुफामें रहकर भजन करने लगे। वे प्रातः २ बजे भजनमें बैठते और अपराह्न २ बजे तक लीला स्मरणमें तल्लीन रहते। अपराह्नमें गुफासे बाहर निकलते। उस समय साधु-महात्माओंकी भीड़ वहाँ जमा रहती। पाठ-कीर्तन, इष्ट-गोष्ठी आदिका क्रम चलता रहता।

कुछ दिन बाद बाबाका भजनावेश इतना बढ़ गया कि समयका ध्यान रखकर भजनमें बैठना और उठना उनके लिए सम्भव न रहा। वे कब भजनमें बैठेंगे और कब उठकर बाहर आयेंगे, यह कोई न जानता। अक्सर दो-तीन दिन लगातार गुफामें बैठे भजन करते रहते। दो-तीन दिन बाद एक बार गुफासे निकल मधुकरीके लिए बाहर जाते। परिणाम यह हुआ कि गुफाके सामने जो नित्य अपराह्नमें लोगोंकी भीड़ लग जाया करती, वह समाप्त हो गयी।

इसी बीच एक बार उनकी माँ आयीं जयपुरसे उन्हें देखने। तीन दिन तक उन्हें गुफाके बाहर प्रतीक्षामें बैठे रहना पड़ा। तीसरे दिन जब वे बाहर निकले, उन्होंने उनकी ओर भ्रूक्षेप भी नहीं किया। वे सीधे मधुकरीको चले गये। माँ रो-रोकर उन्हें पुकारते हुए कुछ दूर पीछा किया। उन्होंने फिर भी पीठ मोड़कर उनकी तरफ न देखा। माँ असह्य पीड़ा हृदयमें लेकर जयपुर लौट गयीं।

माताके चले जानेके बाद उनका चित्त अस्थिर रहने लगा, भजनमें बाधा आने लगी। उन्होंने सोचा कहीं कुछ अपराध हो गया है। वे गये सिद्ध कृष्णदास बाबाके पास और उनसे इसका कारण जानना चाहा। उन्होंने कहा—‘गर्भधारिणी माँके प्रति तुम्हारा अपराध हुआ है। वे तुम्हारे व्यवहारसे दुःखित होकर चली गयी हैं। इसीसे तुम्हारा भजन नहीं हो पा रहा है।’

पण्डित बाबाने तब माँको चिट्ठी लिखकर बुलाया और पूछरीमें अपने पूर्वश्रमके यजमान श्रीभगवान् बैश्यके घर उन्हें रखकर उनकी सेवा

* श्रीराघव पण्डित श्रीमन्महाप्रभुके परिकर थे।

करने लगे । माताकी सेवामें लगे रहनेके कारण उनका भजनमें आवेश कम होने लगा । उसी समय उड़ीसासे श्रीकृष्णचैतन्य नामके एक बालकने आकर उनका आश्रय लिया । उन्होंने भदावलीके बाबाजीके गुरु श्रीप्रभुपादजीसे उसे दीक्षा दिलवायी और अपने पास रखकर भजन-शिक्षा देने लगे । माँकी सेवामें भी उसीको नियुक्त कर दिया । सात-आठ वर्ष पीछे माँके अन्तर्धान होनेपर वे फिर निर्विघ्न भजन करने लगे ।

कुछ दिन बाद गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीमन्महाप्रभुके मन्त्रको लेकर वाद-विवाद छिड़ गया । मन्त्रके पक्षमें थे पण्डित बाबाके काका-गुरु गोवर्धनके सिद्ध कृष्णदास बाबाजी, श्रीराधारमणके सेवास्त श्रीगोपीलाल गोस्वामी प्रभृति और विपक्षमें थे उनके जेठागुरु श्रीबलरामदास बाबाजी, विद्यागुरु श्रीनीलमणि गोस्वामी, रात्राकुण्डके महन्त नैयायिक श्रीजगदानन्ददासजी प्रभृति । दोनों पक्षोंमें गुरुवर्गके होनेके कारण वे बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये । उन्होंने सोचा कि इस वाद-विवादमें न पड़ना ही ठीक है । इसलिए वे गुफा छोड़कर बरसानेकी मोरकुटीमें जाकर रहने लगे । आठ वर्ष तक वहाँ एकान्तमें भजन करते रहे ।

विवाद मिट जानेपर फिर गुफामें आकर रहने लगे । दस वर्ष तक उसमें रहे । माघ मासमें एक दिन वे कोयलोंकी सुलगती अँगीठी लेकर गुफामें गये और भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया । दूसरे दिन प्रातः जब वे सोकर उठे, तो देखा कि वे गुफाके बाहर खुलेमें सो रहे हैं । किसने कैसे और क्यों बन्द गुफाके भीतरसे उन्हें निकालकर बाहर लिटाया, उनकी समझमें न आया । लोगोंने बताया कि कोयलेकी गैससे मूर्च्छा आ जाती है और मृत्यु होनेकी सम्भावना होती है, तब उन्होंने जाना कि मूर्च्छित अवस्थामें किसी दिव्य शक्तिने उन्हें बाहर लिटा दिया था ।

व्रजमें दिव्य शक्तियाँ इस प्रकार निष्कञ्चन महात्माओंकी सहायता करते अक्सर देखी गयी हैं । पर दुष्टोंका प्रकोप भी यहाँ कम नहीं रहा है । एक बार पूछरीके गंगाजीके मन्दिरमें किसी उत्सवमें पुए वाँटे गये । दो चोर पुओंके लोभमें पण्डित बाबाकी गुफापर आये । उन्होंने सोचा, उनके पास पुए अवश्य भेजे गये होंगे । उन्होंने गुफाके बाहर बुलाकर उनसे पुए माँगे । वे बोले—‘पुआ मेरे पास नाँय । मैं तो मधुकरीके अतिरिक्त कुछ लऊँ नाँय ।’

तब एक चोरने क्रुद्ध हो लाठी मारी । उनके सिरमें रक्त बहने लगा । दूसरा गुफाके भीतर गया । उसे पुए न दीखे तो बहुत पछताया । बाबाके सिरमें अपने हाथसे पट्टी बाँधी और उनसे क्षमा-प्रार्थना कर चला गया ।

पण्डित बाबा सभी सम्प्रदायोंके आचार्योंका उतना ही सम्मान करते, जितना अपने सम्प्रदायके आचार्योंका । एक बार वल्लभ सम्प्रदायके कोई आचार्य जतीपुरा पधारे । उन्होंने पण्डित बाबाकी गुफापर जाकर किसी दिन उनके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की । किसीने पण्डित बाबाको इसकी सूचना दे दी । वे बोले—'वे आचार्य होकर मेरे पास आयेंगे ? मैं ही जाकर उनके दर्शन करूँगा ।' उसी दिन उन्होंने स्वयं जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और उनसे आशीर्वादकी प्रार्थना की ।

पर सम्प्रदायिकता इतनी अन्धी होती है कि उनके जैसे उदार और निर्दोष पुरुषमें भी द्वेष किये बिना नहीं रहती । एक बार किसी सम्प्रदायके कुछ कट्टरपंथियोंने श्रीरूप-सनातनको अपने सम्प्रदायके अनुगत बताकर उनकी हेयता प्रकट की । बाबाने प्रमाण सहित उनकी बातका खण्डन किया । उन्हें यह बात इतनी पुरी लगी कि उन्होंने बाबाको मार डालनेका पड्यन्त्र किया । वे जतीपुरामें गोवर्धनके तटपर उनके मधुकरीके रास्तेमें छिपकर खड़े हो गये । पर जब बाबा मधुकरीके लिए गुफासे निकले, पड्यन्त्रकारियोंने देखा कि एक व्याघ्र पालतू कुत्तेकी तरह उनके पीछे-पीछे जा रहा है । वे ग्राममें पहुँचे, तब वह व्याघ्र ग्रामकी दाहिनी ओर गौस्वामियोंकी समाजमें छिप गया । मधुकरीसे लौटते समय वह फिर उनके पीछे-पीछे चलने लगा । उन्हें गुफा तक पहुँचाकर कहीं चला । यह देखकर उन्हें विस्मय और भय हुआ । उन्होंने सदाके लिए बाबाके प्रति हिंसा और द्वेषका भाव त्याग दिया । उन्हें एक सिद्ध महापुरुष जानकर वे उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति करने लगे ।

एक दिन एक और आश्चर्यजनक घटना घटी । दोपहरके समय एक विषधर सर्प उनकी छाती और गलेसे लिपट गया । बाबा निश्चेष्ट बैठे भजन करते रहे । थोड़ी देरमें वह अपने-आप चला गया । रात्रिमें उन्हें सुनायी पड़ी एक ध्वनि । किसीने कहा 'तुम इस गुफासे चले जाओ ।' उसी समय उन्होंने गुफा छोड़ दी और कुसुमसरोवरके निकट श्यामकुटीमें जाकर रहने लगे ।

इसी समय श्रीधोरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती नामके एक असाधारण प्रतिभा

और भक्तिभाव सम्पन्न नवयुवक पण्डित बाबाकी शरणमें आकर रहने लगे । धीरेन्द्रनाथकी आयु इस समय लगभग २० वर्षकी थी । वे बंगालके एक बड़े जमींदारके लड़के थे और कलकत्तेके स्काटिश चर्च कालेजके बड़े प्रतिभाशाली और होनहार विद्यार्थी । प्रबल कृष्णानुरागके कारण वे अपने परिवारके अतुलनीय वैभवको तृणवत् त्यागकर और अपने गुरुदेव, कलकत्तेके प्रसिद्ध महात्मा सिद्ध श्रीरामदास बाबाजी महाराजसे आज्ञा लेकर वृन्दावन चले आये थे । वृन्दावनमें कालीयदहके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाजी महाराजके आनुगत्यमें भजन कर रहे थे । जगदीश बावाने उनकी तीव्र मेधाशक्ति और असाधारण भजनानुराग देखकर जान लिया था कि उनके द्वारा भविष्यमें वैष्णव समाजका बहुत उपकार होगा । इसलिए उन्होंने उन्हें पण्डित बाबाके पास रहकर शास्त्राध्ययन और भजन करनेकी आज्ञा दी थी ।

पण्डित बावाने उन्हें ग्वाल-पोखुरामें रहनेका आदेश दिया । वे नित्य ग्वालपोखुरासे अपराह्न चार बजे उनके पास जाते और ग्रन्थालोचना करते । उन्होंने उनके निकट श्रीमद्भागवत, षट्-सन्दर्भ आदि अनेक भक्ति-ग्रन्थोंका अच्छी तरह अध्ययन और मनन किया ।

कुछ ही दिनोंमें उनकी कृपासे उन ग्रन्थोंमें उनकी तदाकार वृत्ति हो गयी । वे जैसे उनका अभिन्न स्वरूप ही बन गये । पण्डित बावाने उन्हें कलकत्ते जाकर श्रीगमदास बाबाजी महाराजसे विधिबत् वैराग्य आश्रम ग्रहण करनेका आदेश किया । वे जाकर वैराग्य-आश्रमकी दीक्षा ले आये । नाम हुआ श्रीगौरीगंगादास । पण्डित बाबाके आदेशसे वे नित्य अपराह्नमें उनकी गोष्ठीमें भक्ति-ग्रन्थोंका पाठ करने लगे । दूर-दूरसे श्याम-कुटीमें इन नवीन बाबाजीका पाठ सुनने महात्मा आते और उसे सुनकर अपूर्व तृप्ति लाभ करते । ग्रन्थ तो उनके सामने नामको ही रखे रहते । उन्हें बिना देखे उनके श्लोकों और विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार्योंकी वाणियोंका निर्झर उनके मुखसे अवाधगतिसे बहता रहता । उनके अश्रु, कम्प और पुलकादि सात्त्विक भावोंसे परिपुष्ट उनकी कथा श्रोताओंको एक अनिवर्चनीय भाव-सागरमें डुबो देती । कथा कहते-कहते बीच-बीचमें कथा-सम्बन्धित लीलाकी उन्हें इस प्रकार विस्मृति होती कि वे समाधिस्थ हो जाते । श्रोतागण बैठे रहते इस प्रतीक्षामें कि कब उनकी भाव-समाधि भंग हो और कथामृतकी वृष्टि फिर होने लगे ।

श्रीगौरीगंगादास पण्डित बाबाजीके परिवारके अभिन्न अङ्ग बन गये ।

पण्डित बाबा उनसे पितृवत् स्नेह करते । वे भी उनके प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्तिका भाव रखते । उनकी गुरुवत् प्रेम-सेवा कर अपार सुखका अनुभव करते ।

एक बार बंगालके एक विरक्त बाबाजीने केलेके फूलके रसका ठाकुरजीको भोग लगाकर पण्डित बाबासे प्रसाद ग्रहण करनेका आग्रह किया । पण्डित बाबा ने प्रसाद ग्रहणकर उसकी बार-बार प्रशंसा की । यह देख गौरांगदासजीकी इच्छा हुई कि वे भी केलेके फूलका रसा बनाकर पण्डित बाबाको प्रसाद ग्रहण करायें ।

उन्होंने केलेका फूल प्राप्त करनेकी चेष्टा की । ढूँढते-ढूँढते राधाकुण्डके रास्तेमें एक मालीके बगीचेमें पहुँचे । वहाँ फूल लगा देख मालीसे उनकी भिक्षा माँगी । उसने मना कर दिया । कुछ मूल्य लेकर भी वह फूल देनेको तैयार न हुआ । तब गौरांगदासको गुरु-सेवाकी प्रबल इच्छाने विवश किया उसकी चोरी करनेको । वे अन्धकारके समय चाकू लेकर बगीचेमें घुस गये और लगे चाकूसे फूल काटने । मालीको कुछ शब्द सुनायी दिया । उसने गुलेलका निशाना मारा । गौरांगदासजी बाल-बाल बच गये । फिर भी उन्होंने फूल काटना नहीं छोड़ा । जब तक माली उधर आये, वे फूल लेकर भाग गये ।

दूसरे दिन उन्होंने साग बनाकर ठाकुरजीको भोग लगाया और पण्डित बाबाको समर्पण किया । पण्डित बाबा उस प्रसादका सेवन कर बहुत प्रसन्न हुए ।

किसीने गौरांगदास बाबाकी निन्दा करते हुए फूलकी चोरीकी सारी घटना उन्हें सुना दी । उसने सोचा कि वे गौरांगदासपर तीव्र शासन करेंगे । पर वे बोले—‘यदि भक्तमालके लेखक जीवित होते, तो गुरु-भक्तिके उदाहरणमें इस घटनाका उल्लेख अवश्य करते ।’

श्रीगौरांगदासजीके प्रति पण्डित बाबाके वात्सल्यकी झलक एक और घटनासे भी मिलती है । वे उन्हें अपने साथ मधुकरीको ले जाया करते । कहीं-कहीं मधुकरीकी जगह गालियाँ मिलतीं । एक घरसे तो गालियोंकी मधुकरी बँधी हुई थी । एक दिन गौरांगदासजी पण्डित बाबा और अन्य शिष्योंकी मण्डलीसे कुछ आगे थे । वे उसी घरमें भिक्षाके लिए गये । जैसे ही बाहरसे कहा ‘श्रीराधे,’ गृहणी बोली—‘फिर आय गयो निपूते ।’

गौरांगदासजी हँसकर बोले—'तेरी गाली मीठी लगे है मइया । अब तो मधुकरी दे दियो कर ।' गृहणीने क्रुद्ध हो उनके ऊपर थाली फेंक मारी । यह देख पण्डित बाबा पीछेसे चीख पड़े—'हमारे छोराकौ मार दियो, हमारे छोराकौ मार दियो !' पण्डित बाबाका शब्द सुन मुहल्लेके लोग वहाँ एकत्र ही गये और उस घरके लोगोंकी भर्त्सना करने लगे । उस दिनसे उन्होंने उस परिवारका बहिष्कार कर दिया । परिवारका मालिक पण्डित बाबाके पास गया और उनसे क्षमा माँगी । परम दयालु बाबाने उससे साधु-वैष्णवोंका कभी अपमान न करनेकी प्रतिज्ञा लेकर उसे क्षमा कर दिया ।

इसी समय निम्बार्क सम्प्रदायके एक नवयुवक श्रीप्रियाशरणदासने पण्डित बाबाकी शरण ली । वे उस समय काशीमें पढ़ते थे । आये थे वृन्दावन दर्शन करने । उनसे भी प्रभुको बहुत काम कराना था । उन्हें व्रजमें रखकर उस कार्यके लिए शिक्षा देनी थी, सब प्रकारसे उसके योग्य बनाना था । पर वे महजमें पकड़में आनेवाले तो थे नहीं । नची उम्र जो थी उनकी, और विद्याध्ययन, खेल-कूद, व्यायाम और कुश्तीमें भारी झोंक थी । उन्हें बाँध रखनेके लिए एक सुदृढ़ प्रेम-पाशकी आवश्यकता थी । इसलिए किसी अज्ञात शक्तिते प्रेरणा देकर उन्हें पण्डित बाबाके पास भेज दिया । प्रियाशरण बाबा अक्सर कहा करते कि पण्डित बाबाके प्रेमने उन्हें अपने माता-पिता तकको भुला दिया और वे उनके दर्शन करते ही सदाके लिए उनके बनकर रह गये ।

प्रियाशरण बाबा निम्बार्क सम्प्रदायमें दीक्षित थे । पर इससे क्या पण्डित बाबाके प्रेममें कोई अन्तर पड़ना था ? वे उनसे उतना ही प्रेम करते, जितना गौरांगदास बाबासे । उन्हें निम्बार्क सम्प्रदायके अनुसार ही भजन करनेका उपदेश करते, यहाँ तक कि एकादशी आदि व्रतका पालन भी उनसे निम्बार्क सम्प्रदायके अनुसार ही कराते । एकादशीके दिन वे निर्जल व्रत रखते, इसलिए मधुकरीको न जाते । पर यदि निम्बार्क सम्प्रदायके अनुसार एकादशी दूसरे दिन होती, तो उस दिन स्वयं निर्जल रखते हुए भी प्रियाशरण बाबाको साथ लेकर उनके लिए मधुकरीको जाते ।

एक बार प्रियाशरण बाबाको माताका प्रकोप हुआ । उस समय जब उन्हें घबराहट अधिक होती, तो पण्डित बाबा उन्हें सांत्वना देनेके लिए छातीमें लगाते । दूसरे लोग ऐसेमें उनसे दूर रहनेको कहते, तो भी उनकी अनसुनी कर देते ।

एक और नवीन वैष्णव श्रीकृपासिंधुदास बाबाने पण्डित बाबाकी शरण ली। बाबा उस समय बहुत बीमार थे। सेवाके लिए एक योग्य सेवककी आवश्यकता थी। सम्भवतः इसी कारण प्रभुने कृपासिंधु बाबाको उनके पास भेजा था। वे जैसे सेवाकी मूर्ति ही थे। उनके निकट रहकर तन-मनसे उनकी सेवा करने लगे। पर बाबाको किसी वैष्णवकी सेवा ग्रहण करनेमें संकोच होता था। उन्होंने कृपासिंधु बाबाका सेवामें विशेष आग्रह देखा, इसलिए स्वस्थ हो जानेपर उनसे अन्यत्र जाकर भजन करनेको कहा। पर उनके प्राण-मधुप बाबाके चरणकमलोंमें सदाके लिए लिपट चुके थे। उनके लिए बाबासे दूर होना प्राण त्याग करनेके समान था। वे भी बाबाके पास रह गये। उनके एक अभिन्न अङ्ग बनकर, हर समय परछाईकी तरह उनके साथ रहकर, उनकी सेवा करने लगे। बाबा उन्हें प्यारसे 'बच्ची' कहा करते। स्त्रीलिंगका प्रयोग शायद उन्हें अपने मंजरी-स्वरूपका स्मरण करानेको करते, जिसका उन्हें निरन्तर ध्यान रखनेको कहते। उन्होंने बाबाकी आज्ञासे समूचा गोविन्दलीलामृत कण्ठस्थ कर लिया और उनकी बतायी रीतिके अनुसार अष्टकालीन लीला-स्मरण करने लगे। अष्टकालीन लीला-स्मरणमें वे इतना अभ्यस्त ही गये कि इसमें भी समय-समयपर बाबाकी सेवाकी योग्यता उन्होंने प्राप्त कर ली।

बाबा यूँ तो सदा ही अन्तर्मना रहते और उनका लीलामें अभिनिवेश सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते सभी समय बना रहता। पर अपने दैनिक कार्यक्रमके अनुसार प्रातः २ बजेसे मध्याह्न २ बजे तक अपनी कुटियाके भीतर नाम-जपके साथ लीला-स्मरणमें रत रहते। उसके पश्चान् बाहर निकलकर मन्त्र-जप और पाठ करते। मन्त्र-जपके पूर्व कागजपर बने हुए राधा-कृष्ण और नितार्ई-गौरके चरण-चिह्नोंको मस्तकसे लगाते। मन्त्र-जपके समय आवश्यकता पड़नेपर कभी किसीके साथ एक-दो शब्द बोल भी लेते। पर लीला-स्मरणके समय बारह घण्टे उनकी वृत्ति पूर्णतया लीलामें सन्निविष्ट रहती। उस समय कुटियाके भीतर कोई न जाता। कुटियाके बाहर भी किसी प्रकारका शब्द न होता। पर उस समय भी कभी-कभी वे 'बच्ची'को पुकार लेते। किसी लीला-विशेषमें उनका मन इतना डूब जाता कि आगेकी लीलाकी विस्मृति हो जाती। उस समय कृपासिंधु बाबा उनकी सहायता करते। इस प्रकार वे बाबाकी अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकारकी सेवा करते।

कृपासिन्धु बाबाकी लाचारी तब होती, जब वे भी बाबाकी ही तरह लीला-स्मरणमें लवलीन हो अपनी सुध-बुध खो बैठते। एक बार ग्रीष्म ऋतुमें जब वे बाबाके साथ मधुकरीसे लौट रहे थे, पवनकी गति कुछ तीव्र हो गयी। मार्गके तरु-लता झँकोरे गाने लगे। हलकी-हलकी बूँदें दिन भरके तपस्व वातावरणको सुशीतल करने लगीं। पक्षी कलरव करते हुए अपने-अपने घोंसलोंको जाने लगे। ऐसे वातावरणमें दोनोंके हृदयमें राधा-कृष्णको किसी मधुरतम लीलाका उद्दीपन हो आया। परिणामस्वरूप दोनों ही बाह्य-स्मृति खो बैठे। वे वृन्दावनके दाऊजीके बगीचेके सुपरिचित मार्गसे भटक गये, जहाँ वे अब वर्षोंसे रह रहे थे, और सुदूर सुन्दरक ग्राममें जा पहुँचे।

कृपासिन्धु बाबा किस हद तक पण्डित बाबाके अपने अभिन्न वन गये, दाऊजीके बगीचेकी हो एक-दो घटनाओंसे स्पष्ट है। पण्डित बाबाकी डाढ़में दर्द हुआ। डॉक्टर आया इलाज करने। उसने पूछा—‘कौन-सी डाढ़में दर्द है, बाबा?’

‘मोएँ मालूम नायँ’—बाबाने उत्तर दिया।

‘तब किसे मालूम है, बाबा?’

‘बच्चीको मालूम है।’

बच्चीने आकर वह डाढ़ दिखा दी, जिसमें दर्द था।

एक बार बाबा बीमार पड़े। दुर्बलता इतनी हो गयी कि मुखसे कुछ कह सकना भी मुश्किल हो गया। ऐसी अवस्थामें प्यासके मारे गला सूखने लगा। उन्होंने ‘आ, आ’ कर मेवकोंमें जल माँगा। किसीकी समझमें न आया, बाबा क्या कह रहे हैं। कृपासिन्धु बाबा गोविन्दजीके दर्शन और मधुकरीके लिए गये हुए थे। उन्हें रास्तेमें बार-बार प्यास लगने लगी। वे कितना भी जल पियें, थोड़ी दूर जाकर फिर जोरकी प्यास लग आये। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि उन्हें इतनी प्यास क्यों लग रही है। उनकी समझमें तब आया जब वे लौटकर आश्रम गये और बाबाने उनके प्रति भी वैसे ही इशारा किया। उन्हें जल पिलाते ही उनकी अपनी प्यास भी मिट गयी।

जब बाबा राधवकी गुफा या श्यामकुटीमें भजन करते थे, उस समय गोवर्धनमें निष्किञ्चन, भजनानन्दी महात्माओंकी एक बड़ी टोली थी। पण्डित बाबा उस टोलीके केन्द्र थे। वे सभी प्रातः २ या ३ बजे उठकर

पारा दिन भजन करते । सन्ध्या समय मधुकरीको जाते । अपनी-अपनी मधुकरी ले किसी एक स्थानपर बैठकर सब एक साथ मिल-बाँटकर मधुकरीका सेवन करते । मधुकरी सेवनकर अपना-अपना झोला धो लेते और रात १२ बजे तक बैठकर इष्ट-गोष्ठी करते । अपने-अपने भजनकी बात कहते-सुनते । बीच-बीचमें हास्य-विनोद भी चलता रहता । बहिरंग लोग गोष्ठीमें सम्मिलित न हो सकें, इस उद्देश्यसे नित्य एक स्थानपर न जुटकर कभी-कहीं, कभी कहीं, जमा होते । एक दिन पहले ही निश्चित कर लेते कि कल मजलिस कहाँ लगेगी ।

एक दिन चकलेश्वरके महन्त श्रीसनातनदास बाबाने कहा—‘कल सबको मधुकरी मेरी कुटियापर पानी होगी ।’ दूसरे दिन सब अपनी-अपनी मधुकरी लेकर वहाँ पहुँचे । सनातनदास बाबाको कोई बहुत-से परवल दे गया था । उन्होंने ५ सेर परवलमें १ सेर धी डालकर उसका साग बना रखा था । सागका थाल ठाकुरजीका भोग लगाकर पण्डित बाबाके सामने रख दिया । बाबा पाने लगे । वे पाते जा रहे थे और चटकारे ले-लेकर कहते जा रहे थे—‘वाह ! कैसा स्वादिष्ट है ! ठाकुरने बड़े प्रेमसों पायो है !’

दूसरे लोग सोच रहे थे कि स्वभावमें स्वल्पाहारी बाबा दो-चार परवल खाकर छोड़ देंगे और वे उनकी प्रसादी ग्रहण करेंगे । पर वे तो सारे परवल खा गये और वे देखते रह गये ! किसीने कहा—‘बाबाने किसी अपूर्व आवेशमें यह लीला की है ।’ किसीने कहा—‘उन्हें इस बातका भय था कि हम लोग उनकी प्रसादी ग्रहण करेंगे, इसीसे वे थाल पोंछ-पोंछकर सब खा गये हैं—कहीं कोई किनका लगा न रह जाय ।’ किसीने कहा—‘नहीं, सनातनदास बाबाने विनोदमें उनके सामने पाँछ-छः मेर परवलमें भरा थाल रख दिया था । उन्होंने भी विनोदमें उनकी चुनौती स्वीकार कर उन्हें पराजित किया है ।’

सन् १९१८ में पण्डित बाबाको इन्फ्लुएन्जाने बुरी तरह आघरा । उस समय श्रीकामिनीकुमार धोप, श्रीदीनशरणदास और श्रीगौरांगदास बाबाजी आदि विशेष आग्रह कर उन्हें वृन्दावन ले गये । वहाँ श्रीमदनमोहन-जी बगीचीमें रहकर उन्होंने स्वास्थ्य लाभ किया । वृन्दावनमें आठ वर्ष तक कभी कहीं, कभी कहीं, रहते रहे । जिन-जिन स्थानोंमें वे रहे, मदनमोहनकी बगीचीके अतिरिक्त मुख्य हैं टट्टी-स्थान, बयारी बग, दिल्लीकी धर्मशाला,

मिर्जापुरकी धर्मशाला और करौलीकुञ्ज । सन् १८२६ में वे दाऊजीके बगीचे चले गये और जीवनकी शेष घड़ी तक वहीं रहे ।

दाऊजीके बगीचेमें आनेके कुछ ही दिन बाद १४ वर्षीय श्रीविष्णुदास बाबा भी अपने गुरुदेव, सूर्यकुण्डके श्रीयदुनन्दनदास बाबाकी आज्ञासे उत्कर्ष शरणमें आ गये । जिस दिन वे आये धूप तेज थी । सूर्यकुण्डसे वृन्दावन तक वे पैदल चलकर आये थे, रास्तेमें ही बुखार आ गया था । दाऊजीकी बगीची पहुँचते-पहुँचते इतना थक गये थे और बगीचेके कुएँके चबूतरेपर लेट रहे थे । उसी समय पण्डित बाबा लौटे शौचसे । उन्हें देख विष्णुदासने दण्डवत् प्रणाम किया । बाबा उन्हें भीतर ले गये अपनी कुटियामें । कृपासिंधु बाबासे कहा—‘रोटी लै आ जाके खायबेको ।’

विष्णुदास बाबा बोले—‘बाबा मुझे ज्वर है ।’

‘कछु नायँ, ठीक हय जायगो’ कह बावाने अपने सामने बिठाकर रोटी खिलायी । फिर बोले—‘चल मधुकरीको ।’

विष्णुदासका हाथ पकड़ वे मधुकरीके लिए उन्हें अपने साथ ले गये । उनका ज्वर और थकावट पण्डित बाबाके हाथ पकड़ते ही जाने कहाँ चने गये ।

उस दिनका पकड़ा हुआ विष्णुदासका हाथ उन्होंने अन्त तक नहीं छोड़ा । विष्णुदास बाबाके साथ रहकर, उनकी सेवामें कृपासिंधु बाबाका हाथ बटाते रहे ।

जब विष्णुदास बाबाके पास आये थे, वे अक्षर भी नहीं पहचानते थे । पर बाबाकी कृपासे वे इतना पढ़ गये कि गोविन्द-लीलामृत उन्हें पढ़कर सुना सकें । वे अन्त तक उन्हें गोविन्दलीलामृत नित्य सुनाते रहे ।

एक दिन जब वे उनके साथ मधुकरीसे लौट रहे थे, वे और बाबा रास्तेमें दाऊजीके बगीचेसे कुछ दूर पुलियापर बैठ गये । वंसाखका महीना था । सूर्यास्त हो चुका था । अन्धकारमें पुष्प-फलवरहित पेड़ोंके झुरमुट दिगम्बर वैरागियोंके झुण्ड सरीखे कुछ-कुछ दीख रहे थे । उसी समय हठात् विष्णुदासको प्रतीत होने लगा कि वातावरणमें एक अपूर्व स्निग्धता और शीतलता छायी हुई है और कदम्बके पुष्पोंकी दिव्य सुगन्धसे दिशाएँ महक उठी हैं । उन्होंने चमत्कृत हो बाबासे कहा—‘बाबा, यह क्या ? श्रीगणक

घातावरण सहसा बदला-सा जान पड़ रहा है ! शरद ऋतुकी-सी शीतलता और वसन्तकी-सी कदम्बके फूलोंकी महक लग रही है !'

बावाने कहा—'यही तो वृन्दावनका वास्तविक स्वरूप है। इसमें छहों ऋतुएँ सदा एक साथ विराजमान रहती हैं। वृन्दावनने कृपाकर तुम्हें अपने अप्राकृत स्वरूपकी एक झलक दिखायी है। साधकोंके प्रति वृन्दावन बीच-बीचमें ऐसी कृपा करते रहते हैं। उन्हें चाहिये कि इसे किसीसे प्रकट न करें।'

नवद्वीपके अद्वितीय विद्वान, नित्यानन्द वंशके परम भागवत श्रीप्राणगोपाल प्रभुपादसे पण्डित बाबाका घनिष्ठ सम्बन्ध था। दोनों एक दूसरेका यथोचित सम्मान करते। एक-दूसरेको पाकर प्रेममें विह्वल हो जाते। प्राणगोपाल गोस्वामी कहा करते—'मेरी माँके देहान्तके पश्चान् मुझ निराश्रयको पण्डित बाबाके प्रेमने आश्रय दिया। मुझे उनसे माँ-जैसा ही प्रेम मिला।'

पण्डित बाबा प्राणगोपाल गोस्वामीप्रभुका कितना आदर करते, यह एक दिनकी घटनासे स्पष्ट है। बहुत दिन एन्फ्लुएन्जामें बीमार रहनेके कारण वे बहुत दुर्बल हो गये थे। लोगोंने उनसे दूध पीनेका आग्रह किया, पर उन्होंने किसीकी न सुनी। उन्होंने ४० वर्षसे दूध नहीं लिया था। सवने प्राणगोपाल प्रभुसे प्रार्थना की कि उनका दूध न पीनेका आग्रह छुटवानेका प्रयास करें। वे स्वयं दूधका गिलास लेकर गये और उनके मुखसे लगाकर कहा—'इसे आपको पीना होगा।' बावाने कहा—'जब स्वयं नित्यानन्द प्रभु पिलायेंगे तो क्यों नहीं पियूंगा।' उन्होंने वच्चेकी तरह उनके हाथसे दूध पी लिया।

प्राणगोपाल गोस्वामी प्रति वर्ष एक बार वृन्दावन आते। एक महीने वहाँ रहकर पण्डित बाबाको श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंका पाठ सुनाते। पण्डित बाबा आध घण्टे पूर्व ही उनके पाठमें जा बैठते।

एक बार वृन्दावनके कुम्भके अवसरपर प्राणगोपाल गोस्वामी वृन्दावन आनेको थे। न जाने क्यों बाबाको उनके सम्बन्धमें चिन्ता हो गयी। वे बार-बार सेवकको बुलाकर कहते 'देख आ, प्रभु अभी आये कि नहीं। वे कुशलमें तो हैं।' पर गोस्वामीप्रभु एक दिन देरसे आये। बमरौली स्टेशनपर उनकी गाड़ी लड़ गयी। उनके आगे और पीछेके दोनों डिब्बे चकनाचूर हो गये।

सैकड़ों लोग मारे गये। पर उनके रिजवर्ड डिब्बेमें, जिसमें वे और अनेक भक्त बैठे थे, किसीकी विशेष क्षति नहीं हुई। प्रभुके सिरमें मामूली-सं चोट आयी।

वृन्दावन पहुँचते ही उन्होंने सीधे बाबाके स्थानपर जाकर उन्हें दण्डवत् की। बाबा कुछ बोले नहीं।

प्राणगोपालने कहा—‘बाबाकी चित्ताने मेरी और मेरे साथियोंकी रक्षा की। नहीं तो क्या यह सम्भव था कि हमारे डिब्बेके आगे और पीछेके डिब्बोंमें बैठे यात्री मौतके घाट उतरें और हम मौतके मुँहमें जाकर भी निकल आयें।’

पण्डित बाबाके पाण्डित्यका प्राणगोपाल गोस्वामी भी लोहा मानते थे। वे सबकी शंकाओंका समाधान करते। पर उन्हें कोई शंका होती, तो उसका समाधान पण्डित बाबा ही करते। वे कहा करते ‘मुझे जब कोई शंकाएँ होतीं, ताँ मैं उन्हें नोट कर रखता, पण्डित बाबासे उनका समाधान करानेके उद्देश्यसे। पर जब जाकर उनके निकट बैठता, या अपनी कथामें उन्हें सम्मुख बैठे देखता, तो उनसे बिना प्रश्न किये ही उन शंकाओंका समाधान अपने-आप ही जाता। इतना ही नहीं, उनके सान्निध्यमें कथा कहते समय मुझे नये-नये रहस्यमय सिद्धान्तोंकी आश्चर्यमय स्फूर्ति होती।’ पण्डित बाबाकी इस शक्तिका और भी कई लोगोंने कई बार अनुभव किया है। स्वयं उनके न्यायके गुरु पद्मदर्शनाचार्य श्रीसुदर्शन शास्त्री कहा करते ‘मेरी दर्शनशास्त्रकी गृथियाँ पण्डित बाबाके सान्निध्यमें अनायास सुलझ जाती हैं।’

पण्डित बाबाके अप्राकट्यके पश्चात् एक बार श्रीमद्भागवतके अद्वितीय पण्डित और आगरा विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रार श्रीश्यामसुन्दरजीने जयपुरके एस. पी. भक्तप्रवर श्रीकाशीप्रसादजीसे कहा—‘अब ऐसा कोई नहीं, जो मेरी श्रीमद्भागवत-सम्बन्धी शंकाओंका संतोषजनक ढङ्गसे समाधान कर सके। पण्डित बाबाके तो सामने बैठते ही शंकाओंका अपने-आप समाधान हो जाता।’

सामने बैठनेकी तो दूर, यहाँ तक देखा गया है कि यदि कोई अपनी शंका लेकर उनके पास जाता और वे उपस्थित न होते, तो भी वे अदृश्यरूपसे उसका समाधान कर देते। एक बार, जब पण्डित बाबा वृन्दावनमें

मदनमोहनकी सिबारीमें रहते थे और गौरांगदास बाबा उनके निकट शाहजहाँपुरकी बगीचीमें रहते थे, गौरांगदासजीको ब्रह्मसूत्रके प्रथम पादके तेरहवें सूत्र 'आनन्दमयोऽभ्यासात्'की टीकामें कुछ शंका हुई । उन्होंने मदनमोहनकी सिबारीमें पण्डित बाबाकी गुफाके सामने जाकर उनसे उन पंक्तियोंका वास्तविक अर्थ समझानेको कहा । पण्डित बाबाने गुफाके भीतरसे उत्तर देते हुए गौरांगदासजीकी शंकाका समाधान किया और कहा— 'समझे ?'

गौरांगदासजीने उत्तर दिया 'हाँ, बाबा ।'

पण्डित बाबाने फिर कहा—'समझोमे क्यों नहीं ? सुबोध हो न ।'

गौरांगदासजी प्रसन्नचित्त अपनी कुटियाकी तरफ लौटने लगे । उसी समय उन्होंने देखा कि पण्डित बाबा मधुकरी कर श्रीअमोलकराम शास्त्रीके साथ गुफाको लौट रहे हैं । उन्हें आते देख वे अवाक् रह गये । प्रणामकर बोले—'आप अभी तो गुफाके भीतरसे मेरी शंकाका समाधान कर रहे थे । अब इधरसे कैसे आ रहे हैं ?'

पण्डित बाबा हँस दिये । बोले 'देखो, ब्रजभूमि चिन्तामणि है । यहाँ बहुत-से सिद्ध महापुरुष अनुरागी साधकोंके प्रति अलक्षित रूपसे कृपा किया करते हैं ।'

गौरांगदास बाबाने मन-ही-मन कहा—'आप जो भी कहें । जिन सिद्ध महापुरुषने मेरे ऊपर कृपा की, मैं जानता हूँ, वे कौन हैं ।'

पण्डित बाबा अपने पाण्डित्य, तीक्ष्ण बुद्धि और अनुभवोंका प्रयोग किसीके ऊपर अपना मत लादनेके लिए कभी न करते । न ही वे मत-मतान्तर लेकर किसीके साथ वाद-विवाद करते । पर उनका सत्संग करनेवाले सभी व्यक्ति, जिनका मत किसी शास्त्रीय सिद्धान्तपर उनसे भिन्न होता, कालान्तरमें स्वयं ही उनका मत स्वीकार करनेको बाध्य होते ।

श्रीमन्महाप्रभुके स्वरूपके सम्बन्धमें प्राणगोपाल गोस्वामीका मत पण्डित बाबाके मतसे कुछ भिन्न था । पण्डित बाबाके अनुसार महाप्रभु थे राधा-कृष्णके मिलित तनु । प्राणगोपाल गोस्वामीके अनुसार वे थे केवल राधाके भाव और कान्तिसे आच्छादित श्रीकृष्ण । दोनोंको इस मतभेदका पता न था । पर कृपासिंधु बाबा इसे जानते थे । वे चाहते थे, प्राणगोपाल गोस्वामी भी बाबाके मतको स्वीकार कर लें, तो इसका अच्छा प्रचार हो । पर उन्हें इसकी जानकारी करायी जाय कैसे, यह एक समस्या थी । वे इतने बड़े

पण्डित थे और बाबा समेत सभी गौड़ीय-वैष्णव उनका इतना सम्मान करते थे । उनसे सीधे तो इस बातकी चर्चा की नहीं जा सकती थी ।

उन्होंने एक उपाय सोचा । गौरपूणिमाके अवसरपर शृङ्गारवटमें प्राणगोपाल गोस्वामीकी अध्यक्षतामें सभा होनेकी थी । उसमें महाप्रभुके सम्बन्धमें कई लोगोंके भाषण होने थे । उन्होंने श्रीललितमोहन गोस्वामीकी भी सभामें बोलनेको तैयार किया । उनका नाम वक्ताओंकी सूचीमें जोड़ दिया गया ।

सभामें श्रोताके रूपमें बाबा भी उपस्थित थे । ललितमोहन गोस्वामीके बोलनेकी वारी आयी । उन्होंने जैसे ही कहा—‘श्रीमन्महाप्रभु राधा-कृष्णके मिलित विग्रह हैं’ प्राणगोपाल गोस्वामीने डाँटकर कहा—‘बैठ जाओ । तुम कुछ नहीं जानते ।’

ललितमोहन गोस्वामीको बैठ जाना पड़ा । बाबा उसी समय सभासे उठकर चले गये । पर उन्होंने कभी प्राणगोपाल गोस्वामीसे इस विषयमें चर्चा नहीं की । उन्हें श्रीललितमोहन गोस्वामीके सम्बन्धमें चिंता अवश्य हो गयी । उन्होंने रात्रिमें किसी व्यक्तिको भेजा उनके घर यह पूछ आनेके लिए कि उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया है या नहीं ।

दो-तीन साल बाद प्राणगोपाल गोस्वामीने वृन्दावनके कुम्भके अवसरपर स्वयं उस मतका प्रतिपादन किया, जिसपर उन्होंने ललितमोहन गोस्वामीको डाँट बताया थी । जब किसीने उनसे इस सम्बन्धमें पूछा, तो वे बोले—‘भवति विज्ञतमः क्रमशो जनः’ अर्थात् आदमी सीख-सीखकर धीरे-धीरे ही जानवान होता है ।

पण्डित बाबाके सम्बन्धमें साधारण धारणा थी कि वे स्वभावके बड़े कर्कश हैं । गरीब-अमीर, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष किसीकी भी खरी-खोटी सुनानेमें नहीं चूकते । पर वे खरी-खोटी सुनाते तभी, जब कोई विषयकी बात लेकर उनके पास जाता या वैष्णव-मदाचारके विरुद्ध कोई कार्य करता । इस कारण सभी सम्प्रदायके साधुओंको उनके शासनका भय रहता ।

राधाकृष्णमें एक सहजिया मार्गका साधु रहता था, जिसमें स्त्री-संग साधनाका प्रधान अङ्ग माना जाता है । उसने श्रीगौरांगदास बाबाको अपना साथी बनानेके लिए उनका चरित्र भ्रष्ट करनेकी एक योजना बनायी । पर योजना सफल न हुई । उसे बहुत लज्जित होना पड़ा । उसे इस बातका भय

हो गया कि यह बात पण्डित बाबा तक पहुँच जायगी और उसका ध्वजमें रहना असम्भव हो जायगा। उसने सोचा, मैं पहले ही जाकर पण्डित बाबाके कान भर दूँ। वह गया उनके पास और बोला—‘बाबा आप गौरांगदासको बहुत अच्छा समझते हैं। आप नहीं जानते कि वह छिपकर स्त्रीसंग करता है।’

सुनते ही पण्डित बाबाके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने कहा—‘दुष्ट ! एक परम वैष्णवको लांछित करते तुझे लज्जा नहीं आती ? जानता नहीं इसका परिणाम क्या होगा ? जा, तू कुत्तेकी तरह भूँक-भूँककर मरेगा।’

सचमुच कुछ ही दिनों बाद उसे पागल कुत्तेने काटा और वह कुत्तेकी ही तरह भूँक-भूँककर मर गया।

पण्डित बाबाके साथ प्रियाशरण बाबा मधुकरीको जाया करते। एक ब्रजवासीके घर जाकर पण्डित बाबा बाहर खड़े रहते। प्रियाशरण बाबा भीतर जाकर रोटी माँग लाते। घरकी नवविवाहिता पुत्रवधू उन्हें रोटी दे दिया करती। एक दिन रोटी देते समय उसके पैरका अँगूठा उनके पैरके अँगूठेसे स्पर्श कर गया। प्रियाशरण बाबाने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। पर दूसरे और तीसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। तब बाहर निकलकर प्रियाशरणजीने बाबासे कहा—‘बाबा, कलसे इस घरमें मधुकरीकी नहीं आयेंगे।’ पूछनेपर जब उन्होंने कारण बताया, तो बाबासे न रहा गया। उन्होंने घरके भीतर जाकर सबके सामने नववधूको फटकारते हुए कहा—‘तू हमारे छोरानको बिगाड़बेकी आयी है।’

कानपुरके एक बड़े सेठका देहान्त हो गया। सेठानी आयी बाबाके पास अपने लड़केके साथ। बोली—‘बाबा, सेठजी तो चले चये।’

बाबा बोले—‘चले गये तो कहा भयो ? तू भी जायगी। जे (सेठानीका लड़का) भी जायगो। मैं हूँ जाऊँगो।’

सेठानीको भय लगा कि बाबाने उसे और उसके लड़केको ऐसे कह दिया। वह चली गयी और बाबाके पास फिर कभी नहीं आयी। उसने सोचा होगा, बाबा इतने बड़े महात्मा हैं, पर शिष्टाचार नहीं जानते। दो शब्द सहानुभूतिके भी नहीं कह सके। पर बाबाके पास इतना अवकाश कहाँ, जो दुनियाँ भरका रोना-धोना सुनें और दुनियाँ भरसे सहानुभूति प्रकट करें। उन्होंने सच्ची बात कह दी। यदि वे भी कहते दुनियाँ देखी तो सच्ची बात

कहता कौन ? बाबाके तीखे वाक्योंका सेठानीपर कितना असर हुआ और उसकी मोह-निद्रा गयी या नहीं, यह तो वह जाने । पर बाबाने अपना कर्तव्य कर दिया । यदि मेठजो भक्त होते, या मेठानी भक्तिमती होती, तो निश्चय बाबाका व्यवहार दूसरे प्रकारका होता ।

एक बहिरंग व्यक्ति आया वृन्दावन घूमने-फिरने । जैसे उसने पर्यटकोंके लिए आकर्षक अन्य स्थानोंको देखा, वैसे ही बाबाको भी देखकर चला गया । दूसरे दिन फिर आया और बोला—‘बाबा, कल देश जाना है ।’

बाबा बोले—‘तो तैने मेरो माथो खरीद लियो है ? देश जा, चाहे भाड़में जा । हमें कहा करनो है ।’

एक मायाका कीट भाड़में-से निकलकर बाहर आये और बाहरकी जल-वायुका सेवन किये बिना, बाहरके लोगोंसे बाहरकी कुछ बात पूछे बिना फिर भाड़में चला जाय, तो बाबाको उससे क्या लेना-देना ? वह बाबाका माथा वृथा क्यों खाये ? एक मरुस्थलका प्यासा व्यक्ति आये झरनेके पास और बिना उसके शीतल जलका सेवन किये उससे कहे—‘मैं जा रहा हूँ मरुस्थल,’ तो झरना उससे और क्या कहे ? यही न कि ‘जा भाड़में ।’

इसका मतलब यह नहीं कि बाबा स्वभावसे अशिष्ट या अभद्र थे । उन्हें जागतिक शिष्टाचारका कपटतापूर्ण व्यवहार नहीं आता था । जो जैसा व्यक्ति होता था, उसके प्रति उनकी वैसी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती थी । देश जानेकी बात एक बार ललितमोहन गोस्वामीने भी उनसे कही थी, मार्गमें जब वे मधुकरी लेकर लौट रहे थे । तब उन्होंने कहा था—‘तो ऐसेई चलो जायगो । कुटिया माऊँ नायँ जायगो ?’ ललितमोहन गोस्वामी प्राकृत भक्त थे, और किसी विवशताके कारण वृन्दावन छोड़कर कुछ दिनोंको बाहर जा रहे थे । उन्हें बाबा कुटियापर बुलाकर प्रेमसे आशीर्वाद दिये बिना कैसे भेज देते ?

पण्डित बाबाके पास जो जिज्ञासु या भक्त आते, उन्हें वे प्रेमसे बैठते । साधु, संन्यासी, गोस्वामियों और ब्रजवासियोंको आसन देते । पर जो लोग कोई सांसारिक वासना लेकर आते, उन्हें पास फटकने भी न देते । एक व्यक्तिने आकर दूरसे लम्बी दण्डवत् की ओर बैठ गया । बाबाने पास बैठे धीरेललितमोहन गोस्वामीसे कहा—‘कह दे दर्शन हय गये, जाये ।’

बार-बार कहनेपर वह चला गया। दूसरे दिन फिर आया और उसी प्रकार बार-बार कहनेपर चला गया। तीसरे दिन आते ही अपने कोई सांसारिक दुःखकी बात कहते हुए बोला—‘बाबा कृपा करो।’

बाबाने उसे फटकार कर भगा दिया। पहले दिन ही उनकी पैनी दृष्टिने देख लिया था कि वह न कोई भक्त है, न जिज्ञासु।

पण्डित बाबाकी एक विशेषता यह थी कि उनकी अपने सम्प्रदायके प्रति जितनी निष्ठा थी, उतना ही अन्य सम्प्रदायोंके प्रति उनका दृष्टिकोण उदार था। उन्हें चारों सम्प्रदायके उपासना-मूलक साधन-ग्रन्थों और साधन-रहस्योंका पूरा ज्ञान था। सभी सम्प्रदायोंके साधु, महात्मा और पण्डित उनके प्रति आदर और श्रद्धाका भाव रखते थे। सभी उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायके पण्डित अमोलकराम शास्त्री और श्रीहंसदासजी; रामानुज सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध श्रीसुदर्शनाचार्यजी पङ्कशास्त्री, श्रीदुलारीप्रसाद शास्त्री, श्रीगणपति शास्त्री; रामानन्द सम्प्रदायके बाबा संकर्षणदासजी, पुष्टिमार्गके मथुरा-निवासी सुप्रसिद्ध पाठक एवं वक्ता श्रीपुरुषोत्तमभट्टजी महाराज; श्रीश्रीनित्यानन्द वंशके प्रभुपाद प्राणगोपाल गोस्वामी जैसे पण्डित और महात्मा तथा राजर्षि मनमालीराय जैसे प्रमुख भक्त सदा उनके मुखसे भजन-रहस्य और शास्त्र-सद्धान्त सुननेको उत्सुक रहते थे।

पण्डित बाबाने दीक्षा किसीको नहीं दी, पर उनके शिष्य बहुत थे। तो लोग उनका सत्संग करते थे, उनसे उपदेश ग्रहण करते थे, उनसे शास्त्र का भजनकी बात पूछते थे, वे चाहे जिस सम्प्रदायके हों, चाहे जिससे दीक्षित हों, उन्हें अपना गुरु मानते थे, जैसे श्रीगौरांगदास बाबाजी श्रीप्रियाशरणदासजी, श्रीकृपासिन्धुदासजी, श्रीविष्णुदासजी, श्रीकेशवदासजी, श्रीललितमोहन स्वामीजी आदि। इनमें कुछ ऐसे भी थे जो उनके सिवा और किसीको रूपमें जानते ही न थे, जैसे ठाकुर कुशलसिंहजी, (गोजगढ़) और ठाकुर लालसिंहजी, (निमोड़िया)।

श्रीकुशलसिंहजी, गोजगढ़, जयपुर स्टेटके जागीरदार और जयपुर कोर्टके चीफ जस्टिस थे। वे बड़े निर्भीक, धर्मत्तिमा और विद्वान। उस समयके राजपूतोंमें उनका ऊँचा स्थान था। वे बाबा रामदासके सच्चे भक्त थे, जिन्हें मारवाड़में श्रीद्वारिकाधीशका अवतार माना जाता है।

उन्हें ऐसे महात्माकी खोज थी, जो भगवत्-प्राप्तिके ठीक पथपर उन्हें आरुढ़ करा सके। उन्होंने पण्डित बाबाके दर्शन कर उनसे पथ-प्रदर्शन करनेकी प्रार्थना की।

पण्डित बाबाका नियम था कि जब कोई जिज्ञासु भजन-पथका निर्देश करनेकी प्रार्थना लेकर उनके पास जाता, तो वे उससे पूछते कि वह किस सम्प्रदायका व्यक्ति है, कौन-से भगवत्-स्वरूपमें उसकी निष्ठा है और यदि वह दीक्षित है तो उसके गुरु कौन हैं, जिससे वे उसके अनुरूप ही भजनोपदेश कर उसके भावकी पुष्टि कर सकें।

कुशलसिंहजीसे भी उन्होंने यही प्रश्न किये। उन्होंने कहा—‘मैं न कहीं दीक्षित हूँ और न मेरा कोई सम्प्रदाय है। रामदेवजीमें मेरी निष्ठा है।’

तब बाबाने उन्हें अकेले रामदेवजीका भजन न करके द्वारकाधीशके साथ रामदेवजीका भजन करनेका उपदेश किया। कहा—‘एक हाथका चित्र बनवा ली, जिसमें सिंहासनपर द्वारकाधीश विराजमान हों और सिंहासनके नीचे एक ओर श्रीरामदेवजी हों। उनकी सेवा किया करो।’

उन्होंने पूछा ‘मन्त्र कौन-सा जपें?’ तो उन्होंने कहा—‘सोलह नाम, बत्तीस अक्षरोंवाला महामन्त्र।’ साथ ही उन्होंने आदेश दिया—‘विष्णुसहस्रनाम, नारायण कवच, श्रीमद्भागवत और भक्तमालका नित्य पाठ किया करो।’

कुशलसिंहजीने इसी रीतिसे भजन करना प्रारम्भ कर दिया। दूसरी बार, जब वे वृन्दावन आये, तब उन्होंने लीला-चिन्तनके विषयमें पूछा बाबाने उन्हें नित्यधाम द्वारकापुरीमें द्वारकाधीशकी लीलाका चिन्तन करनेके कहा। इस सम्बन्धमें विस्तृत जानकारी प्राप्त करनेके लिए उन्होंने उन्हें राधारमणजीके गोस्वामी श्रीबनवारीलालजीके पास भेज दिया।

बनवारीलालजीने बाबाकी इच्छानुसार उन्हें उपदेश करना तत्प्रारम्भ कर दिया, पर वे दूसरे दिन बाबाके पास गये और बोले—‘बाब आपने यह क्या किया? कुशलसिंहजीको नित्ताई-गौर और राधा-कृष्णव गौड़ीय उपासनाकी जगह द्वारकाधीशकी उपासना बता दी!’

बाबाने कहा—‘देखिये, उनका परिवार परम्परासे राजकीय सेवाओं नियुक्त रहा है। उनके पिता जयपुर दरबारमें मन्त्री थे। वे स्वयं जयपुर राज्यके उच्च अधिकारी हैं। ऐश्वर्यके वातावरणमें उनका सारा जी-

व्यतीत हुआ है। उनके जातिगत संस्कार भी उसी प्रकारके हैं। द्वारकाधीशकी ऐश्वर्यमयी उपासनामें उनकी स्वाभाविक रुचि है। उसके द्वारा ही उन्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति सम्भव है।'

कुछ दिन बाद कुशलसिंहजीने जयपुर हाईकोर्टके चीफ जस्टिसके पदसे इस्तीफा दे दिया। संसार त्यागकर साधुवेश ग्रहण करनेका निश्चय किया। बाबाके पास आकर अभिप्राय प्रकट किया। बाबाने निषेध करते हुए कहा 'इसकी क्या आवश्यकता है ? क्या घरमें भजन नहीं होता ? समय खराब आ रहा है। हमारी तो गाड़ी खिंच गयी। पर अब साधु वह सभी काम करेंगे जो गृहस्थी करते हैं। धन जुटायेंगे, मकान बनायेंगे, कपड़े सिलायेंगे और आरामसे रहना चाहेंगे। इसलिए घरपर रहकर भजन करना ही ठीक है।'

कुशलसिंहजीने वेश लेनेका विचार त्याग दिया। वे घरपर रहकर ही भजन करने लगे। महीने-दो-महीनेमें एक बार वृन्दावन आते और एक-दो दिन पण्डित बाबाका सत्संग कर चले जाते।

हरीसिंहजी कुशलसिंहजीके सम्बन्धी थे। वे भी जयपुर स्टेटके निमोड़िया ठिकानेके जागीरदार थे। कुशलसिंहजीके संगसे उनमें भी पण्डित बाबाके आनुगत्यमें भजन करनेकी इच्छा जागी। उनकी मानसिक स्थिति भी ठीक कुशलसिंहजीकी-सी ही थी। इसलिए उन्हें भी बाबाने उसी प्रकार भजन करनेका उपदेश किया।

हरीसिंहजीकी नवविवाहिता पत्नी बहुत बीमार थीं। सब प्रकारकी अच्छी-से-अच्छी चिकित्सा किये जानेपर भी उनकी दुर्बलता दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी। अच्छे होनेकी आशा जाती रही थी। वे उन्हें बाबाके पास ले गये और बोले—'बाबा, मुझे ज्योतिषियोंने दूसरे विवाहका योग बताया है। इनके भी ग्रह बहुत खराब हैं। इनके अन्त समयमें इन्हें जैसा उचित समझें उपदेश कर दें।'

बाबाने कहा—'ग्रह तो उन्हीके पीछे पड़ते हैं, जो भगवान्से विमुख होते हैं; जो उन्मुख होते हैं, उनकी वे सेवा करते हैं। इनसे कहो श्रीमद्भागवतका पाठ किया करें।'

'पाठ करनेकी इनमें शक्ति ही कहाँ' हरीसिंहजीने दुःख प्रकट करते ए कहा।

‘तू सुनाया कर’ बाबाने आज्ञा की। हरीसिंहजीने पाठ सुनाना आरम्भ किया। तभीमे उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ ही समयमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गयीं।

बाबामे जब कोई दीक्षाके लिए आग्रह करता, तो वे किसी और व्यक्तिसे दीक्षा दिलवा देते। ठाकुर कुशलसिंहजी और ठाकुर हरीसिंहजीके कई सम्बन्धियोंको उन्होंने वृन्दावनके श्रीछुट्टनलालजी भट्टसे दीक्षित करवाया। खालियरके राजा माधवरावके बड़े भाई श्रीबलवन्त रावको नोपीनाथ बागके श्रीकेशवदेवसे दीक्षा दिलवायी और बहुत-से लोगोंको पूँछरीके बाबा माधवदासजीसे।

कई लोगोंने चालाकीसे बाबाके मुखमें मन्त्र सुनकर उन्हें दीक्षा-गुरु रूपमें वरण करना चाहा, पर वे सफल न हुए। एक संन्यासीने किसी मन्त्रका उलटा उच्चारण कर कहा ‘बाबा, यह मन्त्र ठीक है?’

उसने सोचा कि बाबा सीधा क्रूरके बोल देंगे, तो उसका काम बन जायगा। पर बाबाने कहा—‘मन्त्र उलटा क्यों बोलते हो?’ और चुप रहे।

श्रीविष्णुदास बाबाने पूछा—‘बाबा, द्वादशाक्षर मन्त्र कौन-सा है?’

बाबाने कहा—‘अष्टादशाक्षर मन्त्रमें-से अमुक-अमुक संख्याके अक्षर निकाल दो। जो शेष रहता है, वही द्वादशाक्षर मन्त्र है।’

श्यामकुटीमें रहते समय एक बार एक मनोरंजक घटना घटी। गोवर्धन थानेके निकट ठाकुर कृष्णचन्द्रजीकी कोठी थी। वे बाबाके प्रति श्रद्धा रखने थे और उनका सत्संग किया करते थे। एक दिन उनकी पत्नी अपने परिवारकी एक और महिलाके साथ उनके दर्शन करने श्यामकुटी गयीं। वहाँ उन्हें प्यास लगी। देखा बाबाकी कुटियामें पानीका केवल एक पात्र है, सो भी रजका न जाने कबका पुराना कलहा। यदि वे बाबासे कहें तो उसीका पानी पीना होगा। वे प्यासी हो घर लौट गयीं।

स्वामीमे जब उन्होंने यह बात कही तो उन्होंने कहा—‘बाबाके रजके कल्लेके प्रति घृणा-दृष्टि कर तुमने अच्छा नहीं किया। तुममें अपराध हो गया।’

पत्नीको बहुत पश्चाताप हुआ। उन्होंने अपने अपराधके प्रायश्चित्तकी

वात पूछी, तो श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—‘करुएसे क्षमा माँगकर उसका जल पीनेमे तुम्हारे अपराधका शमन हो सकता है।’

वे बाबाकी कुटियापर दूसरे दिन फिर गयीं । दूसरे दिन भी उसी महिलाकी साथ ले गयीं । करुएकी तरफ देखकर मन-ही-मन उससे क्षमा माँगी । फिर बोली—‘बाबा प्यास लगी है ।’ बाबाने किसी सेवकको पानी पिलानेको कहा । वह जब करुएसे पानी पिलाने लगा, तो वे उसके चमचमाते हुए चिन्मय स्वरूपके दर्शनकर आश्चर्यचकित रह गयीं ।

तत्काल उन्होंने अपने-आपको मन-ही-मन बाबाके चरणोंमें समर्पित करते हुए कहा—‘बाबा कछु भजन बताओ ।’

बाबाने कहा—‘कहा भजन बताऊँ ?’

‘कछु बताओ ।’

‘तू कौन सम्प्रदायकी है ?’

‘वल्लभ सम्प्रदायकी ।’

‘तेरे सम्प्रदाय माऊँ सबनको एक मन्त्र दियो जाय है, सो कौन-सो है ?’

ठकुराइनने साथकी महिलाको इंगित कर दिया । उसने कहा—‘श्रीकृष्णः शरणं मम ।’

‘जाई मन्त्र जप्यो कर’ बाबाने कहा ।

ठकुराइन घर गयीं तो ठाकुर साहबको सारा वृत्तान्त सुनाया और बोली—‘अब बताइये, बाबाने भी वही मन्त्र बता दिया जिसमें आपका नाम है । उसे कैसे जपूँ ?’

ठाकुर साहब बोले—‘बाबासे हो पूछ न जाकर ।’

वह फिर बाबाके पास गयी और बोली—‘बाबा, तुमने मन्त्र बताया है, वामें तो चम्पोके चाचाको नाम है । बाको जप मैं कैसे कर सकूँ ?’ चम्पो उसकी लड़कीका नाम था ।

बाबाने कहा—‘नायँ कर सके तो ‘कृष्ण’की जगह ‘चम्पोके चाचा’ कह लियो कर ।’

“चोखो बाबा ‘चम्पोके चाचा शरणं मम’ तो मैं खूब जप लऊँगी ।” भोली ठकुराइनने प्रसन्न होकर कहा ।

ठाकुर साहबको इसका पता चला, तो उन्होंने श्रीगौरांगदास बाबाजी और श्रीप्रियाशरणदास बाबाजी आदिसे इस नये मन्त्रकी चर्चा की। सब मिलकर खूब हँसे, पर किसीने ठकुराइनसे कुछ न कहा। उन्होंने सोचा सिद्ध बाबाका दिया मन्त्र है। ठकुराइन श्रद्धापूर्वक इसका जप कर रही है। वे बीचमें अड़ंगा डालनेवाले कौन ?

पण्डित बाबाका वैराग्य अद्वितीय था। व्रजवासियोंके घरसे मधुकरीमें प्राप्त रोटीके टुक उनका एकमात्र संबल थे। वे नित्य सन्ध्या समय गोविन्दजीके दर्शन करते और उसके पश्चात् मधुकरीको चले जाते। किसीके निमन्त्रणपर कहीं न जाते। एक दिन मार्गमें एक व्रजवासी मिला, जिसके यहाँ वे प्रायः मधुकरीको जाया करते। उसने कहा 'बाबा, मधुकरीको अइयो।'

बाबाने कहा—'आऊँगा।' वे उसके यहाँ गये, पर उस दिन नहीं, क्योंकि उसने निमन्त्रण देकर बुलाया था। जब कोई विशेष रूपसे निमन्त्रण देता तो मधुकरी भी विशेष ही देता। पर बाबा तो रोटीका एक टुक ही लेते, पूरी रोटी भी नहीं। यदि कोई पूरी रोटी मधुकरीमें देता, तो उसके यहाँ मधुकरीको जाना बन्द कर देते।

बाबाकी कुटियामें लँगोटी, बहिर्वास, रजका करुआ और कुछ ग्रन्थोंके अतिरिक्त और कोई वस्तु न दीखती। यदि भूले-भटके कोई वस्तु आ जाती तो उसे बाबाका कोप खा जाता।

एक बार प्रियाशरण बाबाने एक रजका डबुआ पानी भरकर कुटियामें रख दिया। बाबा मधुकरीसे लौटकर आये, तो जैसे ही उनकी दृष्टि उसपर पड़ी, उसे कुटियाके बाहर ले आकर पटक दिया। क्रोधमें भरकर प्रियाशरण बाबासे बोले—'क्यों रे, डबुआ कायकू लायो ?'

'बाबा, गर्मी पर रही है। आप बार-बार जल माँगी ही। जा मारे जल भरके राख दियो।'

'जा मारे, कि तोकू बार-बार कुआँपर जानो पड़े है, जा मारे ? रहन दे, अब तोते जल नायँ मागूँगो। मूरख, जाने नायँ डबुआ बालकनको जल पोबेके ताई निमन्त्रण दैके भजनमें बिघ्न करैगो ?'

एक बार बाबाको किसी बीमारीके कारण मकरध्वज लेनेकी आवश्यकता पड़ी। उनके सेवक बाबा श्यामसुन्दरदासजी मकरध्वज घोटकर दिया करते। बाबाको यदि मालूम पड़ जाता कि उनके स्वास्थ्यके लिए एक

वैष्णवको इतना परिश्रम करना पड़ता है, तब वे मकरध्वज लेना स्वीकार न करते। इसलिए वे खरल और लोढ़ी छिपाकर रखते और घोटनेका काम भी तब करते जब बाबा शौचको गये होते। किसी प्रकार लोढ़ी टूट गयी। उन्होंने ठाकुर कुशलसिंहजीसे कहा एक छोटी लोढ़ी ले आनेको। दूसरे दिन बाबाने देखा कि ठाकुर कुशलसिंहजी श्यामसुन्दरदासको कागजमें लिपटी कोई चीज दे रहे हैं। उनके चले जानेपर उन्होंने श्यामसुन्दरदाससे पूछा—‘कुशलसिंह कहा दै गयी?’

‘कुछ नहीं बाबा, मकरध्वज घोटनेके लिए एक छोटी-सी लोढ़ी।’

‘छोटी-सी लोढ़ी!’ कहते हुए बाबाका मुंह गुस्सेसे तमतमा गया। वे उठ खड़े हुए। कूआ उठाया, मधुकरीका झोला कन्धेपर डाला और कुटिया छोड़कर चले जानेका उद्यम करते हुए बोले—‘तू लोढ़ी लेकर रह। मैं चला।’

श्यामसुन्दरदासने बाबाके चरण पकड़ लिये और रोकर बोले—‘बाबा मुझसे अपराध हुआ, क्षमा करें। मैं मर जाऊँगा।’

‘तो जा लोढ़ी अभी देकर आ।’

श्यामसुन्दरदास उसी समय कुशलसिंहजीको लोढ़ी लौटा आये। तब उनका गुस्सा शान्त हुआ।

बीमारीकी अवस्थामें बाबाको साटीफुड लेनेको कहा गया। साटीफुड बीमारोंके लिए बहुत हल्का पथ्य है, जो बंगालमें मिलता है। मुंगेरके राजा श्रीरघुनन्दनसिंह बाबाके पास आया करते। किसीने उनसे कहा कि बाबाको साटीफुड बताया गया है, पर वे उसे लेना नहीं चाहते। आप मँगवा दें तो शायद ले लें। राजा साहब बड़े वैष्णव-सेवी महापुरुष थे। सेवाके ऐसे अवसरोंकी खोजमें स्वयं रहते थे। उन्होंने एक पूरा टिन साटीफुडका मँगवा कर बाबाके पास भेज दिया। कृपासिंधुदास बाबाने उसे कुटियाके पास बाहर चबूतरेपर रखवा दिया। बाबाकी आज्ञाके बिना तो वे उसे भीतर ला नहीं सकते थे। बाबासे उसके विषयमें कहा तो कृपासिंधु बाबापर क्रोध करते हुए बोले—‘तूने उसे रखा ही क्यों लिया? उसी समय वापस क्यों नहीं कर दिया?’

कृपासिंधु बाबाने उसी समय उसे वापस भिजवा दिया। राजासाहबने फिर लौटा दिया और विनयपूर्वक पण्डित बाबासे उसे ग्रहण करनेको कहला

भेजा । एक बार फिर उस पीपेने बाबाकी कुटियाके बाहर उसी पत्थरके चबूतरेको सुसज्जित किया । न जाने कब तक वहाँ पड़ा-पड़ा बाबाकी कृपाकी प्रतीक्षा करता रहा । पर बाबाने उसपर भ्रूक्षेप भी न किया ।

ब्रजवासीको छोड़ अन्य किसीके द्वारा लायी हुई वस्तु बाबा ठाकुर-सेवाके लिए भी कभी अङ्गीकार न करते । एक बार एक सिन्धी भक्तने ठाकुर-सेवाके लिए चन्दनकी लकड़ी लाकर सामने रखी । बाबाने कहा—‘यह तो हमारे पास है । इसे किसी औरको देना ।’ जब उसने आग्रह किया तो बोले—‘भाई तुम समझते नहीं, यह हमारी परिपाटी नहीं है ।’

एकादशीके दिन बाबा और उनके आश्रममें जो भी रहते सब निर्जल व्रत करते । द्वादशीके दिन किसी ब्रजवासीके यहाँसे प्रसाद आ जाता । वहीं सब लोग ग्रहण करते । एक बार द्वादशीके दिन अपराह्न ३ बजे तक प्रसाद कहींसे न आया । उसी समय चार आदमी आये बिहारीजीके भोगकी एक पोषा रबड़ी और बहुत-सी पूरी-कचौड़ी आदि लेकर । कृपासिंधु बाबासे बोले—‘यह हरगुलालजीने भेजा है ।’ भूखके मारे मुरझाए जा रहे बाबा लोगोंमें जैसे जान आ गयी ।

कृपासिंधु बाबाने कुटियाके भीतर जाकर बाबासे कहा—‘हरगुलाल सेठने पूरी, रबड़ी आदि बहुत-सा सामान भेजा है ।’

बाबाने कहा—‘लौटा दो ।’ प्रसाद लौटा दिया गया । सेठ हरगुलालजीको मामिक कष्ट हुआ । वे स्वयं आये बाबाके पास और बोले—‘बाबा, बिहारीजीका प्रसाद क्यों लौटा दिया ?’

बाबाने कहा—‘बिहारीजीका प्रसाद कहाँ ? तुम्हारे आदमियोंने तो कहा ‘हरगुलालजीने भेजा है ।’

हरगुलालजी ब्रजवासी तो थे नहीं । उनके नामसे आयी हुई सामग्री वे कैसे लेते ?

बाबा हर किसी मन्दिरके ठाकुरका प्रसाद भी ग्रहण न करते । विशेषरूपसे उन मन्दिरोंका प्रसाद नहीं लेते, जहाँ किसी राजा या विषयी आदमीके द्रव्यसे सेवा होती ।

ठाकुर कुशलसिंहजी एक बार जयपुरसे गोविन्दजीका प्रसाद और उनकी प्रसादी माला लाये । माला बाबाने प्रेमसे धारण कर ली । पर प्रसादका एक कण लेकर बाकी वैष्णवोंमें बाँट दिया । कुशलसिंहजीसे कहा-

‘फिर कभी मत लाना । गोविन्दजीका प्रसाद गोविन्दजी ही हजम कर सकते हैं ।’

एक बार राजर्षि बनमालीरायने अपने ठाकुर श्रीविनोदलालका प्रसाद भेजा । उसकी भी एक कणिका लेकर बाकी वितरण कर दिया । रात्रिमें ठाकुर विनोदलालजीने स्वप्नमें कहा—‘तूने हमारा प्रसाद क्यों नहीं लिया ? यह जायदाद तो मेरी है ।’ ठाकुर विनोदलालजीके नाम कुछ सम्पत्ति लिखी हुई थी । उसीकी आयसे उनका भोग लगा करता था ।

दूसरे दिन बाबा ग्वालपोखरासे पैदल ही वृन्दावनमें विनोदलालजीके मन्दिरकी ओर चल दिये और भर पेट विनोदलालजीका प्रसाद ग्रहणकर धन्य हुए । इसके बाद फिर कभी उन्होंने श्रीविनोदलालजीको शिकायत करनेका अवसर नहीं दिया ।

राधाकुण्डके महन्त श्रीनरहरिदासके पास कहीं बाहरसे परबल आये । उन्होंने कुछ बाबाके पास भेज दिये । बाबाने कृपासिन्धुदासजीसे कहा—‘नरहरिसे कहलादो परबल-फरवल न भेजा करे ।’

पासमें बैठे एक ब्रजवासीने कहा—‘परबल तो अच्छी चीज है बाबा । बड़ो गुन करे है ।’

बाबा बोले—‘अरे बाहरकी चीज जो है ।’

‘बाहरकी चीज ते कहा होय है बाबा ?’

‘तू भजन करे है ? भजन करे तो मालूम पड़े कहा होय है ।’

एक बार राजा बलवन्तसिंह आये अपनी माँके छः लाख रुपयेके आभूषण लेकर पण्डित बाबाको देने । पण्डित बाबाने समझाया कि उस धनसे उनका और वैष्णवोंका अनिष्ट होगा । वे समझ गये और आभूषण वापस ले गये । उसी पैसेसे उन्होंने वृन्दावनमें ग्वालियर मन्दिरका निर्माण करवाया ।

कानपुरके एक सेठकी पत्नी आयीं एक लाख रुपया लेकर और बोलीं—‘बाबा, इसे ग्रहणकर ठाकुर मन्दिरके निर्माण आदिमें लगानेकी कृपा करें ।’

बाबाने कहा—‘यह काम मुझसे नहीं होगा’ और उसे उड़िया बाबाके पास जानेकी सलाह दी । वह भी मान गयीं और धनसे उड़िया बाबाके यहाँ मन्दिर बन गया ।

एक और राजासाहब आये राजसी ठाट-बाटमें अशर्फियोंकी थैली

लेकर । बाबाको दण्डवत् कर थैली उनके सामने रखी और जमकर बैठ गये । बाबाके समझानेपर भी न माने । बाबाने क्रोधमें चीख-चीखकर गाली देते हुए उनसे वहाँसे चले जानेको कहा । इसका भी उनपर कुछ असर न हुआ । तब लाचार हो उन्होंने कहा—‘तू नहीं जाता, तो ले मैं अपना माथा कूटता हूँ ।’ जैसे ही उन्होंने माथा कूटनेका उपक्रम किया, वे थैली लेकर चले गये ।

एक ब्रजवासी पण्डितसे उनका स्नेह था । उन्होंने उनसे सारी बात कही और बोले—‘मैं तो बाबाको महात्मा समझकर उनकी सेवाके उद्देश्यसे उनके पास गया था, पर वे मुझे देखते ही बरस पड़े । न जाने कितनी गालियाँ सुनायीं और अपमान किया । अच्छे महात्मा रहे ।’

पण्डितने कहा—‘दोष बाबाका नहीं, आपका है । आपने पहले ही अपराध किया है । अब उनके प्रति दोषारोपण कर एक और अपराध कर रहे हैं । यदि उनके प्रति आपके ऐसे विचार बने रहे, तो आपका अमंगल होगा । आप मेरे साथ बाबाके पास चलें और मैं जैसे कहूँ वैसे करें, तो आप देख लेंगे कि वे कैसे महात्मा हैं और उनके प्रति अपराध-जनक भावनासे मुक्त हो जायेंगे ।’

राजासाहब सहमत हो गये । दूसरे दिन पण्डितजीके कहनेसे राजा उनके साथ गये साधारण वेशमें, कण्ठी-तिलक और माला-झोलीके साथ । दोनों दण्डवत् कर बैठ गये । बाबाने पण्डितजीको आसन दिया और उनका कुशल-क्षेम पूछा ।

थोड़ी देर और-और बातें करनेके बाद पण्डितजीने कहा—‘मैंने सुना कल एक राजाने आपको बहुत दुःख दिया । उसका कितना अमंगल होगा ।’

बाबाने कहा—‘नहीं, नहीं, अमंगल नहीं । वे बड़े अच्छे थे । राजा होकर मेरी गालियाँ सुनते रहे । कुछ भी नहीं बोले । मैंने तो उनका मंगल करनेके लिए ही गालियाँ दी थीं । यदि वे उस धनको छोड़ जाते, तो उससे वैष्णवोंकी वृत्ति दूषित होती । चोर-डाकू आकर उन्हें पीड़ित करते । उसका दोष राजाको लगता और उनका अमंगल होता । पर उन्होंने तो मेरी बात मान ली । फिर अमंगल कैसा ?’

सुनते ही राजाके हृदयका मल धुल गया । वे बाबाके चरणोंमें

गिरकर रोते हुए बोले—‘बाबा वह मूर्ख राजा मैं ही हूँ । मैंने आपके चरणोंमें अपराध किया । मुझे क्षमा करें ।’

दैन्यमें पण्डित बाबा ‘तृणादपि मुनीचेन’की सजीव भूति थे । वे दूसरोंको यथोचित सम्मान देते, पर उनका कोई सम्मान करता, तो उसका विरोध करते । कथा-कीर्तनादिमें कहीं जाते, तो जहाँ जगह देखते वही बैठ जाते । किसीकी हिम्मत न होती, जो उन्हें ले जाकर आगे बिठा दे ।

यदि कभी कोई उनकी अवहेलना करता, तो उसका बुरा न मानते । राधारमण मन्दिरके प्रसिद्ध गोस्वामी बनवारीलालजीसे उनका सख्य भाव था । सम्मान भी दोनों एक-दूसरेका बहुत करते थे । एक बार मधुकरीके समय पण्डित बाबा कृपासिंधुदासजीको साथ ले उनके घर गये । बाहरसे आवाज देकर बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे । बनवारीलालजी महाराज बाहर निकले और उन्हें चौखण्डीपर बैठा देखकर भी एक रहस्यमय उद्देश्यसे बिना बोले कहीं चले गये । पर उनके उद्देश्यकी पूर्ति न हुई । दूसरे दिन फिर उसी समय बाबा वहाँ गये और बिना किसी मनोमालिन्यके हँसी-खुशी बहुत देर उनसे बातें करते रहे ।

बाबा कभी किसीको अपना पैर न छूने देते । एक बार वे बिहारीजीके दर्शनकर मन्दिरके पीछे चबूतरेपर बैठे थे । एक नवयुवकने उनके चरण छु लिये । वे उसके चरण छूनेको हुए, वैसे ही वह उनके चरण पकड़ कर सीधा लेट गया । वृद्ध बाबाका कुछ बस न चला, तो उसकी पीठपर मुक्के मारने लगे ।

बिहारके एक व्यक्तिके पेटमें दर्द रहता था । बहुत इलाज करनेपर भी नहीं जा रहा था । उसे स्वप्नमें किसीने पण्डित बाबाका नाम और पता बताकर कहा—‘उनकी चरणरज माथेसे लगानेसे दर्द चला जायगा ।’

वह वृन्दावन पहुँचा । उस समय पण्डित बाबा मधुकरीको गये हुए थे । लौटते समय वनखण्डीपर उनमें भेंट हुई । उसने चरण स्पर्श करना चाहा, तो उन्होंने डाँट दिया । बेचारा बहुत दुःखी हुआ । पीछे कृपासिंधु बाबाकी बतायी युक्तिके अनुसार शौचको जाते समय बाबाके पड़े चरण-चिह्न-से उसने चुपकेसे एक चुटकी रज उठाकर माथेसे लगा ली । उसी समय उसका दर्द जाता रहा ।

बिहारके एक और सज्जनको वैसी ही व्याधि हुई । वे भी गये बाबाकी

चरणरज लेने । उन्होंने बाबासे अपनी व्यथा कही और चरणरजके लिए प्रार्थना की । बाबाने कहा—'मेरी चरणरज लेनेसे नहीं, अपनी चरणरज देनेसे तुम्हारी व्यथा दूर हो सकती है ।' इतना कह उन्होंने उसके चरण स्पर्श कर हाथ अपने सिस्पर फेर लिये । उसकी भी व्यथा जाती रही ।

एक बार लोगोंने देखा कि कलकत्तेके श्रीरामदास बाबाजी महाराजने उनके चरण स्पर्श किये, तो उन्होंने कोई आपत्ति न की । पीछे किसीने कहा—'बाबा, आपने इतने बड़े महात्मासे तो चरण छुआ लिये, फिर हमसे छुआनेमें क्यों आपत्ति करते हैं ?'

बाबा बोले—'अरे, रामदासजी महात्मा हैं । वे यदि कहीं चरण छुआओ तो छुआने होंगे, कहीं चरण छुओ, तो छूने होंगे ।'

पर एक बार तो उन्हें गोकुलानन्दके मन्दिरके श्रीनवद्वीपदास बाबाके कीर्तनमें ऐसा आवेश हुआ कि वे समस्त रात्रि कीर्तन सुनते रहे और अन्तमें इतना भाव दिहल हो गये कि स्वयं ही पैर फैलाकर बोले 'लेओ, लेओ ।' उन्होंने जैसे अनजाने ही अपनी चरणरजका सदावत लगा दिया और उपस्थित भक्तगण चिराभिलषित उस अलभ्य वस्तुको प्राप्तकर धन्य हुए ।

पण्डित बाबाने अपनी जानकारीमें किसीको अपना फोटो नहीं लेने दिया । कासगंजकी तेल मिलके मालिक एक सेठजीने गुप्तरूपसे उनका फोटो लेनेकी व्यवस्था की । एक दिन जब वे पाठ सुनकर कालीदहके नयादेरासे लौट रहे थे, उन्होंने मार्गमें तीन स्थानोंपर फोटो लेनेकी व्यवस्था कर रखी थी । एक कैमरा नृसिंहटेकरीके चवूतरेपर फिट था । बाबा जैसे ही उसके निकट पहुँचे, विष्णुदास बाबाने उन्हें सचेत कर दिया और उन्होंने उत्तरीयसे अपना मुख ढक लिया । दूसरी बार एक आमके बगीचेमें उनका फोटो लेनेकी चेष्टा की गयी । वहाँ भी विष्णुदास बाबाको कैमरा दीख गया और उन्होंने बाबाको सचेत कर दिया । बाबाने पहलेकी तरह मुख ढक लिया । तीसरी बार जब उनका फोटो लेनेकी चेष्टा की जाने लगी तब उन्होंने दौड़ लगा दी और अपनी कुटियामें पहुँचकर साँस ली ।

बाबाकी इच्छाके विरुद्ध उनका फोटो लेनेकी इस चेष्टासे उन्हें जो उद्वेग हुआ उसे उन्होंने तो सह लिया, पर प्रभुको यह बात सहन न हुई । परिणाम यह हुआ कि तेल मिलवाले सेठजीकी मिल बन्द ही गयी और वह फोटोग्राफर तो संसारसे ही चल बसा । प्रभु अपने प्रति किये गये अपराधको

क्षमा भले ही कर दें, पर अपने भक्तोंके प्रति किये गये अपराधको क्षमा नहीं करते ।

बाबाने अपनी अलौकिक शक्तिका अपनी इच्छासे कभी प्रयोग नहीं किया । यदि कभी किसी परिस्थिति विशेषमें उनके माध्यमसे कोई अलौकिक घटना घटी तो चतुराईसे या अपनी दैन्योक्तिसे उसे ढकनेका प्रयत्न किया । एक बार श्रीप्राणगोपाल प्रभुकी माँकी तिरोभाव-तिथिके उपलक्ष्यमें बाबाके आश्रममें उत्सव था । प्राणगोपाल गोस्वामीने वैष्णव-सेवाके लिए २००) रुपये भेजे थे । उसके अनुरूप निश्चित संख्यामें वैष्णवोंको आमन्त्रित किया गया था । उसी दिन श्रीरामदास बाबाजी महाराज पधारे कलकत्तेसे । उन्होंने कहला भेजा कि वे सन्ध्या समय अपनी भक्तमण्डली सहित दाऊजीकी बगीचीमें जाकर गीर-गदाधर-मिलन-कीर्तन करेंगे ।

बाबाकी आज्ञा थी कि जब कभी आश्रममें कोई उत्सव हो, तो उस समय जो भोग लगे वह आश्रममें आये सभी लोगोंमें वितरण किया जाय, किसीकी उपेक्षा न की जाय । रामदास बाबाजी महाराज प्रतिवर्षकी भाँति इस बार भी आये थे ढाई-तीन सौ बंगाली भक्तोंकी मण्डलीके साथ । उन्हें सबको प्रसाद वितरण करना आवश्यक था । जो सामग्री थी, उसमें इतने लोगोंको पूरा पड़ना असम्भव था । श्रीकृपासिंधु बाबा आदिके लिए यह चिंताका विषय था । पर आश्चर्य कि उतनी ही सामग्रीमें सब लोगोंने भरपेट भोजन कर लिया । पीछे बाबाने कहा—‘यह लोग जो आये थे, सब बहुत थोड़ा खानेवाले थे ।’

बाबाकी भजन-पद्धतिमें लीला-स्मरण और नाम-जपकी प्रमुखता थी । शेष अवस्थामें भी वे रात्रि २ बजेसे उठकर लीला-स्मरण करते । पर नाम-जप तो जैसे उनकी जीवन-धाराका स्वाभाविक अङ्ग ही बन गया था । निद्राकी अवस्थामें भी उन्हें नाम-जप करते स्पष्ट सुना जाता था । उनकी एक उँगली, जो नाम-जपके समय झोलीसे बाहर सीधी रहती है, जप करते-करते ऐसी हो गयी थी कि उसे मोड़ा नहीं जा सकता था । प्रसाद पाते समय भी उसका प्रयोग नहीं होता था । वह जैसे नामकी ही पूर्णतया समर्पित थी ।

एक बार महामहोपाध्याय श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषणने उनसे पूछा—‘बाबा, कलिमें नाम-जपका इतना महत्व क्यों है ?’

उन्होंने उत्तर दिया—‘कलिमें यज्ञ नहीं हो सकता, क्योंकि द्रव्य शुद्ध

नहीं है । योग, ज्ञान आदिसे भगवत्-प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जन्म शुद्ध नहीं है । पूजा-अर्चनादिसे भी चरम फलकी प्राप्ति मुश्किलसे होती है, क्योंकि उसमें विधि-निषेध है । केवल नामसे चरम फलकी प्राप्ति सम्भव है, क्योंकि उसमें विधि-निषेध नहीं है ।

नाम-जपकी चर्चा करते समय वे श्रद्धापूर्वक एक बल्लभकुलकी बाईका जिक्र किया करते, जो उस समय गोवर्धनमें धौला-मन्दिरके पास एक पेड़पर रहती थी । वह दिनमें पेड़पर रहती, रातको नीचे उतर आती । हर समय आर्त स्वरसे 'गोकुलेश, गोकुलेश' कहा करती । मधुकरीको भी कहीं न जाती ।

गुरु-सेवा और वैष्णव-सेवाको पण्डित बाबा सबसे अधिक महत्व देते । श्रीविग्रह-सेवासे भी गुरु-सेवाको उत्तम मानते । वैष्णव-सेवाके दृष्टान्त-स्वरूप वे एक मणिपुरिया बाबाका जिक्र करते, जो गुफाके भीतर एक गढ़डेमें रहा करते । सोते बिलकुल नहीं । आटेकी मधुकरी करते और रोटी बनाकर साधुओंमें वितरण करते ।

बाबा कई बार गम्भीर रूपसे बीमार हुए । वे यदि प्रभुसे प्रार्थना करते, तो उन्हें तनिक भी कष्ट न झेलना पड़ता । पर वे अन्याभिलाषिताशून्य एकान्तिक भजनके मूर्तस्वरूप थे । उन्होंने अपने जीवनमें अपने रोग-धोष या सुख-दुःखके लिए कभी अपने इष्टको न तो स्वयं याद किया, न अपनी जानकारीमें किसी औरको ही याद करने दिया ।

एक बार उनकी डाढ़में असह्य वेदना हुई । श्रीकामिनीकुमार घोषके पुत्र डाक्टर गौरपद घोषको बुलाया गया दाँत उखाड़नेके लिए । उन्होंने जैसे ही 'जयगौर' कहकर दाँत उखाड़ना चाहा, बाबा उठकर दूर जा खड़े हुए । बोले—'मूर्ख ! मेरे दाँतके लिए गौरको कष्ट देगा ! जा तुझसे दाँत नहीं निकलवाऊँगा ।' वे वेदना सहन करते रहे, पर दाँत नहीं निकलवाया । गम्भीर बीमारीकी स्थितिमें भी उन्हें 'हा राधे !' 'हा कृष्ण !' या 'हा गौर !' कहते कभी नहीं सुना गया ।

पण्डित बाबा अब लगभग ८० वर्षके हो रहे थे । उनकी दुर्बलता बढ़ती जा रही थी । फिर भी भजन सम्बन्धी सारे नियमोंका पालन विधिवत् चलता रहा । वही २ बजे रातमें उठना, अपराह्न २ बजे तक भजनमें संलग्न रहना, नित्य मधुकरीको जाना, नित्य गोविन्दजीके दर्शन करना, एकादशी

आदि तिथियोंपर निर्जल व्रत रखना, आचार्योंकी तिथियोंपर पानी हो या तूफान, उनकी समाधियोंपर जाकर दण्डवत् करना, इत्यादि ।

धीरे-धीरे मधुकरीका मार्ग संक्षिप्त होता गया । अन्तमें दुर्बलता इतनी बढ़ गयी कि नियम रक्षाके लिए थोड़ी दूर भी मधुकरीके लिए जाना सम्भव न रहा । जब तक वे दाऊजीके बगीचेके फाटक तक भी जा सके, इस नियमका पालनकर अन्य बाबा लोगों द्वारा लायी गयी मधुकरीके दो-एक टुक लेते रहे । पर जबसे वे इस योग्य भी न रहे, उन्होंने अन्न त्याग दिया । ६० वर्षसे मधुकरीके अन्नपर निर्वाह करते आ रहे बाबाको बिना मधुकरीका अन्न रुचता कैसे ?

अब वे केवल फलोंका रस लेते । निरन्तर तखतपर लेटे रहते । कुटियासे बाहर जाना होता, तो सेचक तखत पकड़कर बाहर ले आते । पर ऐसी अवस्थामें भी उनके मनमें किसी प्रकारकी दुर्बलता नहीं आयी । उसमें पहले जैसी ही स्फूर्ति थी । नाम-जप सब समय चलता रहता था । कभी-कभी विनोद भी कर बैठते थे ।

एक दिन जब उन्हें तखतपर बाहर ले जाया जा रहा था, वे स्वयं कहने लगे—‘राम नाम सत्य है !’ लोगोंने इसे निरा विनोद ही समझा । पर लंगता है कि उन्होंने इस प्रकार अपने अन्त समयके निकट होनेका संकेत कर दिया ।

बाबाकी अस्वस्थताका समाचार प्राप्त कर ठाकुर कुशलसिंहजी और ठाकुर हरीसिंहजी आये जयपुरसे । चिकित्साकी हर सम्भव व्यवस्था की जाने लगी । कलकत्तेसे एक योग्य वैद्यको बुलाया गया । बाबाके गलेमें तकलीफ थी, जिसके लिए उन्होंने गूलरकी छालके पानीसे गरारे करनेको कहा । बाबाने ब्रजके किसी वृक्षकी छाल लानेके लिए निषेध कर दिया । ब्रजके बाहरसे छाल लायी गयी । और सभी आवश्यक उपचार किये जाने लगे ।

इसी बीच बाबाने आज्ञा की गोवर्धनके श्रीगदाधरदास बाबाजीको बुलाकर अष्टकालीन लीला-कीर्तन करानेकी । एक मास पर्यन्त उनका कीर्तन होता रहा । बाबा हर समय लीलाके आवेशमें रहने लगे ।

ठाकुर कुशलसिंहजी और ठाकुर हरीसिंहजी जयपुर वापस चले गये । जाते समय ठाकुर हरीसिंहजीने बाबाके निकट खड़े होकर मन-ही-मन

प्रार्थना की कि यदि स्वास्थ्य अधिक खराब होने लगे, तो उन्हें दोनोंको सूचना अवश्य भिजवा दें।

एक दिन सन्ध्या समय प्रायः सभी बाबाके प्रियजन उन्हें घेरकर बैठे थे। बाबाने कहा—‘देखो, मेरा शरीर न रहे, तो फिर यहाँ मत रहना। बगीचा छोड़कर चले जाना।’

किसीने पूछा—‘बाबा, आपकी समाधि?’

‘समाधि-वमाधि कुछ नहीं! तुम लोगोंका भजन ही होगा मेरी समाधि।’

‘उत्सव?’

‘उत्सव भी नहीं। उस तिथिको सब मधुकरी ले आना और एक जगह बैठकर पा लेना। मैं अपने गुरुकी तिथिपर उत्सव करता, तो एक दिन पहले किसी ब्रजवासीसे कह देता—‘थोड़ा हलुआ बना लेना, भोग न लगाना?’ हलुआ यमुनापर ले जाता। तुलसी छोड़कर गोविन्दका भोग लगाता और गुरुको निवेदन कर बच्चोंको बाँट देता।’

फिर अपने आश्रमके नयी उम्रके साधकोंकी ओर देखते हुए बोले—‘इन्हें स्त्रियोंसे बचाना।’

दूसरे दिन राधाष्टमी थी। बाबाका निर्जल व्रत था। कृपासिंधु बाबाको बुलाकर उन्होंने कहा—‘मेरा गला सूख रहा है। थोड़ा पुराने घीकी मालिश कर दे।’

कृपासिंधु बाबाने कहा—‘थोड़ा पंचामृत ले लीजिये। आपका शरीर बहुत दुर्बल है।’

‘नहीं, नहीं रे।’

‘तो बाबा एक टुकड़ा मिसरीका ही ले लीजिये।’

‘तेरे हाथ जोड़ूँ, मेरा व्रत मत तोड़े।’

एकादशीके दिन फिर निर्जल व्रत। फिर कृपासिंधु बाबा और प्रियाशरण आदिने कुछ लेनेके लिए आग्रह किया। बाबाने फिर हाथ जोड़कर मना कर दिया और व्रत न तोड़नेके अपने संकल्पपर प्राणकी वाजी लगाकर भी स्थिर रहे।

दो-तीन दिन बाद उन्होंने कृपासिंधु बाबासे कहा—‘कुशलसिंह और हरीसिंहको तार देकर बुला लो।’

कृपासिंधु बाबाने इसपर ध्यान नहीं दिया । शायद इसकी आवश्यकता ही नहीं समझी । दूसरे दिन फिर बाबाने पूछा—‘उन लोगोंको तार दे दिया ।’

इसके बाद बाबा मौन हो गये । वे समाधिस्थ रहने लगे । तार भेज दिया गया ।

द्वितीयाके दिन वे एकदम बोल पड़े—‘बच्ची, देख प्रिया-प्रियतम आये हैं ।’

कृपासिंधु बाबाने पूछा—‘बाबा, प्रिया-प्रियतम अकेले हैं या आपका मञ्जरी-स्वरूप भी साथ है ?’

‘स्वरूप भी है ।’ बाबाने उत्तर दिया ।

‘महाप्रभु भी हैं ?’

थोड़ी देर चुप रहकर वे बोले—‘महाप्रभु भी हैं ।’ प्रियाशरण बाबाने पूछा—‘बाबा, बलदाऊजी भी हैं क्या ?’

‘बलदाऊ यहाँ कहीं’ कह वे चुप हो गये ।

चतुर्थीके दिन चेतन अवस्थामें उन्होंने कहा बच्चीसे—‘रजका खबूतरा बनाकर मुझे उसपर लिटा दे ।’

बाबाके मुखसे यह शब्द सुनते ही जैसे सबके प्राण उड़ गये । प्राणहीन अवस्थामें सबने थोड़ी देरमें रमणरेती आदि स्थानोंकी रजकी शय्या बना दी । बाबाको लिटा दिया ।

उस दिन कुशलसिंहजी और हरीसिंहजी आ गये थे । कुशलसिंहजी गोविन्दजीकी प्रसादी माला लाये थे । उन्होंने माला बाबाके गलेमें डाली । मालाका स्पर्श होते ही बाबाने शरीर छोड़ दिया । गोविन्दजी आये मालाके रूपमें और अपने बचपनके साथी रामप्रतापको ले गये अपने धाममें । मालाके रूपमें उन्हें देखा सबने । पर स्वयरूपमें देखा केवल बाबाने ।

गोविन्दाका यह चिरस्वभाव है । वह जिसमें प्रीति करता है, उससे निभाता अन्त तक है ।



श्रीगौरांगदास बाबाजी

(वृन्दावन)

दार्जिलिंगका शान्त वातावरण आज जैसा क्षुब्ध है, वैसा पहले कभी नहीं था । विद्यार्थियोंका एक जुलूस अभी निकलकर चुका है । आकाश मण्डलमें अब भी गुँज रहे हैं उनके गगन-भेदी नारे—‘इंकलाब, जिंदाबाद,’ ‘गोरा-पलटन मुर्दाबाद, गोराशाही नहीं चलेगी, नहीं चलेगी’, ‘धीरेन्द्र निर्दोष है, पलटन बदहोश है’, ‘धीरेन्द्रको छोड़ दो, पलटनको तोड़ दो ।’ जहाँ देखो वहाँ एक ही घटनाकी चर्चा हो रही है । धीरेन्द्रके अतुलनीय साहस, देश-भक्ति और पराक्रमकी प्रशंसा की जा रही है ।

घटना उस समयकी है, जब भारतमें अँग्रेजोंका राज्य था । बड़े लाट दार्जिलिंग पहुँचने वाले थे । गोरा-पलटन उनके स्वागतको स्टेशन जा रही थी । जिस सड़कसे पलटन जा रही थी, उसीसे धीरेन्द्र किताबोंका बस्ता कन्धेपर लटकाने स्कूल जा रहे थे । सड़क सँकरी थी । उसके एक ओर पहाड़ था, दूसरी ओर पत्थरसे चुनी हुई दीवाल । धीरेन्द्रको पलटनको रास्ता देनेके लिए दीवारसे चिपककर खड़ा होना पड़ा । गोरे सिपाही जाते-जाते कोई उन्हें ठोकर मार जाता, कोई बन्दूककी बटसे प्रहार कर जाता, कोई ‘यू ब्लैकी बगर’ या ‘यू इण्डियन डॉग’ कहकर गाली दे जाता ।

धीरेन्द्रने गोरोंकी मार तो सह ली, पर देशके प्रति उनकी गालियाँ सुन-सुनकर उनके रक्तमें उबाल आया । उन्होंने देखा सड़कके किनारे पड़ा एक पत्थर और मनमें कुछ निश्चय कर खड़े हो गये । जैसे ही आखिरी सिपाही उन्हें ठोकर मारता हुआ निकला, उन्होंने पत्थर उठाकर जोरसे उसके सिरपर दे मारा । सिपाही भूमिपर लोट गया । धीरेन्द्र कुलाचे मारकर पहाड़पर चढ़ गये । वहाँ से सिपाहियोंपर पत्थरकी बौछार करते रहे । पलटनमें खलवली मच गयी । कप्तानने हुक्म दिया उन्हें घेरकर पकड़ लेतेका वे पकड़े गये । पर उन्हें पकड़नेके प्रयासमें जो सिपाही पहाड़पर चढ़े, उनमें-से बहुतोंकी पत्थरोंकी मारसे घायल होना पड़ा ।

विद्यार्थियोंमें बढ़ते हुए रोषको देख धीरेन्द्रको कमिशनरके आदेशपर

तत्काल छोड़ दिया गया। पर उनके विरुद्ध कार्यवाही जारी रहेगी और उन्हें दण्डित किया जायगा, यह निश्चित था। क्या दण्ड दिया जायगा, केवल उन्हें ही दिया जायगा या गोरे सिपाहियोंको भी—इस बातको लेकर समाज चिंतित था। पर धीरेन्द्रको न चिंता थी, न भय। उन्होंने शेरनीका दूध पीया था। साधारण शेरनीका नहीं, एक शक्तिशाली दिव्य शेरनीका। वे थे प्रसिद्ध सन्त सिद्ध श्रीभोलानाथगिरि महाराजके कृपापात्र। भोलानाथगिरि महाराजने निश्चय ही उनके व्यक्तित्वमें कोई असाधारण बात देखी थी, जिसके कारण वे उनसे मातृवत् स्नेह करते थे। एक बार उनके प्रति वात्सन्य-प्रेमसे अभिभूत हो उन्होंने उन्हें अपनी गोदमें बिठाकर और छाती उनके मुँहसे लगाकर मातृवत् स्तन पिलानेका अभिनय किया था। यह कोरा अभिनय ही न था। उन्होंने सचमुच इस प्रकार उनमें अपनी शक्तिका संचार किया था।

देववश, या अपनी दिव्य दृष्टिसे धीरेन्द्रके संकटको जान, भोलानाथगिरि महाराज इसी बीच दार्जिलिंग पधारे अपने प्रिय बंगकेसरी श्रीज्योतिन मुकर्जीके घर। धीरेन्द्र गये उनके दर्शन करने। उन्हें देखते ही वे बोले—‘चिंता क्या है? तू शेरका बच्चा है। थोड़े-से गोदड़ तेरा क्या करेंगे? तेरे पीछे समर्थ गुरुका बल है।’ शायद उन्हींकी प्रेरणासे कमिशनरने धीरेन्द्रको दण्डित करनेका भार उनके स्कूलके हेडमास्टरपर छोड़ दिया। उनका संकट सहजमें टल गया।

श्रीधीरेन्द्रनाथ चक्रवर्तीका जन्म माँ चण्डीदेवीकी कोखमें सन् १८८७ में बंगदेशके चौबीस परगनाके अन्तर्गत चाँगड़ीपोता ग्राममें हुआ था। उनके पिता श्रीभूपेन्द्रनाथ एक बड़े जागीरदार थे, पितामह श्रीद्वारकानाथ विद्याभूषण ‘सोमप्रकाश’ अखबारके लोकप्रिय सम्पादक थे। भूपेन्द्रनाथने उन्हें और उनके छोटे भाई फणीन्द्रनाथको अच्छी शिक्षाके लिए दार्जिलिंग भेज दिया था।

दार्जिलिंगमें एन्ट्रेंसकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पासकर धीरेन्द्रनाथ कलकत्तेके संस्कृत कालिजमें भरती हुए। फणीन्द्र भी एन्ट्रेंस पास करनेके पश्चात् इसी कालिजमें भरती हुए। उनके दूसरे भाई नरेन्द्र पहले ही वहाँ पढ़ते थे। नरेन्द्र बंगकेसरी ज्योतिन मुकर्जीमें बहुत प्रभावित थे। बंगकेसरी एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता थे। बालेश्वरमें ब्रिटिश सरकारसे युद्ध करते समय शहीद हुए थे। धीरेन्द्र और फणीन्द्रका भी दार्जिलिंगमें रहते समय

उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था और उनपर भी उनकी पूरी छाप पड़ चुकी थी ।

संस्कृत कालिजमें पढ़ते समय नरेन्द्र और फणीन्द्रका अधिकांश समय क्रांतिकारी योजनाओंको पूरा करनेमें व्यतीत होता । पावना डकैती केसमें दोनों भाइयोंने प्रमुख भूमिका निभायी । नरेन्द्र पकड़ लिये गये । फणीन्द्र बंगालकी खाड़ीके समुद्रसे तैरते हुए बर्मा चले गये । वहाँसे उन्होंने क्रांतिकारी दलके लिए शस्त्र एकत्र करनेके उद्देश्यसे चीनकी यात्रा की ।

क्रांतिकी चिनगारी धीरेन्द्रके हृदयमें भी सुलग रही थी । पर उस क्रांतिका स्वरूप अधिक व्यापक था । वह थी मायाके विश्वव्यापी, अनन्त शक्तिशाली साम्राज्यके विरुद्ध ।

एक विद्यार्थीको अपने जीवनमें जिन वस्तुओंकी कामना हो सकती है—सांसारिक सुख-सुविधाएँ, माता-पिता और गुरुजनोंका स्नेह, आदर्श चरित्र, विद्याध्ययनके उत्तम-से-उत्तम साधनोंकी सुलभता, रूप-लावण्य, सुन्दर स्वास्थ्य और तीव्र मेधाशक्ति—वे सभी उन्हें परिपूर्ण मात्रामें प्राप्त थीं । पर किसी अलौकिक वस्तुके अभावमें यह सब उन्हें फीकी जान पड़ती थीं । सुन्दर युवती जिस प्रकार नाना प्रकारके आभूषणोंसे भूषित ही दर्पणमें मुख देखकर अपने रूपकी मत्त-हो-मन सराहना करते हुए भी पतिके अभावमें माथेपर बिंदी और माँगमें सिंदूरके बिना अपने श्रृंगारको निरर्थक मानती है, उसी प्रकार धीरेन्द्र सब कुछ होते हुए भी उस अलौकिक वस्तुके अभावमें अपना जीवन निरर्थक मानते थे ।

परमहंस श्रीभोलानाथगिरि महाराजकी कृपा शिवमन्त्रके रूपमें उन्हें पहले ही प्रप्त हो चुकी थी । पर उन्होंने उनमें कृष्ण-भक्तिके प्रबल संस्कार देख किसी वैष्णव महात्मासे दीक्षा लेनेकी आज्ञा की थी । स्वामी विवेकानन्दकी शिष्या भगिनी निवेदिता भी धीरेन्द्रसे बहुत प्यार करती थीं । उनकी इच्छा थी कि वे वेङ्कटरमठके श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द महाराजसे दीक्षा लें । इस उद्देश्यसे वे एक बार उन्हें ब्रह्मानन्द महाराजके पास ले गयीं । उन्हें देखकर उन्होंने भी यही कहा—‘महं तो एक महान वैष्णव है । इसकी दीक्षा किसी वैष्णव गुरुसे ही होगी ।’

चाँगड़ीपोतामे डेढ़ मील दूर पंचवटी-वन नामक निर्जन स्थानमें एक देवीका प्राचीन मन्दिर है । एक दिन धीरेन्द्र देवीके दर्शन करने गये । उन्हें

प्रणाम किया और कृष्ण-भक्त गुरुकी प्राप्तिकी भिक्षा माँगी। उसी समय देवीके गलेसे फूलोंकी माला खिसक पड़ी। उन्होंने उसे देवीका आशीर्वाद जान हर्षसे मस्तकपर धारण किया।

इस घटनाके पश्चात् उन्हें देवीमें अटूट श्रद्धा हो गयी। वे सोते-जागते, खाते-पीते, हर समय उनके ध्यानमें मग्न रहते। कभी-कभी प्रातःकाल उनके ध्यानमें बैठ जाते और सन्ध्या तक आसनपर एक मुद्रामें बैठे रह जाते। उनके बड़े भाई श्रीदेवेन्द्रकुमार चक्रवर्तीकी पत्नी श्रीमती शैलवाला रसोई लिये बैठी रह जातीं। एक बार उन्होंने धीरेन्द्रसे पूछा 'तुम देवीकी इतनी पूजा करते हो। वह भी तुम्हारे ऊपर कुछ कृपा करती हैं?'

सुनते ही धीरेन्द्रके नेत्र सजल हो आये। भरे हुए कण्ठसे वे बोले—
'भाभी! मैं हर समय उनकी कृपाका अनुभव करता हूँ। पंचवटी जाता हूँ, तो वे अपना रङ्गा हुआ हाथ जंगलमें-से निकाल कर मेरे मस्तकपर रखती हैं।'

संस्कृत कालिजमें पढ़ते समय धीरेन्द्रनाथ नित्य रेलगाड़ीसे चाँगड़ीपोता-से कलकत्ते जाया करते थे। एक दिन जब वे कलकत्ते जा रहे थे, उन्होंने देखा कि गाड़ीके एक कोनेमें एक महात्मा बैठे हैं। उनके ललाटपर है हरि-मन्दिर तिलक, गलेमें तुलसीकी कण्ठी और हाथमें हरिनाम-जपमालाकी झोली। ओष्ठ जपके कारण ईषत् हिल रहे हैं और नेत्र सजल हो रहे हैं। वे उनके पास जा बैठे और प्रणाम कर पूछा—

'क्या आप किसी यथार्थ कृष्ण-भक्तको जानते हैं?'

'हाँ, जानता हूँ।'

'कौन हैं वे?'

'बड़े बाबाके शिष्य श्रीरामदास बाबाजी महाराज।'

'बड़े बाबा कौन?'

'श्रीराधारमण चरणदास देव।' उन्हें 'बड़े बाबा'के नामसे लोग अधिक जानते हैं। उनका विशाल शरीर था और बड़े शक्तिशाली महात्मा थे वे।'

'वे अब नहीं हैं क्या?'

'अब नहीं हैं—ठीक यह तो नहीं कहना चाहिये; क्योंकि आज भी जो उनकी शरण लेता है, उसे दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं वे और पञ्चम सी

देते हैं अपने असाधारण व्यक्तित्वका, अपनी असाधारण शक्ति और करुणाका ।’

‘कैसा असाधारण व्यक्तित्व ?’

‘वे हैं श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुकी करुणाके मूर्तिमान् स्वरूप । मानो उनकी करुणा ही रूप धारण कर उतर आयी हो पृथ्वीपर उन जीवोंका उद्धार करने, जो उनकी कृपासे वंचित रह गये थे । उन्होंने न जाने कितने जगाई-मधाईका उद्धार किया, कितने पापी-तापी जीवोंके पाप स्वयं लेकर उन्हें प्रेमदान किया । चितापर जाते मुर्दे तकको देख उनकी करुणा उमड़ पड़ी । उसमें प्राण फूँककर महामन्त्र सुनाया, और तब जाने दिया उसे । पशु-पक्षी, यहाँ तक कि वृक्षादिको भी प्रेमदान कर अष्ट-सात्विक भावोंसे विभूषित किया उन्होंने । दिग्नगरके पीपलकी कहानी आज भी बंगालमें घर-घरमें कही जाती है, जिसने उनके संकीर्तनमें कई बार नृत्य किया । ‘चरित-मुधा’ नामका छः खण्डोंमें एक ग्रन्थ है, जिसमें उनके चरित्रका विस्तारसे वर्णन है । आज भी कितने लोग उनकी कृपाका साक्षात् अनुभव कर कृतकृत्य हो रहे हैं ।’

‘मुझे उनकी कृपा कैसे प्राप्त हो सकती है ?’

‘यदि तुम उनके शिष्य श्रीरामदास बाबाजी महाराजकी शरण लो, तो तुम्हें सहज ही उनकी कृपा प्राप्त हो जायगी । वे भी बड़े शक्तिशाली, सिद्ध महात्मा हैं । उन्हें बड़े बाबाका ही दूसरा रूप समझो । आजकल वे कलकत्तेमें कोल्हटोलामें मोतीलाल शीलकी लॉजमें रहते हैं ।’

उस दिन धीरेन्द्र गाड़ीसे उतर कर कालिज नहीं गये । वे सीधे पहुँचे मोतीलाल शीलके घर । उस समय बाबा रामदासजी महाराज बाहर बरामदेमें टहल रहे थे । उनके गलेमें थो फूलोंकी माला और हाथमें हरिनामकी झोली । धीरेन्द्रको देखते ही उनकी पैनी दृष्टि उनपर टिक गयी, जैसे वे उनके हृदयके अन्तरतम कोठमें झाँककर देख रहे हों, जेमे अपनी बहुत दिनोंकी खोई हुई सम्पत्तिको प्राप्त कर उसे अपने स्नेहभरे नेत्रोंसे चूम रहे हों । धीरेन्द्रको भी लगा कि जैसे उन्होंने अपनी चिराभिलषित सम्पत्ति, अपनी जीवन-नैयाके कर्णधार श्रीगुरुदेवको पा लिया हो । फिर भी उन्होंने उन्हें प्रणाम करते हुए मन-ही-मन कहा—‘यदि आप मेरे गुरुदेव हैं, तो कृपाकर अपने गलेकी माला मुझे दें ।’ उसी समय उन्होंने माला उतारकर उन्हें पहना दी ।

धीरेन्द्रके धैर्यका बाँध टूट गया । वे उनके चरणोंसे लिपटकर ‘गुरुदेव !



बाबा गौरांगदास जी महाराज

हा गुरुदेव ! दया करो गुरुदेव !' कहते हुए रो पड़े । गुरुदेवने उन्हें उठाकर छातीसे लगाया । सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—'चिंता न करो । तुम मेरे हो ।'

शुभ मुहूर्तमें शील-लाँजमें धीरेन्द्रकी दीक्षा हुई । मन्त्र कानमें पड़ते ही वे समाधिस्थ हो गये । लगातार आठ घण्टे उसी अवस्थामें पड़े रहे । उस समय उन्हें अपने दिव्य स्वरूपके दर्शन हुए । उन्होंने अपने-आपको देखा दस-ग्यारह वर्षकी एक सुन्दर, गौरकान्ति-युक्त बालिकाके रूपमें, जो यमुना-तटपर आँचलमें फूल भरकर ले जा रही है राधारानीकी चोटी गूँथनेके लिए ।

गुरुदेवके मधुमय संगके बिना एक क्षण भी रह सकना अब धीरेन्द्रके लिए मुश्किल हो गया । प्रायः वे घरसे गाड़ीपर बैठते कालिज जानेके लिए और पहुँच जाते शील-लाँज गुरुदेवके दर्शन करने और उनका देव-दुर्लभ, पाषाणकी भी पिघला देनेवाला कीर्तन सुन प्राणोंको शीतल करनेके लिए । श्रीगुरुदेवके संगने उनके अनुरागकी अग्निको प्रचण्ड करनेमें आहुतिका कार्य किया । उनके कानोंमें उनकी मधुर कीर्तन-ध्वनि सब समय गूँजा करती । कभी-कभी वे उनकी मधुर स्मृतिमें इतना तन्मय हो जाते कि अपनी सुध-बुध खो बैठते । नेत्र देखते हुए भी न देखते । कान सुनते हुए भी न सुनते । देखते-सुनते तब, जब मनका इन्द्रियोसे संयोग होता । पर मन तो जैसे वहाँ रहता ही नहीं, मधुप हो जा बैठता श्रीगुरुदेवके चरण-कमलोंमें और खोया रहता उनके दिव्य परागकी शीतल सुगन्धमें ।

आज धीरेन्द्र अभी तक कालिजसे नहीं लौटे हैं । गाड़ी आ चुकी है । माँ वाट देखती-देखती थक गयी हैं । चिंता बढ़ती जा रही है । किसी प्रकार धैर्य धारण कर रही हैं ।

'अब तो सोनेका समय आ गया । अभी भी उसका पता नहीं । निश्चय ही वह पंचवटीकी माँके पास चला गया होगा । पहले भी तो वह रात-रात भर वहाँ रह गया है । सबेरा होते ही आ जायगा । माँ अवश्य उसकी रक्षा करेंगी ।'

प्रातःकालके सूर्यकी किरणें धीरेन्द्रकी सूनी शय्यापर फूट पड़ीं । पर धीरेन्द्रका अब भी पता नहीं । परिवारके लोग उसकी खोजमें निकल पड़े । उसके सबसे बड़े भाई श्रीवंकिमचन्द्र चक्रवर्ती, एडवोकेट उसे खोजते-खोजते पहुँचे कलकत्ते श्रीरामदास बाबाजी महाराजके आश्रममें । उनका अनुमान ठीक

निकला । धीरेन्द्र कल यहाँ आ गये थे घर कभी न लौटनेका निश्चयकर । पर उन्हें बंकिमबाबूके साथ घर लौटना पड़ा गुरुदेवकी आज्ञा शिरोधार्य कर ।

माँने अपने खोये हुए धनको पाकर फिर छातीसे लगा लिया । अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसे निहारते हुए बोलीं—‘बेटा, मैं जानती हूँ तेरे हृदयमें विशुद्ध भगवद्प्रेमका प्रकाश है । तू अधिक दिन घरमें न रह सकेगा । पर मुझे तेरा वियोग असह्य होगा । प्रतिज्ञा कर कि तू मेरे जीते घर छोड़कर नहीं जायगा ।’

माँकी कृपण प्रार्थनासे धीरेन्द्रका हृदय पिघल गया । वे बोले—‘माँ ! मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा ।’

वे पढ़ने-लिखनेमें मन लगाकर माता-पिताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे । इण्टरमीडिएटकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पासकर कलकत्तेके स्कॉटिश-चर्च कालेजमें भरती हुए । अत्यन्त प्रतिभाशाली और चरित्रवान विद्यार्थी होनेके कारण यहाँ भी वे गुरुजनोंके विशेष कृपापात्र बन गये । उनके अंग्रेज गुरु उनके चारित्रिक गुणोंके कारण उन्हें Master Puritan कहकर पुकारा करते !

विद्याध्ययनमें अग्रगण्य होते हुए भी धीरेन्द्र खेल-कूद और व्यायामादिमें किसीसे पीछे न थे । फुटबालमें उनकी ओरसे खेलनेके लिए कलकत्तेकी बड़ी-से-बड़ी टीम उनका मुख निहारा करती । कुश्तीमें एक जापानी पहलवानको पछाड़कर उन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की थी ।

माता-पिता और गुरुजन उनकी बहुमुखी प्रतिभाको चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह बढ़ता देख बहुत प्रसन्न थे । परन्तु भगवद्-अनुरागकी अग्नि, जो ऊपरसे शान्त जान पड़ती थी, भीतर-भीतर सुलग रही थी, हवाके एक हलकेसे झोंकेसे कभी भड़क सकती थी ।

एक दिन धीरेन्द्र अपने घरके बैठकखानेमें बैठे थे । एक सज्जनने कमरेमें प्रवेश किया । उनका रेशमी कुर्ता, जरीदार दुपट्टा और चाँदीकी मूठवाली छड़ी बता रही थी कि वे एक धनी व्यक्ति हैं । कमरेमें घुसते ही उन्होंने पूछा—

‘भूपेन्द्र बाबू हैं ?’

‘हैं’ धीरेन्द्रने उत्तर दिया ।

धीरेन्द्रकी ओर बड़े प्यारसे देखते हुए उन्होंने कहा—‘तुम भूपेन्द्रबाबूके बेटे धीरेन्द्र हो न ?’

उनके भावसे धीरेन्द्रके मनमें कुछ शंका और भयका संचार हुआ । उन्होंने कहा—‘नहीं । धीरेन्द्रसे आपको क्या काम है ?’

‘धीरेन्द्रके साथ मेरी कन्याके विवाहकी बात है । मैं इसी सम्बन्धमें आया हूँ ।’

‘धीरेन्द्र अब कहाँ है ? उसका तो स्वर्गवास हो गया ।’

‘क्या ? स्वर्गवास !’

‘जी ।’

‘हाय ! यह क्या हुआ ! दो दिन पहले तो मुझे भूपेन्द्रबाबूकी चिट्ठी मिली । उसे अकस्मात् क्या हो गया ?’

‘कालरा ।’

उन सज्जनके पैरके नीचेसे धरती खिसक गयी । उदास होकर उन्होंने कहा—‘तो भूपेन्द्रबाबूसे मिल लूँ ।’

‘जी, वे बहुत संतप्त हैं । इस समय आपके मिलनेसे उन्हें और अधिक दुःख होगा ।’

बेचारे लौट गये अपने भाग्यको कोसते हुए ।

धीरेन्द्रको लगा कि उनके हृदयागारमें सेंध फोड़कर चुपके-चुपके उनकी दैवी-सम्पत्तिको लूटनेकी कोशिश की जा रही है, उन्हें सदाके लिए वन्दी बनाये रखनेको कारागारका निर्माण किया जा रहा है । उन्होंने निश्चय किया अविलम्ब अपने हृदयकी सम्पत्तिको लेकर भाग निकलनेका । उसी रात वे माता-पिताके स्नेह, चक्रवर्ती परिवारके वैभव ओर अपनी असाधारण प्रतिभाके अनुकूल अति उज्ज्वल और सुख-समृद्धिपूर्ण भविष्यकी सम्भावनाको तिलाञ्जलि दे निकल पड़े त्याग और वैराग्यके कण्टकाकीर्ण पथपर ।

आपाढ़का महीना था । श्रीरामदास बाबाजी महाराज परिकरों सहित जानेको थे श्रीधाम पुरी बहुत-सी डालियोंमें तरह-तरहकी सामग्री लेकर, जो महाप्रभुकी प्रिय थीं, रथयात्राके अवसर उन्हें समर्पण करनेके लिए । उसी समय धीरेन्द्र उनके निकट पहुँचे । अपना मन्तव्य प्रकट कर उनके साथ पुरी जानेकी आज्ञा माँगी । गुरुदेवने अनुमति दे दी । उनकी डालियोंमें जुड़ गयी

एक और बहुमूल्य डाली, जिसमें धीरेन्द्रके मन-प्राण सँजोकर उन्हें समर्पित करना था महाप्रभुको ।

धीरेन्द्रके मन-प्राण महाप्रभुको समर्पण करने योग्य थे, यह प्रमाणित है जगन्नाथपुरीमें घटी कुछ घटनाओंसे । एक दिन धीरेन्द्र जगन्नाथजीके दर्शन कर लौट रहे थे । मार्गमें देखा कुछ रोगके भिखारियोंको, जो हाथ सड़ जानेके कारण, भिक्षामें मिला प्रसाद ग्रहण नहीं कर पा रहे थे । उन्होंने अपने हाथसे उन्हें भोजन कराया । भोजन कराते समय किसी प्रकार उनकी दुर्गन्ध सहन करते रहे । पर भोजन कराकर जैसे ही आगे बढ़े, उन्हें वमन हो गया ।

एक दिन जगन्नाथजीका भोग लग चुका था, पर उनकी क्षुधाकी निवृत्ति नहीं हुई थी । कदाचित् उन्हें ब्रज-लीलाकी स्मृति हो आयी थी और लोभ जाग आया था श्रीदाम-सुदामादि जैसे किसी भक्तके अधरामृतका । उनकी दृष्टि पड़ी मन्दिरके बाहर स्नान-मण्डपमें बैठे, प्रेमाश्रु-विसर्जन सहित महाप्रसादका सेवन करते हुए धीरेन्द्रनाथकी पत्तलपर । उनकी लार वह निकली । अघटन-घटन-पटीयसी योगमायाने प्रभुकी वह दशा देख उनकी बांह इतनी लम्बी कर दी कि वह पत्तल तक जा पहुँची । धीरेन्द्रने देखा कि अप्राकृत सौन्दर्य और सौरभसे परिपूर्ण वह हस्त-कमल बार-बार पत्तलमें महाप्रसादका ग्रास उठा रहा है । उसे देख उनका हृदय एक अवर्णनीय भावराशिसे आप्लावित हो गया । उन्होंने अपना हाथ समेट लिया । थोड़ी देरमें वह हस्त-कमल अन्तर्धान हो गया । तब वे प्रभुके अधरामृतसे संश्लिष्ट अवशिष्ट महाप्रसादको ग्रहणकर धन्य हुए ।

रथयात्राके दिन रथ जगन्नाथजीकी जय-जयकार और कीर्तन ध्वनिके बीच मन्द-मन्द गतिसे आगे बढ़ रहा था । धीरेन्द्र भी कीर्तनमें योगदान कर आनन्द-विभोर हो रहे थे । रथके ऊपर प्रसादी शर्बतका बड़ा घड़ा रखा था । भक्तगण रथपर चढ़कर शर्बत ले रहे थे । धीरेन्द्र भी चाहते थे उस अलौकिक पेयसे अपने प्राणोंको शीतल करना । पर गुरुदेवने अपराधकी दृष्टिसे रथपर चढ़नेको मना कर रखा था । भक्तवाँछा-कल्पतरु श्रीजगन्नाथदेव भक्तके मनकी बात जान रहे थे । वे कैसे अपने भक्तकी अपने ही प्रसादके लिए तरसते देख सकते थे ? उनकी इच्छासे शर्बतका घड़ा फूट गया । मानो शर्बतके रूपमें उनकी कृपाका निर्झर बह निकला ! धीरेन्द्रने इसे प्रभुकी असीम कृपा जान अञ्जलि भर-भरकर उसका पान किया ।

श्रीधामपुरीसे गुरुदेवके साथ कलकत्ते लौट जानेके पश्चात् धीरेन्द्र उनकी आज्ञासे नवद्वीप जाकर परमसिद्धा श्रीललितादीदीकी सेवामें रहने लगे । ललितादीदी श्रीरामधारमण चरणदेवकी मुख्य कृपापात्री थीं । उनका नाम पहले जयगोपाल था । उन्हें श्रीधामपुरीमें जगन्नाथजीने अलौकिक रीतिमें साड़ी प्रदान की थी । तभीसे उनका गोपी-भाव सिद्ध हो गया था और वे गोपीवेशमें रहने लगी थीं । गुरुदेवने उनका नाम रख दिया था ललितादासी । वे नवद्वीपमें समाज बाड़ीमें श्रीश्रीराधाकान्तकी अष्टयाम-सेवा पद-कीर्तन सहित बड़े भावसे करती थीं । वे जैसी भक्त थीं, वैसी ही शास्त्र-सिद्धान्तमें पारंगत भी । धीरेन्द्रनाथ उनसे चैतन्य-चरितामृतका अध्ययन करने लगे ।

धीरेन्द्रके माता-पिताको पता चला कि वे नवद्वीपमें समाजबाड़ीमें हैं, तो वे पुलिसके दरोगा श्रीहजारीबाबू और दो सिपाहियोंको साथ ले वहाँ जा पहुँचे । धीरेन्द्रको देखते ही माँने चिपटा लिया । उनकी लम्बी-लम्बी साँसें जैसे हृदय-समुद्रमें आये ज्वार-भाटेकी तरह उन्हें बार-बार खींचकर अपने तलदेशमें ले जाना चाह रही थीं । नेत्रोंके जलमें उन्हें अभिषिक्त करते हुए वे बोलीं—'बेटा धीरे ! तू इतना निष्ठुर हो गया !'

धीरेन्द्र सचमुच आज इतने निष्ठुर ही रहे थे कि माँके प्रणय-रोष और वेदनाभरे शब्द उनके हृदयमें उसी प्रकार टकराकर रह गये, जैसे पत्थरकी चट्टानसे कुसुमशर टकराकर रह जायें । उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा—'माँ ! आशीर्वाद दी, जिससे तन-मनसे गुरु-गोविन्दकी सेवामें संलग्न रहकर जीवन सफल कर सकूँ ।'

माँके हृदय-प्रांगणमें यह शब्द बज्जके समान गूँजकर रह गये । भूपेन्द्रनाथ खड़े-खड़े देख रहे थे । उन्होंने धीरेन्द्रकी ओर भृकुटी तानी । फिर ललितादासीकी ओर देखते हुए बोले—'आप लोग धीरेन्द्रके जीवनसे इस प्रकार क्यों खेल रहे हैं ? उसे घरपर रहकर भजन करनेका उपदेश क्यों नहीं करते ?'

ललितादासीने कहा—'धीरेन्द्र कोई साधारण बालक नहीं है । वह एक महापुरुष है । उसके द्वारा आपका और जगत्का कल्याण होगा । उसे संसारकी कोई भी शक्ति परमार्थ-पथसे नहीं हटा सकती । बाढ़के समय नदीके वेगको जितना रोकनेका प्रयत्न किया जाता है, उतना ही वह और बढ़ जाता

है। आपके जैसे धर्मपरायण माता-पिताका कर्तव्य नहीं कि उसके कल्याणके मार्गमें बाधक बनें।

‘मैं यहाँ उपदेश लेने नहीं आया, अपने लड़केको लेने आया हूँ।’ कहते हुए भूपेन्द्रनाथ तसककर तेजीसे उस ओर जाने लगे, जिस ओर दरोगा और सिपाही उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। रास्तेमें कुछ ठिठककर एकदम लौट पड़े। चारों ओर कुछ अनुसन्धान करते हुए ललितादासीके पास जाकर बोले—‘वे किधर गये?’

‘कौन?’

‘वही, जो मेरे पीछे-पीछे गये और कानमें कुछ कहकर लौट आये।’

‘आपके पीछे तो कोई नहीं गया!’

‘नहीं, नहीं! वे लम्बे कदवाले तेजस्वी महापुरुष! उन्होंने मेरी पीठपर हाथ मारा! मैंने मुड़कर देखा तो मुझे आलिंगन किया। ढबडबाये नेत्रोंसे मेरी ओर देखते हुए—’ इतना कह उनके नेत्रोंमें जल भर आया और गला रूँध गया। थोड़ा स्थिर हो वे फिर कहने लगे—‘उन्होंने चिरपरिचितकी भाँति मुझसे कहा—‘भूपेन! कबतक सोते रहोगे यूँ ही मोहनिद्रामें और भोगते रहोगे दुःख दूसरेकी वस्तुको अपनी सानकर? जानते नहीं धीरेन्द्र मेरा है?’

ललितादासी मुस्कराते हुए उठीं और बोलीं—‘चलिये मैं ले चलूँ उनके पास।’

थोड़ी दूर जाकर समाजबाड़ीमें स्थापित श्रीराधारमणचरणदासदेवकी विशाल श्रीमूर्तिकी ओर इङ्गित करते हुए बोलीं—‘यही थे न वे?’

भूपेन्द्रनाथ आश्चर्यचकित हो बोले—‘हाँ! ये ही तो थे!’

वे महापुरुषके चरणोंमें गिर गये और रो-रोकर न जाने क्या-क्या कहने लगे। अब उनकी मोहनिद्रा भंग हो चुकी थी! धीरेन्द्रको पुलिसकी सहायतासे पकड़कर ले जानेका उनका निश्चय उसके साथ विलीन हो गया था। वे स्वयं पकड़े जा चुके थे। महापुरुषके स्पर्श मात्रसे उनके हृदयमें एक नया प्रकाश छा गया था।

कुछ दिन बाद धीरेन्द्र गुरुदेवसे आज्ञा लेकर वृन्दावन चले गये। यहाँ कान्नीयदहके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाकी सेवामें रहकर भजन करने लगे।

वे उन्हें प्यारमें गोपाल कहकर पुकारते ।

श्रीजगदीश बाबा निरन्तर भाव ममाधिमें डूबे रहते । कभी-कभी मध्या समय उनके सामने रखा भोजन सुबहतक रखा ही रह जाता । कोई उनके सामने आकर दण्डवत् करता, तो भी उन्हें पता न चलता । धीरेन्द्र उनको आज्ञानुसार अष्टकालीनलीला स्मरणकी पद्धतिसे भजन करने लगे । वे हर समय यमुनापुलिनके निविड़ निकुञ्जों और वनोंमें विचरण करते हुए समयोपयोगी लीलाकी भावना किया करते । उनकी बाह्य चेष्टा देख जान पड़ता कि कोई पागल व्यक्ति यूँ ही इधर-उधर घूम रहा है । उन्हें इस प्रकार डोलता देख कभी-कभी लोग सिद्ध जगदीशदास बाबासे कहते—‘आपका गोपाल यूँ ही इधर-उधर डोला करता है, कुछ भजन-साधन नहीं करता ।’

बाबा कहते—‘श्रेष्ठ भजन तो वही है, जो गोपाल करता है । वह भजनके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकता ।’

एक दिन सन्ध्या समय धीरेन्द्र श्रीजगदीशदास बाबाके समीप बैठे थे । वे सहसा बोल पड़े—‘देख, गोपाल देख ! लालजीकी शोभा कैसी सुन्दर है ! दोनों भइया झूमते-झामते कैसे चले आ रहे हैं ! गइयोके खुरसे उड़े रजकण अलकावलियोंपर कैसे शोभायमान हैं !’

धीरेन्द्रने कहा—‘बाबा, मुझे तो कुछ भी नहीं दीख रहा ।’

कुछ देर रुककर बाबा बोले—‘तुझे दीखेगा, जा मैंने कह दिया ।’ और चुप हो गये ।

कुछ दिन पश्चात् जगदीश बाबाने धीरेन्द्रनाथको गोवर्धनके पण्डित रामकृष्णदास बाबासे शास्त्राध्ययन करनेका और उनके सत्संगमें रहकर भजन करनेका आदेश किया । पण्डित बाबा उस समय कुसुमसरोवरके निकट श्यामकुटीमें रहते थे । धीरेन्द्र श्यामकुटीसे कुछ दूर ग्वालपोखराके पास एक कुटीमें रहकर भजन करने लगे । वे नित्य अपराह्नमें उनके पास जाते और शास्त्रालोचना करते ।

धीरेन्द्रनाथने पण्डित बाबाके निकट श्रीमद्भागवत और पद्मन्दर्भादि अनेक भक्ति-ग्रन्थोंका अच्छी तरह अध्ययन और मनन किया । इसी समय उन्होंने ब्रजभाषाके वाणी-ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया । उनकी मेधाशक्ति तो असाधारण थी ही । थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने श्रीहरिदासजी, श्रीहरिव्यास-

देवजी, श्रीहरिवंशजी, श्रीहरिरामव्यासजी और श्रीवल्लभरसिकजी प्रभृति रसिकाचार्योंकी समस्त वाणियोंको कण्ठस्थ कर लिया । ब्रज-साहित्यके अद्वितीय पण्डित और भक्तिरसके अनन्य रसिकके रूपमें उनका सभी सम्प्रदायोंमें सम्मान किया जाने लगा ।

पण्डित बाबाकी आज्ञासे उन्होंने श्यामकुटीमें नित्य कथा कहना प्रारम्भ किया । कथा सुनने दूर-दूरसे महात्मा आते । जिस ग्रन्थकी वे कथा कहते, वह तो नाममात्रको सामने रखा रहता । कथाका निर्झर अबाधगतिसे बहता रहता । श्लोकोंकी आवृत्ति ऐसे होती रहती जैसे सारा ग्रन्थ उनके जलाटपर लिखा ही । हिन्दी और बँगला ग्रन्थोंकी वाणियोंसे सम्पुष्ट, अश्रु, कम्पादि सात्विक भावोंसे सिक्त उन श्लोकोंकी रसमय व्याख्या श्रोताओंकी एक अनिर्वचनीय भाव-समुद्रमें निमग्न कर देती ।

पण्डित बाबाके आदेशसे धीरेन्द्रनाथ गुरुदेवके पास जाकर उनसे वैराग्याश्रमकी विधिवत् दीक्षा ले आये । नाम हुआ श्रीगौरांगदास । बाबा गौरांगदास त्याग और वैराग्यकी साक्षात् मूर्ति थे । उनकी कुल सम्पत्ति थी एक लँगोटी, टाटका बहिर्वास और ब्रजरजका कढ़ावा । वे दिन भर भजन करते । सन्ध्या समय एक बार मधुकरीकी जाते । मधुकरीमें जो मिल जाता, उसीसे उदर-पूर्ति करते ।

एक दिन रातको उन्होंने स्वप्न देखा कि ग्वालपोखरामें उनकी कुटियाके निकट एक स्थानमें गिरिराजकी एक मूर्ति वहाँसे उसे ले चलनेको उनसे कह रही है । प्रातःकाल होते ही वे उस स्थानपर गये । देखा कि गाँवके लोग वहाँ कुआँ खोद रहे हैं । थोड़ी-सी खुदायी करनेपर एक सुन्दर गिरिधारीकी मूर्ति दिखायी दी । गौरांगदासजीने गड्ढेमें झाँका, तो देखा कि वह वही गिरिराजकी मूर्ति है, जो स्वप्नमें उनके साथ चलनेको अकुला रही थी । उन्होंने उसे गड्ढेसे निकालकर हृदयसे लगा लिया और अपनी कुटीपर ले गये ।

वे तन-मनसे गिरिधारीकी सेवामें लग गये । पर वैराग्यकी मूर्ति बाबा गौरांगदासजी और विलासकी मूर्ति गिरिधारीकी कितने दिन निभ सकती थी ? गौरांगदासजीने अपने लिए कभी किसीसे कोई याचना नहीं की, पर गिरिधारीके लिए नित्य करनी पड़ती । उसे कभी सुन्दर रेशमी वस्त्र

चाहिये थे, कभी चाँदीकी बाँसुरी, कभी सोनेका मुकुट, कभी कीमती-से-कीमती इत्र, फुलेल, फल-फूल और मिष्ठान्न ।

एक लँगोटीमें रहनेवाले, शरीरमें वस्त्रोंकी जगह ब्रजरज लपेटनेवाले और भिक्षामें मिला रुखा-सूखा खाकर या उपवासकर रह जाने वाले बाबा गौरांगदासका सारा समय सेवाकी सामग्री एकत्र करनेमें निकल जाता । लीला-स्मरणके लिए समय बिलकुल न रहता । इस धर्म-संकटमें वे गये वृन्दावन जगदीशदास बाबाजीके पास और गिरिधारीकी सब बातें कहनेके बाद बोले—‘अब आप ही बतायें मैं आपकी आज्ञाका पालन कर लीला-स्मरण किया करूँ या इनकी आज्ञाका पालन कर हर समय इनकी विलासिताकी सामग्री जुटानेमें लगा रहा करूँ ।’

जगदीशदास बाबाने कहा—‘श्रीमूर्तिसे अपनी मसमर्थता प्रकट कर, उनसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए गिरि गोवर्धनपर उन्हें पधरा दो और स्वयं श्रीरूप-सनातनादि द्वारा प्रदर्शित वैराग्यमय भजनके मार्गका अवलम्बन करो ।’ गौरांगदासजीने ऐसा ही किया ।

श्रीसनातन गोस्वामी अपने सेवित विग्रह श्रीमदनमोहनजीको केवल रुखी और अलोनी वाटीका भोग लगाया करते थे । उसे गलेसे उतारना उनके लिए कठिन होता था । उन्होंने एक दिन सनातन गोस्वामीसे कहा—‘केवल अँगारोपर सिका हुआ यह अलोना आटेका पिंड मुझे अच्छा नहीं लगता । इसमें कम-से-कम नमक तो डाल दिया करो ।’

सनातन गोस्वामीने उत्तर दिया—‘प्रभु, मुझे आपकी यह बात अच्छी नहीं लगी । आज आप नमककी कह रहे हैं, कल दाल और सब्जी और परसों पूरी-कचौड़ीकी कहेंगे । मैं एक मुष्टि आटेकी भिक्षापर निर्वाह करनेवाला विरक्त वाचा इन सबको जुटानेमें लग जाऊँगा, तो भजन कब करूँगा ? इसलिए आप उत्तम सेवा चाहें तो कृपाकर उसकी व्यवस्था अपने-आप कर लें ।’ मदनमोहनजीकी अपनी सेवाकी व्यवस्था आप कर लेनी पड़ी । उन्होंने रामदास कपूर नामक एक व्यापारीको प्रेरणा देकर एक भव्य मन्दिरका निर्माण कराया और अपनी उत्तम-से-उत्तम सेवाकी व्यवस्था कर ली । पर सनातन गोस्वामी उस मन्दिरमें एक दिन भी नहीं रहे । उसके बनते ही वे मदनमोहनजीकी सेवा छोड़कर चले गये और वृक्षोंके नीचे वासकर भजन करने लगे ।

पर क्या इस प्रकार प्रभुकी आज्ञाका उल्लंघन करना उनके लिए उचित था ? क्या प्रभुकी साक्षात्-सेवा ही भक्तका सर्वोच्च कर्तव्य और उसका परम अभीष्ट नहीं है ? सेवा ही परम अभीष्ट है, यह सच है । पर प्रभुकी जिस प्रकारकी सेवा मानसी भजनमें होती है, उस प्रकारकी सेवा वैधी-भक्तिके बाह्य उपकरणोंसे सम्भव नहीं है । मानसी चित्तनमें भवत स्वतन्त्र होता है दिव्य-से-दिव्य उपकरणों द्वारा प्रभुकी मनचाही सेवा करनेको । बाह्य-सेवा उतनी सुन्दर और रसमयी हो हो नहीं सकती । उसे बड़ी सेवाके लिए छोटी सेवाका त्याग करना पड़ता है । तभी न माँ यशोदा स्तनपान करते गोपालको गोदसे उतारकर उसके लिए औंटते दूधको उफनते देख भागी चली गयी थीं ।

बाबा गौरांगदासजीका बैराग्य अब इतना तीव्र हो गया कि उनका एक स्थानपर बहुत दिन रहना सम्भव न रहा । वे कन्धेपर गूदड़ी और हाथमें कुरुआ ले गोवर्धनसे चल पड़े । एक दिन एक वृक्षके नीचे रहते, दूसरे दिन दूसरे वृक्षके नीचे । सन्ध्या समय एक बार पासके गाँवमें जाकर मधुकरी माँग लाते । कभी जंगलके साग-पात खाकर ही रह जाते, कभी वह भी नहीं । कभी कई दिन लगातार निराहार बीत जाते । ब्रजवासी उन्हें एक ही अवस्थामें कई दिन तक एक पेड़के नीचे पड़ा देख मधुकरी वहीं पहुँचा देते । कई बार वह भी उनके सामने ज्यों-की-त्यों रखी रह जाती, तब ब्रजवासी अपने हाथसे उन्हें भोजन कराते । कभी उनके शरीरसे लँगोटी भी उतर जाती और उन्हें उसका पता भी न रहता । एक बार ऐसी नग्न अवस्थामें ही वे मधुकरीके लिए ग्राममें चले गये । बालक उन्हें देख धूल फेंकने और कंकड़ मारने लगे । किसीके दरवाजेपर जाकर आवाज लगायी—‘राधेश्याम !’ एक ब्रजमाईने दरवाजा खोला । पर खोलते ही बन्द कर दिया और क्रोधसे कहा—‘जानी वावरे, जा यहाँसे !’ गौरांगदास-जैसे अनन्य प्रेमी-भक्तके लिए ‘जानी-वावरे’मे बड़ी गाली और क्या हो सकती थी ? पर यह गाली सुनकर भी उन्हें तुरन्त इस बातका पता न चल पाया कि जो ब्रजमाई उन्हें प्यारमे रोटी दिया करती थी, उसके आज गाली देनेका कारण क्या था ।

दिव्योन्मादकी इस अवस्थामें बाबा अधिकतर जङ्गलोंमें ही विचरकर रहते । उनके संगी-साथी होते केवल ब्रजके कल्पतरु, जिनसे वे अत्यधिक स्नेह करते । कल्पतरु भी उनसे स्नेह करते, उनसे बातें करते और भाँति-भाँतिसे उनकी सहायता करते । एक बार शीतकालमें आकाशमें बादल छाये हुए थे । ठण्डी हवा चन रही थी । वृष्टि भी थोड़ी-थोड़ी हो रही थी । वाव

नगनावस्थामें धर-धर काँप रहे थे। वे एक बड़े वृक्षकी खोहमें जा बैठे। प्रिया-प्रियतमकी यादमें अश्रुविसर्जन करते रहे। उसी समय सामनेके एक वृक्षसे आवाज आयी—‘देखो, एक महात्मा तुम्हारी शरणमें आये हैं। उनपर नेक कृपा करो।’

उत्तरमें उस वृक्षने, जिसकी खोहमें महात्मा बैठे थे, कहा ‘नेक बाप हो कृपा करो न।’

तब सामनेवाले वृक्षसे एक मोर उतरकर आया और महात्माके सामने पंख फैलाकर खड़ा हो गया। एक और मोर उतरकर आया और पहलेवाले मोरके बगलमें पंख फैलाकर खड़ा हो गया। इसी प्रकार कई और मोर आये और महात्माके सामने गोलार्धमें पंख फैलाकर खड़े हो गये। इतनेमें महात्मा क्या देखते हैं कि एक नीलमणिकी-सी कान्तियुक्त बालक मस्तकपर मोर-पिच्छ धारण किये त्रिभंग मुद्रामें मोरोंके बीच खड़ा बाँसुरी बजा रहा है !

अक्सर बाबा निर्जनमें कल्पतरुओंको ‘राधारससुधानिधि’ और ‘वृन्दावनमहिमामृत’ आदि ग्रन्थोंका पाठ सुनाया करते। जिन दिनों वे वृन्दावनमें शाहजहाँपुरकी बगीचीमें रहा करते, वहाँके तरु-लताओंको नित्य सन्ध्या समय ‘राधारससुधानिधि’का पाठ सुनाते। एक दिन मधुकरीसे लौटनेमें देर हो गयी। वे कुटियामें जाकर लेटे रहे। किसीने दरबाजा खटखटाया। बाहर निकलकर देखा, तो कोई नहीं। उसी समय पासके एक पाकरके वृक्षसे आवाज आयी—‘गौरांगदास, आज पाठ नहीं करोगे?’

गौरांगदासने कहा—‘आज अँधेरा हो गया है। दिया-बत्ती कुछ है नहीं। पाठ कल्लें कैसे?’

‘कुटियामें जाकर देखो। आलेमें मोमबत्ती और दियासलाई रखी है। मोमबत्ती जलाकर पाठ करो न।’ वृक्षने कहा।

बाबा भीतर गये, तो देखा कि सचमुच एक बड़ी-सी मोमबत्ती और दियासलाई आलेमें रखी है। उन्होंने तुरन्त मोमबत्ती जलाकर पाठ आरम्भ कर दिया।

बाबाको अपने दुःख-दर्दकी जो भी बात कहनी होती, ब्रजके तरु-लताओं ही कहते। कभी-कभी उनसे चिपटकर रात-रात भर रोते रहते। अपनी अवस्थामें वे अपने शिष्योंसे कहा करते—‘ब्रजके तरु-लताओंको साधारण

मत जानना । यह सभी कल्पतरु हैं । इनसे चिपटकर यदि कोई अपने मनकी बात कहता है, तो सुनते हैं ।’

बाबाके मुखसे हरिकथा सुननेका लोभ ब्रजके तरुओंको ही नहीं रहता, ब्रजके ठाकुर भी उनकी कथा सुननेको लायायित रहते । सन् १६२२ के कार्तिक मासमें उन्होंने ब्रजवासियोंके आग्रहसे स्वामी ग्रामके एक मन्दिरमें २० दिन तक ‘वृन्दावनमहिमाभूत’ का पाठ किया । अन्तिम दिन पाठ शेष कर अन्यत्र जानेका निश्चय किया । उसी दिन रात्रिमें पुजारीको स्वप्न हुआ । मन्दिरके ठाकुरने उससे कहा—‘मुझे गौरांगदासका पाठ बहुत अच्छा लगा । उनसे कहो, पांच दिन और यहाँ रुककर मुझे पाठ सुनायें ।’ पुजारीने जब उनसे स्वप्नकी बात कही, तो उन्होंने सात दिन और मन्दिरमें कथा कहकर ठाकुरकी मनोवाञ्छा पूर्ण की ।

एक बार उन्होंने किसी ग्राममें पाँच दिन कथा कही । पाँचव दिन पाठ समाप्त कर अगले दिन वहाँसे चले जानेका निश्चय किया । उस दिन रात्रिमें उन्होंने स्वप्न देखा कि वे गाँवमें मधुकरीके लिए निकले हैं । जिस घर भी जाते हैं, उसके द्वारपर प्रिया-प्रियतम भिक्षा देनेके लिए खड़े मिलते हैं । भिक्षा देनेमें एक-दूसरेसे होड़ करते हुए उनकी झोलीमें हँस-हँसकर बार-बार भिक्षा डालते हैं और कहते हैं—‘ले बाबा, ले बाबा !’ दूसरे दिन उन्होंने उस गाँवसे तुरन्त चले जानेका विचार छोड़ दिया । सोचा कि जहाँ भिक्षा देनेमें प्रिया-प्रियतममें ऐसी होड़ है, वहाँ कुछ दिन और रहकर भिक्षा क्यों न करें ।

ग्रीष्मकालमें दोपहरके समय एक दिन बाबा गौरांगदासजी बरसानेके पाडरवनमें एक पेड़के नीचे लेटे लीला-स्मरणमें तन्मय थे । उन्हें बाह्यज्ञान विलकुल नहीं था । उस समय एक बड़ा सर्प उनकी छातीपर चढ़ गया । कुण्डली मारकर और फन फैलाकर वह देर तक वहाँ बैठा रहा । कुछ दूरीपर ग्वाले गइयें चरा रहे थे । उन्होंने देखा, तो लगे चीखने—‘अरे बाबा साँप बाबा उठ, खाय जायगो !’ बाबाने आँख खोली, तो देखा उस विषधर सर्पके फन निकालकर छातीपर बैठे । उन्हें प्रेरणा हुई कि अनन्त भगवान् पधारें । कृपा-आशीर्वाद करने । उन्होंने मन-ही-मन उनकी स्तुति की । फिर प्रेमके फनपर हाथ फेरा । सर्पने फन उठाकर उनकी ओर देखा और धीरे-धीरे रंगता हुआ वनमें चला गया ।

अनन्तदेवका आशीर्वाद शीघ्र फलीभूत हुआ। गौरांगदासजी कभी-कभी जगदीश बाबाके दर्शन करने वृन्दावन जाया करते। इस घटनाके तुरन्त बाद ही वे उनके दर्शन करने गये। रात्रिमें उनकी चरण-सेवा कर उनकी शय्याके समीप भूमिपर सो रहे। उस समय जगदीश बाबाका वात्सल्य उमड़ पड़ा। उन्होंने अपना चरण उनकी छातीपर रख दिया। चरण-स्पर्श होते ही उन्हें श्रीकृष्ण-लीलाके साक्षात् दर्शन होने लगे।

तभीसे श्रीगौरांगदास बाबाको निरन्तर लीलाकी स्मृति होती रहती। वे सदा एक अनिर्वचनीय रस-सागरमें डूबते-उतराते रहते। एक दिन वे गिरिराजकी परिक्रमा करते हुए राधाकुण्ड पहुँचे। उस समय सूर्यास्त हो चुका था। एक साधु विनीत भावसे प्रार्थना कर उन्हें अपनी कुटियापर ले गया। सुन्दर, स्वादिष्ट भोजनसे उनका स्वागत कर रात्रिमें वहीं विश्राम करनेका आग्रह किया। वे जब विश्राम कर रहे थे, एक स्त्री आकर उनकी चरण-सेवा करने लगी। स्त्रीका स्पर्श होते ही वे चौंक पड़े और क्रोधसे उसकी ओर देखने लगे। स्त्री भयभीत हो उठकर चली गयी।

थोड़ी देरमें वह साधु आया और खुलकर उनसे कुछ बातें की। वह वाउल सम्प्रदायका साधु था, जिसमें स्त्री-संग साधनाका मुख्य अङ्ग समझा जाता है। बाबाने उस मार्गको अत्यन्त घृणित और त्याज्य बताकर उसकी भर्त्सना की।

उसे चिन्ता ही गयी कि गौरांगदास उसके गुप्त जीवनके बारेमें जान गये हैं। यह बात ब्रजमें फैल जायगी और उसका वहाँ रहना असम्भव हो जायगा। उसने उन्हें अपमानित करना चाहा, जिससे लोग उनकी बातका विश्वास न करें। वह जगदीशदास बाबाके पास गया और बोला—‘आपको अपने गोपालपर बहुत विश्वास है। आप उसके गुप्त जीवनके बारेमें नहीं जानते। वह छिपकर स्त्री-संग करता है।’

जगदीश बाबाको विश्वास न हुआ। पर उन्हें गोपालकी ओरसे चिन्ता हो गयी; क्योंकि उन्होंने इस दुष्टका संग किया था। परिणाम यह हुआ कि श्रीगौरांगदासजीको लीला-स्मृति होना बन्द हो गया। वे आसनपर बैठकर बहुत ध्यान लगायें, पर किसी प्रकार लीलाकी स्मृति न हो। उनकी वही अवस्था हो गयी, जो कृष्ण व्यक्तिकी हो जाती है अपना सारा धन खोकर, या मछलीकी हो जाती है तालाबका सारा जल सूख जानेपर।

व्याकुल हो वे दोपहरकी कड़ी धूपमें गिरिराजकी परिक्रमाकी चल दिये। दिनभर परिक्रमा कर गिरिराजसे प्रार्थना करते रहे। सन्ध्या समय कलांत हो उद्धव-कुण्डकी सीढ़ीपर लेट गये। आँख लग गयी। यदि करवट बदलते तो सीढ़ियोंसे लुढ़कते हुए कुण्डमें जा गिरते। किसीने उन्हें गोदमें उठाकर सुरक्षित स्थानपर लिटा दिया। उसी समय उनकी निद्रा भङ्ग हो गयी। पर पता न चला कि किसने उन्हें उठाकर वहाँ लिटाया।

दूसरे दिन वे वृन्दावन गये जगदीश बाबाके पास। उन्हें देखते ही वे क्रोधसे बोले—‘मूर्खकी तरह जहाँ-तहाँ लेट जाता है। तुझे इतना भी ज्ञान नहीं कि कहाँ लेटना चाहिये, कहाँ नहीं।’ वे समझ गये कि उन्होंने ही कल उन्हें उद्धवकुण्डकी सीढ़ियोंसे उठाकर दूसरी जगह लिटाया था।

तब उन्होंने राधाकुण्डके उस साधुसे मिलनेका और अपनी लीला-विस्मृतिका सब हाल कहा और हँधे कण्ठसे कृपा-आशीर्वादकी प्रार्थना की। उन्होंने आशीर्वाद दिया, पर बिना जाने हर किसीका सङ्ग करने और हर किसीका अन्न खानेका निषेध किया। तभीसे उन्हें लीला-स्मृति फिर होने लगी।

सन् १६२४ की बाढ़के पश्चात् पण्डित रामकृष्णदास बाबा वृन्दावनमें दाऊजीकी बगीचीमें रहने लगे। गौरांगदासजी भी वृन्दावन जाकर दाऊजीकी बगीचीके निकट शाहजहाँपुरके बगीचेमें रहने लगे। पण्डित बाबाके आदेशसे उन्होंने दाऊजीकी बगीचीमें श्रीवृन्दावन-महिमासूक्तकी कथा आरम्भ की। कथा सुनने बाबा हंसदासजी, बाबा माधवदासजी, बाबा राधिकादासजी, बाबा वैष्णवदासजी और श्रीअमोलकराम शास्त्री आदि वृन्दावनके सभी प्रसिद्ध महात्मा और भक्तगण आया करते। मथुरासे भी अनेक भक्त नित्य आते। कथाके समय अष्ट-सात्विक भाव सदा उनकी सेवामें उपस्थित रहकर अलौकिक प्रभावमें वृद्धि करते। नेत्रोंसे अश्रुधार निरन्तर बहती रहती, जो श्रोताओंके हृदयको सींचकर कथाके अनुकूल क्षेत्र तैयार करनेमें सहायक होती। जब बाबा श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादके मूल श्लोकोंकी व्याख्याके साथ विभिन्न वाणी-ग्रन्थोंसे प्रसंगानुकूल वाणियोंकी अपने मधुर कण्ठसे आवृत्ति करते, तो ऐसा प्रतीत होता कि जैसे रसिकाचार्यगण स्वयं उनकी जिह्वापर आरूढ़ हो अपनी-अपनी वाणियोंका गान कर रहे हों। बीच-बीचमें जिस लीलाकी कथा वे कहते होते, उसका विषय साक्षात् उनके दिव्य

चक्षुओंके सामने आ जाता और वे उसके रसास्वादनमें तल्लीन हो मूर्तिके समान आसनपर बैठे रह जाते । श्रोतागण बैठे रहते इस प्रतीक्षामें कि कब उनकी भाव-समाधि भङ्ग हो और कथाका निर्झर फिर बहने लगे ।

दाऊजीकी बगीचीकी इस कथाकी अलौकिकता उस समयकी कुछ अलौकिक घटनाओंसे प्रतीत होती है, जिनका आज भी उस समयके कुछ श्रोता वर्णन करते हैं । नित्य कथाके समय एक अजगर न जाने कहाँसे आकर बगीचीकी मेंदपर स्थिर पड़ा रहता और कथा समाप्त होते ही चला जाता । पण्डित बाबा कहा करते कि कोई महापुरुष उस रूपमें नित्य कथा सुनने आते हैं ।

जिस स्थानपर कथा होती थी, वहाँ एक नीमके पेड़की डाल कथा-वाचकके सिरपर इस तरह झुकी रहती कि संध्यासे कुछ पहले ही अन्धेरा होना शुरू हो जाता और कथा कुछ पहले ही समाप्त कर देनी पड़ती । श्रोतागण मन-ही-मन दुःख पाते । एक दिन उस समय जब कथा नहीं हो रही थी, वह डाल अपने-आप टूटकर गिर पड़ी ।

एक दिन कथाके समय लोग यह देखकर चकित रह गये कि आकाशसे बड़े-बड़े पुष्प, जो रुईके गालेकी तरह सफेद और देखनेमें बड़े आकर्षक हैं, कथाके स्थानपर गिर रहे हैं ! लोग एक बार पुष्पोंकी तरफ देखते और एक बार पण्डित बाबाकी तरफ । पण्डित बावाने कहा—‘देखते क्या हो ? गौरांगदासकी कथामें देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं ।’

बाबा गौरांगदासजी एक बार गुरुदेवके दर्शन करने कलकत्ते गये । उनके आदेशसे उन्हें वहाँकी एक हरि-सभामें हरिनामकी महिमापर प्रवचन करने जाना पड़ा । हरिनामकी महिमा कहते-कहते वे आवेशमें बड़े प्रभावशाली ढङ्गसे कहने लगे कि नाममें नामीसे भी अधिक शक्ति है । ऐसा कोई भी कार्य नहीं, जो नामकी शक्तिसे न हो सके । मरा हुआ व्यक्ति भी नामकी शक्तिसे जीवित हो सकता है । जहाँ नाम या उसकी महिमाका गान होता है, वहाँ काल भी जाते भय खाता है । ठीक उसी समय पासके वृक्षसे एक पक्षीका मृतदेह उनके सामने आ कर गिरा । सभीको लगा कि जैसे कालने हरिनामको चुनौती दी है ।

उस समय उनके हृदयमें एक अपूर्व भावका संचार हुआ, जिसका उन्होंने किसी अवसरपर अपने अन्तरङ्ग भक्तोंसे इस प्रकार वर्णन किया

था— 'यूँ तो जब मैं किसीके दुःखको देखकर व्याकुल होता, तो भगवान् से प्रार्थना करता । पर उस बार भगवन्नामकी कलङ्कू लगते देख मुझसे न रहा गया । मैंने सङ्कल्प किया—ऐसा कदापि नहीं हो सकता ! मैं एकटक पक्षीके मृतदेहकी ओर देखता रहा । बस मुझे लगा कि मेरे सीनेसे उस पक्षीके देहमें इंजेक्शन लग रहा है ! कुछ ही क्षणमें उसके देहमें स्पन्दन हुआ और वह पर फड़फड़ाता हुआ वृक्षकी डालपर जा बैठा ।'

लगभग पैंतीस वर्ष गौरांगदास बाबाकी प्रेम्होन्मादकी अवस्थामें विचरण करते बीते । शेष अवस्थामें वे वृन्दावनमें रमणरेती-स्थित अपने काका गुरुके उस आश्रममें रहने लगे, जिसमें अब उनकी समाधि है । आश्रमके नीमके वृक्षोंकी शोभा निराली है । इनसे बाबाका चिर-सौहार्द हो जाना स्वाभाविक था । इनके नीचे बैठकर उन्होंने कई बार व्रजकी लीला-कथा कहते-कहते व्रज-रजके माहात्म्यका वर्णन किया था । कहते हैं, तभीसे इनकी प्रकृति बदल गयी और इनकी डालियाँ झुकी रहकर व्रज-रजकी चूमती दीखने लगीं ।

इन नीमोंके प्रकृत स्वरूपके बाबाकी दर्शन होते । इनसे वे बातें करते । वे कहीं भी जाते तो उन्हें इनकी याद आती और वे अधिक दिन वहाँ न रह सकते । लौटकर आश्रम आते, ती ये प्रसन्न होते और उनके कुशल-मंगलके बारेमें पूछते ।

एक बार जब बाबा आश्रममें टहल रहे थे, एक नीमके पेड़की डालकी बार-बार उठाकर उसके नीचेसे निकलना पड़ता । बाबाने अपने शिष्य मनोहर बाबासे कहा उस डालकी ऊपरकी डालसे बाँध देनेवो । मनोहर बाबाने उसे बाँध दिया । बाबा उस समय अपनी कुटियाके भीतर बैठे थे । डाल जैसे ही बाँधी गयी, उनकी छातीमें असह्य वेदना होने लगी । उन्होंने आवाज दी—'मनोहर ! मनोहर !

मनोहर बाबा भागते हुए आये और बोले—'बया है बाबा ?'

'तूने डालकी बाँध दिया क्या ?'

'हाँ, बाबा ।'

'खोल जाके ।'

डालके खोलते ही बाबाकी वेदना शान्त हो गयी । दूसरे दिन जब वे

आश्रममें टहल रहे थे, उन्होंने देखा कि उसी पेड़के नीचे एक सुन्दर, सुकोमल, नीलवर्णका बालक खड़ा है ! उसके नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु ढलक रहे हैं और वह उनकी ओर देखते हुए कह रहा है—‘तुम भी मुझे बाँधोगे ?’

बाबा कुछ दिनोंसे गुरुदेवकी आज्ञासे दीक्षा देने लगे थे । उनके अनेकों शिष्य हो गये । अकसर उन्हें विपत्तिमें देख उनका वात्सल्य उमड़ पड़ता था । उनका दुःख दूर करनेके लिये उन्हें बाध्य होना पड़ता था । कभी-कभी उन्हें कालके मुखसे निकालकर नया जीवन भी देना पड़ता था ।

उनके कृपापात्र यथुराके डॉ० रामचरनको हैजा हो गया । अस्पतालमें डॉक्टरोंने जवाब दे दिया । बाबाकी सूचना मिलते ही वे यथुरा चले गये । पर सीधे अस्पताल न जाकर गये अपने शिष्य लाला प्रभुदयालके घर । वहाँ एक कमरेमें अपनेकी बन्द कर लिया । एक घण्टे बाद उन्मत्त अवस्थामें न जाने क्या कहते हुए निकले और तेजीसे अस्पतालकी ओर जाने लगे । अस्पताल पहुँचे, तब डॉ० रामचरनका शरीर नीला पड़ चुका था, आँखें चढ़ गयी थीं । नब्जका आसानीसे पता नहीं लग रहा था । बाबाने उनकी छातीपर हाथ रखकर तीन बार पुकारा । तीसरी बार उनके मुखसे कुछ शब्द निकलता जान पड़ा । बाबाने कहा—‘रामचरन ! मुझे छोड़कर चला जायगा ? सावधान ! तुझे कुछ नहीं होगा ।’ तभी डॉ० रामचरनको बाबाके हाथमेंसे सीनेमें करेंट पास होता लगा । एक नयी शक्तिका उनमें संचार हुआ । कुछ ही घण्टाओंमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गये ।

गुड़गाँवके श्रीअमरनाथ शर्मा एडवोकेटकी पत्नीसे किसी ज्योतिषीने कहा था—‘तुम्हारे पुत्रकी सात वर्षकी अवस्थासे मृत्यु हो जायगी । उसके एक महीने बाद तुम्हें वैधव्य भोगना होगा । ठीक सात वर्षकी अवस्थामें पुत्रका देहान्त हो गया । तब उन्हें शर्माजीकी तरफसे विशेष चिन्ता हुई । वृन्दावन जाकर बाबासे अपना दुःख निवेदन किया । उनकी आँखोंसे अश्रुपात होते देख बाबाने कहा—‘बेटी चिन्ता न कर । अंगन मय प्रभु मंगल करेगे ।’

एक मास बाद शर्माजी किसीके साथ रिक्शापर जा रहे थे । रास्तेमें आकस्मिक दुर्घटनासे उनके साथीका प्राणान्त हो गया । वे बाल-बाल बच गये ।

जयपुरके एस० पी० श्रीकाशीप्रसाद श्रीवास्तवकी पत्नी पेटमें बच्चा भर जानेके कारण अस्पतालमें मरणासन्न पड़ी थीं । लेडीडॉक्टर उनके

कमरेमें निकली और बड़ी उदासीसे काशीप्रसादसे कहते चली गयी—‘देख लें जाकर।’ काशीप्रसादका हृदय रो उठा। कुछ ही दिन पूर्व ज्योतिपीने उनका दूसरा विवाह होनेकी बात कही थी। उन्होंने बाबाकी याद करते हुए मन-ही-मन कहा—‘गुरुदेव ! आपकी ही आज्ञासे मैंने अविवाहित रहकर प्रभुकी सेवामें जीवनयापन करनेका अपना सङ्कल्प तोड़ा था। क्या अभी दूसरा विवाह करवानेकी अभिलाषा शेष है ? क्या इस सङ्कटसे उबारनेके लिए मुझे आपसे प्रार्थना करनी पड़ेगी ?’ उसी समय उनकी पत्नीका साँस चल पड़ा, धीरे-धीरे वे स्वस्थ होने लगीं। कुछ दिन बाद उन्होंने स्वप्न देखा कि गुरुदेव उनसे कह रहे हैं—‘लाली, अभी नी नाव और खुलेंगी। नवीमें बैठ जाना। पार हो जाओगी।’ पार हो जानेका अर्थ मर जाना नहीं था, संसार सागर पारकर राधा-कृष्णकी दिव्य लीलामें प्रवेश कर जाना था। नी वर्ष बाद उनका शरीर छूट गया। काशीप्रसादजीने स्वप्न देखा कि वे यमुनाके तीरपर श्रीजीकी सेवाकी थाली हाथमें लिये निकुञ्जमें प्रवेश कर रही हैं।

कभी-कभी बाबाकी प्रत्यक्ष रूपसे दूसरोंका रोग स्वयं लेकर भी उन्हें रोगसे मुक्त करना पड़ता। लेखककी पुत्री सरोजको लँगड़ाते देख उन्होंने पूछा—‘लाली, तुझे क्या हो गया है ?’

वह बोली—‘कुछ भी नहीं बाबा।’

‘नहीं, तू छिपा रही है’ उन्होंने कहा। उसी समय उसकी टाँगका दर्द ठीक हो गया। बाबाकी अपनी टाँगमें होने लगा।

एक बार लाला प्रभुदयालजी बहुत बीमार पड़े। डाक्टरोंने जवाब दे दिया। अंतर्दामी बाबा जान गये कि वे अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं। उन्होंने अपने शिष्य ज्योतिरामजीसे कहा—‘चलो प्रभुदयालको देख आयें।’ जब वे पहुँचे तो उनकी अवस्था ऐसी थी कि हाथ-पैर हिलाना तो दूर, वे पलक भी नहीं उठा सकते थे। बाबाके कई बार स्नेहसे पुकारनेपर उन्होंने दो-तीन बार पलक उठाकर उनके दर्शन किये और उनके नेत्रोंसे आँसू निकल पड़े। बाबा ने उनके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—‘चिन्ता न करो। कालका वाप भी आ जाय तो तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। जबतक स्वयं राधारानी तुम्हें अपनी गोदमें नहीं लेंगी, ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो तुम्हें ले जा सके।’ फिर उनकी छातीपर हाथ रख कुछ क्षण चुप बैठे रहे। एकदम

उनके हाथमें बिजलीका-सा झटका लगा। उसी समयसे प्रभुदयालजीकी हालत सुधरने लगी और वे ठीक हो गये।

इस घटनाके तुरन्त बाद बाबाकी छातीके नीचे बायीं ओरकी पसलीमें दर्द होने लगा। ज्योतिरामजीने पूछा—‘बाबा, दर्द कैसे हो गया?’

बाबाने उत्तर दिया—‘यह वही है जो प्रभुदयालके पास आया था काल रूपमें। चिन्ता न करो, चला जायगा।’

स्वयं राधारानीके गोदमें लेनेकी बात बाबा आपने आश्रित जनोंके सम्बन्धमें अकसर कहा करते। उनके शिष्य आगराके प्रसिद्ध डॉ० श्रीगोकुल नारायण व्यासके सम्बन्धमें यह बात प्रत्यक्ष रूपसे सिद्ध हुई। शरीर छोड़नेके कुछ ही क्षण पहले उन्होंने अपने लड़कोंसे कहा—‘देखो, राधारानी पधारीं, आसन दो न।’

दीक्षा देते समय बाबा शिष्यके दोनों हाथ अपने दोनों हाथोंमें लेकर उन्हें राधारानीकी ओर बढ़ाते हुए नेत्रोंसे अभ्युदिसर्जन करते और कहते—‘राधे ! करुणामयी ! इसे अङ्गीकार करो।’ शिष्यको इस बातका बोध होता या न होता, पर उनकी भाव-मुद्रासे यह स्पष्ट जान पड़ता कि उस समय राधारानी उनके सामने होतीं और शिष्यका हाथ उनके हाथमें हीता। जिसे एक बार राधारानी स्वीकार करलें, उसे उन्हें छोड़ और किसकी सामर्थ्य जो ले जाय ?

कदाचित् आश्रित जनोंके पाप-ताप स्वयं ले लेनेके कारण ही बाबाका अपना शरीर उनकी शेष अवस्थामें रुग्ण रहने लगा। उन्हें डाइबिटीज और ब्लडप्रेसर रहने लगा। पर इसका उनकी आन्तरिक स्थितिसे कोई सम्बन्ध न था। एक बार लेखक उनके निकट बैठा चिन्ता कर रहा था—‘बाबा जैसे निष्पाप, नामपरायण, सिद्ध महापुरुषको रोग-धोग क्यों ? कहते हैं कि एक हरिनाम जितने पापोंको ध्वंस करनेको शक्ति रखता है, उतने जीवकी सामर्थ्य ही नहीं, जो कर सके, फिर बाबाका तो जीवन ही नाममय है।’ अन्तर्यामी बाबाने लेखकके मनकी बात जान ली। वे बोले—‘कपूर, रवि ठाकुरका एक गान है। कवि कहते हैं कि पथिक निर्जन मरुभूमिमें अकेला चला जा रहा है। तूफान आता है, आकाशमें काले बादल मँडराने लगते हैं। बिजलीकी तड़प और बादलोंकी गड़गड़ाहटसे वह भयभीत होता है। काश वह जानता कि काले बादलोंके पीछे सुन्दर रासनृत्य ही रहा है और

कोई बीचमें खड़ा मन्द-मन्द मुसकाता मुरलीके मधुर स्वरोसे आनन्द बिखेर रहा है !'

बाबाकी यही सहज स्थिति थी। कठिन-से-कठिन व्याधिमें भी उनके मन-प्राण श्रीकृष्णकी दिव्य लीलामें डूबे रहते और उनका हृदय आनन्दसे परिपूर्ण रहता। एक बार उनकी पीठमें विषैला फोड़ा हो गया। आपरेशनके लिए मथुराके अस्पतालमें भरती किया गया। डॉक्टरने क्लोरोफार्म देनेका उपक्रम किया। बाबाने आग्रहकर किसी प्रकार डॉक्टरको बिना क्लोरोफार्मके आपरेशन करनेको तैयार किया। उसने डरते-डरते आपरेशन किया। पर बाबाने उफ् भी नहीं की। आपरेशनके बाद डॉक्टरने पूछा—'बाबा ! इतना बड़ा आपरेशन और आपको जरा भी कष्ट नहीं ?'

बाबाने उत्तर दिया—'कष्ट शरीरको हुआ होगा। मन दूसरी ओर लगा था।'

डाइबिटीज और ब्लड-प्रेसरके कारण बाबाको कभी-कभी मूर्च्छा आ जाती। मथुराके किशोरीरमण कालेजके एक अध्यापकने उनसे पूछा—'बाबा, आपको जब मूर्च्छा आती है, तब कुछ भी सुध नहीं रहती ?'

उन्होंने उत्तर दिया—'नहीं, कुछ भी सुध नहीं रहती। पर राधा-नाम नहीं भूलता।'

इससे पता चलता है कि कैंसा भी कष्ट हो, उनकी सहज स्थितिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता था। भगवन्नाम, गुण और लीला भगवानसे अभिन्न है। यदि भगवन्नामकी विस्मृति न हो, तो लीलाकी विस्मृति भी कैसे हो सकती है ?

पर उनका कष्ट देखकर लोगोंको चिन्ता होना स्वाभाविक था। एक बार एक वैष्णवने उनसे पूछा—'आपकी प्रार्थनापर प्रभुने न जाने कितने लोगोंको रोग-मुक्तकर जीवनदान किया है। पर आप स्वयं औषधियोंपर निर्भर करते हैं। ऐसा क्यों ?'

बाबाने कहा—'हमारा रागानुगा-भजन तत्सुखी भजन है। कृष्ण-सुख ही हमारे भजनका एकमात्र उद्देश्य है। अपने सुखके लिए अपने शरीरका भार हम उनपर कैसे डाल सकते हैं ? रोगसे मुक्ति पानेके लिए उनसे प्रार्थना न कर औषधियोंका सेवन करना ही ठीक है। यह भी तो उन्हींका विधान है।'

फिर भी गौरांगदास बाबाजीपर जब कोई बड़ा संकट आ जाता, तो उनके गुरुदेव उनकी वैसे ही रक्षा करते, जैसे वे अपने आश्रितोंकी करते। एक बार दाँत उखड़वानेके पश्चात् उनके गलेमें सेपटिक ही गया। थोड़े ही समयमें उसने भयंकर रूप धारण कर लिया। लार तक निगलना असम्भव हो गया। गुरुदेवने उन्हें कलकत्ते बुलवाकर अच्छे-अच्छे डॉक्टरोंको दिखाया। सबने कहा, रोग इतना बढ़ चुका है कि आपरेशन सम्भव नहीं है। तब वे उन्हें नवद्वीप ले गये। अपने गुरुदेव श्रीराधारमण चरणदासदेवकी श्रीमूर्तिके सामने उन्हें लिटा दिया और उनकी ओर देखते हुए बोले—‘यह लो अपनी वस्तु। जी चाहे सो करो।’ कुछ देर रुककर फिर बोले—‘क्या तुम्हारे मुद्दोंको जिलाने और पेड़को नचानेकी बातें अब लोग पुस्तकोंमें ही पढ़ा करेंगे?’ ललितादासी, जो वहाँ उपस्थित थी, गुरुदेवकी प्रसन्न मूर्तिको लक्ष्यकर बोली—‘जिस स्थानपर ऐसी प्रसन्नताकी मूर्ति विद्यमान है, वहाँ क्या कोई अमंगल हो सकता है?’ उसी समय श्रीगौरांगदास बाबाने देखा कि श्रीराधारमण चरणदासदेव उनके निकट खड़े पृष्ठ रहे हैं—‘गौर, तुझे क्या हुआ है?’ उन्होंने झुंझलाकर कहा—‘देख नहीं रहे हो, क्या हुआ है?’ परम दयालु श्रीराधारमण चरणदासजीने तब उनके गालपर हाथ फेरा। हाथ फेरते ही गलेकी सूजन फट गयी। मवादकी नदी बहने लगी। कुछ ही दिनोंमें पूर्ण स्वस्थ हो वे वृन्दावन लौट आये।

इस बीच ललितादासीका गोलोक-गमन हुआ। बाबा गौरांगदाससे उनका विछोह सहन न हुआ। उन्होंने परम गुरुदेव श्रीराधारमण चरणदासको याद किया। उनके सम्मुख होते ही उन्होंने प्रणय-रोषमें भर अभियोग किया—‘आपने दीदीको क्यों ले लिया?’ वे बोले—‘वह आना चाहती थी, तो मैं क्या करता?’ कौन जाने गौरांगदासजीको भी इच्छा हो आयी हो दीदीसे जा मिलनेकी। कुछ दिन बाद वे फिर बीमार पड़े। हालत कुछ अधिक खराब होती दीखने लगी, तो डॉक्टर गोकुलनारायण व्यास उन्हें अपने घर आगरे ले गये। वहाँ भी चिकित्सासे कोई लाभ न हुआ। पन्द्रह दिन बाद जब यह भय होने लगा कि कहीं उनका शरीर आगरेमें न छूट जाय, तो वे उन्हें अपनी गाड़ीसे वृन्दावन पहुँचा आये। जिस समय वे गाड़ीमें वृन्दावन जा रहे थे, उनके शरीरमें चेतनाके कोई बाह्य लक्षण नहीं थे। उसी समय कलकत्तेमें श्रीरामदास बाबाजी महाराज सेवा-पूजाके अपने नित्य-कृत्यमें एक-एक कर बहुत-सो प्रसादी वस्तुओंका सेवन कर रहे थे। भावाविष्ट हो

एक ही वस्तुका बार-बार मेहन-कर बीच-बीचमें चौकने लगे । पासमें बैठा सेवक, जो उन्हें प्रसादी वस्तुएँ देता जा रहा था, बोला—‘यह तो आप सेवन कर चुके।’

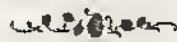
तब उन्होंने आवेशमें कहा—‘अरे ! गौरांगदास जा रहा है । देखूँ कैसे चला जायगा मुझसे पहले ।’ इधर गौरांगदासजीकी चेतना हो आयी और स्वास्थ्य बिना किसी उपचारके अपने-आप ठीक हो गया ।

लगभग एक वर्ष बीत गया । एक दिन गौरांगदासजी आश्रमकी सुली हवामें एक नीमके नीचे बैठे महाप्रभुके कुछ पद गा रहे थे । गाते-गाते वे भाव-समाधिमें डूब गये । मेवकोने देखा कि उनका मुखारविन्द किसी दिव्य अनुभवके प्रकाशसे आलोकित हो रहा है । उस समय वे श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुके साक्षात् दर्शन कर रहे थे । श्रीमन्महाप्रभुने अपने कर-कमलोंसे उनका हाथ पकड़कर उन्हें श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर दिया था ।

कुछ ही दिन बाद, सन् १६५३ के अगहन मासकी कृष्णा चतुर्दशीको श्रीरामदास बाबाजी महाराज कलकत्तेमें अपने आश्रममें पूर्ण स्वस्थावस्थामें रात्रि २ बजे शय्यामें उठे । हाथ-मुँह धोकर पूजाके आसनपर बैठे । सब आश्रमवासियोंको बुलाकर कहा—‘मुझे ललितादीदी बुला रही हैं । मैं जाऊँगा । तुम सब कीर्तन करो ।’ साथ ही उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया—‘भज नितार्ई-गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम ।’ कीर्तन-ध्वनि नीग्रह रात्रिके शान्त वातावरणमें गूँज उठी । कुछ ही देरमें उन्होंने हुंकार भरी—‘महावीर राधारमण ! महावीर राधारमण !’ और वे अपने दिव्य देहसे गोलोकमें गुरुदेव श्रीराधारमण चरणदासदेव और अपनी गुरु-बहिन श्रीललितादासीसे जा मिले ।

उसी दिन श्रीगौरांगदास बाबाके शिष्योंने सुना उन्हें यह कहते—‘सब गया, सब गया । मेरा बल, विद्या, बुद्धि सब गया !’ उसी समयसे उनका अन्न-जल छूट गया । वे अर्धचेतनावस्थामें गम्भीर मुद्रामें रहने लगे । धीरे-धीरे चेतना त्रिलकुल लोप होने लगी । ऐसी स्थितिमें उनके प्राण-पखेरू किसी भी समय श्रीगुरुदेवका अनुगमन कर सकते थे । पर यह कार्य नो स्वयं महाप्रभुने पहलेसे अपने ऊपर ले रखा था । वे किसी शुभ मूहतेक प्रतीक्षामें थे ।

अगहन मास सन् १८५३ की शुक्ला एकादशी थी। उस दिन भी शरद-
हालीन सूर्यकी किरणें आश्रमके कोने-कोनेमें व्याप्त थीं। पर वह आश्रममें
दूर-दूरसे आये भक्तोंके हृदयमें छाये अंधियारेको स्पर्श नहीं कर पा रही थीं।
नीमके वृक्षोंकी शोभा उस दिन भी पहले जैसी थी। पर वह लग रही थी
उस सुन्दरीके भृंगारकी-सी, जिसके माथेकी बिन्दी मिट चुकी हो, जिसे
दुलारने-सम्हारनेवाला उसे सदाके लिए छोड़कर चला गया हो! वह कुसुम,
जिसके अप्राकृत सारभसे यह स्थली महका करती थी, अब वहाँ कहाँ था?
उसे महाप्रभुने स्वयं अपने कर-कमलोंसे समर्पित कर दिया था नित्यानन्द-
स्वरूप गुरुदेवके चरणोंमें!



श्रीकृष्णप्रेम [रोनाल्ड निक्सन] और माँ यशोदा

रोनाल्ड निक्सनका जन्म १० मई सन् १८८८ को इंग्लैंडके एक
धर्मपरायण परिवारमें हुआ। क्रैम्विज विश्वविद्यालयसे उन्होंने अँग्रेजी
साहित्यमें स्नातक परीक्षा उच्चतर सम्मान (Honours) के साथ पास
की। विद्यार्थी-जीवनमें ही उनके आत्मिक संस्कार धीरे-धीरे प्रकट होने लगे।
स्नातक-परीक्षा पास कर लेनेके पश्चात् उन्होंने ईसाई-धर्म, बौद्ध-धर्म और
यियोसाफीके कुछ ग्रन्थोंका गहराईसे अध्ययन किया।

उसी समय बज उठी प्रथम विश्व-युद्धकी भीषण भेरी। उन्होंने निश्चय
किया देशकी सुरक्षा सेनामें योग देनेका। रॉयल एयरफोर्समें भरती हो
सम्हाला बमवर्षक विमानके चालकका गुरुतर दायित्व।

हठात् वायुसेनाकी आदेश मिला जर्मन-अधिकृत बेलजियममें नये
आक्रमणके लिए जमा हो रही सेनाको बम्बाई करनेका। निक्सन सहित अन्य
बालक अपने-अपने जहाजोंमें बिध्वंसक बमोंका भार लेकर क्षिप्र गतिमें उड़
बले दुश्मनके उम ठिकानेकी ओर। पर दुश्मन सन्नैक था। बेलजियमको
जमा तक पहुँचनेके पूर्व ही उसके लड़ाकू विमान उस पूरी टुकड़ीको टेरकर
उसका सफाया करनेमें जुट गये। निक्सनके सभी साथी काम आयें। निक्सनके
राग्यका भी इसी प्रकार अन्त होना था। उसी समय उन्होंने देखा एक दिव्य
दृश्य। दूर, अति दूर आकाशमें एक पहाड़के उत्तुंग शिखरकी गुफामें निकला
एक उज्ज्वल प्रकाश, जो तीव्र गतिमें उनमें प्रवेश कर गया। अर्धबाल्य-

अवस्थामें उन्होंने अनुभव किया कि एक अज्ञात शक्तिने उनके मन और देहपर पूरा अधिकार कर लिया है और उनके भीतर बैठा एक दूसरा चालक हवाई-जहाजको तेजीसे ऊपर—बहुत ऊपर उड़ाये ले जा रहा है । ऊपर ले जाकर उसने जैसे ही जहाजको विपरीत दिशामें मोड़ा, उनकी चेतना लुप्त हो गयी ।

होश आनेपर उन्होंने देखा कि वे विमानके कांकपिटमें नहीं हैं । हैं लन्दनके निकट एक सामरिक अस्पतालमें । लन्दनके हवाई अड्डेपर जब उनका विमान उतरा, वे कांकपिटमें बेहोश पड़े थे । उन्हें उम्मी अवस्थामें वहाँसे अस्पताल ले जाया गया था ।

अस्पतालमें जब उनकी चिकित्सा चल रही थी, उन्हें कई बार उसी प्रकारका भावावेश हुआ, जैसा विमानमें उस दिव्य प्रकाशके उनके भीतर प्रवेश करते समय हुआ था । उन्हें लगा कि कोई उनसे कह रहा है—‘तुम्हारे जीवनकी रक्षा की है एक अलौकिक शक्तिने । उसका सन्धान तुम कर सकते हो भारत जाकर ।’

उस अलौकिक शक्तिने केवल उनके जीवनकी रक्षा ही नहीं की, उसमें एक नयी चेतना भी जाग्रत की । उन्होंने भारत जाकर आध्यात्मिक शक्तियोंके अनुसन्धान करनेका संकल्प किया ।

अस्पतालसे निकलते ही उन्होंने रॉयल एयरफोर्ससे इस्तीफा दे दिया । कुछ दिन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें विभिन्न धर्म-ग्रन्थोंके अध्ययनमें व्यतीत किये । इसी बीच उनकी भेंट हुई लखनऊ विश्वविद्यालयके वाइसचांसलर डॉक्टर ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्तीसे । वे उस समय लन्दनमें लखनऊ विश्वविद्यालयके अंग्रेजी विभागके लिए किसी योग्य अध्यापककी खोजमें थे । उन्होंने देखा कि निक्सन अंग्रेजी साहित्यमें व्युत्पन्न तो हैं ही, भारतके धर्म और संस्कृतिके श्रद्धावान भी हैं । उन्होंने उसी समय उनकी उस पदपर नियुक्ति कर दी ।

लखनऊ पहुँचकर निक्सन चक्रवर्ती महाशयके घर रहकर ही विश्वविद्यालयमें अध्यापन कार्य करने लगे । चक्रवर्ती महाशयकी पत्नी श्रीमती मणिकादेवी एक सुशिक्षिता महिला थीं । वे बड़े उदार और स्नेही स्वभाव की थीं । उनका वात्सल्य निक्सनपर सहज ही बिखर पड़ा । निक्सनने भी सहज भावसे उनके प्रति आत्म-समर्पण किया । वे निक्सनके ‘गोपाल’ कहकर पुकारतीं, निक्सन उन्हें ‘माँ’ कहते ।



श्रीकृष्णप्रेमजी



श्रीयशोदा माँ (श्रीकृष्णप्रेमजीकी गुरु माता)
अलमोड़ा

अध्यापन कार्यके साथ-साथ रोनाल्ड निक्सनने आध्यात्मिक क्षेत्रमें अपनी खोज-बीन जारी रखी । बौद्ध धर्मके प्रति उनका प्रारम्भसे ही बड़ा आकर्षण था । इसलिए बड़े परिश्रमसे उन्होंने पाली भाषा सीखी और बौद्धधर्मके मूल ग्रन्थोंका अध्ययन किया । उनके अनुसार ध्यान-धारणादिका अभ्यास भी किया । पर इससे उनकी तृप्ति न हुई ।

तब उनकी रुचि वेद-उपनिषदादिके अध्ययनमें हुई । संस्कृत भाषामें ध्युत्पन्नता हासिल कर वे वेद, उपनिषद् और गीता आदिके तत्त्वान्वेषणमें लग गये ।

विश्वविद्यालयके छात्र-छात्राएँ तो प्रोफेसर निक्सनके व्यक्तित्व और पाण्डित्यसे प्रभावित थे ही, लखनऊके गणमान्य व्यक्तियोंके सामाजिक जीवनके भी वे आकर्षणका केन्द्र बन गये । अपने गौरकान्तियुक्त दीर्घ, सुडौल देह, हास्य बदन, विलक्षण बुद्धिकी आभासे जगमगाते नीले नेत्र और वाक्पटुताके कारण वे सहज ही लोगोंके मन-प्राण हर लेते ।

वाइसचांसलर ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती और उनकी पत्नी मणिकादेवी भी थे लखनऊके सभ्य, सुशिक्षित समाजके मुकुटमणि । मणिकादेवी स्वामीके साथ यूरोप और अमेरिका आदि विश्वके बहुत-से स्थानोंकी यात्रा कर चुकी थीं । वे भारतीय शिष्टाचार और पाश्चात्य एटिकेटसे भली-भाँति परिचित थीं । वेप-भूषासे अल्ट्रामॉडर्न लगती थीं । पार्टियोंमें उन्हें लिपस्टिक और पाउडर लगाये, सिगरेटका धुँआँ मुँहसे निकालते, एक मेजसे दूसरीपर जाते और हँसी-मजाकके साथ ठहाका मारते देख किसीको भ्रम हो सकता था उनके एक विदेशी महिला होनेका ।

पर निक्सनकी तीक्ष्ण दृष्टिसे बहुत दिनों तक न छिप सका इस हर्षोल्लास और बाहरी टीम-टाममें छिपा हुआ उनका आत्मिक-चेतनासे भरपूर उज्ज्वल, रसमय और रहस्यमय आन्तरिक जीवन । चक्रवर्तीके घर पार्टियों और उत्सवोंका ताँता लगा रहता । उन्होंने देखा कि कभी-कभी ऐसे अवसरोंपर उनके मुखका भाव एकदम बदल जाता और वे झट पार्टीको छोड़ अपने कमरेमें जा बैठतीं । निक्सनने जानना चाहा उनके इस आकस्मिक अन्तर्धानका रहस्य ।

एक दिन चक्रवर्ती साहबके घर एक बड़ी मजलिस लगी हुई थी । आमोद-प्रमोद, गाने-बजाने और हँसी-ठिठोलीका सुवत वातावरण था । हठात्

मणिकादेवी हॉलमें-से खिसक गयीं और अपने कमरेमें जा उन्होंने अपने-आपको अपने भीतर समेट लिया ।

निक्सन भी उसी समय वहाँसे खिसक लिये । सीधे जाकर झाँका माँके कमरेमें । देखा कि बे एक कोनेमें ध्यानस्थ बैठी हैं, नेत्र बन्द हैं, शरीर निस्पन्द और चेतनाहीन है ।

थोड़ी देर बाद, बाह्यज्ञान होनेपर वे उठीं धीरे-धीरे फर्शपर हाथ टेकते हुए । उनके शरीरमें थी एक अतीन्द्रिय आनन्दकी सिहरन और नेत्रोंसे वह रही थी आँसुओंकी स्रोतस्विनी । ट्रेसिंग टेबलके सासने जाकर उन्होंने मुँह पोंछकर फिरसे मेकप किया । तब निकलीं कमरेके बाहर ।

निक्सन उस समय भी वहाँ खड़े थे । गद्गद स्वरसे अपराधी व्यक्तिकी तरह हाथ जोड़ते हुए बोले—‘माँ, तुम्हारी चोरीसे आज तुम्हारे गोपालने तुम्हारी स्वर्गीय सम्पत्ति देख ली । पर माँकी सम्पत्तिपर बेटेका अधिकार नहीं है क्या ? तुमने अब तक उससे छिपाकर क्यों रखी माँ ?’

स्नेहसे निक्सनकी ठोड़ीपर हाथ रख माँने कहा—‘अच्छा, तुमने देख ही लिया है, तो तुमसे खोलकर सब कहूँगी । पर अभी नहीं ।’

पाटीके बीच जाकर फिर बैठ गयीं मणिकादेवी और हास्य-विनोदके साथ अभ्यागतोंका मनोरंजन करने लगीं ।

दूसरे दिन उन्होंने निक्सनको निकट बुलाया और बोलीं—‘गोपाल, देखो देहके पीछे है आत्मा । आत्मामें जब तरंग उठती है, तब मनुष्य बदल जाता है । तब वह परम-आत्मा श्रीभगवान्‌के चरणोंमें जा लिपटता है ! मेरे जीवनमें यह बात घटना शुरू हो गयी है ।

तुम जानते हो मेरे स्वासी एक बड़े शिक्षाविद ही नहीं, एक बड़े दार्शनिक और थ्योसॉफी आन्दोलनके नेता भी है । मैं भी थ्योसॉफीमें बहुत रुचि रखती थी । पर थ्योसॉफीसे हमारी आत्माकी प्यास न बुझी । तब हम दोनोंका झुकाव वैष्णवधर्मकी ओर हुआ । मैंने वृन्दावन जाकर श्रीराधारमणजीके मन्दिरके आचार्य श्रीबालकृष्ण गोस्वामीजीसे दीक्षा ली । वस तभीसे मैं श्रीकृष्णकी प्रेस-साधनामें तल्लीन रहने लगी । अपनी साधना मैं सदा गुप्त रखना चाहती हूँ । पर कृष्ण ऐसा दुष्ट है कि वह न समय देखता है न स्थान । जब उसकी इच्छा होती है तभी मुझे बरबस अपने पास खींच

लेता है । उस समय उसके चरणोंसे निकलता है एक प्रकाश, जो मेरी बाह्य चेतना हर लेता है । मैं अपनेसे कुछ नहीं करती । वह स्वयं मुझे खींचकर डुबो देता है अपने अमृतमय सान्निध्यमें ।’

निक्सनका हृदय भर गया एक नये प्रकाशके आलोकसे । वे बोले—
‘माँ मुझे भी कृष्ण-प्रेमके इस परम लोभनीय पथका पथिक बना लो न ।’

‘गोपाल, अब तुम निश्चय ही इस पथके पथिक बन सकते हो । बौद्धधर्मके प्रति तुम्हारा आवेश अब नहीं रहा । गीता और उपनिषदोंका अध्ययन कर तुमने हिन्दूधर्मके मूल तत्त्वको जान लिया । अब तुम प्रेम-भक्ति-धर्मके शास्त्रोंका पाठ और श्रीकृष्णका ध्यान-जपादि कर सकते हो ।’

निक्सन वात्सल्यमयी माँकी उँगली पकड़कर चल पड़े प्रेम-साधनाके नये पथपर ।

कुछ दिन पश्चात् चक्रवर्ती महाशयने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके वाइसचांसलरका पद ग्रहण किया । निक्सनको भी माँके साथ वाराणसी जाना पड़ा । लखनऊ विश्वविद्यालयका ऊँची वेतनका पद त्यागकर उन्होंने बहुत कम वेतनपर वाराणसी विश्वविद्यालयके अंग्रेजी विभागके प्राध्यापकका पद स्वीकार किया ।

चक्रवर्तीजी गंगा-तटपर श्रीरामकृष्ण डालमियाके ‘राधाबाग’ नामक भव्य भवनमें रहने लगे । मणिकादेवीके कई और विदेशी शिष्य निक्सनके साथ उसमें रहने लगे । नित्य नये उत्सव, पाठ, कीर्तनादिके अनुष्ठानोंसे उसका ‘राधाबाग’ नाम सार्थक हो उठा ।

निक्सन और मणिकादेवीकी प्रेम-साधना निर्विघ्न चलती रही । मणिकादेवीने निक्सनको श्रीमद्भागवत पढ़ाना शुरू किया । एक दिन श्रीमद्भागवत पाठके पश्चात् निक्सन बोले—‘माँ, मैंने निश्चय किया है वैष्णव-मन्त्रसे संन्यास-दीक्षा ग्रहण करनेका ।’

‘यह तो बड़ी अच्छी बात है गोपाल ।’ माँने प्रसन्न होकर कहा ।

‘मैंने यह भी निश्चय किया है कि संन्यास तुमसे ही लूँगा ।’

‘मैं तो स्वयं गृही हूँ । संन्यास-दीक्षा दे कैसे सकती हूँ ?’

‘वह सब मैं कुछ नहीं जानता । संन्यास-दीक्षा मुझे आपको ही देनी होगी ।’

कुछ देर रुककर माँ बोली—‘अच्छा, तो ठीक है । संन्यास-दीक्षा मैं दूँगी ।’

वे वृन्दावन जाकर पहले स्वयं श्रीबालकृष्ण गोस्वामीजीसे संन्यास-दीक्षा ले आयीं । पीछे निक्सनको दी । उनका नाम हुआ—यशोदा माँ, निक्सनका कृष्णप्रेम ।

इस बीच चक्रवर्ती महाशयका स्वर्गवास हो गया । यशोदा माँके जीवनमें एक नये अध्यायका श्रीगणेश हुआ । उन्होंने अपने धर्मपुत्र और अपनी पुत्री मतिरानीको लेकर प्रवेश किया हिमालयकी गोदमें । अल्मोड़ासे चौदह मील दूर मितौलामें योगेश्वर-शिवस्थानके निकट एक आश्रम और मन्दिरका निर्माण किया । मन्दिरसे सन्निहित भूमिका नाम रखा ‘उत्तर-वृन्दावन’ ।

उत्तर-वृन्दावनमें दुमंजिले मन्दिरके ऊपरके कक्षमें विराजमान थीं राधा-कृष्णकी नयनाभिराम युगल मूर्तियाँ । नीचे था आश्रमवासियोंके रहने-का स्थान । उससे संलग्न एक कक्ष था भागवत-पाठ और अतिथियोंके लिए और एक यशोदा माँके स्थानीय बालक-बालिकाओंको पढ़ानेके लिए । आश्रमके एक ओर थी एक छोटी धर्मशाला कैलाश और योगेश्वर जानेवाले यात्रियों और साधुओंके विश्रामके लिए । आश्रमके चारों ओर ठाकुरके लिए फूलोंका बगीचा था और खेतीकी भूमि । आश्रमसे कुछ ऊपर पहाड़पर था स्थानीय लोगोंकी चिकित्साके लिए एक चिकित्सालय ।

कृष्णप्रेमके कैम्ब्रिजके साथी डॉक्टर अलेक्जेंडर डॉक्टरीकी ऊँची डिग्री लेकर लखनऊके एक बड़े अस्पतालमें काम कर रहे थे । वे भी कुछ दिन बाद उनसे मन्त्र और संन्यास-दीक्षा लेकर आश्रममें रहने लगे । उनका नाम था—हरिदास ।

माधव-आशीष नामके एक और अंग्रेज संन्यासी कृष्णप्रेमसे संन्यास-दीक्षा लेकर आश्रमकी ठाकुर-सेवामें उनका हाथ बटाने लगे । वे थे द्वितीय विश्व युद्धके समय बंगालके हवाई अड्डेके ग्राउण्ड इंजीनियर । वे उनके साथ अपनी पहली भेंटमें ही श्रीगुरु-सेवा और श्रीकृष्ण-सेवामें जीवन उत्सर्ग करनेके लिए विवश हो रो पड़े थे !

यह लोग उत्तर-वृन्दावनके दिव्य पस्विशमें और यशोदा माँके अपार्थिव सान्निध्य और आनुगत्यमें रहकर भजन करने लगे । यशोदा माँ जैसे उनके प्राण थीं और वे उनके अंग-प्रत्यंग ।

यशोदा माँके दिव्य स्वरूपकी एक झलक मिलती है सन् १९४३ के अप्रैल मासकी एक सन्ध्याकी कुछ घटनाओंसे, जिनके प्रत्यक्षदर्शी थे विश्व-विख्यात गायक, लेखक, कवि और भक्त श्रीदिलीपकुमार राय, जो उनके आश्रममें उस समय ठहरे हुए थे। माँ उस समय बहुत अस्वस्थ थीं। वे मन्दिरके बगलके कमरेमें शय्यापर लेटी रहती थीं। आवश्यकता होनेपर बड़े कष्टसे किसीके सहारे एक-दो कदम चल पाती थीं। दिलीपकुमारने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'योगी श्रीकृष्णप्रेम'में उस सन्ध्याके अपने अनुभवोंका वर्णन इस प्रकार किया है—

'सन्ध्या-आरतीके पश्चात् उस दिन हम लोग मन्दिरके जगमोहनमें बैठे कीर्तनके लिए। मतिरानी मन्दिरकी देहलीके निकट बैठी, कृष्णप्रेम उसके बगलमें मेरी बायी ओर, अलेक मेरी दाहिनी ओर।

कृष्णप्रेमने मुझे गानेको कहा 'वृन्दावन-लीला'का मेरा एक गीत, जो ग्रामोफोनके माध्यमसे बहुत लोकप्रिय हो चुका था। मैंने उसे कई बार जलसोंमें गाया था। पर उस दिन जिस प्रकार भाव-विभोर होकर गाया, वैसा पहले कभी नहीं गाया था। गाते-गाते मैं अपने-आपमें खो गया और मेरे नेत्रोंमें अश्रुओंका प्रपात वह निकला।

जब गाना समाप्त हुआ, सब लोग शान्त और स्तब्ध बैठे रह गये। कुछ देर बाद मैंने सर उठाया, तो देखा कि कृष्णप्रेमके नेत्रोंमें पानी भरा था और मतिरानी आँसू पोछ रही थीं।

अलेकने सबसे पहले मौन भंग करते हुए कहा—'कृष्णप्रेम जानते हो, माँ बरामदेमें खड़ी गाना सुन रही थीं !'

कृष्णप्रेम चौंक पड़े—'माँ ! हे भगवान् ! वे उस लम्बे रास्तेसे कैसे अकेली चलकर आ गयीं। वे मूर्च्छा खाकर गिर सकती थीं !'

मतिरानीने भय और विस्मयसे कहा—'बरामदेमें ठिरन भी गजबकी है !'

अलेकने कहा—'मैंने उन्हें बहुत देरमें देखा। जब वे दिलीपके गानका अन्तिम शब्द सुनकर जाने लगी थीं।

'परन्तु यह कैसा पागलपन ! वे कितना अस्वस्थ हैं ! जिसेमें ठण्ड कितनी घातक हो सकती है !' कृष्णप्रेमने कहा।

हमने मन्दिरकी देहली लाँघकर झट उनके कमरेमें प्रवेश किया। माँ मतिरानीके देहलीपर बैठे रहनेके कारण पीछेके रास्तेसे आयी थीं।

वे पलंगपर मूर्ति-सी बैठी थीं। मोमबत्तीकी रोशनीमें उनके कपोलोंपर दो अश्रुधाराएँ चमक रही थीं।

कृष्णप्रेमने कहा—‘माँ ! तुम कैसे ?’

वे इतना ही कह पाये थे कि मतिरानीने उन्हें इशारेसे रोकते हुए कहा—‘देखते नहीं, माँ भाव-समाधिमें हैं।’

थोड़ी देरमें उन्होंने आँसुओंसे डबडबाते अपने नेत्र खोले और एक आनन्दमयी मुसकानके साथ मुझसे अपने निकट बैठ जानेकी कहा।

मैं कुछ झिझकते हुए उनके पलंगपर उनके निकट बैठ गया। दूसरे लोग नीचे चढाईपर बैठ गये।

उन्होंने मेरे कन्धेपर हाथ रखते हुए प्यारसे पूछा—‘बेटा, तुमने देखा ?’

‘देखा ? क्या देखा माँ ?’ मैंने आखें फाड़कर उनकी ओर देखते हुए पूछा।

‘ठाकुरको।’

‘क्या, श्रीकृष्णकी ?’

‘हाँ, हाँ, उसीको’ उन्होंने मुसकाते हुए कहा। और वे लड़खड़ाते शब्दोंमें अश्रुविसर्जन करते हुए कहती गयीं—‘तुम जब गीतकी अन्तिम पंक्तियाँ गा रहे थे, तब—तब वह आयी—पहले मेरे कमरेमें—एक सेकेंड खड़ा रहा। फिर देहली लाँघकर गया तुम्हारे पास। मैं उधरसे न जा सकी। दूसरी तरफसे गयी। बरामदेमें जाकर मैंने देखा—देखा कि वह तुम्हारे पास खड़ा सुन रहा है। हाँ, मैंने देखा अपनी आँखोंसे, जैसे मैं उसे अकसर देखती हूँ। तुमने नहीं देखा उसे ?’

‘नहीं माँ, पर मैंने अनुभव किया कि—’

मेरी बात बीचसे ही काटकर, जैसे उन्होंने कुछ सुना ही नहीं, वे फिर कहने लगीं—‘सचमुच वह तुम्हारे बगलमें सुन रहा था। और तुम्हें प्यारसे अपलक देख रहा था। मैंने उससे कहा ‘ठाकुर उसे चक्षु दो, जिससे वह तुम्हें देख सके।’ दिलीप तुम धन्य ही।’

मैंने झुककर उनके चरण चूमे और रो दिया।

उन्होंने मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए मुझे आशीर्वाद दिया ।

कुछ देर चुप रहनेके पश्चात् मैंने साहस बटोरते हुए उनसे कहा—
'तुम तो कृष्णको सभी समय देखती होगी माँ ?'

'हाँ, सब समय देखती हूँ, पर हृदयमें, बाहर नहीं ।'

'क्यों नहीं माँ ?'

कुछ रुककर वे बोलीं—'मैंने एक बार उससे पूछा था । उसने कहा—
'यदि मैं बहुत बार तुम्हारे समक्ष प्रकट होऊँ, तो तुम्हारा शरीर अधिक समय
न रह सकेगा ।'

उस दिन जैसे माँका करुणा-स्रोत फूट पड़ा । वे जैसे गोपनीयताका
परदा हटाकर अपने अनुभवोंकी सारी बातें मुझसे कहने लगीं ।

मैंने कहा—'माँ, कृष्णप्रेमने बताया कि तुम्हें कृष्णके अतिरिक्त और
भी बहुत-से देवी-देवताओंके दर्शन हुए हैं । क्या तुमने कभी गणेशके भी दर्शन
किये हैं ? मैं तो उन्हें एक काल्पनिक देवता ही मानता हूँ ।'

माँ हँस दीं और बोलीं 'गणेशको तुम उनकी सूँड़के कारण ही
काल्पनिक मानते हो न । मैंने उनकी सूँड़के स्पर्शका अनुभव किया है । एक
दिन अर्धरात्रिमें मैं सो रही थी । मुझे लगा कि कोई मेरी गर्दनमें गुदगुदी
मचा रहा है । मैंने चौककर आँखें खोलीं, तो देखा कि एक छोटेसे प्यारे-प्यारे
गणेश अपनी सुन्दर सूँड़से मेरी गर्दनमें गुदगुदा रहे हैं । मैं क्या कहूँ दिलीप
उनका सौन्दर्य कैसा था—तुम जैसी कल्पना करते हीगे, उसके बिल्कुल
विपरीत । उनके अंग-अंगसे एक स्वर्णिम सौन्दर्यका अद्भुत प्रकाश फूट
रहा था ।'

'अच्छा माँ ! मुझसे एक बार स्वामी शारदानन्दने कहा था कि
रामकृष्ण परमहंसके साथ रामललाकी अष्टधातुकी मूर्ति सजीव होकर उनके
साथ खेला करती थी । मैंने यह भी पढ़ा है कि उनकी एक शिष्या 'गोपालेर
माँ' अपने बालगोपालको सजीवरूपमें नहलाया-धुलाया और खिलाया-
पिलाया करती थीं ।' फिर मैंने हँसते हुए कहा 'और यही नहीं माँ । कहते हैं
कि एक बार बालगोपाल उनके पास आकर लगे शिकायत करने—'माँ, मेरी
शय्यापर तकिया नहीं है ।' तो माँने कहा 'मेरी बाँहपर सिर रखकर सो
जाया कर' और वे उसी तरह सोने लगे । मैंने इसी प्रकारकी और न जाने

कितनी कहानियाँ सुनी हैं। तो क्या माँ यह सब सम्भव है, और आजके युगमें भी ?'

'दिलीप मैं केवल मानती ही नहीं, जानती हूँ कि ऐसी लीलाएँ ठाकुर करते हैं और आज भी करते हैं।' फिर उन्होंने आलमारीकी तरफ इशारा करते हुए कहा—'तुम देखते हो वह बालगोपालकी मूर्ति। एक दिन रातको जब मैं घोर निद्रामें सो रही थी, उसने आकर मुझे जगाया और अपने छोटेमें प्यारे-प्यारे ओंठ निकालते हुए कहा—'माँ तुम तो आरामसे सो रही हो और मुझे चीटियाँ काटे जा रही हैं।' मैं चौंककर उठी, तो देखा कि मैंने भूलसे शहदकी शीशी उसके पास रख दी है, जिससे वहाँ चीटियाँ इकट्ठा हो गयी हैं। यह देख मुझे रोना आ गया। मैंने बौतल वहाँसे हटाते हुए उससे क्षमा माँगी। उसके अंगसे चीटियाँ झाड़ीं और उसे अपने बिस्तरपर लिटा लिया। मेरे बिस्तरपर आकर वह बहुत खुश हुआ और आरामसे सोया।'

मैं आँखें फाड़कर माँकी ओर देखता रह गया।

उन्होंने कहा—'तुझे विश्वास नहीं हो रहा है ?'

'नहीं माँ, विश्वास न करनेका तो प्रश्न ही नहीं। तुम्हारी बातका अविश्वास, जिसकी स्वामी विवेकानन्दने भी पूजा की !'

'यह तुमसे किसने कहा ?'

'मैंने कहा माँ' अलेक उसी समय बोल पड़े। 'क्या मैंने—'

'नहीं, नहीं, वो ठीक है।' माँने मुस्कराते हुए कहा, 'पर पूजा नहीं। उन्होंने केवल दो-एक बार मेरे ऊपर पुष्प चढ़ाये थे, जब मैं गाजीपुरमें कारह-तेरह वर्षकी थी।'।

'वह पूजा ही तो थी माँ ! पूजा क्या केवल आरती-घण्टेमें होती है ? कृष्णप्रेमका विश्वास है कि उन्होंने अवश्य तुम्हारे अन्दर कुछ देखा था। तभी न उन्होंने तुम्हारे चरणोंमें फूल चढ़ाये थे' अलेकने फिर कहा।

'उन्होंने पुष्प अर्पण किये तुम्हारे चरणोंमें ?' मैंने विस्मयके स्वरमें पूछा।

'पुष्प अर्पण किये ? उन्होंने गाकर माँकी स्तुति की। एक बार नहीं कई बार।' सतिरानीने ऊँचे स्वरमें कहा।

‘सच ! वे कैसा गाते थे माँ ? उनके एक शिष्यने मुझसे उनके गलेकी प्रशंसा की थी ।’ मैंने उत्सुकतासे पूछा ।

‘ओह, वे अद्भुत गायक थे । मैं अक्सर गोपालसे कहा करती हूँ । मैंने अपने जीवनमें गायक देखे हैं तो दो ही । एक स्वामीजी और दूसरा—(मेरी ओर मुसकाते हुए) दूसरेका नाम बताऊँ क्या ?’

मैंने झट विषयको बदलते हुए पूछा—‘माँ, तुमने गाजीपुरमें पवहरि बाबाको देखा है क्या ?’

‘ओह, वे तो योगियोंमें राजा थे’ उन्होंने सम्मानपूर्वक हाथ जोड़कर माथेसे लगाते हुए कहा । ‘उनका जैसा तेज मैंने आज तक किसी मनुष्यके चेहरेपर नहीं देखा ।’

‘नहीं माँ’ भतिरानी फिर शरारत भरी मुस्कराहटके साथ बोल पड़ी ‘दिलीपदाके गानकी प्रशंसा करनेके पश्चात् तुम्हें कहना चाहिये—मैंने अपने जीवनमें केवल दो ही मनुष्योंके मुखपर ऐसा तेज देखा है, एक पवहरी बाबा और दूसरा (कृष्णप्रेमकी ओर देखकर मुस्कराते हुए)—दूसरेका नाम बताऊँ क्या ?’

‘बुप रहो मति’ कृष्णप्रेमने भृकुटि चढ़ाते हुए डाँटकर कहा ।

‘पवहरि बाबा बड़े चमत्कारी पुरुष थे न माँ ?’ मैंने कौतूहलवश पूछा ।

माँ हँस दीं—‘सुनो, उनके चमत्कारकी एक बात । मैं उस समय चौदह-पन्द्रह वर्षकी थी । मैंने सुना पवहरि बाबा भण्डारा कर रहे हैं । जितने भी साधु आयेंगे, सबको एक-एक धोती और लोटा देंगे । मैंने सोचा कि यह छोटी-सी गुफामें रहनेवाले विरक्त बाबाजी कहाँसे कैसे इतने बड़े भण्डारेकी व्यवस्था करेंगे ? इसमें क्या रहस्य है—यह जाननेके लिए मैं भी लड़केका भेष बना साधुओंकी लाइनमें जा लगी । लाइनके साथ एक-एक कदम आगे बढ़ाती गयी । जैसे ही गुफाके सामने पहुँची और बाबा मुझे लोटा-धोती देनेको हुए, मैं छलाँग मारकर गुफाके भीतर चली गयी । मैंने इसकी विलकुल चिंता न की कि बाबा और बाहरके लोग क्या कहेंगे । और जानते हो मैंने भीतर क्या देखा ?’

‘क्या देखा माँ ?’

माँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं और बोलीं—‘गुफा विलकुल खाली थी ! उसमें न कोई लोटा था, न धोती !’

थोड़ी देर और इसी प्रकारकी कुछ बातें होती रहीं। अन्तमें मैंने कहा—‘माँ ! एक बात पूछूँ ? मुझसे ध्यान बिलकुल नहीं होता। बहुत चेष्टा करता हूँ, पर किसी प्रकार मन एकाग्र ही नहीं होता। मुझे क्या करना चाहिये ?’

माँने मेरी पीठ ठोकते हुए कहा—‘तुम केवल ठाकुरके लिए गायन करो। तुम्हें ठाकुर गानसे मिलेगे, ध्यानसे नहीं। मैंने आज जो देखा उससे मुझे पूरा विश्वास है कि ठाकुर तुम्हारे ऊपर कृपा अवश्य करेंगे।’

कृष्णप्रेम अपने शिष्योंके सहयोगसे यशोदा माँ द्वारा निर्दिष्ट गौड़ीय-वैष्णव रीतिके अनुसार ठाकुर-सेवाका प्रत्येक कार्य बड़ी निष्ठा और शुद्धतासे करते। वे भिक्षा कर ठाकुरके लिए अन्न जुटाते। ठाकुरकी रसोई भी अधिकतर स्वयं बनाते। इस कार्यमें वे कितना दक्ष थे और ठाकुर उनके द्वारा प्रस्तुत किया हुआ भोग कितने प्रेमसे आरोगते थे, यह एक दिनकी विशेष घटनासे स्पष्ट है।

उस दिन आश्रमवासियोंने बहुत अच्छा घी संग्रह किया था। कृष्णप्रेमने बड़े जतनसे ठाकुरके लिए हलुआ बनाया। भोग निवेदनकर दरवाजा बन्द कर दिया। बाहर बैठकर सब लोग करने लगे जप और ध्यान। कुछ देरमें कृष्णप्रेम हठात् उठे और बोले—‘लगता है ठाकुरने आज हलुआ बड़े प्रेमसे पाया है। चलो देखें, उन्होंने क्या सचमुच आरोगा है ?’

यशोदा माँ पास बैठी थीं। गोपालकी बात सुन वे कुछ मुसका दीं। उसी समय सब लोगोंने ठाकुर-घरमें प्रवेश किया। सचमुच ठाकुर आधेसे ज्यादा हलुआ खा गये थे। उनकी उँगलीके निशान भी हलुआमें बने हुए थे। यह देख सब लोग आनन्दसे उन्मत्त हो नृत्य-कीर्तन करने लगे।

यशोदा माँका ठाकुरके प्रति वात्सल्य भाव था। कृष्णप्रेमको भी वे अपना पुत्र मानती थीं। इस दृष्टिसे कृष्णप्रेम ठाकुरके बड़े भाई होते थे। ठाकुरको इस रिश्तेसे इन्कार कब था ? वे तो चाहते ही हैं कि कोई उन्हें अपना भाई, बन्धु, पुत्र या स्वामी कुछ माने, जिससे वे भी उसी भावसे उसे अपना मानकर और उसके प्रेम रसका आस्वादन कर धन्य हों।

एक दिन रातको सोते समय कृष्णप्रेमके कानमें आवाज आयी—‘दादा, दादा !’ उन्होंने चौंककर चारों ओर देखा, पर कोई न दीखा। आवाजको अपना भ्रम समझकर उन्होंने आँखें भीच लीं।

फिर वह मधुर स्वर—‘दादा !’ इस बार स्पष्ट लगा कि आवाज मन्दिरके भीतरसे आ रही है।

‘पर मन्दिरमें तो कोई है नहीं ठाकुरके सिवा। तो क्या यह ठाकुरकी आवाज है?’—सोचते-सोचते जैसे ही वे मन्दिरके निकट पहुँचे, उन्होंने फिर सुना—‘दादा, शीत लागचे, जँगला खुला आचे—दादा, ठण्ड लग रही है, जँगला खुला है।’

उनका शरीर काँप गया। झट मन्दिरका दरवाजा खोलकर जँगलेका दरवाजा बन्द किया। ठाकुरको अच्छी तरह उड़ाकर सुला दिया। उड़ाते समय मृदु स्वरमें उन्होंने कहा—‘ठाकुर, तोमाकेऊ शीत लागे?—ठाकुर, तुम्हें भी ठण्ड लगती है?’

उसी समय ठाकुरके नेत्रोंसे दो अश्रु-बिन्दु टपक पड़े! यह देख कृष्णप्रेमका प्रेम-सिन्धु उथल पड़ा। वे स्थिर न रह सके। ‘हा ठाकुर !’ कह स्वयं भी रो पड़े। फिर किसी प्रकार अपनेको सम्हाल कर बहिर्वाससे ठाकुरके आँसू पोछ दिये।

ठाकुर तो सो गये। पर कृष्णप्रेमको नींद कहाँ? उनके कानोंमें अब भी गूँज रहा था ठाकुरका मधुर कण्ठस्वर। ठाकुरने उन्हें ‘दादा’ कहकर पुकारा था। मानो प्यार भरे इन दो अक्षरोंके माध्यमसे अपना सारा प्यार उड़ेल दिया था उनपर। मानो ठाकुरके प्यारके बादल सहसा उमड़ पड़े थे उनके हृदयाकाशपर और एक ही क्षणमें उस प्रेम-पर्याधिका सारा जल उड़ेल गये थे उनके हृदय प्रांगणमें। उनका क्षुद्र हृदय क्या झेल सकता था प्रेमकी इस प्रबल बौछारको? बौछारका सारा जल झर-झर वह रहा था उनके दोनों नेत्रोंसे दो जल-प्रपातोंके रूपमें। इन प्रपातोंका वेग क्या थमनेको था कभी? यह तो नित्य बढ़ता ही गया। आजीवन सिक्त करता रहा उनके वक्षको और सार्थक करता रहा उनके ‘कृष्णप्रेम’ नामको।

इस घटनाके पीछेसे बार-बार झाँक पड़ता है एक रहस्यमय प्रश्न—ठाकुरके आँसू आ जानेका कारण क्या था? कृष्णप्रेमने सहज भावसे यही न पूछा था उनसे—‘ठाकुर, क्या तुम्हें भी ठण्ड लगती है?’ इसमें रो, पड़नेकी कौन-सी बात थी? कौन-से उनके मर्मस्थलसे जा टकराया था कृष्णप्रेमका यह साधारण प्रश्न?

इसका उत्तर तो स्वयं ठाकुर ही दे सकते हैं। हमारी बुद्धिकी क्षमता

कहां, जो उनके मर्मस्थलको छू भी सके । पर उनके चरण-कमलोंको हृदयमें धारण कर कुछ अटकल लगानेमें क्या कोई हर्ज है ?

ठाकुरके आँसू आ गये थे एक और बार भी, जब यशोदा माँने उन्हें स्तनपान करते अतृप्तावस्थामें गोदसे उतार दिया था, दूध उफनता देखकर । पर इस बारकी अतृप्ति एक दूसरे प्रकार की थी । इस बार प्रश्न ठाकुरकी उदर पूर्तिका नहीं, आत्म-पूर्तिका—उनके अन्तरतम आत्माकी पूर्तिका था ।

ठाकुरके अन्तरतम आत्माका सम्बन्ध अपने भक्तोंसे है । उनके प्रेमरस निर्याससे है । उन्हें जितना अपने भक्त प्रिय हैं, उतना और कोई प्रिय नहीं है । उन्हें जितना सुख अपने भक्तोंकी प्रेम-सेवासे मिलता है उतना अपने आनन्द-स्वरूप आत्मासे भी नहीं मिलता । उनके साधक-भक्त उनकी साक्षात्-सेवा ऐसे तो कर नहीं सकते, जैसे उनके सिद्ध-भक्त करते हैं । इसलिए जब वे उनकी सेवाकी इच्छा करते हैं, तो वे विग्रह रूपमें साक्षात् प्रकट होकर उनकी सेवा ग्रहण करते हैं । इस प्रकार साधकोका कल्याण तो होता ही है—क्योंकि उन्हें माया-बन्धनसे मुक्ति मिलती है—उनकी अपनी भी आत्म-तृप्ति होती है ।

भक्त प्रेमसे उनकी सेवा करता है, वे प्रेमसे उसे ग्रहण करते हैं । भक्त प्रेमसे खिलाता है, वे प्रेमसे खाते हैं । भक्त प्रेमसे नहलाता-धुलाता है, वे प्रेमसे नहाते-धोते हैं । भक्त प्रेमसे तरह-तरहके वस्त्राभूषण धारण कराता है, वे प्रेमसे धारण करते हैं । भक्त जो कुछ भी उनके लिए प्रेमसे करता है, वे उसे प्रेमसे अंगीकार करते हैं ।

ठाकुरको भक्तका नहलाना-धुलाना, पहराना-उढ़ाना, खिलाना-पिलाना तृप्तिकर हो सकता है तभी, जब उन्हें इस सबकी सचमुच आवश्यकता हो, इसकी सच्ची भूख ही । यदि कोई यह माने कि पूर्णात्पूर्ण, आप्तकाम, पूर्णकाम भगवान्को भूख-प्यास कंसी, तो वह भले ही माने । आप्तकामता भी उनका एक स्वरूप है । पर यह उनका बाह्य स्वरूप ही हैं, जिसका ज्ञानीको दूरसे आभास होता है । उनका वास्तविक स्वरूप, आन्तरिक और निज स्वरूप वह है, जिसका भक्तको निकटसे अनुभव होता है । उसे भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी सभी कुछ व्यापती है । पर उसकी तृप्ति होती है केवल भक्त द्वारा प्रेमसे दिये गये उपकरणोंसे । वह भक्तकी प्रेम-सेवाका भूखा रहता है । भक्तकी प्रेम-सेवा उसे उतनी ही तृप्तिकर होती है, जितनी भक्तमें प्रेम-सेवाको भूख होती है—

नानोपचारकृत पूजनमार्तबन्धो
प्रेम्णेव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात् ।
यावत् क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा
तावत् सुखाय भवति ननुभक्ष्यते यत् ॥

(पद्यावली-१०)

“भगवान् ‘आर्तबन्धु’ हैं । वे भक्तमें प्रेम-सेवाकी जितनी भूख देखते हैं, उतनी ही उनकी जठराग्नि तीव्र होती है । वे उसकी प्रेम-सेवा ग्रहण करनेकी उतना ही अधिक व्यग्र हो उठते हैं और उसे ग्रहणकर उनकी तृप्ति भी उतनी ही अधिक होती है ।’

यह भगवान्‌का मधुर, रसमय स्वरूप है जो उनके ऐश्वर्यको पूर्णतयः आच्छादित किये रहता है । रसकी अशेष तृष्णाके कारण वे अपने ऐश्वर्यको भूले रहते हैं । केवल भूले ही नहीं रहते, उनकी अघटन-घटन-पटीयसी योगमाया शक्ति उन्हें भक्तके प्रेमसेवा-रसका आस्वादन करानेके लिए उनके ऐश्वर्यको आच्छादित कर उसे मधुर नर-लीलाके इतना उपयुक्त बना देती है कि उन्हें साधारण जीवके समान ही भूख-प्यासादि व्यापने लगती है ।

भक्त यदि कोई ऐसा कार्य करे, जो भगवान्‌के इस रसमय स्वरूपके अनुकूल हो, तो उन्हें अपार सुख होता है । यदि वह कोई ऐसा कार्य करे, जो उसके प्रतिकूल हो, तो उन्हें अपार दुःख होता है । कृष्णप्रेमने उनसे पूछकर— ‘ठाकुर, तुम्हें भी ठण्ड लगती है ?’ उनके रसमय स्वरूपके विपरीत कार्य किया था, उनकी जठराग्नि जगाकर उसपर पानीका घड़ा उड़ेलने जैसा कार्य किया था, अतिथिको आमन्त्रितकर उसे न पहचानने जैसा कार्य किया था । ठाकुरकी यथार्थ सेवा ही कब हो सकती है, यदि उसकी भूखकी यथार्थ पहचान न ही ?

ठाकुरने कृष्णप्रेमके प्रश्नका जैसा उत्तर दिया आँसू बहाकर वैसा वे कुछ कहकर नहीं दे सकते थे । ठाकुरके उन आँसूओंकी कीमत कृष्णप्रेमसे अधिक और कौन जान सकता था ? उन्होंने अपने बहिर्वासके उस छोरको फाड़ लिया, जिससे आँसू पोछे थे । उसे एक चाँदीके ताबीजमें आजीवन लगा रखा अपनी छातीसे ।

ठाकुर और ठाकुरानीकी मनोज्ञ प्रेमलीलाके भी कृष्णप्रेमको कभी-कभी दर्शन होते । एक दिन सदाकी भाँति वे ठाकुर-ठाकुरानीको प्रयन करा

मन्दिरके दरवाजेका ताला बन्दकर सो गये। दूसरे दिन प्रातः दग्वाजा खोलकर मन्दिरके भीतर गये, तो देखा एक अद्भुत दृश्य ! राधारानीका सोनेका हार कृष्णके गलेमें और कृष्णके सोनेके नूपुर राधारानीके चरणोंमें ! कृष्णप्रेमने उसी क्षण आश्रमवासियोंको बुलाकर कहा—‘देखो ठाकुर-ठाकुरानीकी लीला ! अप्राकृत व्रज-धाममें, भक्तके हृदय-मंचपर और मन्दिरकी वेदीपर सभी जगह एक-सा विलास ।’

इस प्रकारकी ठाकुरोंकी लीलाको तो आश्रमके सभी लोग देखते । पर कृष्णप्रेमके हृदय-मंचपर जो लीलायें घटतीं उन्हें उनके सिवा और कौन जानता ?

पर इन लीलाओंका रहस्य क्या था ? रहस्य था केवल कृष्णप्रेमकी गुरु-भक्ति और एकनिष्ठता । कृष्णप्रेमके लिए यशोदा माँका एक-एक शब्द, उनका एक-एक निर्देश वेद-वाक्यके समान था । उन्होंने अपने आपको उनके द्वारा उनकी अपनी इच्छाके अनुरूप उनके अपने आदर्शोंके साँचेमें ढाले जानेके लिए पूर्ण आत्म-समर्पण कर दिया था । अपने पिछले सभी संस्कारों, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, गौरवादिकी पूर्ण आहुति देकर उनके चरणोंमें एकात्मता प्राप्त कर ली थी उनसे । इसलिए उनके जीवनकी समग्र आध्यात्मिक उपलब्धि, इष्ट-कृपा और लीला-स्फूर्ति आप ही उतर आयी थी उनके हृदय-प्रांगणमें ।

कृष्णप्रेमकी गुरुनिष्ठाके सम्बन्धमें एक बार माँ यशोदाने दिलीपरायसे कहा था—‘मैं गोपालकी गुरुनिष्ठाके दो उदाहरण प्रस्तुत कर सकती हूँ । एक तो यह कि उसने जब मुझसे पहले शिष्य रूपमें उसे स्वीकार करनेको कहा, तो मैंने कहा—‘मैं तुम्हें शिष्य रूपमें स्वीकार तभी कर सकती हूँ, जब तुम यह वचन दो कि तुम्हें जीवन भर कोई आध्यात्मिक उपलब्धि न हो, तो भी तुम मेरा और भक्ति-पथका त्याग न करोगे । मैं तो जानती थी कि यदि उसने यह वचन दे दिया, तो उसे आध्यात्मिक उपलब्धि न होनेका कोई प्रश्न ही नहीं । पर मैं उसे बता देना चाहती थी कि गुरु-दीक्षा ग्रहण करनेमें पूर्ण समर्पण आवश्यक है । उसमें किसी प्रकारकी शर्त या सौदेकी गुंजाइश नहीं है । उसने मुझे यह वचन दिया और काय, मन और वाक्यसे सहर्ष अपने-आपको मुझे समर्पित कर दिया, वैसे ही जैसे बच्चा पूर्ण विश्वासके साथ अपने-आपको माँको समर्पित कर देता है ।’

दूसरा उदाहरण एक चमत्कारिक घटना है, जो कभी न घटी होती यदि वह मुझे केवल अपनी माँ ही मानता होता। घटना इस प्रकार है। वह बाहर बैठा ध्यान कर रहा था। उस समय किसी कीड़ेने उसके टखनेमें काट लिया। वहाँ सेप्टिक हो गया। उसका जहर बराबर बढ़ता गया। अलेक और दो और डॉक्टरोंको बुलाया गया। पर वे किसी प्रकार उसे बढ़नेसे न रोक सके। वह इतना बढ़ गया कि उन्होंने उसकी टाँग काट देनेकी सलाह दी। तब मैंने उन्हें रोका और कहा—‘गोपाल ठीक हो सकता है, यदि वह सारी दवाइयाँ बन्द करके केवल ठाकुरका चरणामृत ले।’ गोपाल झट तैयार हो गया। डॉक्टरोंकी सलाहकी उसने तनिक भी परवाह न की। और सचमुच वह बिलकुल ठीक हो गया केवल ठाकुरके चरणामृतके प्रभावसे !’

आजकलके मनीषी गुरुकी भगवत्तामें विश्वास नहीं करते। उनके विचारसे एक जड़-शरीरधारी जन्म-मरणशील गुरुको भगवान्से अभिन्न मानना भगवान्का अपमान करना है। परन्तु श्रीकृष्णप्रेमका, उनकी विद्या, बुद्धि और जन्मगत पाश्चात्य संस्कारोंके होते हुए भी, गुरु और भगवान्की अभिन्नतामें पूर्ण विश्वास था। एक बार उन्होंने तार्किक दिलीपरायको, जिन्हें गुरुको भगवान्से अभिन्न माननेमें आपत्ति थी, तर्क द्वारा गुरु और कृष्णकी अभिन्नताके सिद्धान्तको अपने दो पत्रोंमें बड़े सुन्दर ढंगसे समझानेकी चेष्टा की थी। प्रायः देखा गया है कि साधक मुखसे भले ही गुरुको भगवान्से अभिन्न मानें, उनके हृदयमें शंकाकी गुंजाइश रहती है और गुरुमें थोड़ी-सी भी कमी या त्रुटि देखनेपर वह पनपने लगती है, जिसके कारण उनकी उन्नति नहीं होती। उनके भावकी पुष्टिके लिए हम उन पत्रोंके कुछ अंशका हिन्दी अनुवाद यहाँ उद्धृत कर रहे हैं :—

‘जहाँ तक गुरु और कृष्णकी अभिन्नताका प्रश्न है, मुझे लगता है कि शायद तुमने इसका अर्थ ठीक नहीं समझा। ऐसा न होता तो तुम गुरुके बाह्य और भौतिक रूपकी कृष्णसे तुलना न करते। परन्तु यदि तुम्हें तत्त्वतः गुरुको श्रीकृष्णसे अभिन्न माननेमें कठिनाई होती है, तो तुम उन्हें कृष्णके दास और उनके प्रतिनिधिके रूपमें तो उनसे अभिन्न मान ही सकते हो। बहुत-से, या शायद अधिकांश कृष्ण-भक्त, इस रूपमें ही गुरु और कृष्णको अभिन्न मानते हैं।

परन्तु गुरु और कृष्णकी एकताका अर्थ यह नहीं कि गुरुका शरीर या

मन कृष्ण है, बल्कि यह है कि गुरुमें जो ईश्वरीय-सत्ता या चेतना है वह कृष्ण है । कृष्णका अर्थ है भगवदीय सत्ता । गुरु उस सत्ताको अभिव्यक्त करता है । शिष्यको उस सत्ताकी अभिव्यक्ति जितनी गुरुमें होती है, उतनी और कहीं नहीं होती । वह सत्ता (और वह शक्ति) ही वास्तविक गुरु है, न कि उसका बाह्यरूप, जिसके द्वारा वह अभिव्यक्त होती है । बाह्यरूप मानुषिक और अपूर्ण है और उसमें त्रुटियाँ भी हो सकती हैं । पर उसमें जो भगवदीय चेतना है, वह पूर्ण है । हम जब किसीको गुरुरूपमें वरण करते हैं, तो इसलिए नहीं कि वह बड़ा विद्वान या चरित्रवान है और उसे सिद्धियाँ प्राप्त हैं, बल्कि इसलिए कि जाने या बिन जाने, उसके माध्यमसे ही हमारा उस भगवदीय सत्तासे प्रथम सम्पर्क हुआ होता है । जो यह कहा जाता है कि सब गुरु एक हैं, वह भी इसी अर्थमें कि वह भगवदीय चेतना ही वास्तविक गुरु है, जो सब गुरुओंमें एक-सी विद्यमान है ।.....संक्षेपमें उस भगवदीय चेतनाके रूपमें कृष्णका प्रकाश और कृष्णकी कृपा ही गुरु है ।

‘शायद तुम कहो कि यह तो कोरे ज्ञानकी बात है, ती इसका एक दूसरा पक्ष भी है । श्रीकृष्ण ही हैं प्रेमके एकमात्र विषय । हम किसीसे प्रेम इसीलिए करते हैं कि उसमें कृष्णका (या कृष्णके सौंदर्यादि गुणोंका) आंशिक प्रकाश है, जो हमें (सर्वार्कषक कृष्णके समान) उसकी ओर आकर्षित करता है । प्रेमका अर्थ है आत्म-समर्पण । विशुद्ध प्रेमका अर्थ है पूर्ण आत्म-समर्पण । पूर्ण आत्म-समर्पण गुरु या कृष्णको किया जाता है । इसलिए गुरुके गुरुत्व और कृष्णमें कोई अन्तर नहीं है ।

‘श्रीकृष्णको प्रेमसे पाया जाता है । जितना जिसका प्रेम या आत्म-समर्पण उतनी उसकी कृष्ण-प्राप्ति । श्रीराधाका आत्म-समर्पण कृष्णके प्रति पूर्ण है । इसलिए उन्हें श्रीकृष्णकी पूर्ण प्राप्ति है । श्रीकृष्ण अपने एक अंशको भी उनसे छिपा नहीं सकते । उनके सामने सदा अपने पूर्ण-पूर्णतम रूपमें प्रकट रहते हैं ।

‘श्रीकृष्णके गुरु रूपको हम पूरी तरह पहचान नहीं पाते, या वे इस रूपमें पूर्णरूपसे हमारे सामने प्रकट नहीं होते । इसका कारण यह है कि हमारा आत्म-समर्पण उनके प्रति पूर्ण नहीं है । जैसे-जैसे उनके प्रति हमारा आत्म-समर्पण बढ़ता है, वैसे-वैसे उनके स्वरूपकी हमारी जानकारी बढ़ती है । जब हमारा आत्म-समर्पण पूर्ण हो जाता है, तब उनके वास्तविक

स्वरूपकी पूर्ण अनुभूति भी हमें हो जाती है, तब हम ठीक-ठीक जान लेते हैं कि जो श्रीकृष्ण हैं, वही श्रीगुरु हैं।^१

कृष्णप्रेमके सम्बन्धमें एक बार श्रीअरविन्दने शिष्य स्याउकको लिखा था—‘कृष्णप्रेममें एक शक्ति थी। उसके सहारे वे बहिरंग जगत्के चिन्तास्रोतसे अपने-आपको विच्छिन्न रख सकते थे और पहुँच सकते थे उस स्थलपर, जहाँसे शाश्वत ज्ञानका उत्स फूटता है। उनकी यह शक्ति सचमुच बहुत प्रशंसनीय थी। यदि वे जागतिक चिन्ता-स्रोतके साथ योगायोग रखकर चलते, तो उन्हें रम्याँ-रत्याँ और इसी प्रकारके, अन्य संस्कृतिवान् मनीषियोंके स्तरपर ही पड़े रहना होता।... शिष्यके प्रकृत आत्म-समर्पणका भाव उन्होंने द्रुतगतिसे परिपूर्ण रूपमें ग्रहण किया था। तभी न उन्हें अपनी साधनामें इतनी सफलता मिली। एक आधुनिक मनुष्यके लिए, चाहे वह शिक्षित इयूरोपियन हो या भारतीय, इस प्रकारकी सफलता हासिल करना बहुत कठिन है। कारण यह कि आधुनिक मनुष्यमें है अत्यधिक विचार-विश्लेषण, संशय और तर्क-वितर्ककी भावना। चाहने पर भी वह इससे मुक्त नहीं हो सकता। मैं अपनी निजी अभिज्ञता और अन्यान्य साधकोंकी अभिज्ञताके वलपर कह सकता हूँ कि सत्यकी उपलब्धिका पथ इतना लम्बा और टेढ़ा-मेढ़ा नहीं है, यदि साधक संशय और विश्लेषणकी बाधाओंको दूर रख सके। कृष्णप्रेमने सहज हो इस बाधाका अतिक्रमण कर लिया था। इसलिए मैं उनका प्रशंसक हूँ।’^२

कृष्णप्रेम और यशोदा माँ मितौला आते-जाते अलमोड़ामें अपने मित्र वैज्ञानिक बंशीसेनके बंगलेपर ठहर जाया करते थे। उनकी स्त्री श्रीमती एमरसनसेन उनकी नैष्ठिकताके बारेमें सब कुछ जानती थीं। उनके आते ही वे बरामदेको धो-पोंछकर रखतीं और रसोईके लिए नये बर्तनोंकी व्यवस्था कर देतीं। कृष्णप्रेम और यशोदा माँ नहा-धोकर पवित्रतासे रसोई बनाते और ठाकुरको भोग देकर स्वयं प्रसाद ग्रहण करते। एक दिन बंशीसेनने ठट्ठा करते हुए कृष्णप्रेमसे कहा—‘रसोईमें इतनी छुआ-छूत यदि मेरी बूढ़ी विधवा दादी करती, तो मैं समझ सकता। पर आप इतनी छुआ-छूत करते हैं क्यों? कैम्ब्रिजमें पढ़ते समय तो आपका दूसरा परिवेश था। निश्चय ही उस समय आप गो-मांसादि भी खाते रहे होंगे। अब अपने आपको विधि-निषेधके

१ दिलीपकुमार राय : योगी श्रीकृष्णप्रेम, पृ० २४६-२४८

२ योगी कृष्णप्रेम : दिलीपकुमार राय

इस जंजालमें क्यों डाल रखा है ?'

कृष्णप्रेमने हँसते-हँसते उत्तर दिया—'वर्तमान युगमें व्यक्तिगत और सामाजिक नियन्त्रणके सभी संयम-नियमोंकी भाड़में झोका जा रहा है। मैं समझता हूँ कि ऐसे दुःसमयमें इस प्रकारके संयम-नियमके कुछ बन्धनमें रहना ही अच्छा है। फिर मेरे पहले जिन लोगोंने इस पथका अनुसरण किया, वे लक्ष्य-स्थलपर ठीक पहुँच गये। तब जिस व्यक्तिये इस पथपर यात्रा आरम्भ ही की ही, उसके लिए क्या यह कहना उचित है—मैं ऐसा करूँगा, वैसा नहीं करूँगा; इस नियमका पालन करूँगा, उसका नहीं करूँगा ? इसलिए मैं इस पथके सारे ही नियमोंको मानकर चलता हूँ।'*

कृष्णप्रेम अपने आश्रममें कोई रेडियो या अखबार न रखते। उनका लक्ष्य था एक मात्र कृष्णप्रेम। उस लक्ष्यके अतिरिक्त और सभी चीजोंको उन्होंने अपने दृष्टि-पथसे दूर कर रखा था। माण्डुक्य उपनिषद्की इस उपमाका वे सदा ध्यान रखते थे—'ओम्' है धनुष, आत्मा है शर और लक्ष्य है श्रीभगवान् या ब्रह्म, जिसमें शरको बिद्ध करना है। 'शरवत् तन्मयो भवेत्'—शरके समान तन्मय होना है। समस्त जीवनको क्षिप्रगतिके धनुःशर रूपमें परिणत करना है। और उस शरको तीक्ष्ण कर लेना है पूजा-अर्चना और ध्यान-धारणाके माध्यमसे। आत्माकी पूर्णाहुति दे देनी है प्रभुके चरणोंमें। इसके बिना कुछ नहीं होना है। कृष्ण हमारा सब कुछ लेना चाहते हैं और अपना सब हमें देना चाहते हैं। वे पूर्ण अखण्ड वस्तु हैं न ! इसलिए असम्पूर्ण खण्डरूप किसी व्यवहारको पसन्द नहीं करते। उन्हें पानेके लिए दोनों हाथोंसे उनके चरण पकड़ने होते हैं। एक हाथ बढ़ाओ उनके चरणोंकी ओर, दूसरा रखो संसारकी ओर, तो वे पकड़में नहीं आते।

असली साधनाके स्वरूपके सम्बन्धमें दिलीपकुमार रायको अपने एक पत्रमें उन्होंने लिखा—'असली योगका स्वरूप है श्रीकृष्णमें परिपूर्ण आत्म-समर्पण। इस समर्पणमें किसी प्रकारकी आकांक्षा या वासना नहीं होती। होता है श्रीकृष्णके चरणोंमें अपने आत्माका पूर्ण उत्सर्ग। जो भी कार्य या विचार आत्माके इस प्रकारके उत्सर्गको सम्भवपर करे, वही है असली साधना। और इस पूर्ण उत्सर्गके फलस्वरूप, जो आत्मिक वस्तु साधकके समक्ष उपस्थित हो, वही है लीला।'

* योगी कृष्णप्रेम, भूमिका: एमरसनसेन

सन् १९४४ में उत्तर-वृन्दावनमें छा गयी शोक-कादम्बिनीकी व्यापक कालिमा । गुरुगतप्राण कृष्णप्रेमके मर्मस्थलपर हुआ भीषण बज्राघात । यशोदा माँका तिरोधान हो गया । ऐसा आघात उन्हें अपने जीवनमें पहले कभी नहीं लगा था ।

दिलीपकुमार रायको अपने एक पत्रमें उन्होंने लिखा—‘गल स्टोन व्याधिके कारण माँ मर-देह त्यागकर चली गयीं । देहान्तके समय जो परिपूर्ण शान्ति विराज रही थी उनके अन्तरमें उसका वर्णन नहीं कर सकता । कृष्ण-दर्शन-जनित परितृप्तिकी एक नयी आभा झलक रही थी उनके मुख और नेत्रोंमें ।

मैं ठीक जानता हूँ कि वे अब भी हमारे बीच विराज रही हैं, पहलेसे भी अधिक घनिष्ठ रूपसे । फिर भी उनके दैहिक सान्निध्यका अभाव मुझे असह्य हो रहा है । “तुम तो जानते हो ही दिलीप, माँ मेरे निकट कौन-सी परम वस्तु थीं । बीस वर्षोंसे अधिक वे थीं मेरी सद्गुरु और मेरी माँ । उन्हें केन्द्रमें रखकर ही मैंने अपना सारा संसार बनाया था । अब भी वे उसी केन्द्र रूपमें विराजमान हैं सही । परन्तु उन्हें देहमें न देख पानेका, दुःख बड़ा असहनीय है ।’

तिरोधानके पश्चात् भी माँने अपने प्रिय गोपालको अपनी आँखोंसे ओझल कभी नहीं किया । उस दिन दण्डेश्वर झरनेके पास माँका देह भस्मीभूत हो जानेके पश्चात् वे आश्रमवासियोंके साथ आश्रम लौट आये । थके होनेके कारण रातमें देर तक सोते रहे । शेषरात्रिमें हठात् सुनायी पड़ा माँका स्वर—‘गोपाल, यह क्या? अभी भी पड़े सो रहे हो । भजनका समय चला जा रहा है जो ।’ थोड़ा रुककर उन्हें आश्चस्त करते हुए फिर बोलीं—‘गोपाल, मैं अब भी आगेकी तरह तुम्हारे निकट सदा रहती हूँ, यह निश्चय जानना ।’

कृष्णप्रेम चौंककर उठ खड़े हुए और चारों ओर देखते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे बोले—‘माँ, यदि तुम पासमें ही हो तो दीखती क्यों नहीं । अब तुम्हारे दर्शन कभी न होंगे क्या ?’

‘न बाबा, तुम्हींको आना होगा मेरे पास, एकके बाद एक पद आगे बढ़ाते हुए । तुम्हारी साधना ठीक चलती रहे । तुम यहाँ इस लोकमें आकर मृक्षसे मिलोगे ।’

कृष्णप्रेम जाड़ोंमें अधिकतर वृन्दावन चले जाया करते थे, वहाँ परम गुरुदेव श्रीबालकृष्ण गोस्वामीके निकट रहकर सन्तियोंके कुछ दिन निकाल देनेके उद्देश्यसे। प्रथम बार वे माँके साथ वृन्दावन गये थे १८ फरवरी, सन् १९३१ को। ठहरे थे ज्ञानगुदड़ीमें भरतपुरवाले बगीचेमें। उन्हें देख वहाँ अच्छी-खासी हलचल मच गयी थी। वे शायद पहले इयूरोपियन थे, जिन्हें कण्ठी-माला सहित वैष्णवके वेशमें वृन्दावनमें देखा गया था। उनकी असाधारण बुद्धि, और विद्वता और उनके विशुद्ध वैष्णवोचित आचार-विचार-से श्रीराधारमण मन्दिरके गोस्वामीगण उनसे विशेष रूपसे प्रभावित थे। उन्हें अधिकारी जान उन्होंने उनके श्रीराधारमणके मन्दिरमें प्रवेश कर श्रीराधारमणके दर्शन करनेमें भी कोई आपत्ति नहीं की थी। उसका वृन्दावनके कुछ वैष्णवोंने विरोध भी किया था। पर विरोध शीघ्र शान्त हो गया था। इतना ही नहीं, उनके सम्मानमें गोस्वामी श्रीबनमाली लालाजीकी अध्यक्षतामें एक सभाकी गयी थी, जिसमें उन्हें उपाधि-पत्र प्रदान किया गया था और 'गौर-प्रेम-निधि'की उपाधि दी गयी थी। कृष्णप्रेम शायद पहले इयूरोपियन थे, जिन्हें किसी हिन्दू-मन्दिरमें प्रवेश दिया गया था और जिनका वैष्णव-समाजमें इस प्रकार सम्मान किया गया था।

'गौर-प्रेम-निधि'की इस उपाधिके पीछे एक रहस्य है, जिसका श्रीबालकृष्ण गोस्वामीजीने अपनी डायरीमें उद्घाटन किया है। कृष्णप्रेम पहले श्रीगौरांगमहाप्रभुको श्रीकृष्णका अवतार नहीं मानते थे। उनकी धारणा थी कि सम्प्रदायके लोगोंने उन्हें अवतार बना दिया है। उन्होंने संकल्प किया था कि गौड़ीय-सम्प्रदायके अन्तरभुक्त होते हुए भी वे तब तक उन्हें अवतार न मानेंगे, जब तक उन्हें श्रीकृष्णसे हो इस सम्बन्धमें कोई संकेत प्राप्त न हो। फलस्वरूप भक्तवाञ्छाकल्पतरु-श्रीकृष्णने स्वप्नमें दर्शन देकर उनसे कहा था—'जो मैं हूँ वही श्रीचैतन्य-महाप्रभु हैं।' तभीसे उनके गौर-प्रेममें वृद्धि होने लगी थी और वे 'गौर-प्रेम-निधि' बन गये थे।

माँके अन्तर्धानके पश्चात् भी कृष्णप्रेम वृन्दावन जाते रहे। एक बार जब वे वृन्दावनमें थे, उनके साथ थीं मतिरानी, जिन्होंने अब उनसे मन्त्र-दीक्षा और संन्यास ले लिया था। काशीके डॉ० गोविन्दमोपाल मुखोपाध्यायको भी उन्होंने वहाँ बुला लिया था।

उसी समय डॉ० गोविन्दमोपालके बड़े भाई और कृष्णप्रेमके पुराने

बन्धुका टेलिग्राम आया। उसमें उन्होंने कृष्णप्रेममें अनुरोध किया था मित्तोला लौटते समय वैद्यनाथधाममें उनके पास होकर जानेका।

उनके पास जानेके लिए मतिरानी और डॉ० गोविन्दगोपालसे कृष्णप्रेम सोच-विचार कर रहे थे। हठात् वे उठ खड़े हुए और बोले—'रुको मैं अभी आता हूँ।'।

वे अपने कमरेमें चले गये। थोड़ी देर बाद आकर बोले—'माँका निर्देश प्राप्त हुआ है। उन्होंने कहा है—'तुरन्त मित्तोला चले जाओ। तुम्हारा वहाँ पहुँचना बहुत आवश्यक है।'।

तत्काल वे मित्तोला चले गये। देखा कि जिम पुजारीपर ठाकुरकी मेवा-पूजाका भार छोड़ गये थे, वह चला गया। यदि वे उस दिन वहाँ न पहुँचते, तो ठाकुरकी मेवा न हो सकती। शायद उन्हें उपवासी रहना पड़ता।

वृन्दावन आते-जाते कृष्णप्रेममें वृन्दावनीय राधा-भावका संचार हुआ। वे हर समय राधाका चिन्तन करते, राधाका कीर्तन करते, किसीको वृत्तान्त होता तो भी वृन्दावनके भक्तोंकी तरह 'जय-राधे' कहकर उसे सम्बोधन करते। राधारानीने भी अपना मारा स्नेह उनपर उड़ेल दिया। वे उनसे साक्षात् बातें करतीं। उन्हें आदेश-निर्देश देतीं।

इस सम्बन्धमें 'भारतेर साधक'के लेखक श्रीप्रमथनाथ भट्टाचार्यने अपने और कृष्णप्रेमके धनिष्ठ मित्र श्रीहेरम्बर मुखोपाध्यायकी आँखों देखी एक मनोज घटनाका वर्णन किया है।

भक्त सुनील और उनकी स्त्री आरती श्रीकृष्णप्रेमके शिष्य थे। सुनील इलाहबादमें किसी दफ्तरमें काम करते थे। बीच-बीचमें मित्तोला जा गुरुदेवका संग करते थे। एक बार वे और उनकी स्त्री दोनों बेचैन थे शीघ्र किसी प्रकार गुरुदेवके पास पहुँच जानेको। पर पैस थे नहीं टिकट खरीदने तकको। क्या करें, सोचते-सोचते स्त्री बोली—'लो, ये मेरे सोनेके कड़े देच डालो।'।

सोनेके कड़े बेचकर वे परमानन्दपूर्वक मित्तोला पहुँच गये। एक दिन कृष्णप्रेम ठाकुरकी सेवा-पूजा कर बाहर निकले। उनके हाथमें थे सोनेके दो कड़े। सुनील और आरतीके पास आकर स्निग्ध स्वरमें बोले—'आरती, बताओ तो, तुमने अपने सोनेके कड़े क्या किये? सच बताना।'।

आरती मुख नीचे कर खड़ी रहीं। कृष्णप्रेम मन्द-मन्द हँसते हुए बोले—

‘राधारानीने मुझे सब बता दिया है। तुम लोग यहाँ आनेकी छटपटीमें तुरन्त खर्च न जुटा सके। इसीलिए कड़े बेच दिये। राधारानीने मुझसे कहा है—‘मेरे हाथके कड़े खोलकर आरतीको दे दो। उसके नंगे हाथ अच्छे नहीं लगते।’

सन् १८४८ में कृष्णप्रेम दक्षिण भारतकी तीर्थ यात्राको निकले। पहले मद्रास और पाण्डचेरी होते हुए गये तिरुवन्नामलईमें रमण महर्षिके आश्रम। उस समय महर्षि अपनी कोचमें लेटे थे। उनके विस्फारित नेत्र रहस्यमय लोककी किसी दुर्ज्ञेय वस्तुपर टिके थे। मुखपर विराज रही थी अन्तरात्माकी परितृप्ति-सूचक अर्धस्फुट हँसी। चारों ओर बैठे भक्त नियमित ध्यान और जपमें रत थे। दर्शनार्थी निनिमेष आत्मज्ञानी महात्माकी ओर देख रहे थे।

कृष्णप्रेम भी प्रणाम कर एक ओर बैठ गये ध्यानकी मुद्रामें। थोड़ी ही देरमें वे एक दिव्य भावसे आविष्ट हो पड़े। अन्तर्लोकसे अस्फुट स्वरमें ध्वनित हुआ एक प्रश्न—‘कौन हो तुम ? कौन हो तुम ? क्या है तुम्हारा स्वरूप ?’

पहले उन्होंने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। पर जब बार-बार वही प्रश्न सुनायी पड़ने लगा, तो बोले—‘मैं हूँ कृष्णका नगण्य दास। इसके सिवा और कुछ नहीं।’

फिर ध्वनित हुआ दूसरा प्रश्न—‘कौन कृष्ण, कौन कृष्ण ?’

‘नन्दसुत कृष्ण, वंशीधारी, स्वयं श्रीभगवान् ।’

प्रश्नकर्ताने जब और प्रश्न कर इससे भी और पीछे उन्हें ठेलना चाहा, तो उन्होंने कृपाययी राधारानीकी शरण ली। राधारानीने उत्तर दिया—‘कृष्णको छोड़ और किसी वस्तुका अस्तित्व ही नहीं। तब उनका और परिचय क्या हो सकता है। कृष्णका परिचय कृष्ण ही दे सकते हैं। मनुष्यकी क्या क्षमता जो उनके सम्बन्धमें कुछ कह सके।’

दूसरे दिन प्रातः जब वे महर्षिके निकट बैठे थे, उन्होंने उनके प्रति घुमायी अपनी अतलस्पर्शी दृष्टि और कुछ देर नीरव रहकर हँस दिये। कृष्णप्रेम समझ गये कि पिछले दिन उनके अन्तरालमें जो प्रश्न उठे थे, उनके पीछे वे ही थे।

तब कृष्णप्रेमने मन-ही-मन प्रश्न किया—‘महापुरुष, अब आप बतायें आप कौन हैं और क्या है आपका स्वरूप ?’ उसी समय हठात् उनका स्थूल देह सबके

सामने पान्थमें विलीन हो गया। थोड़ी देरमें फिर सबने देखा कि वे अपने स्थानपर पूर्ववत् विराजमान कृष्णप्रेमकी ओर देखकर मुस्करा रहे हैं। कृष्णप्रेम समझ गये कि वे स्थूल-सूक्ष्मकी परिधिसे बाहर एक आत्म-ज्ञानी महापुरुष हैं।

जब श्रीकृष्णप्रेम महर्षिके आश्रमसे चले गये, तब उन्होंने अपने एक भक्तसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—

‘कृष्णप्रेममें एक ज्ञानी और भक्तका अद्भुत समावेश है।’

तिरुवन्नामलाईसे कृष्णप्रेम त्रिचनापल्ली होते हुए श्रीरंगम गये। वहाँ शेषशायी रंगनाथकी मूर्तिके दर्शन किये। उस समय उन्हें एक दिव्य अनुभूति हुई। उन्होंने वहाँसे लौटते समय पाण्डचेरीमें दिलीपरायसे उसका वर्णन किया। दिलीपरायके शब्दोंमें उन्होंने कहा—

‘वह एक अद्भुत दृश्य था दिलीप ! जैसे हो मैंने श्रीरंगनाथजीको दण्डवत्की मेरी बाह्य चेतना जाती रही और मैंने देखा—क्या बताऊँ दिलीप क्या देखा—ओह कैसा मनोरम ! कैसा आकर्षक ! मैं इन जड़ शब्दोंमें, मरे-मरे शब्दोंमें उस जीवित-ज्वलन्त दृश्यका कैसे वर्णन करूँ ?’

‘मैंने देखा एक तरल प्रकाशका अनन्त समुद्र। वह सृष्टिके पूर्वका जलधि था या क्या मैं नहीं जानता। देखते-देखते वह समुद्र प्रेमके निश्वाससे तरंगायित हुआ और उसकी नीली-नीली लहरोंमें एक-एककर निकल पड़े अनन्त शुभ्रवर्णके कमल ! प्रत्येक कमलपर दण्डायमान थे बंशी बजाते श्रीकृष्ण और मन्द-मन्द मुसकाती राधा ! ओ दिलीप ! क्या कहूँ ? वह कैसी सुषमा ! कैसी बंशी-ध्वनि ! कैसा राधारानीका छलकता प्रेम ! कैसी अपूर्व शान्ति ! कैसा अपूर्व आनन्द !’

जब वे यह कह रहे थे उनका कलेवर कम्पित हो रहा था और वाणी रुद्ध हो रही थी। प्रेमाश्रु उनके दोनों कपोलोंसे ढलककर वक्षस्थलको सिक्त कर रहे थे।

अपनी इस अनुभूतिका वर्णन करते हुए कृष्णप्रेम कहा करते—‘भारतके मन्दिर और सिद्धपीठ आध्यात्मिकताके एक-एक शक्ति-केन्द्र हैं। निष्ठाके साथ वहाँ रहकर यदि कोई साधना करे, तो फलकी प्राप्ति अवश्य होती है।

भारतके अन्तर्जीवनके सम्बन्धमें कृष्णप्रेमकी जैसी श्रद्धा थी, वैसी

स्वयं भारतवासियोंमें भी कम देखनेमें आती है। वे कहा करते—‘भारत ही विश्वका एक मात्र देश है, जहाँ दीर्घकालसे आज तक सिद्ध-साधकोंका राजत्व रहा है और जिसके कोटि-कोटि लोग उन्हें बराबर श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखते रहे हैं। साधकोंकी आत्मिक ज्योतिके परकोटेमें उसका आध्यात्मिक जीवन सुरक्षित रहा है। इधर प्रायः एक सौ वर्षमें भारतकी चिताधारासें कुछ परिवर्तन हुआ है। कुछ लोगोंने कहना प्रारम्भ किया है कि हिन्दू-धर्म मध्ययुगीय है, हिन्दुओंके देवी-देवताओंकी पूजा पेड़-पौधों और ईंट-पत्थरोंकी पूजा है और हिन्दू साधु-समाजके ऊपर अनावश्यक बोझ मात्र हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं, वे पाश्चात्य देशोंकी वैषयिक सफलताकी चका-चौंधसे मोहग्रस्त हैं। वे हमारी दयाके पात्र हैं। प्रसन्नताकी बात यह है कि ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है।भारतका साधारण व्यक्ति आज भी साधु-जीवनकी पवित्रताका सम्मान करता है, भक्ति और ज्ञानमें श्रद्धा रखता है। वह स्वयं भजन-साधन करे या न करे, जो लोग हजार-हजार वर्ष पुराने आत्मिक ऐश्वर्यको वहन करते हैं, उनके चरणोंमें प्रणत अवश्य होता है।’*

भारत पर जब चीनने आक्रमण किया, मिसेज सेनने उद्दिग्ग हो उनमें पूछा—‘आपकी क्या धारणा है, इस आक्रमणका क्या परिणाम होगा?’

कुछ देर नीरव रहकर उन्होंने शान्त भावसे आत्म-विश्वासके सुरमें कहा—‘आपको याद होगा कि कुरुक्षेत्रमें युद्धके समय अर्जुनको बध करनेके लिए अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र छोड़ा था। उससे रक्षा पानेका कोई भी उपाय न था। उस समय सारथी श्रीकृष्णने रथको अपने चरणोंसे दबा दिया था, जिससे रथका पहिया धँस गया था। रथ नीचा हो गया था और ब्रह्मास्त्र अर्जुनके सिरके ऊपरसे निकल गया था। मेरा विश्वास है कि किसी संकटमें श्रीकृष्ण भारतको अपने चरणतलमें इसी प्रकार दबाकर सुरक्षित रखेंगे। भारतकी आत्माका विनाश कभी नहीं होगा।’

भारतीय धर्म और संस्कृतिमें आस्था रखनेके कारण कृष्णप्रेमको कभी-कभी कटु वाक्य सुनने पड़ते थे। एक बार वे मद्रास जा रहे थे। गाड़ीके डिब्बेमें एक ओर बैठी थी एक एंग्लोइण्डियन महिला। वह बड़े ध्यानमें देख रही थी उन्हें और उनकी वेशभूषाको। मुण्डित मस्तक, लम्बी चुटिया,

* योगी कृष्णप्रेम; रेसिनि सेन्सेज : दिलीपकुमार राय

तिलक-कण्ठी, और गलेमें लटकी झोलीमें नित्य सेवित श्रीकृष्णके विग्रहको देख-देख वह मन-ही-मन कुड़ रही थी। देखते-देखते वह एकदम बिखर पड़ी—‘धर्मत्यागी, धर्मद्रोही कहींके ! तुम्हें शर्म नहीं आती पवित्र इसाई धर्म छोड़कर देश और स्वजनोंको छोड़कर यहाँके मूर्ख लोगोंका संग करते ?’

गाड़ीमें बैठे और लोग विरोधपूर्ण भंगीसे उसकी ओर लाकने लगे। कृष्णप्रेम नीरव रहकर मन्द-मन्द मुसकाते रहे।

उन्हें इस प्रकार मुसकाते देख वह झुंझलाकर बोली—‘मैं पूछती हूँ क्या पाया है तुमने अपना देश, धर्म और संस्कृति छोड़कर ?’

कृष्णप्रेमने ठाकुरकी निकाला झोलीसे और उन्हें हाथमें ले प्राण खोलकर हँसते हुए बोले—‘मैडम, पाया है इसे, अपने कृष्णको।’

महिला और कुछ न कह सकी। पीठ फेरकर खिड़कीकी ओर देखने लगी।

कृष्णप्रेमकी जीवन-नैया अब धीरे-धीरे मत्तध्य स्थानके निकट पहुँच रही थी। हुक्मर्माकी बीमारीसे उनका शरीर दुर्बल होने लगा था। चिकित्साके लिए कोई कहता तो वे हँसकर कहते—‘सदासे ठाकुर ही तो हैं मेरे डॉक्टर। अब और कौन-से डॉक्टरपर जाऊँ !’

भक्तोंने एक बार कहा—‘ठाकुर और राधारानीसे आपने कितनी बार क्या-क्या कहा है। उन्होंने कभी आपकी अनसुनी की है ? इस बार उनसे कहिये न कि आपको ठीक कर दें।’

‘तुम उनसे आयु बढ़ानेके लिए कहनेकी कह रहे ही ? एकबार तो उन्होंने आयु बढ़ा ही दी। उसीकी म्याद न अभी तक चल रही है’ उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया।

म्याद पूरी होनेमें अब बहुत समय तो था नहीं। १४ नवम्बर सन् १९६५ में कृष्णप्रेमने कृष्णप्रेम-समुद्रमें ऐसी डुबकी ली कि फिर उन्हें निकलते किसीने नहीं देखा। वे निकले दूर एक ऐसे स्थानपर जाकर, जहाँ राधा-कृष्ण तटपर खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे अपने सुकोमल हाथोंसे उन्हें अपने निकट खींच लेनेके लिए !

श्रीकृष्णप्रेम शायद पहले अंग्रेज थे, जिन्होंने हिन्दू-धर्म-शास्त्रोंका गम्भीर अध्ययन ही नहीं किया, उनके अनुरूप साधनाके द्वारा परात्पर तत्व

श्रीराधा-कृष्णका साक्षात्कार किया, उनके प्रेमकी उपलब्धि की और विश्वको उसका सन्देश दिया ।

उनके तीन ग्रन्थ हैं, जिनके द्वारा आज भी उनका सन्देश देश-विदेशके मुमुक्षुओं तक पहुँच कर उनके कल्याणका पथ प्रशस्त कर रहा है । वे हैं—

(1) Search for Truth

(2) Yoga of Bhagavat-gita

(3) Yoga of Kathopanisd

इनके अतिरिक्त Aryan Path और 'कल्याण' आदि पत्रिकाओंमें छपे उनके लेखों और श्रीदिलीपकुमार राय द्वारा प्रकाशित उनके पत्रोंसे भी लोगोंको प्रेरणा मिलती है ।

ऐसे बहुतसे यूरोपियन और अमेरिकन भाग्यवान् व्यक्ति हैं, जिन्होंने कृष्णप्रेमके व्यक्तित्वसे प्रभावित हो उनसे शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की । पर आश्चर्यकी बात यह है कि उनके भारतीय शिष्यों और भक्तोंकी संख्या उनसे भी अधिक है । विदेशी जिज्ञासुओंको भारतीय सन्तोंसे दीक्षा लेते तो बहुत देखा गया है । पर किसी विदेशी सन्तसे भारतीय व्यक्तियोंको दीक्षित होते जायद हो कभी देखा गया हो । वास्तवमें वे विदेशी तो नामके ही थे । पूर्वजन्मके संस्कारों और इस जन्मकी अपनी उपलब्धियोंसे वे साधारण भारतीयसे भी कहीं अधिक भारतीय थे ।

साधारण भारतीय मन्दिरमें प्रतिष्ठित भगवान्की मूर्तिको देखकर 'मूर्ति' कहता है, वर्षा ऋतुमें यमुना-जलको देख उसे गन्दा कहता है, ब्रजरज-को देख उसे मात्र धूल कहता है । कृष्णप्रेमके सामने यदि कोई ऐसे कहता, तो उन्हें आन्तरिक दुःख होता । मन्दिरमें भगवान्के सामने यदि कोई कहता—'कब दर्शन दोगे प्रभु ? तो वे क्रुद्ध हो कहते—'तुम प्रभुके दर्शन कर नहीं रहे हो ? यह क्या केवल एक मूर्ति है, जिसे देख रहे हो ? यदि तुम्हारी यही भावना है, यदि तुम उनके सामने खड़े उनके दर्शनसे अपनेको वंचित समझ रहे हो, तो तुम उनके दर्शनसे सदा वंचित रहोगे, यह जान लो ।'

यदि कोई यमुना-जलको गन्दा कहता, तो कहते—'अमृत भी कभी गन्दा होता है ?' यदि ब्रजरजकी कोई धूल समझकर उसकी उपेक्षा करना, तो कहते—'जिस रजकी स्वयं भगवान्ने अपने शरीरमें लपेटा है, जिसे भक्षण

कर उन्होंने आत्मसात किया है, उसे तुम साधारण धूल मानकर उसकी उपेक्षा करते हो ?'

एक बार वृन्दावनमें एक भिखारिन-भक्तने उनसे पूछा— 'प्रभु, मुझे आपके ठाकुर बहुत अच्छे लगते हैं। मैं उनके भोगके लिए कुछ लाऊँ तो आप ग्रहण करेंगे ?'

'क्यों नहीं ?' उन्होंने शीघ्र उत्तर दिया।

'तो बताइये आपके ठाकुरको क्या पसन्द है ?, भिखारिनने प्रसन्न होकर पूछा।

'ठाकुर चना-चबेना बहुत पसन्द करता है।'

भिखारिन समझी कि उन्होंने बतानेमें संकोच किया। वह चना-चबेनाकी जगह बादाम ले आयी।

कृष्णप्रेम यह देखकर बोले— 'अच्छा, तुम बादाम ले आयी हो, तो इन्हें यमुना-जलमें पीस लो।'

श्रीकृष्णप्रेम उस समय जगन्नाथ घाटपर ठहरे थे। भिखारिनने वहींसे यमुना-जल लिया। घाटपर बैठकर एक ईंटसे यमुना-जलमें बादाम पीसे। पेय अपनी मैली-कुचैली धोतीके पल्लेमें छानकर कृष्णप्रेमको दे दिया। कृष्णप्रेमने ठाकुरको निवेदन कर उस मैले पेयका प्रेमसे पान किया।

यदि कोई उनके ही देशका व्यक्ति उनके इस कृत्यको देखता, तो क्या वह आश्चर्यसे यह कहे बगैर रह सकता कि इस पढ़े-लिखे अंग्रेजकी बुद्धिको क्या हो गया है, जो रास्तेमें पड़ी मैली-कुचैली ईंटमें पीसे गये और ऐसे मैले-कुचैले कपड़ेमें छाने गये पेयका पान कर रहा है ? पर कृष्णप्रेमके लिए न वह ईंट मैली थी न भिखारिनका आँचल। उनमें तो पवित्र ब्रजरज लिपटी हुई थी और पवित्र पेयमें था भिखारिनके कृष्णप्रेमका पुट, जिसने उसे और भी स्वादु बना दिया था।

कुछ लोगोंने वह दृश्य भी देखा है, जिसमें कृष्णप्रेमने इस भिखारिन कृष्ण-भक्त महिलाकी कुटियामें जाकर उससे कृष्ण-कीर्तन सुना और स्वयं कीर्तनके साथ-साथ दोनों भुजाएँ उठाकर भावपूर्ण मुद्रामें नृत्य किया।



श्रीस्वामी बलदेवदासजी

(वृन्दावन)

जगत्का नियम है—पहले साधन, पीछे सिद्धि; पहले कुआ खोदना, फिर पानी पीना । पर परमार्थ जगत्में कभी-कभी इसका उल्टा होता है—पहले सिद्धि होती है, पीछे साधना होती है । भगवान्के नित्य-सिद्ध या कृपा-सिद्ध भक्तोंके जीवनमें ऐसा हो होता है । उनके नित्य-सिद्ध परिकरोंको सिद्धिके लिए साधना नहीं करनी होती । सिद्धि तो उन्हें अनादिकालसे ही प्राप्त रहती है । वे जगत्में आविर्भूत होते हैं भगवद्दिच्छासे जगत्के जीवोंके लिए साधनाका आदर्श उपस्थित करने । कृपासिद्ध जीवोंको भी सिद्धि प्राप्त करनेके लिए साधना नहीं करनी होती । उनपर बिना साधनाके ही भगवत्कृपा बरस पड़ती है । सच तो यह है कि भगवत्कृपा साधन-सापेक्ष है ही नहीं । भगवान् परम स्वतन्त्र हैं । जिसपर इच्छा होती है कृपा करते हैं । कभी-कभी ऐसे व्यक्तिपर भी अनायास कृपा कर देते हैं, जिसने कोई साधन-भजन किया ही नहीं । पर जब उसके ऊपर कृपा हो जाती है, तब वह साधन-भजनके सिवा और कुछ करता ही नहीं । उसपर पहले कृपा होती है पीछे उसका भजन होता है । श्रीस्वामी बलदेवदासजीके जीवनमें भी ऐसा ही हुआ । उन्हें बाल्यावस्थामें ही पहले भगवत्प्राप्ति हुई । फिर अबाध गतिसे वह चली उनके भजन-साधनमय पावन जीवनकी निर्मल धारा ।

ब्रजके किसी ब्राह्मण परिवारमें जन्म लेकर वे आठ वर्षकी अवस्थामें ही बड़े भाईकी मृत्युके पश्चात् वीतराग हो घरसे निकल पड़े और द्वारिका जानेवाले साधुओंकी मण्डलीके साथ हो लिये । द्वारिकामें जब रणछोरजीके मन्दिरमें गये, रणछोरजीका भोग लग रहा था । मन्दिरके दरवाजेपर परदा पड़ा हुआ था और पुजारी जगमोहनमें इधर-उधर डोल रहा था । उस समय बलदेवदासजीको एकाएक न जाने कैसा आवेश हुआ, वे पुजारीकी पीठ मुड़ते ही परदा उठाकर मन्दिरके भीतर घुस गये । वहाँ उन्हें रणछोरजीके साक्षात् दर्शन हुए । उन्होंने देखा कि मूर्तिरूपमें तो वे सिंहासनपर विराजमान हैं और प्रत्यक्षरूपमें नीचे बैठे भोग आरोग रहे हैं । वे तन्मय ही, उनका रूप निहारते रहे । थोड़ी देरमें जब भोग आरोगनेवाले स्वरूप अन्तर्धान हो गये,

वे भी चूपकेसे बाहर निकल आये। उन्हें न मन्दिरके भीतर जाते किसीने देखा, न बाहर आते। इसलिए किसीके द्वारा रोक-टोक या डाँट-फटकार भी नहीं की गयी। जिसे 'रणछोरजी स्वयं भीतर बुलाकर दर्शन देना चाहें और जिसका मार्ग उनकी शक्ति योगमाया अपने-आप प्रशस्त कर दें, उसे किसीके द्वारा रोका जाना सम्भव हो कब है ?

उसी दिन रातमें रणछोरजीने बलदेवदासजीको स्वप्नमें आज्ञा की—'दिल्लीके निकट लुकसर ग्राममें ठाकुरदास मेरा परम भक्त रहता है। उससे जाकर दीक्षा लो और वह जिस रीतिसे उपदेश करे, उस रीतिसे भजन करो।' उधर ठाकुरदासजीको भी उन्होंने इसी प्रकार आज्ञा देकर कहा—'मेरा भक्त बलदेवदास तुम्हारे पास आ रहा है। बालक जानकर उसकी उपेक्षा न करना। उसे दीक्षा देकर भजनकी रीति बता देना।'

रणछोरजीने जिसके लिए इतना किया, उसका दिल्लीका मार्ग भी अपने-आप प्रशस्त हो जाना था। द्वारिकाजीमें बालक बलदेवदासकी भेंट हुई कुछ चरणदासी सन्तोंसे, जो दिल्ली जा रहे थे। उन्होंने प्रेमसे उसे ठाकुरदासजीके पास ले चलनेका आश्वासन दिया। वह उनके साथ वहाँ पहुँच गया। उसे देखते ही ठाकुरदासजीने कहा—'आओ वत्स, मैं तुम्हारी प्रतीक्षामें था' और उसे हृदयसे लगा लिया। मन्त्र-दीक्षा देकर भजनकी रीतिका उपदेश किया।

बलदेवदासजी उनके पास रहकर उनकी और उनके ठाकुर श्रीयुगलबिहारीजीकी तन-मनसे सेवा करने लगे। उस अल्पावस्थामें ही उन्होंने ठाकुर-सेवाकी सारी विधि सीख ली। युगलबिहारीजीकी रसोई भी वह स्वयं बनाने लगे।

ठाकुरदासजी एक उच्चकोटिके सन्त थे। उनके सम्बन्धमें एक घटना प्रसिद्ध है। एक बार उनके आश्रममें एक अभ्यागतका अचानक देहान्त हो गया। पुलिसने आश्रमवासियोंकी परेशान करना शुरू किया। उस समय ठाकुरदासजीने मुर्देको अपनी खड़ाऊँसे ठोकर मारते हुए कहा—'उठ, ऐसे क्यों पड़ा है साधुओंको परेशान करनेके लिए।' वह झट उठ खड़ा हुआ। तभीसे लोग उन्हें एक सिद्ध सन्तके रूपमें जानने लगे।

वे मानसी सेवामें दो-दो दिन एक ही आसनपर बैठे रह जाते। उन्हें देहकी बिल्कुल सुध न रहती। प्रसाद-सेवन करते समय वे कभी रोदन

करने लगते, कभी बहुत प्रसन्न होने लगते। बलदेवदासजी यह देखकर विस्मयमें डूब जाते। जब वे उनसे इसका कारण पूछते, तो वे टाल जाते। एक दिन उन्होंने इसका रहस्य जाननेका बहुत हठ किया। तब ठाकुरदासजीने कहा—‘जब मैं भोजन करता हूँ, तब गोपालजी भी मेरे साथ बैठकर मेरे थालमें-से भोजन करने लगते हैं। मैं कभी यह सोचकर रो देता हूँ कि गोपालजी मेरा जूठा खाते हैं, कभी यह सोचकर प्रसन्न होता हूँ कि वे मुझमें कितना प्रेम करने हैं।’ ठाकुरदासजी बलदेवदासजीको अपने इस प्रकारके अनुभवोंकी बातें अकसर बताया करते। बलदेवदासजीपर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उनका भक्तिभाव गुरुदेवके सान्निध्यमें दिन-पर-दिन बढ़ता गया। वे भी गुरुदेवकी तरह मानसिक चिन्तनमें लीन रहने लगे।

कुछ दिन पश्चात् ठाकुरदासजी धाम पधार गये। बलदेवदासजी उनके स्थानके महन्त हुए। महन्ताईका भार वे अधिक दिन तक न झेल सके। उसे अपने गुरुभाई श्रीध्यानदासजीपर डाल केवल गुरुदेवकी खड़ाऊँ लेकर वे भ्रमणके लिए निकल पड़े। चारों धामोंकी यात्रा की। उसके पश्चात् अधिकतर वृन्दावनमें कालीयदहपर या व्यास घेरेमें सन्त गोविन्ददासजीके पास रहने लगे। उन्होंने अपने लिए कभी किसी कुटियाका निर्माण नहीं किया।

उन दिनों शुक-सम्प्रदायके दिल्ली गुरुद्वारेके रसिक मन्त श्रीमोहनदासजी जिनका ‘प्रेम पर्योधि’ नामका ग्रन्थ है, वृन्दावनके युगल घाटपर खालियर वाले प्राचीन मन्दिरमें आकर रहा करते। उनका संग बलदेवदासजी अधिक-से-अधिक करते और उसमें अनिर्वचनीय सुखका अनुभव करते। दोनों मन्त प्रिया-प्रियतमकी रसमयी बातें करने-करने भाव-समाधिमें डूब जाते।

बलदेवदासजी नित्य प्रातः ३ बजे वृन्दावनकी परिक्रमाको जाया करने। एक दिन परिक्रमाके मार्गमें उन्होंने देखा कि एक जगह बड़ा भण्डारा हो रहा है और बहुत-से साधु बैठे प्रसाद पा रहे हैं। उन्होंने बलदेवदासजीमें भी प्रसाद पानेको कहा। बलदेवदासजीने कहा—‘मैं इस समय प्रसाद नहीं पाऊँगा।’

‘तो पगेमा लेते जाओ’, उन्होंने आग्रह करते हुए कहा। बलदेवदासजीने परोसा अंगोष्ठमें बाँध लिया। कुटियापर पहुँच कर नित्य-नियमसे निवृत्त हो जब अँगोछा खोला, तो यह देखकर वे आश्चर्यचकित हुए

कि उसमें अखाद्य भरा है । उन्होंने अँगोछे सहित उसे फेंक दिया और फिरसे यमुना-स्नान कर अपने आपको पवित्र किया ।

दूसरे दिन जब वे फिर परिक्रमाको गये, तो साधु-रूपमें उन भूतोंकी मण्डलीसे फिर उनकी भेंट हुई । वे कौतूहलवश रुककर उनसे बातें करने लगे । उन्होंने कहा—‘क्या तुम बता सकते हो, तुम्हारी ऐसी गति क्यों हुई ?’

उत्तरमें उन्होंने कहा—‘हम वृन्दावनके ही हैं । हमने ठाकुर-सेवाके लिए प्राप्त धन और सामग्रीका स्वयं उपभोग किया था । इसलिए हमें यह योनि प्राप्त हुई है । वृन्दावनमें रहनेके कारण यमराजका हमारे ऊपर अधिकार नहीं था । वे हमें न ले जा सके । इसलिए धाममें रहकर ही हम भूतेश्वरके शासनमें अपने कियेका फल भोग रहे हैं ।’

बलदेवदासजी अच्छे संगीतज्ञ थे । वे नित्य तानपूरेपर आवेशमें देर तक ठाकुरजीके सामने गान करते थे । श्रीमद्भागवतका नित्य पाठ करते थे और एक हजार दानोंकी तुलसीकी मालापर नाम-जप करते थे । जपके साथ प्रेम-मञ्जरीके आनुगत्यमें मानसिक-स्मरण करते थे । व्रजकी लताओंके नीचे बैठकर लीला-स्मरण करना उन्हें बहुत अच्छा लगता था । कभी-कभी किसी लताके नीचे बैठकर स्मरण करते उन्हें सारा दिन बीत जाता था । क्षुधा-तृष्णाका भी लोप हो जाता था ।

एक बार वे बरसाने गये हुए थे । वहाँ विलासगढ़के निकट लताओंके नीचे बैठे भजन कर रहे थे । भजनमें इतना आवेश हो गया कि वे लगातार तीन दिन तक उसी स्थानपर बैठे भजन करते रहे । उनकी अयाचक वृत्ति थी । किसीसे खानेके लिए कुछ माँगनेका प्रश्न ही न था । किसीके यहाँ जाकर उन्हें कुछ दे आनेका भी प्रश्न नहीं था, क्योंकि उनका किसीकी पता ही न था । उस समय श्रीराधारानीने पुजारीसे स्वप्नमें कहा—‘मेरा अनन्य भक्त बलदेवदास विलासगढ़के निकट तीन दिनसे भूखा पड़ा है । उसे मेरा प्रसाद पहुँचा दो ।’ पुजारीने तुरन्त श्रीजीकी आज्ञाका पालन किया ।

बलदेवदासजीने प्रेमाश्रु विसर्जन करते हुए श्रीजीका प्रसाद प्रेमसे ग्रहण किया । फिर प्रतिष्ठाके भयसे तुरन्त उस स्थानको छोड़ वे गहवरवन चले गये । वहाँ एकान्तमें रो-रोकर श्रीजीसे कहने लगे—‘हाय, कृष्णामगी ! तुम इस अधमपर इतनी कृपा करती हो । फिर अदृश्य रहकर बिरहकी वेदना क्यों देती हो ? परोक्षमें कृपाकर उत्कण्ठाका वर्धन करती हो । प्रत्यक्षमें दूर

रहकर प्राणोंका मर्दन करती हो। कब तक इस तरह प्यास बढ़ाकर बिना बुझाये तड़पाती रहोगी स्वामिनी ?'

इस प्रकार मन-ही-मन जब वे आक्षेप कर रहे थे, उन्होंने राधारानोंको देखा सखियों सहित वन-बिहारमें फूल चयन करते और उनकी ओर प्यारसे दृष्टि फेरकर कहते—'मैं दूर कब हूँ तुझसे पगली ?'

तभीसे उनकी स्वरूप-सिद्धि हो गयी और वे सिद्ध देहसे मञ्जरी रूपमें राधा-कृष्णकी अष्टकालीन-सेवामें तल्लीन रहने लगे। बाहरी-सेवा-पूजा उन्हें कुछ भार-स्वरूप लगने लगी। वे किसी योग्य शिष्यकी कामना करने लगे जिसे अपने ठाकुर और गुरुदेवकी पादुका सौंप सकें। उसी समय उन्हें श्रीजीकी प्रेरणा हुई अलवरके पास बहादुरपुर जानेकी, जहाँ चरणदासी सन्त श्रीडण्डीजी रामजीका स्थान और उनके बिहारीजीका मन्दिर है। वहाँ श्रीशिवदयालजी नामके एक नवकिशोर अपनी ननिहालमें रहकर विद्याध्ययन करते थे। उनकी बिहारीजीके मन्दिरमें बलदेवदासजीसे भेंट हुई। बलदेवदासजी जान गये कि उनके द्वारा भविष्यमें चरणदासी सम्प्रदायका विशेष उत्कर्ष होगा। इसलिए उन्हें शिष्य बनाकर और उन्हींको अपने ठाकुर और गुरुदेवकी पादुका सौंपकर वे निश्चिन्त हुए। वहीं श्रीसरसमाधुरी शरणजीके नामसे चरणदासी सम्प्रदायमें एक प्रसिद्ध रसिक सन्त हो गये हैं।

गुरुदेवकी पादुका और अपने सेवित श्रीविग्रहको सरसमाधुरीजीको सौंप देनेके पश्चात् अब उनके पास अपने शरीरके सिवा और कुछ न रह गया। सरसमाधुरी शरणजीको अपनी इस अलौकिक सम्पत्तिको सौंप देना इस बातका संकेत था कि वे शरीरको भी वसुन्धराको सौंपकर अपनी लीला संवरण करने जा रहे हैं। तदनुसार सं० १६५८, आषाढ़ सुदी नवमीको उन्होंने अपनी लौकिक लीला संवरण कर राधा-कृष्णकी दिव्य लीलामें प्रवेश किया।^१



श्रीस्वामी रूपमाधुरीशरणजी

(वृन्दावन)

श्रीस्वामी रूपमाधुरीशरणजीका जन्म संवत् १८५५ में ज्येष्ठ मासकी शुक्ला नवमीको जयपुरके एक कुलीन माहेश्वरी तोपनीवाल वंशमें हुआ। आपके पिताका नाम था श्रीदामोदरजी और माताका श्रीमती गणेशी देवी। दोनों बड़े धर्मपरायण और सत्संगी थे।

श्रीरूपमाधुरीजीकी प्रारम्भसे ही भजन-साधनमें विशेष रुचि थी। इसलिए उन्होंने शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। पर, उन्हें हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीका सामान्य ज्ञान था। उन्होंने अपनी शिक्षाके सम्बन्धमें लिखा है—

पढ़ो लिखो मैं कछु नहीं, मूरख हूँ मतिहीन।

हरिदासन को दास हूँ, रूप माधुरी दीन ॥

विद्यामें व्युत्पन्नता न होते हुए भी विद्याका जो चरम-फल है— सरलता, निश्छलता, विषय-वैराग्य, दैन्य और भक्ति—वह सब उनकी नैसर्गिक सम्पत्ति था। छोटी अवस्थामें ही उन्होंने शुक सम्प्रदायके प्रसिद्ध रसिक सन्त श्रीसरसमाधुरीजी महाराजसे दीक्षा प्राप्त कर ली और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हुए भक्ति-पथका पथिक बननेका निश्चय कर लिया। उन्होंने स्वयं तो भक्ति-पथका अवलम्बन किया ही, जयपुरके असंख्य लोगोंको भी उसपर ले चले। उनके प्रयाससे जयपुरमें भक्ति-मन्दाकिनी बह निकली। वे अपने निवास-स्थानपर प्रति गुरुवारको सत्संगका आयोजन करते। कभी-कभी नगर-कीर्तन द्वारा मोह-निद्रामें पड़े जयपुरवासियोंको झकझोर कर जगा देते, उनसे तुलसीदासकी निम्न पंक्तियोंको दोहराते हुए हरिनामका दीपक जलाकर अपने हृदयके अन्धकारको दूर करनेका आग्रह करते—

राम नाम मनिदीप धर जौह देहरी द्वार।

तुलसी भीतर बाहिर जौ चाहे उजियार ॥

उनकी गुरु-भक्ति सराहनीय थी। जयपुरमें ही शुक सम्प्रदायका एक

प्रमुख स्थान है, जहाँ श्रीसरसमाधुरीजी रहते थे। वे उनके सान्निध्यमें रहकर उनकी अधिक-से-अधिक सेवा करते। गुरु-स्थानके सभी उत्सवोंमें उनका महत्वपूर्ण योगदान होता। सरसमाधुरीजीके संगके प्रभावसे उनका सरस हृदय और अधिक सरस हो गया। वे राधा-कृष्णकी अष्टयाम-लीलाके चिन्तनमें तल्लीन रहने लगे।

गुरुदेवकी आज्ञामें उन्होंने श्रीगोपालमन्त्रके १८ पुरश्चरण किये। पुरश्चरणके दिनोंमें वे केवल दूध पीकर और मौन धारण कर रहते। गुरुवारकी सत्संगके समय मौन तोड़ देते। पुरश्चरणके समय एक दिन उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ। उन्होंने सुनी बहुत बाजोंकी गगनभेदी ध्वनि। वह ध्वनि धीरे-धीरे उनके घरके निकट आती जान पड़ी, जैसे कोई बड़ी बारात चली आ रही हो। थोड़ी देरमें उन्होंने देखा बाजोंके साथ एक देवी और उसके अनेक गणोंको घरके भीतर प्रवेश करते। देवी उनके सामने आकर खड़ी हो गयीं, उनका कुछ अनिष्ट करनेके उद्देश्यसे। पर वे निविघ्न मन्त्र-जप करने रहे। उसी समय अकस्मात् देवी और उसके गणोंमें भगदड़ मच गयी श्रीशुकदेवजीको आते देख। शुकदेवजीने पधार कर देवीसे तो उनकी रक्षा की ही, उनके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखकर आशीर्वाद भी दिया।

शुकदेवजीका आशीर्वाद प्राप्त करनेके पश्चात् उनका गृहस्थमें रहना असम्भव हो गया। उन्होंने शुक सम्प्रदायकी संगररकी गद्दीके महन्त श्रीबालमूकुन्ददास महाराजसे संन्यास-दीक्षा ली और शेष जीवन वृन्दावनमें एकान्त भजनमें व्यतीत करनेके उद्देश्यसे वृन्दावन चले गये। वहाँ युगलघाटपर 'सरजकुञ्ज'के नामसे एक स्थानका निर्माण किया। उसमें युगल सरकारकी प्रतिष्ठा कर उनकी रसमयी सेवाकी व्यवस्था की।

वृन्दावनमें भी वे भगवत्स्वरूपों और आचार्योंकी जयन्तियाँ बड़े उत्साहमें मनाते। सन्तोंकी सेवा भी खूब करते। पर यह सब करते हुए भी जगत्के प्रपंचमें दूरे रहते। एक पल भी बिना भजनके न जाने देते—

जग प्रपञ्च परस्यो नहि, करि वृन्दावन वास ।

निमिष न छोयो भजन बिन रूप माधुरी वास ॥

(श्रीजगदीश राठीर)

उन्होंने शुक सम्प्रदायकी श्रीरामसखीजीके अप्रकाशित (गुप्त)

वाणीग्रन्थ 'भक्तिरस मञ्जरी'का अपने गुरुजीके पास अध्ययन किया था। उसीके अनुसार वे प्रातः ३ बजेसे राधा-कृष्णकी अष्टयाम लीला-चिन्तनमें लगे रहते। साथ-साथ 'राधा' नामका जप करते। राधा-कृष्णके भक्त होते हुए भी वे राधारानीके अनन्य उपासक थे, जैसा कि राधाजीके प्रति उनके कुछ विनय-सूचक पदोंसे विदित है—

किशोरी मैं तो भली-बुरी सो तेरी।

अब जिन करो अबेर लड़ैती, रखियो चरणन नेरी।

अवगुण मेरे सकल बिसारो, जानि आपनी चेरी॥

भक्तिरस-मञ्जरीके अनुसार राधाजीकी उपासना ही सर्वोपरि है—

साधन एक अनूप है, सो मैं कहत सुनाय।

राधा, राधा भजन सम, दूजो नाहि उपाय॥ (भक्तिरस मञ्जरी)

श्रीरूपमाधुरीजी बोलते बहुत कम थे। खाते-पीते भी उतना ही थे, जितना शरीर धारण करनेके लिए नितान्त आवश्यक समझते थे। उनके स्थानमें जगह भी उतनी ही थी, जितनी उनके और उनके कुछ शिष्योंके रहनेके लिए आवश्यक थी। उसका विस्तार करनेके लिए जब कोई धन देना चाहता, तो उसे अस्वीकार कर देते। रातमें किसीको अपने स्थानपर टहरने न देते।

वृन्दावन आनेके पश्चात् उनका परिवार बहुत बड़ गया। अनेकों शिष्य हो गये। शिष्य-सेवक बराबर उनके स्थानपर जाते रहते। पर उनके आनेसे उनके अपने कार्यक्रममें कोई अन्तर न पड़ता। घड़ीकी सुईके अनुसार नियमित समयपर ठाकुर-सेवा, प्रसाद-सेवा, भजन-कीर्तनादि होता रहता। सभीको उसके अनुसार चलना पड़ता। प्रसादादिके समय यदि कोई न पहुँच पाता, तो उसने वंचित रहता। गरीब-अमीर, छोटे-बड़े सभीके साथ उनका व्यवहार एक-सा होता।

वे बड़े सत्संग-प्रेमी थे। साम्प्रदायिक भेद-भाव उनमें लेशमात्र भी न था। सभी सम्प्रदायोंके ऊँचे सन्तोंका वे सत्संग करते थे। गौड़ीय सम्प्रदायके पण्डित रामकृष्णदास बाबाजी, श्रीगौरांगदास बाबाजी, श्रीप्राणकृष्णदास बाबाजी, श्रीअवधदास बाबाजी, और निम्बार्क सम्प्रदायके श्रीहंसदासजी तथा प्रियाशरणजीसे उनकी विशेष प्रीति थी। उन्होंने 'श्रीनवसन्तमाल'

नामक अपने ग्रन्थमें ४१ सन्तोंका उल्लेख किया है, जिनका उन्होंने सत्संग किया । उनमें-से प्रत्येकका गुणगान करते हुए उन्होंने उनपर कवित्त लिखे हैं, जैसे श्रीगौरांगदास बाबाजीके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है—

रहते बंगदेश खास, अब कीनों ब्रजवास,

जिनकी बाणी रसरस, सन्त गौरांगदासजु ।

गौरहरि नित गावे, लाल-ललीको लड़ावे,

संग किये प्रेम प्यावे, छटी, मोह-भाया फाँस जु ।

राधा नामके उपासी सखीभाव सुखीरासी,

सेवा मानसी विलासी, सुख पावे गये पास जु ।

संपत्ति लाखनकी त्यागी, ऐसे भारी अनुरागी,

ये तो पूरे बड़भागी, बन्दे रूपदास जु ।

भजन और सत्संगके प्रभावसे रूपमाधुरीजीकी चित्तवृत्ति युगलके चरणोंमें अधिकाधिक लीन रहने लगी । धीरे-धीरे ऐसी स्थिति हो गयी कि सोते-जागते, चलते-फिरते हर समय युगलकी नयी-नयी रूपमाधुरीका सहज ही आस्वादन होने लगा—

सुरत भई सहजानन्दमई ॥ टेक ॥

या सुख आगे कहूँ कछु नाहीं, दुबिधा दूर भई ।

सोवत जागत, डोलत-बोलत, छिन-छिन मौज नई ॥

युगल लालकी सरस रूप छबि, मो उर माहिं छई ॥

‘रूपमाधुरी’ गुहू कृपा करि, ऐसी मौज बई ॥

उस समयकी उनकी अलौकिक स्थितिका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है उस समयकी एक-दो घटनाओंसे जो उनके द्वारा घटीं । श्रीसरसमाधुरीजीके शिष्य रांचीके श्रीरामचरणजी भाला उनमें गुरुबुद्धि रखते थे । जब सम्भव होता वे गुरुपूर्णमापर उनका पूजन करते थे । एक बार वे आषाढ़के महीनेमें सपरिवार वृन्दावन आये । गुरुपूर्णमासे कुछ पहले बिना किसीसे कुछ कहे वृन्दावनसे निकल पड़े मुजफ्फरनगरके निकट शुकताल जानेके उद्देश्यसे, जहाँ शुकदेवजीने राजा परीक्षितको भागवत सुनायी थी और श्रीशुक-सम्प्रदायके आचार्य श्रीचरणदासजी महाराजकी मन्त्र दिया था । वहाँ

श्रीशुकदेवजीके मन्दिरमें शुकदेवजीके दर्शनकर गुरुपूर्णिमा तक वे वृन्दावन लौट आना चाहते थे ।

उनकी पत्नी श्रीमती सूरजबाईको बहुत चिंता हुई । उन्होंने जब रूपमाधुरीजीसे उनके अकस्मात अन्तर्धान हो जानेकी बात कही, तो उन्होंने कहा—‘चिंता मत करो । वह शीघ्र आ जायगा ।’

पूर्णिमाके एक दिन पूर्व रामचरणजी मार्गमें किसी बीहड़ जंगलमें भटक गये । यह सोचकर कि अब वे गुरुपूर्णिमापर न तो शुकताल ही पहुँच सकेंगे, न श्रीरूपमाधुरीजीका पूजन कर सकेंगे, बहुत दुःखी होने लगे । उसी समय एक घुड़सवार वहाँ आ निकला । उसने पूछा—‘आप यहाँ कैसे भटक रहे हैं ?’ उन्होंने अपनी दुःखभरी कहानी कह सुनायी । तब घुड़सवारने कहा—‘आप चिंता न करें । मैं मथुराकी ओर ही जा रहा हूँ । कल प्रातः आपको वृन्दावन पहुँचा दूँगा ।’ वे उसके पीछे घोड़ेपर बैठ लिये और दूसरे दिन प्रातः वृन्दावन पहुँच गये । उन्हें देखते ही श्रीरूपमाधुरीजीने कहा—‘गुरु-पूजा वहीं क्यों न कर ली, जहाँ गया था ? जानता नहीं, तुझे यहाँ लानेके लिए ठाकुरजीको घुड़सवार भेजना पड़ा ।’

श्रीराधाकृष्णदासजी, जो आजकल श्रीरूपमाधुरीजीके स्थानके महन्त हैं, उस समय उनके ठाकुरकी सेवा किया करते थे । उन्हें हैजा हुआ और वृन्दावनके हैजा अस्पतालमें दाखिल किया गया । अस्पतालमें उनकी मृत्यु हो गयी । सन्ध्या समय अस्पतालसे रूपमाधुरीजीको खबर भेजी गयी । खबर पाकर वे बहुत दुःखी हुए । मन ही मन श्रीचरणदासजी महाराजसे कहने लगे—‘यह आपने क्या किया ? मेरी अवस्था ठाकुर-सेवा करने लायक है नहीं । अब सेवा कैसे होगी, आप जाने ।’ अस्पताल उन्होंने कहला दिया—‘इस समय मेरे पास आदमी हैं नहीं । प्रातः शवको उठानेकी व्यवस्था कर दी जायगी ।’ प्रातः जब लोग इस व्यवस्थामें लगे हुए थे, डाक्टरके यहाँसे संवाद आया—‘मरीज अब जीवित दीख रहा है । आप कोई व्यवस्था न करें ।’

कार्तिक कृष्ण १४ सम्बत् २०३२ को सतहत्तर वर्षकी आयुमें श्रीरूपमाधुरीजीने नित्य धाममें प्रवेश किया ।

उनके प्रमुख शिष्योंमें हैं श्रीराधाकृष्णदासजी और श्रीवंशीदासजी ।

उनकी वाणियोंका संग्रह ‘श्रीरूपमाधुरीजीकी वाणी’ के नामसे प्रकाशित

है । कई और भी छोटे-छोटे ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं, जिनमें मुख्य हैं—
(१) श्रीगुरुपरत्व, (२) श्रीशुकमहत्त्व, (३) चरणावत-वैष्णव-सदाचार,
(४) शुकसम्प्रदाय-रहस्य, (५) तिमिर-प्रकाश, (६) नवसन्तमाल ।



श्रीरामदास काठियाबाबा

(वृन्दावन)

उत्तराखण्डकी शीतकालीन अर्धरात्रि । पर्वतोंपर बरफ छायी हुई है । देवदार और चीड़के वृक्षोंकी शाखाओंसे बरफके कण टप-टपकर गिर रहे हैं धूनीके सामने ध्यानगमन बैठे एक महात्माकी झोंपड़ीपर । झोंपड़ीके द्वारपर नग्न खड़े एक नन्हीन तपस्वी थर-थर कांप रहे हैं । उनके कंपनका कारण बाहरकी शीत उतना नहीं है, जितना झोंपड़ीके भीतर बैठे महात्माका भय । वे उनसे कुछ कहना चाह रहे हैं, पर कहनेका साहस नहीं बटोर पा रहे हैं । आखिर उन्होंने डरते-डरते धीमे स्वरमें कहा—‘गुरुदेव, गुरुदेव !’

भीतरसे ध्वनित हुई गुरु गम्भीर कण्ठकी गर्जन—‘क्या है रे ?’

‘महाराज, मेरी धूनीकी अग्नि बुझ गयी है । अपनी धूनीमें कुछ देनेकी कृपा करें, तो जला लूं ।’

‘हूँ, अग्नि बुझ गयी है ! यह नहीं कहता कि मैं सो गया था । जागते रहनेमें कहीं अग्नि बुझती है ? ऐसे खाना और सोना था, तो माँ-बापको छोड़कर क्यों आया था ? जा अग्नि नहीं मिलेगी । शीतमें खड़ा रहकर अपने तामसी आलस्यका दण्ड भोग ।’

तरुण तपस्वी बहुत देर तक उस प्राणांतक शीतमें खड़े ठिठुरते रहे, तब हठात् झोंपड़ीका द्वार खुला । महात्माने अपनी धूनीमें-से कुछ अंगारे बाहर फेंकते हुए तीक्ष्ण कण्ठसे कहा—‘सावधान ! अब ऐसी त्रुटि कभी न हो ।’

नूतन समाधी प्राप्तकर तरुण तपस्वीने अपनी धूनी फिर प्रज्वलित की और ध्यानमें बैठ गये ।

झोंपड़ीके भीतर बैठे महात्मा हैं निम्बाकं सम्प्रदायकी नागाजीकी

शाखाके शक्तिशाली आचार्य श्रीदेवदासजी महाराज और तरुण संन्यासी हैं वृन्दावनके श्रीरामदास काठियाबाबा ।

श्रीरामदास बाबाने जन्म लिया अमृतसरसे २० कोस दूर लोनाचामारी ग्राममें एक ब्राह्मण परिवारमें । जब वे सात-आठ वर्षके ही थे, अपनी माँके साथ अपने घरके निकट एक परमहंस संन्यासीके आश्रम जाया करते थे । एक दिन उन्होंने परमहंसजीसे पूछा—‘महाराज, आप सबसे बड़े हैं । सब लोग आपको दण्डवत् करते हैं । आपकी सेवा-पूजा करते हैं । आप इतने बड़े कैसे हो गये ?’

परमहंस सात-आठ वर्षके इस बालकसे यह प्रश्न सुनकर चकित रह गये । प्यारसे उसकी ठोड़ी पकड़कर बोले—‘बेटा, मैं सदा परम पवित्र राम-नाम-जप करता हूँ । मंगलमय रामनामने ही मुझे छोटेसे बड़ा कर दिया है । तुम भी रामनाम-जप करो तो बड़े हो सकते हो ।’

उस दिनसे बालक रामदास घरकी भैंस चराने जाता, या घरके खेतोंकी रखवाली करता होता, तो बराबर रामनाम जपता रहता ।

उपनयन संस्कारके पश्चात् रामदासके पिताने उसे शास्त्राध्ययनके लिए निकटके एक ग्राममें एक आचार्यके घर भेज दिया । आठ-नी वर्ष गुरु-गृह रह विभिन्न शास्त्र-पाठ समाप्त करनेके पश्चात् जब वह घर लौटा तो पिता उसके विवाहकी व्यवस्था करने लगे । पर उसने विवाह करनेसे इन्कार कर दिया और आजन्म ब्रह्मचारी रहकर अध्यात्म-जीवन व्यतीत करनेके अपने संकल्पकी घोषणा की । आत्मीयजनोंकी भर्त्सना और उनके अश्रु उसे अपने संकल्पसे विच्युत न कर सके ।

ग्राममें एक विशाल बट-वृक्ष था । उसके नीचे बैठकर रामदासने गायत्री-मन्त्रका जप करना प्रारम्भ किया । उद्देश्य था गायत्री-मन्त्रमें सिद्धि प्राप्त करनेका । एक लाख जप समाप्त कर चुकनेके पश्चात् एक दिन सुनी एक दिव्य बाणी ‘वत्स, तुम अवशिष्ट पचीस हजार जप सम्पूर्ण करो जाश्रुत महातीर्थ ज्वालामुखीमें जाकर । तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी ।’

रामदासजी ज्वालामुखीकी ओर चल पड़े । पर मार्गमें उन्हें दर्शन हुए एक वृक्षके नीचे बैठे जटाजूटधारी दिव्य श्रीसंज्ञित एक संन्यासिक ।

अमोघ आकर्षण था उनका। उन्हें लगा कि वे न जाने कबके उनके अपने हैं। भावाविष्ट हो वे उनके चरणोंमें गिर पड़े। ज्वालामुखी जानेका अपना संकल्प त्याग दिया और व्यग्रभावसे महापुरुषके निकट मन्त्र और संन्यास-दीक्षा देनेका आग्रह करने लगे। शुभमुहूर्तमें महापुरुषने उन्हें दीक्षा देकर गार्हस्थ्यके बन्धनमें मुक्त किया।

पर रामदासजी माता-पिताके आग्रहमें घरसे बाहर ग्राममें ही एक बट-वृक्षके नीचे रहकर भजन करने लगे। एक दिन अर्धरात्रिके समय जब वे वृक्षके नीचे ध्यान और जपमें लीन थे, अकस्मान् आकाश-मण्डलसे एक स्वर्गीय ज्योति उद्भासित हुई। स्वयं गायत्रीदेवी तरुण संन्यासीके सम्मुख आविर्भूत होकर बोलीं—‘वत्स, तुम गायत्री मन्त्रमें सिद्ध हो गये। जिस वरकी इच्छा हो प्रार्थना करो।’

हाथ जोड़कर रामदासने उत्तर दिया—‘माँ, मैं संन्यासी हो गया हूँ। मेरी कामना-वासनाका अब प्रश्न ही क्या? मैं केवल यह प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे प्रति सदा प्रसन्न रहें।’

‘तथास्तु’ कह देवी अन्तर्धान हो गयी।

गुरुदेवकी आज्ञासे अब रामदासने सदाके लिए ग्राम छोड़कर परिव्राजकका जीवन प्रारम्भ किया। धूमते-धूमते एक दिन उन्होंने किसी राजाके राज्यमें प्रवेश किया। यहाँकी रानी एक रूपवती विधवा तरुणी थी। रामदासजी की महलमें बुलाकर वह उनकी सेवा करने लगी। धीरे-धीरे उनके प्रति आकृष्ट हो उसने एक दिन उनसे अपने मनकी बात कही। अपने यौवन और अपनी विपुल सम्पत्तिका भोग करनेके लिए उनसे बार-बार अनुरोध करने लगी। उसी क्षण वे राजप्रासादसे निकलकर राज्यकी सीमासे बाहर हो लिये।

परिव्रजन करते-करते रामदास उत्तराखण्डके गहन वनाञ्चलमें गुरुदेव श्रीदेवदासजीसे जा मिले। गुरुदेवकी एकनिष्ठ सेवामें उन्होंने आत्म-नियोग किया। उनके निर्देशमें कृच्छ्र साधनाके माध्यमसे आध्यात्मिक-जीवनके एक स्तरसे दूसरेपर आरोहण आरम्भ किया। गुरुदेवने उन्हें कभी पंचाग्निमें तपाकर, कभी प्रचण्ड शीतमें गलाकर, कभी एक आसनपर निराहार आठ-आठ दिन तक बैठा रहकर जपादि करनेकी आज्ञा देकर क्रमशः

आध्यात्मिक जीवनके उच्चतम शिखर तक उन्नत किया ।

देवदासजी अपरिमेय योगशक्तिके अधिकारी थे । उनकी योग-विभूतियाँ एक-एक कर रामदासके सामने उद्घाटित होने लगीं । उन्होंने देखा कि वे एक आसनपर छः महीने तक जड़-समाधिमें मग्न रहते हैं । उनका आहार है केवल धूनीकी भस्म मिला हुआ एक कमण्डलु जल, जिसे भी उलटीकर वे सबका-सब बाहर निकाल देते हैं । पर कभी-कभी, जब उनकी जठराग्नि प्रज्ज्वलित होती है, तो आधा मन दूध एक साथ गट-गटकर पी जानेपर भी उनकी क्षुधा शान्त नहीं होती ।

एक बार देवदासजी शिष्य-मण्डलीके साथ घूमते-घूमते मध्य भारतमें भूपालताल पहुँचे । भूपालतालके तीरपर अवस्थान कर उन्होंने शिष्योंको आज्ञा की कुछ दूर जाकर ठहर जानेकी । भूपालतालके उसपार था मुसलमान नवाबका विशाल महल । नवाबने भूपालतालके निकट शङ्ख-ध्वनि न करनेकी आज्ञा कर रखी थी और घोषणा कर रखी थी कि जो कोई इस आज्ञाकी अवहेलना करेगा, उसका सिर धड़से अलग कर दिया जायगा ।

देवदासजीने तालके किनारे खड़े होकर बार-बार घोर शङ्ख-निनाद आरम्भ किया । नवाबके पास सूचना पहुँचते ही उसने उनका सिर काट लानेकी आज्ञा दी । पर नवाबके अनुचर जब बाबाके आसनके निकट पहुँचे तो यह देखकर अवाक् रह गये कि वहाँ किसी जीवित साधुके स्थानपर है मात्र उसका खण्डित मस्तक और छिन्न-भिन्न अंग-प्रत्यंगोंका रक्ताक्त मभूह ।

अनुचरोंने जैसे ही नवाबको जाकर यह सूचना दी, फिर सुनायी पड़ने लगी वही प्रचण्ड शङ्ख-ध्वनि । इस बार जब प्रहरी वहाँ गये तो यह देखकर और भी विस्मयमें पड़ गये कि वह खण्डित मस्तक और छिन्न-भिन्न अंग-प्रत्यंग भी अब वहाँ नहीं है और रक्तपातका कोई चिह्न नहीं है ।

यह सूचना पाकर नवाबके मनमें भय और भक्तिका एक साथ संचार हुआ । वह जान गया कि यह किसी विशेष शक्तिधर महात्माका कार्य है । शीघ्र वह सेवकोंको लेकर स्वयं उस स्थानपर पहुँचा । यह देखकर अवाक् रह गया कि वहाँ एक जटाजूटधारी तेजोदीप्त सन्यासी ध्यानासनपर विराजमान हैं ।

योगीश्वरको प्रणाम कर नवाबने बार-बार क्षमा-प्रार्थना की । उन्होंने

प्रशान्त कण्ठसे कहा—‘देखो, तुम मुसलमान हो। अपने धर्मका आचरण करो। दूसरोंको भी अपने धर्मका आचरण करने दो। शङ्ख-घण्टा न बजाने देना दूसरोंके धर्ममें बाधा डालना है। अपनी इस अन्याय घोषणाको वापस लो।’

नवाबने योगीवरके आदेशको सानन्द स्वीकार किया। पीछे भूपालतीर-पर ही महात्मा देवदासजीने एक देव मन्दिरका निर्माण किया। रामदासजी उत्तरकालमें इस मन्दिरको अपना गुरुद्वारा कहा करते।

देवदासजीने एक दिन रामदासको आदेश दिया द्वारकाघाम दर्शन कर आनेका। वे गये द्वारकाघाम और इधर गुरुदेवने पार्थिव शरीर छोड़ दिया। द्वारकासे लौटकर जब उन्होंने गुरुदेवके शून्य आसनको देखा, तो उनके शोककी सीमा न रही। वे उन्मत्तप्राय हो गये और लगे रोदन करने और जटाजूट उत्पाटित करने। अनाहार, अनिद्रा और निरन्तर क्रन्दनमें सात दिन बीत गये। तब देवदासजीकी ज्योतिर्मय मूर्ति आविर्भूत हुई शोकार्त शिष्यके सामने। स्नेहभरे कण्ठसे सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा—‘बत्स, तुम क्यों इतना शोक करते हो ? मेरी मृत्यु कब हुई है ? केवल मर-जीवनकी मेरी लीला समाप्त हुई है। इससे मेरे और तुम्हारे बीच कुछ व्यवधान नहीं पड़ा है। मैं आवश्यकतानुसार तुम्हें बीच-बीचमें दर्शन देता रहूँगा। शान्त हो।’

इसी समयसे रामदासजीका श्रीरामदास काठियाबाबाके रूपमें अभ्युदय होने लगा। गुरुदेवने उन्हें एक काठका आड़बन्ध और लंगोट पहना दिया था। इसीसे उनका नाम पड़ा ‘काठियाबाबा’। उन्होंने उन्हें कृच्छ्र साधनाके दुर्गम पथसे ले जाकर एक ऐसे उन्नत स्थानपर खड़ाकर दिया था, जहाँ उन्हें उनकी सारी दैवी संपद् उत्तराधिकारमें प्राप्त हो गयी थी। उनके जीवनमें भी बहुत-सी ऐसी घटनाएँ घटने लगी थीं, जैसी गुरुदेवके जीवनमें घटा करती थीं।

एक बार वे एक ग्राममें पञ्चधूनि प्रज्ज्वलित कर ध्यानमें बैठे थे। उनके साथ थे एक और संन्यासी, जो उनकी ख्यातिके कारण उनसे ईर्ष्या करने लगे थे। उन्होंने ध्यानस्थ रामदास बाबाके चारों ओर सहस्रों उपलोकें ढेर लगाकर उनमें आग लगा दी। बाह्यज्ञान रहित बाबाके चारों ओर अग्नि धू-धूकर जलने लगी। संन्यासी लापता हो गये। ग्रामवासी अग्नि-शिखाओंको देख दौड़ पड़े। उनकी धारणा थी कि साधु बाबाका शरीर अवश्य भस्मीभूत

हो गया होगा । पर अग्नि निर्वापित करनेपर उन्होंने देखा एक आश्चर्यजनक दृश्य—काठियाबाबा योगयुक्त अवस्थामें प्रशान्त बदन अपने आसनपर बैठे हैं ! उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ है ।

किसीने उनसे इसका रहस्य पूछा, तो वे बोले—‘पंचधूनि जलाकर ध्यानमें बैठनेके पूर्व साधकको आत्मरक्षाका मन्त्र चैतन्य कर लेना होता है ।’ थोड़ी देर चुप रहकर फिर कुछ मुसकाते हुए बोले—‘जिसका देह अग्निमें दग्ध हो जाय, वह योगी नहीं है ।’

एक बार वे यमुनाके किनारे-किनारे आगराकी ओर चले जा रहे थे । उस समय सिपाहियोंका विद्रोह चल रहा था । गोरे सैनिकोंके एक जहाजने यमुनामें लंगर डाल रखा था । जटाजूटधारी काठियाबाबाको देख एक सैनिकने उनपर बन्दूक दाग दी । गोली उनके कानके पाससे निकल गयी । पर बावाने उधर भ्रूक्षेप भी नहीं किया । सैनिकने फिर बन्दूक उठायी । यह देख उन्होंने नेत्र बन्द किये और एक क्षणके लिए अन्तर्लीन हो न जाने क्या किया कि उसकी बन्दूक छूटकर यमुनामें जा गिरी । तब गोरे सैनिकोंकी आँखें खुलीं । उन्होंने समझ लिया कि वे कोई शक्तिधर महापुरुष हैं । उन्होंने जहाजसे उतरकर टोपी सिरसे उतारते हुए उनका अभिवादन किया और क्षमा माँगी ।

परिव्रजन करते हुए काठियाबाबा भरतपुर पहुँचे । वहाँ अनायास उनके जीवनकी सबसे महत्वपूर्ण घटना घटी । उन्हें सयलानिका कुण्डके निकट अपने उपास्यदेव श्रीरामचन्द्रके दर्शन हुए । उन्होंने स्वयं इसका वर्णन ‘इन शब्दोंमें किया है—

रामदासको राम मिला सयलानिका-कुण्डा ।

सन्तन तो सच्चा माने झूठा माने गुण्डा ॥

भरतपुरके ईश्वर-दर्शनके पश्चात् प्रारम्भ हुआ काठियाबाबाका आचार्य-जीवन । गरीबदास, भगवानदास, ठाकुरदास और नरोत्तमदास आदि उनके कई शिष्य हुए । धीरे-धीरे असंख्य शिष्योंने उनका आश्रय ग्रहण किया, जिनमें अधिकांश बँगला देशके थे । शिष्योंकी संख्या बढ़नेपर आवश्यक हो गया उनका कहीं आश्रम बनाकर स्थायी रूपसे रहना ।

उन्होंने वृन्दावनमें आश्रम बनानेका निश्चय किया । सर्वप्रथम वहाँ गङ्गाजीके कुञ्जके निकटवाले घाटपर बट-वृक्षके नीचे अपना आसन जमाया ।

कुछ दिन बाद कैमारवन अञ्चलमें एक बगीचेमें फूसकी झोंपड़ी बनाकर रहने लगे । धीरे-धीरे इस झोंपड़ीने एक विशाल आश्रमका रूप धारण किया, जो आजकल श्रीरामदास काठियावाबाके आश्रमके नामसे प्रसिद्ध है ।

शिष्योंके प्रति श्रीरामदास काठियाबाबाकी दृष्टि सदा तीक्ष्ण और सजग रहती । एक बार उनके शिष्य श्रीप्रेमदास उनका सान्निध्य त्यागकर कहीं अन्यत्र चले गये । कुछ दिन बाद अनुत्तम हो वे आश्रम लौटे । उस समय बाबा आसनपर लेटे विश्राम कर रहे थे । प्रेमदास उनके निकट जाकर बैठ गये और धीरे-धीरे पद-सेवा करने लगे ।

पर यह वे क्या देख रहे हैं ? उनका हाथ बाबाजीके चरणोंपर नहीं, शून्य शय्यापर पड़ रहा है । बाबा तो शय्यापर हैं ही नहीं ! गुरुजीके आकस्मिक अन्तर्धानसे उनका हृदय रो पड़ा । पर थोड़ी ही देरमें उन्होंने देखा कि उनका शरीर शय्यापर लौट आया है और वे पूर्ववत् निश्चल भावसे विश्राम करते हुए उनसे कह रहे हैं—‘बयों रे ? मेरे इस प्रकार चले जानेसे यदि तुझे सुख हो, तो मैं चला जाऊँ । इस बूढ़ेको छोड़कर यदि तू इधर-उधर भागता फिरेगा, तो इसकी सेवा कौन करेगा, बता ?’

प्रेमदास अबक् ! वे समझ गये कि महासमर्थ गुरुदेवके क्रिया-कलापको न समझनेके कारण उनका उन्हें छोड़ जाना उचित नहीं था । तबसे वे उन्हें छोड़कर फिर कहीं नहीं गये ।

सन्तदास काठियाबाबाके प्रधान शिष्य थे । उनका पूर्वाश्रमका नाम ताराकिशोर चौधरी था । वे एक वकील थे । उस समय उन्होंने बाबाके केवल दो-एक बार दर्शन किये थे, दीक्षा नहीं ली थी । बावाने उनसे कहा था रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें ध्यान करनेको । किन्तु पूर्व अभ्यासके कारण उनका उस समय जागना कठिन था । एक दिन शेषरात्रिमें जब वे सो रहे थे, उन्होंने सुना कि कोई कह रहा है—‘ओ रे, उठ, उठ ।’ उसी समय उनके ऊपर आ गिरा एक ईटका टुकड़ा । ताराकिशोर बाबू चौंककर उठ बैठे । देखा, मसहरीमें कहीं भी कोई फाँक या छेद नहीं है । फिर यह ईट कहाँसे आयी ? वे समझ गये कि यह बाबाकी अहैतुकी कृपाके सिवा और कुछ नहीं है । उस दिनसे वे शेषरात्रिमें उठकर ध्यान-भजन करने लगे ।

श्रीविजयलाल चट्टोपाध्याय ताराकिशोर बाबूके घनिष्ठ मित्र थे । एक दिन उनके बैठकखानेमें प्रवेश करते ही उन्होंने देखा दीवालपर लटका एक साधुका

चित्र । उन्होंने व्यग्र भावसे उनका परिचय पूछा । ताराकिशोर बाबूने कहा—
‘यह हैं मेरे गुरुदेव, वृन्दावनके प्रसिद्ध श्रीरामदास काठियावावा ।’

तब वे कहने लगे—‘मैं अभी स्वास्थ्य लाभ करनेके लिए साँओताल परगना गया था । मैं जहाँ ठहरा था उसके निकट एक अश्वत्थ-वृक्षके नीचे धूनीके सामने बैठे मैंने तीन दिन बराबर इन महात्माके दर्शन किये । मैं नित्य इनके पास जाता और यह कितना प्रसन्न होकर मेरा आदर-सत्कार करते और कितना कुछ प्यार भरा उपदेश करते ।’

पर उस समय काठियावावा अपने स्थूल देहसे वृन्दावन छोड़कर कहीं गये ही नहीं । कुछ दिन पश्चात् ताराकिशोर बाबूने वृन्दावन जाकर बाबासे इस सम्बन्धमें प्रश्न किया, तो वे बोले—‘बाबा, मेरे यहाँ रहते हुए भी बहुत बार मेरी इस मूर्तिके बहुत-से लोगोंको अन्य स्थानोंपर भी दर्शन होते हैं । इसका रहस्य तुम अभी न समझ सकोगे । पीछे सब जान जाओगे ।’

उस बार वृन्दावनमें कुम्भ मेला था । देश-देशान्तरसे सहस्रों वैष्णव व्रजधाममें आये हुए थे । सबके समर्थनसे श्रीश्री १०८ स्वामी रामदास काठियावावाको वृन्दावनके महन्त और कुम्भ मेलेके चारों सम्प्रदायके श्रीमहन्तके पदोंपर नियुक्त किया गया । प्रथानुसार वृन्दावनके महन्तको प्रत्येक कुम्भ मेलेमें जाना होता है । एक बार बाबा अपनी साधु-मण्डलीके साथ उज्जैनके कुम्भ मेलेमें जा रहे थे । मार्गमें उन्होंने देखा बहुत-से वैष्णव साधुओंकी जमातोंको मेला-क्षेत्रसे वापस लौटते । कारण पूछनेपर उन्होंने कहा—

‘मेलेमें एक शक्तिधर शैव-संन्यासी आये हैं । उनकी अलौकिक शक्ति और योग-विभूतियोंको देख उज्जैनके राजा उनके अनुगत हो गये हैं । इससे उत्साहित हो शैव-संन्यासियोंने सारे मेला-क्षेत्रपर अपना अधिकार जमा लिया है और वे वैष्णव-साधुओंको वहाँ नहीं ठहरने दे रहे हैं ।’

यह सुन बाबा क्रोधित हो उठे । उन्होंने कहा—‘तुम लोग वृथा ही साधु हुए हो । तुमने अपना सिर तो नीचा किया ही, इष्टदेव श्रीविष्णुकी मर्यादाकी हानि भी की । कुम्भ मेलेमें अपने अधिकारके लिए तुम्हें लड़ना चाहिये था । मर भी जाते तो क्या था । विष्णु भगवान्‌के लिए प्राण विसर्जन करते, तो उनके धामको ही तो जाते । तुम कापुरुष हो ।’

बाबाके तीक्ष्ण वाक्योंमें उद्बुद्ध हो सभी वैष्णव-साधु चल पड़े मेलेमें अपने स्थानपर अधिकार करने । आगे-आगे हाथीपर समासीन काठियाबाबा महाराज, पीछे-पीछे सहस्रों वैष्णव साधुओंकी फौज । लड़ाई-झगड़ेके लिए किसीके सामने आनेकी बात तो दूर, सब भयभीत हो उन स्थानोंको छोड़, जिनपर उन्होंने जबरदस्ती कब्जा करलिया था, अपने-अपने स्थानोंमें जा छिपे । न जाने यह काठियाबाबाकी अलौकिक शक्ति थी, या उनका बिछाया कोई इन्द्रजाल, जिसके कारण उनका विरोध करनेका किसीका साहस न हुआ ।

काठियाबाबा जैसे शक्तिशाली और पराक्रमी महात्मा थे, वैसे ही क्षमाशील भी । उनके आश्रमका रसोइया पुष्करदास बड़ा अर्थलोभी था । उन्हें अपने बाह्य आचरणमें पैसे-कौड़ीके मामलेमें कृपणताका अभिनय करते देख उसे भ्रम हो गया था कि बाबाने अपने आड़-बन्धमें बहुत-सी अशर्फियाँ छिपा रखी हैं । उसने उस धनके लोभसे दो बार उनकी हत्याका षड्यन्त्र किया पर वह सफल न हुआ । यह सब जानकर भी बाबाने उससे कुछ न कहा । अन्तिम बार उसने दो तोले आर्सेनिक विष रोटीमें मिलाकर उन्हें खिला दिया । बाबाको बहुत कष्ट हुआ । वे भूमिपर लोट-पोट होने लगे । पेट फूल जानेसे काठके आड़-बन्धका दबाव सहन करना कठिन हो गया । सेवकोंने उनकी अनुमति लेकर आड़-बन्ध काट दिया ।

उसी समय कलकत्तेमें विजयकृष्ण गोस्वामीने अपनी अन्तर्दृष्टिसे सब कुछ जानकर ताराकिशोर बाबूसे कहा—‘तुम्हारे गुरुदेवको किसी साधुने विष दिया है ।’ ताराकिशोर बाबू भागे आये वृन्दावन । वे यह देखकर चकित रह गये कि वहा पुष्करदास अब भी रोग-शय्यापर लेटे काठियाबाबाके पथ्यादिकी सब व्यवस्था कर रहा है ! उनसे न रहा गया । उन्होंने गरजकर कहा—‘बाबा, इस दुरात्माको इसी समय आश्रमसे दूर कर देना है ।’

काठियाबाबाने शान्त भावसे कहा—‘बेटा, अब इसका सब भ्रम जाता रहा । यह समझता था कि मेरे आड़-बन्धमें बहुत-सी अशर्फियाँ हैं । मुझे मारकर यह अशर्फियाँ लेना चाहता था । अब आड़-बन्ध कट गया है, और इसका भ्रम भी मिट गया है ।’

पर पुष्करदास स्वयं ही नतमस्तक सबके सामने आश्रमसे चला गया ।

काठियावावा शीघ्र पूर्ण स्वस्थ हो गये । उन शक्तिशाली महापुरुषके लिए रोटीमें विप मिला वैसा ही था जैसा आटेमें नमक मिलाना ।

वावाकी योग-शक्तिका तो लोगोंने बहुत बार अनुभव किया । पर इन असाधारण योग-विभूति-सम्पन्न महापुरुषके अन्तरमें जो प्रेमयमुनाकी गुप्त अमृतधारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती थी, उसका सन्धान पाना कठिन था । कभी-कभी, जब वह बाहर फूट पड़ती थी, उसे देख लोगोंको विस्मय होता था । उस दिन आश्रमके ठाकुर श्रीविहारीजी और श्रीराधिकाजीको लेकर वृन्दावनमें शोभायात्रा निकाली गयी । हठान् देखा गया कि काठियावावाके प्रत्येक रोमकूपमें प्रवाहित हो रही है स्वेदकी धारा । सन्तदासजी पंखा लेकर उन्हें हवा करने लगे । वावा बोले—‘बेटा, तुम जो समझ रहे हो, वह बात नहीं है । यह गरमीका पसीना नहीं है, जिसका पंखेकी हवासे निवारण किया जा सके । यह है एक प्रकारका प्रेम-ज्वर । मैंने आज श्रीराधाजीके श्रीविग्रहके चारों ओर व्रज-गोपिकाओके दर्शन किये हैं । तभीसे यह प्रेम-ज्वर हो गया है । ऐसा पहले भी कई बार हो चुका है । एक बार तो लगातार एक मास तक होता रहा । पर तब शरीरसे जल एक बिन्दु भी नहीं निकला, सारा शरीर प्रेम-ज्वरसे इतना उत्पन्न था । शरीरके रोम और जटा अहर्निश काँटेकी तरह खड़े रहते थे ।’

सन् १९१० के माघ मासकी अष्टमीकी मध्यरात्रिमें काठियावावा ने स्वस्थावस्थामें मेवक रामफलको बुलाकर पीनेके लिए पानी माँगा । पानी पीकर बोले—‘रामफल, ले भाई तेरे हाथका जल भी पी लिया । तू जाकर सो जा । हम भी अब जायेंगे ।’

रामफल उनके इंगितको न समझ सका । जाकर सो गया । थोड़ी देर बाद दो और मेवकोंकी निद्रा भंग हुई । दोनों यह देखकर विस्मयमें पड़ गये कि आश्रमका आँगन एक अपूर्व दिव्य ज्योतिसे परिपूर्ण है । उसी समय वे भागकर गये वावाके कक्षमें । देखा कि वे आसनपर निष्पन्द भावसे उपविष्ट हैं । पर श्वास-प्रश्वास बन्द है !

दो दिन बाद गुरुदेवके परलोक गमनका संवाद प्राप्त कर सन्तदासजी वृन्दावन पहुँचे । उन्होंने देखा कि काठियावावाके अदर्शनके कारण आश्रमकी गायें निरन्तर अश्रु बहा रही हैं और आश्रमके श्रीविग्रह श्रीराधिकाजीके कपोलोंसे भी टप-टप गिर रहा है उनका नयन-जल !

प्रथानुसार तेरहवें दिन बाबाका भण्डारा किया गया। उस दिन तक बराबर राधिकाजीके नेत्रोंसे अश्रुधार प्रवाहित होती रही और दोनों श्रीमूर्तियोंका मुख मलिन दीखता रहा। भण्डारेके पश्चात् राधाजीके अश्रु बन्द हुए और दोनों मूर्तियोंके मुखका मलिन भाव भी जाता रहा। कई दिन लगातार अश्रुधार बहते रहनेसे राधाजीके नेत्र कुछ विरूप हो गये। उन्हें बदलना पड़ा !



श्रीसन्तदास काठियाबाबा

(वृन्दावन)

सन् १९१५ का अगस्त मास था । कलकत्ता हाईकोर्टकी बार लायब्रेरीमें छोटे-बड़े सभी वकील उपस्थित हैं। आज ताराकिशोर बाबूकी विदा है। ताराकिशोर रासबिहारी घोषके पश्चात् कलकत्ता हाईकोर्टके सबसे बड़े वकील हैं। रासबिहारी बहुत वृद्ध होनेके कारण अब प्रैक्टिस छोड़नेवाले हैं। उनके पश्चात् ताराकिशोर बाबूको ही कलकत्ता हाईकोर्टके सबसे बड़े वकीलका स्थान ग्रहण करना है। पर ताराकिशोर बाबूकी उम्र दृष्टि बिल्कुल नहीं है। धन-सम्पत्ति, मान-सम्मान और भोग-विलासका अब उनके लिए मूल्य कुछ भी नहीं रहा है। वृन्दावन जाकर सदाके लिए श्रीगुरुदेवके चरणोंमें आत्म-विसर्जन करनेके लिए वे हृदयसंकल्प हैं। मुखपर एक अपूर्व स्मितकी आभा लिये वे लायब्रेरीमें विद्यमान हैं। सहयोगी वकीलों द्वारा अभिवादन और आर्लिगनका दौर चल रहा है। सबके हृदयमें एक अपूर्व आलोड़न है। सबके नेत्र सजल हैं।

वकीलोंकी भीड़ चीरते हुए श्रीरासबिहारी घोष आये और नीचे झुककर ताराकिशोर बाबूकी चरण-धूलि लेनेको हुए। उसी समय ताराकिशोर बाबूने उनके हाथ पकड़ लिये और व्याकुल कण्ठसे वे बोले—‘यह क्या कर रहे हैं आप ? वयोवृद्ध और सर्वसम्मानित होते हुए भी —……।’

‘ना, ना, ताराकिशोर। रोको नहीं, वयोवृद्ध होते हुए भी विवेक और बुद्धिमें मैं तुमसे बहुत छोटा हूँ। सत्य-असत्य, वस्तु-अवस्तुका ज्ञान मुझे अभी तक नहीं है। तुम्हें है, तभी न तुम भावी जीवनकी उन सारी सम्भावनाओंको



स्वामी सन्तदासजी, स्वामी रामदासजी,
स्वामी धम्मजय दासजी काठिया।

टुकराकर, जिनसे मैं अभी तक चिपका हुआ हूँ, वृन्दावनकी ओर अग्रसर ही रहे हो ।'

सन् १८५६ की १० जूनको ताराकिशोरने बंगालके श्रीहट्ट जिलेके वामे ग्राममें धर्मनिष्ठ जमींदार श्रीहरकिशोर चौधरीके पुत्ररूपमें जन्म लिया था । धनी घरानेके धार्मिक और आचारनिष्ठ परिवेशमें उनका लालन-पालन हुआ । क्रमशः एम. ए. पास कर अध्यापक बने । फिर कानूनकी परीक्षा पास की और वकालत करने लगे । धीरे-धीरे कलकत्ता हाईकोर्टके वकीलोंकी प्रथम श्रेणीमें उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया ।

पर वे केवल वकीलोंमें ही अग्रगण्य नहीं थे । बंगालके सामाजिक जीवन, राजनीति, जनकल्याण-साधन, ब्रह्मसमाज-आन्दोलन, कुसंस्कार विरोधी संग्राम आदि सभी क्षेत्रोंमें उनका स्थान सबसे आगेकी श्रेणीमें था ।

इतना सब होते हुए भी उनमें संसारसे अपने-आपको पृथक् रखनेकी विलक्षण शक्ति थी । उनका भजन-साधन, अबाध गतिसे चलता रहता था । भजन-साधन ही उनके जीवनका मुख्य अंग था । उनका वकालती पेशा और गार्हस्थ्य दोनों ही उनकी साधनाके आलोकसे उद्भासित थे । वकालतकी भी वे भगवत्-सेवाका एक क्षेत्र मानते थे । झूठे मुकदमे कभी हाथमें नहीं लेते थे । जिन मुकदमोंको लेते थे, उनमें उनकी जीत प्रायः निश्चित होती थी । अकसर विपक्षके वकीलोंकी अपने मुअक्किलोंसे कहते सुना जाता था—'तुम्हारा बेश तो जोरदार है, गवाह भी सब ठीक हैं, जीतना अवश्य चाहिये । पर उर और ताराकिशोर बाबू हैं और उनका आध्यात्मिक मनोबल । इसलिए निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता ।'

उनका घर जैसे बन्धु-बान्धवों और समाजकी सेवाका एक स्थायी केन्द्र था । कितने अनाथ और असहाय लोगोंके अन्धकारमय जीवनके वे आलोक थे । कितने भूखे-नंगे और समाज द्वारा अवहेलित लोगोंके वे एकमात्र आश्रय थे । उनकी कमाईका बहुत बड़ा भाग सेवा-कार्योंमें ही खर्च होता था । वे एक हाथसे कमाते थे, दूसरेसे खर्च करते थे । संचय करना तो जानते ही न थे ।

वे योग-साधना करते थे । योग-साधनामें उन्होंने असाधारण उन्नति की थी । इससे उन्हें जो शक्ति प्राप्त हुई थी, उसके सम्बन्धमें उन्होंने स्वयं लिखा है—'उस शक्तिके माध्यमसे मैंने केवल अपने दृष्टिपातसे किसी-किसी

रोगीको रोगमुक्त कर दिया । किसी-किसी हिस्टीरियाके रोगीका रोग केवल मेरा दर्शन करनेसे जाता रहा । बहुत-से लोग तो मेरा स्पर्श कर भावाविष्ट हो गये, मूर्च्छित तक हो गये । परन्तु इस शक्तिसे आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-दर्शनका मार्ग उद्घाटित नहीं हुआ । मैंने जान लिया कि इस मार्गसे मेरी अभीष्ट-सिद्धि न होगी । इसके लिए मुझे एक यथार्थ ब्रह्मज्ञ गुरुकी खोज करनी होगी । इसलिए सद्गुरु प्राप्त करनेकी चिन्तासे मैं व्याकुल हो उठा ।

ताराकिशोर नित्य गंगा-स्नान करने जाया करते । गंगा-तटपर बैठकर बहुत देर तक ध्यान-जपादि किया करते । उस दिन गंगाको सम्बोधन कर वे बड़े दुःखसे बार-बार कहने लगे—‘त्रितापनाशिनी, कलुषहारिणी माँ ! क्या मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि तुम्हारी त्रिलोक-पावनी धारा भी मुझे शुद्ध करने में असमर्थ है ?’

उसी समय दृष्टिके सामने आया एक अलौकिक दृश्य । उसके सम्बन्धमें उन्होंने इस प्रकार लिखा है—‘मेरे समक्ष प्रकाशित हुआ मूल गङ्गोत्रीका वह गोमुखी स्थान, जहाँसे गङ्गा निकली है । उस स्थानमें मैंने बंटे देखा श्रीउमा और महेश्वरको । मैं विस्मयपूर्वक उन्हें देखता रहा । महेश्वर देवने मुझें एक एकाक्षरी बीजमन्त्र प्रदान किया और कहा—‘इस मन्त्रके जपसे तुम्हें यथार्थ सद्गुरुकी प्राप्ति होगी ।’

ताराकिशोर वाबू उस मन्त्रका जप करते रहे । तीन वर्षके भीतर उन्हें सद्गुरुकी प्राप्ति हुई । एक दिन आषाढ़ भासकी रात्रिमें साधन-भजन कर चुकनेके पश्चात् वे छतपर सो रहे थे । हठात् नींद उचट गयी । वे शय्यापर उठकर बैठ गये । सामने देखा कि आकाश मार्गसे श्रीरामदास काठियावाबाकी ज्योतिर्मय मूर्ति धीरे-धीरे उनकी ओर अग्रसर हो रही है । उनके सामने आकर बाबाने उनके प्रति स्नेहभरे आश्वास-वचन कहे और उनके कानमें एक मन्त्र प्रदान कर आकाश पथसे कहीं चले गये ।

ताराकिशोर वाबू इसके पूर्व कई बार वृन्दावन जाकर काठियावाबाके दर्शन कर चुके थे । पर उनके मनमें उनके सम्बन्धमें नाना प्रकारके सन्देह बने हुए थे । इस बार उनके अन्तर्धानके पश्चात् उन्होंने अनुभव किया कि उनका प्रदत्त दीक्षा-बीज उनके अन्तरके प्रत्येक स्तरमें अनुप्रविष्ट हो गया है और उनके सम्बन्धमें सारे सन्देह विनष्ट हो गये हैं ।

श्रावण मासमें वे वृन्दावन गये। उन्होंने और उनकी स्त्रीने अनुष्ठानिक रीतिसे उनसे प्राप्त किया वही मन्त्र, जो उन्होंने अलौकिक रीतिसे उन्हें दिया था।

इसके पश्चात् कलकत्तेमें रहते हुए भी वृन्दावनवासी गुरुदेवकी कृपा उनके ऊपर समय-समयपर अलौकिक रीतिसे बरसकर उन्हें भजन-साधनके विषयमें सतर्क करती रही और नाना प्रकारकी विपदाओंसे उनकी रक्षा करती रही।

गुरुदेवने उन्हें शेषरात्रिमें जागकर भजन करनेकी आज्ञा दी थी। एक बार वे शेषरात्रिमें पड़े सो रहे थे। गुरुदेव सूक्ष्म देहसे उनके पास पहुँचे और धीरेसे ईंट मारकर उन्हें जगा दिया। तबसे फिर उन्होंने प्रातःकालीन भजनमें आलस्य नहीं किया।

तुलाराम नामका ताराकिशोरका नौकर एक दिन धूप-दीपकी व्यवस्था करने पूजा-घरमें गया। हठात् हाँफता-हाँफता बाहर आया और उनकी स्त्रीसे कहा—‘भाँजी, देखिये मैं जब धूप जलाने जा रहा था, गुरुदेवकी फोटो जैसी आकृतिका एक जटाजूटधारी बाबा न जाने कहाँसे आया और मेरे हाथमें धूपदानी छीनकर भाग गया। जाते समय रोषमें भरकर कहता गया—‘व्यों रे, तुम लोग नित्य मेरी फोटोके सामने आरती नहीं करते?’

बहुत चेष्टा करनेपर भी उस साधुका कहीं पता न लगा। धूपदानी पानीकी टंकीके एक कोनेमें पड़ी मिली। तबसे ताराकिशोर बाबूके घर नियमित रूपसे गुरुदेवकी फोटोके सामने सन्ध्या समय आरती और स्तवगान होने लगा।

ताराकिशोर बाबू श्रीहृद्-अञ्चलमें भ्रमण करते समय हाथीपर बैठे कच्चे रास्तेसे ससुराल जा रहे थे। हाथी ने एकदमसे दौड़ लगायी। सामने एक वृक्षकी डाल इस प्रकार झुक रही थी कि एक क्षणमें उससे टकराकर वे चकनाचूर हो जाते। पर न जाने कैसे हाथी महावत समेत उस डालको पार कर गया और किसीकी कोई क्षति न हुई। थोड़े दिन बाद ताराकिशोर बाबू वृन्दावन गये। सन्ध्या समय गुरुदेवके निकट चूपचाप बैठे थे। एकाएक वे बोले पड़े—‘पेड़की डाल तुम्हारा क्या करती? भगवान् जो हर समय तुम्हारे साथ रहकर तुम्हारी रक्षा करते हैं।’

एक दिन रातमें शयनघरमें प्रवेश करते ही ताराकिशोरने देखा कि श्रीकृष्णकी दिव्य ज्योतिर्मण्डित मूर्ति उनके सामने दण्डायमान है। उनकी मधुर हँसीके स्वर्गीय आलोकसे सारा घर उद्भाषित है। ताराकिशोरके हृदयमें एक अनिर्वचनीय आनन्दका स्रोत बह निकला। सारा जगत् आनन्दमय प्रतीत होने लगा। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उन्होंने साष्टांग दण्डवत् किया। उठे तो देखा कि वे अन्तर्धान हो गये हैं।

दूसरी बार जब वे वृन्दावन गये तो इस अप्राकृत दर्शनकी बात काठियाबाबासे कही। उन्होंने शिष्यको सतर्क करते हुए कहा—‘यह दर्शन बड़े भाग्यसे मिलता है। परन्तु यह दर्शन छाया दर्शन है। इसके पीछे और भी दर्शन है।’

गुरुदेवके अप्राकृत्यके पश्चात् ताराकिशोरका मन सब छोड़-छाड़कर स्थायी रूपसे वृन्दावनमें वास करनेके लिए छटपटाने लगा। उन्होंने निश्चय किया कि वे कंगाल वैष्णवके रूपमें गुरुदेवके आश्रममें रहेंगे और आश्रमके ठाकुर श्रीराधाबिहारीके लिए भिक्षास्र संग्रह कर उनकी सेवामें आत्मनियोग करेंगे।

उस दिन अब वे सदाके लिए हाईकोर्टसे विदा होकर घरपर आये, तो उनके सामने एक समस्या थी—जो लोग उनके सहारे जीवन-यापन करते हैं, वे उनके वृन्दावन चले जानेके पश्चात् क्या करेंगे? उन्हें देनेके लिए तो उनके पास विशेष कुछ था नहीं। उन्होंने तुरन्त कुछ हल सोच लिया। घरमें जितना भी कीमती सामान था, सब बेचकर थोड़ा-थोड़ा रुपया सबको दे दिया। जो सामान बचा वह भी उनमें बाँट दिया।

अब उनके पास वृन्दावनके लिए टिकट खरोदनेको भी पैसे न रहे। एक अन्तरङ्ग बन्धुने टिकट खरीद दिये। परन्ती सहित वे वृन्दावन जा पहुँचे। वृन्दावन पहुँचकर ताराकिशोर बाबू अब ताराकिशोर बाबू न रहे। गुरु-आश्रममें वे एक साधारण आश्रमिककी तरह रहने लगे। सारा दिन एकनिष्ठ हो साधन-भजन करते। साथ-साथ करते राधाबिहारीकी नियमित सेवा। उनकी रसोई बनाना, बरतन माँजना, सेवा-पूजा और शृङ्गारादि सब कुछ अपने हाथसे करते। अधिकतर मौन अवलम्बन कर रहते। प्रायः सारी रात ध्यान और जपमें व्यतीत करते। शेषरात्रिमें थोड़ा विश्राम करते। अन्तर्जीवनकी इस फेर-बदलके परिणामस्वरूप उनके चेहरेमें भी इतना परिवर्तन

हो गया कि उन्हें पहचानना मुश्किल हो गया। इसी समय उनके पूर्व परिचित एक सज्जन वृन्दावन आये। निम्बार्क आश्रममें जाकर उन्हींसे पूछने लगे—‘कलकत्तेके ताराकिशोर चौधरी संसार त्यागकर यहाँ आये हैं। वे किधर रहते हैं?’

उदासीन भावसे और सहज कण्ठसे उन्होंने उत्तर दिया—‘मॅशाय, तिनि तो मारा गिये छेने’। (महाशय, वे तो मर चुके हैं।) सचमुच पूर्व जीवनके ताराकिशोर बाबूका अब कुछ भी तो अवशिष्ट नहीं रहा था। उनकी स्मृति तकको वे पूर्णरूपसे भुला चुके थे।

वृन्दावनके ब्रजविदेही महन्त श्रीविष्णुदासजी उस समय महन्त पदको त्यागना चाहते थे। वैष्णव साधु-समाजको उनकी जगह किसी उपयुक्त साधुकी खोज थी। सबने स्थिर किया कि ताराकिशोरजी ही सब प्रकारसे इसके उपयुक्त हैं, यदि वे वैराग्य-आश्रम ग्रहणकर लें। पर ताराकिशोर इस गुस्तर दायित्वको ग्रहण करनेकी तैयार न थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि झूलन पूर्णिमाके दूसरे दिन इस प्रश्नको लेकर जो सभा होनेकी थी उसमें वे इसका डटकर विरोध करेंगे।

पर पूर्णिमाकी रात्रिको, जब ताराकिशोर ध्यानमें बैठे थे, हठात् उनके सामने ब्रजविदेही काठियाबाबाकी मूर्ति उद्भासित हो उठी। उन्होंने कहा—‘बेटा, जो कुछ कर्तव्य-कर्म तुम करोगे, यह न समझना कि उसे तुम कर रहे हो। तुम्हारे सारे कर्मोंका भार मेरे ऊपर है। यही सार है। इसे न भूलना।’

गुरु महाराजका इंगित प्राप्तकर उन्होंने महन्ताईके प्रस्तावका विरोध करनेका विचार त्याग दिया। सर्वसम्मतिसे वे इस पदके लिए चुन लिये गये। वैराग्य-आश्रम ग्रहणकर उन्होंने इस पदको सुशोभित किया। वैराग्य-आश्रमका नाम हुआ श्रीसन्तदास।

हरिद्वारके कुम्भ मेलेके दो मास पूर्व वृन्दावनमें एक अर्धकुम्भ मेला होता है। भारतके विभिन्न स्थानोंसे सहस्र-सहस्र वैष्णव-साधु पवित्र यमुना-पुलिनपर डेरा डालते हैं। इस बार मेलेमें पञ्चकोसी परिक्रमाके दिन सन्तदास बाबाजी महाराज बड़ी विपदमें पड़ गये। वैष्णव साधु-महन्त आज अपने नेता श्रीसन्तदास बाबाजीको साडम्बर हाथीपर बैठाकर आगे-आगे

परिक्रमापर ले जायेंगे। सुन्दर हस्ती, उसपर कीमखाबमण्डित सुन्दर हौदा और छत्रादि लेकर सब उपस्थित।

अब सबके आग्रहकी अवहेलना कैसे करें? पर उन्होंने इसकी तनिक भी चिन्ता न की। इष्टदेव राधाबिहारीजी जिस धाममें साक्षात् विराजमान हैं, उसमें हाथीकी पीठपर सवार होकर परिक्रमा करनेके लिए वे राजी न हुए। उस दिनकी यात्रा पैदल ही की गयी। अन्यान्य वैष्णव महन्तोंको भी हस्ती-पृष्ठ त्यागकर पैदल परिक्रमा करनी पड़ी।

सन्तदास बाबाजी महाराज द्वारा परिचालित निम्बाक-आश्रमकी मर्यादा भी धीरे-धीरे बहुत बढ़ गयी। नया आश्रम तो उनके प्रयाससे पहले ही बनकर तैयार हो चुका था। अतिथि और साधु-संन्यासियोंकी भीड़ वहाँ लगी ही रहती। उनके भोजनादिकी व्यवस्था वे उदारतापूर्वक एकनिष्ठताके साथ सदा करते रहते। आश्रमकी कोई स्थायी आमदनी तो थी नहीं। जब जैसी साधु-वैष्णव-सेवाकी आवश्यकता होती, तब उसके अनुरूप धन राधा-बिहारीजीकी कृपासे अपने-आप आ जाता। पर कभी-कभी काम इतना बढ़ जाता कि आश्रमवासियोंको उत्साहित करनेके लिए बाबाको स्वयं ठाकुर-सेवासे लेकर वर्तन माँजने तकका काम अपने-आप करना पड़ता। आश्रमवासियोंमें जब साधु-सेवाके प्रति कुछ विरक्ति देखते तो वे उन्हें समझाकर कहते—‘भाई! बड़े भाग्यसे साधु-सेवाका सुयोग मिलता है। भगवत्-सेवा और साधु-सेवासे चित्त निर्मल होता है, भजन-साधनका अधिकार प्राप्त होता है। सेवानिष्ठा छोड़ भजनमें बैठनेसे चित्त एकाग्र नहीं होता।’

सन्तदास बाबाका देश-विदेश भ्रमणकर लोगोंको उपदेश करने और उन्हें दीक्षितकर सत्-पथपर आरुढ़ करनेका अभियान भी अब तीव्र गतिसे चलने लगा। उस वार शिष्यों और भक्तोंके अनुरोधसे वे गौहाटी गये। स्थानीय हरिसभामें उनसे भारतके सर्वद्वष्टा ऋषियोंकी महिमाके सम्बन्धमें कुछ कहनेका अनुरोध किया गया। उन्होंने अनुरोध मान लिया। नेत्र बन्दकर भायतन्मय अवस्थामें कुछ कहनेका प्रयास किया। पर ऋषियोंका स्मरणकर महापुरुष अबोध बालकके समान बराबर क्रन्दन ही करने रहे। उनके मुखसे एक शब्द भी न निकला। श्रोता एक स्वरसे कहने लगे—‘आपको अब और कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं। आपके अध्रुओंने जितना कुछ कहा है, शब्दोंकी सामर्थ्य कहाँ जो वह कह सकें।’

शेष बार सन्तदासजी कलकत्ते गये। उनके पुराने घनिष्ठ मित्र श्रीब्रजनाथ शास्त्री उन्हें देखने आये। उन्होंने उनसे कहा—‘मैं जिस दिन संसार छोड़कर वृन्दावन जा रहा था, उस दिन मेरी सहायताकर तुमने प्रकृत वस्तुका कार्य किया था। आज भी उसी प्रकार कृपाकर मुझे वृन्दावन-की गाड़ीपर चढ़ा दो। मेरा शरीर अब नहीं रहेगा। गुरुदेवके आश्रमके प्रति मुझे अभूतपूर्व आकर्षण हो रहा है।’

सन् १८३६, कार्तिक मासकी सप्तमीका दिन—सन्तदास बाबा शिष्यमण्डली सहित वृन्दावन जानेके लिए गाड़ीमें सवार हुए। गाड़ी वृन्दावनके निकट पहुँचे, उसके पूर्व ही वे नित्यधाम वृन्दावन पहुँच गये। उनका पार्थिव शरीर रह गया वृन्दावनके अगणित भक्तोंको दर्शन देनेके लिए। यमुनाजीके युगन घाटपर महासमारोहके साथ उसका अग्निसंस्कार सम्पन्न हुआ।



भक्त श्रीभोलानाथजी [भोरीसरवी]

(वृन्दावन)

यमुना-तट है और सन्ध्याकी बेला। अस्ताच्चलगामी सूर्यकी अरुणिम किरणें वृन्दावनके आकाशपर अपनी लालिमा बिखेरकर यहाँके अनुराग भरे वातावरणकी सूचना दे रही हैं। पक्षी अपने-अपने घोंसलोंमें जा छिपे हैं। चारों ओर नीरवता छायी हुई है। बीच-बीचमें सुनायी पड़ रही है किसीकी ददंभरी चीख। कोई दूरके उन झुरमुटोंमें बैठा ‘हा, राधे ! हा करुणामयी !’ कहकर रोदन कर रहा है। कभी वह किसी आन्तरिक वेदनासे छटपटाता हुआ भूमिपर लुण्ठित होने लगता है, कभी घुटनोंमें सिर देकर बैठ जाता है, कभी उत्तरीयसे आँसू पोंछने लग जाता है। पर वह जितनी बार आँसू पोंछता है, उतनी बार फिर उसका मुख और वक्ष आँसुओंसे सराबोर हो जाता है।

सन्ध्याकालीन स्नानको आये घाटपर कुछ व्यक्ति हैं। उनका ध्यान उधर नहीं जा रहा है; क्योंकि वे कई वर्षोंसे बराबर यह दृश्य देखते आ रहे हैं। वह व्यक्ति नित्य वहाँ इसी प्रकार बैठा रोता और तड़फड़ाता दीखता है।

रोते तो बहुत-से लोगोंको देखा गया है। पतिके मरनेपर पत्नीका

रोदन देखा गया है, पुत्रके मरनेपर माँका रोदन देखा गया है, जन्मभरकी किसी कृपणकी कमायीके सहसा लुट जानेपर उसका रोदन देखा गया है। उस रोदनका देर-सबेर विराम अवश्य हो जाता है। पर यह कैसा रोदन, जो रुकने ही नहीं आता, अपितु तीव्रसे तीव्रतर होता जाता है !

इसका एक इतिहास है, जो सं० १२३७ के आषाढ़ मासकी कृष्णा षष्ठीको आरम्भ हुआ। उस दिन मध्यप्रदेशके भेलसा नगरमें श्रीछंदालालजीके पुत्र श्रीभोलानाथजीका जन्म हुआ। वे जन्मसे ही भगवद्भक्त थे। पर उनकी भक्ति पूर्णरूपसे प्रकाशमें आयी उनकी किशोरावस्थामें, जब वे गुरुकी खोजमें घरसे निकल पड़े। बहुत खोज करनेपर वे नरसिंहपुर जिलेके जंगलोंमें भटकते हुए पाये गये। उन्हें उनके बड़े भाई श्रीबैजनाथजीके पास ले जाया गया, जो कोलारस, जिला शिवपुरीमें नाजिर थे। बैजनाथजीने उन्हें कोलारसके गोपालजीके मन्दिरके सेवाधिकारी पण्डित गोपीलालजीसे राधावल्लभोय सम्प्रदायकी दीक्षा दिलवा दी।

गुरुजीने आज्ञा की विवाह करनेकी। विवश ही उन्हें विवाह करना पड़ा। पर गृहस्थमें भी उनका भजन अबाध गतिसे चलता रहा। प्रभु अपने भक्तको सभी स्थितियोंमें उसके भजनमें अनुकूलता प्रदान करनेकी कृपा करते हैं। उन्होंने अध्ययन-अध्यापन करते हुए बी. ए. की परीक्षा पास की। छतरपुर-नरेश श्रीविश्वनाथसिंहने उनकी प्रतिभा और भक्तिसे प्रभावित हो उन्हें धार्मिक परामर्शदाताके रूपमें अपने पास रख लिया। इस रूपमें उनका कार्य था केवल स्वाध्याय करना और निर्दिष्ट समयपर राजा साहबके पास जाकर धर्म-चर्चा करना।

राजा साहबके पास ग्रन्थोंका अच्छा संग्रह था। वे सब ग्रन्थ भोलानाथजीके काम आये। उन्होंने विभिन्न भारतीय दर्शनों और वाणी-ग्रन्थोंका गम्भीर अध्ययन किया। इसी बीच उन्होंने बकालत पास की। कुछ दिनोंके लिए कोलारस गये, भाईके पास रहकर बकालत करने। पर प्रभुकी भक्तिमें रमा हुआ उनका मन बकालतमें न रम सका। वे राजा साहबके निमन्त्रणपर फिर छतरपुर वापस चले गये। धीरे-धीरे छतरपुरसे भी उनका मन उखड़ गया। वे हर समय वाणी-ग्रन्थोंका पाठ करते, उनमें वर्णित राधा-कृष्णकी दिव्य लीलाओंका चिंतन करते और ब्रजके सुमधुर प्रेम-रसमें सदा पगे रहते। इसी समय ब्रज-प्रेमरससे परिपूरित उनके हृदय-गह्वरसे उन सरस पद-

पदावलियोंका निर्झर फूट पड़ा, जिनकी रचना उन्होंने 'भोरी सखी' के नामसे की है। इस समयके उनके पद ब्रजवासीकी उनकी उत्कट अभिलाषासे परिपूर्ण हैं—

कब बसिहों ब्रज बोधिन माहीं ।
जहँ नित डोलत युगल लाड़िले, दिये विमल गलबाहीं ।
मगन चलत डगभग पग धावत, छिन-छिन पन्थ भुलाहीं ॥
टहर-ठहर मुख कञ्ज विलोकत, मंद-मंद मुसकाहीं ।
फहरत अञ्चल-चञ्चल, कुण्डल परत कपोलन छाहीं ।
कोटि मनोज अंग छबि मिल-मिल, चौगुन होत सदाहीं ।
भोरी किशोरी तन-मन अकुलत, देखन इग ललचाहीं ।

अभिलाषाने प्रार्थनाका रूप धारण किया—

दीजें मोहि बास ब्रज माहीं ।
जुगल नामकौ भजन निरन्तर, और कदम्बन छाहीं ॥
ब्रज-वासिनके जूठन टूका, अरु जमुनाकौ पानी ।
रसिकनकी सत-संगत दीजें, सुनिवौ रसभरी बानी ॥

ब्रजेश्वरीने भोलानाथजीकी प्रार्थना सुन ली। उनकी पत्नी और एकमात्र पुत्रका परलोक गमन हो गया और उनका वृन्दावन जानेका मार्ग प्रशस्त हो गया। वे वृन्दावनमें जाकर बस गये राधारानीकी अहैतुकी कृपाका भरोसा लेकर। भरोसा और करते ही किसका? उनका अपना तो कुछ बल था ही नहीं। उनका कोई पुण्य भी ऐसा नहीं था जिसका वे भरोसा करते। ऐसोंको, जिनका कोई अवलम्ब न हो, वही तो हैं एकमात्र निवाहनेवाली—

श्रीराधा इक आस हमारी ॥

सदल सबे बलके बल जागत, अबलनिकौ बल तैं सुकुमारी ॥
समरथ तैर चले भव सागर, पोचनकौ तोहि सोच सदा री ।
परके उड़ चले व्याध विलोकत, वेपरकी तू राखिबे हारी ॥
भाग्यवान निज भाग्य सराहत, भाग्यहीन कों आस तिहारी ।
पुण्य करत सो शुभ कल पावत, पतितन कों तू पावन प्यारी ॥
सब विधि सों अवलम्ब न जाकैं, तू नित ताहि निवाहन हारी ।

भारी भाग्यहीन अति छोटी, सबल स्वामिनी सिरपर प्यारी ॥

भोलानाथजीके भाई श्रीशम्भूनाथजी, एडवोकेट उन्हें खर्च भेजते रहे और वे निश्चिन्त हो अपनी साधनामें लगे रहे। कुछ दिन बाद शम्भूनाथजीका देहान्त हो गया। खर्च आना बन्द हो गया। भोलानाथजीकी अपनी मानसिक स्थिति ऐसी थी नहीं कि जीविका-उपार्जनके लिए कुछ कर सकतें। किसीसे कुछ माँगना भी उनके स्वभावके अनुकूल न था। जब स्वामिनी सिरपर हों, तो किसीसे माँगने-जाँचनेका प्रश्न ही क्या? उन्हें एक युक्ति मूझी। मेवाकुञ्जमें यात्री वन्दरोंको चने डाल जाया करते थे। वे अच्छे चने सब खा जाते, ठुड्डी छोड़ देते। उन चनोंकी ठुड्डी खाकर वे क्षुधाकी निवृत्ति करने लगे।

भला स्वामिनी कब तक अपने प्यारे भक्तोंकी ठुड्डी खाते देख सकती थीं? उन्होंने श्रीराधावल्लभके मन्दिरके सेवाइतको स्वप्नादेश किया— 'भोरी सखी सेवाकुञ्जमें चनोंकी ठुड्डी खाकर रह रही है। उसे मेरा प्रसाद नित्य दे दिया करो।'

स्वामिनीकी कृपासे भोरी सखीके प्रसादकी सुन्दर व्यवस्था हो गयी। उसे बढ़िया-से-बढ़िया प्रसादी द्रव्य नित्य आरोग्यके लिये मिलने लगे। पर भोरी सखी स्वामिनीकी इतनी-सी कृपासे भुलावेमें आनेवाली थोड़े ही थी। इसमें तो उसका प्रणय-रोष ही बड़ना था। वह लगी उलटा उलाहना देने— 'तुम्हारी इस कृपासे मेरा क्या होना है? तुमने आज तक कभी मुझमें यह भी पूछा कि मैं सबकुछ चाहती क्या हूँ? किमलिए गोद पसारकर तुम्हारे द्वारपर खड़ी चिल्ला रही हूँ? मेरा असली दुःख क्या है?—

तुमने आज लौं बात न पूछी, को द्वारे चिल्लात न पूछी।

जीवन बीत्यों गोद पसारे, कहा लोभ ललचात न पूछी।

मैं नित हौंस भरी कहिबे की, हँसि कबहूँ कुसलात न पूछी।

कोटि उपाय कियँ मैं तुमने, का सोचत दिन-रात न पूछी।

कैसे कटत दिवस-निसि तेरे, का दुख सूखत गान न पूछी।

भोरी दीन दुखी आरत सौं, बिहँसि हृदयकी बात न पूछी।

मैंने तो अपनी ओरसे सारे नाते तुमसे ही मान रखे हैं। पर तुम भी मुझे अपनी चेरी करके मानती ही, इसमें मुझे सन्देह है—

सब नातों में तुम सौ मानत ।

इतनी कबहुँ कहौ हँसि तुमहूँ, हौ कि नहीं मोहि जानत ॥

कबहुँ मैं गुण बरनत तुम्हरे, कबहुँ बिनती ठानत ।

कहौ कभू सुधि तुमहुँ करति हौ, निज चेरी करति मानत ॥

यदि तुम मुझे अपनी मानतीं, तो अवश्य मेरी सुधि लेतीं और पूछतीं—
'भोरी, तू चाहती क्या है ?'

उलाहना सुनकर भी स्वाधिनी चुप रहीं । उन्होंने कभी कोई पूछ-ताछ नहीं की । भोरी सखीने सोचा कि शायद वे समझती हों, पूछनेपर भोरी न जाने क्या माँग ले, इसलिए मैं स्वयं ही बता दूँ, मैं क्या चाहती हूँ । उसने कहा—'सुनो मैं क्या चाहती हूँ । तुम मिलो या न मिलो, मिलनेकी चटपटी चाहती हूँ । तुम्हारे न मिलनेका हृदयमें दर्द चाहती हूँ, तुम्हारा विरह चाहती हूँ—

इतनी बात कृपा करि दीजें ।

मिलन चटपटी हियमें लागें, विरह ताप तन छोड़ें ।

तुम तौ मिलौ मिलौ न कृपा करि, मो चित प्रेम सौं भीजें ।

नयन नोर बहै भिसि-वासर, हियौ कठोर पसीजें ।

भोरी कौ अवलम्ब न दूजौ, टेरि-टेरि कै जीजें ॥

★

★

★

कबहुँ बढ़ै विरह दिन दूनौ ।

बिनु भरि नयन माधुरी देखे, सब जग लागै सुनौ ॥

सिलिबौ हँसिबौ कहिबौ-सुनिबौ, चित कछु न सुहावै ।

सब सौ जाइ बैठियत न्यारे, बात करत घबरावै ॥

कहत-सुनत तेरौ नाम किशोरी, उमगि नयन भरि आवै ।

लीला ललित विचारत जब-जब हियरा टूटत जावै ॥

विष सम लगं विषय सुख जे तौ, मुक्ति-स्वर्ग नाहि चाहै ।

मूँदे नयन पुलक तन पुनि-पुनि, लै लै नाम कराहै ॥
 भोरीकी अभिलाषा इतनी, बार-बार सोई मांगे ।
 कौन भाव्य सों कुंवर-किशोरी, प्रीति हियेमें जागै ॥

भोरी सखी बड़ी सयानी थी । वह किशोर-किशोरीको नहीं, उनकी प्रीति चाहती थी । वह जानती थी न ! कि जिस किसीमें उनकी प्रीति होती है, उसके वे सर्वथा अधीन रहते हैं । इसीलिए न, वे अपनी प्रीति सहसा किसीको नहीं देते । भुक्ति-मुक्ति देकर उसे टाल देना चाहते हैं ।

भोरी सखीपर श्रीराधा-वल्लभके प्रसादकी कृपा तो नित्य होती रही । पर इससे न उसके उलाहनेमें कमी आयी, न उसके वैराग्यमें । वह प्रसाद लेकर नित्य यमुना-तटपर चली जाती । प्रणय-रोषमें सारा प्रसाद यमुनामें बहा देती । केवल दो प्रसादी रोटियाँ सूखी चबाकर अपनी क्षुधाकी निवृत्ति कर लेती । फिर चली जाती उन झुरमुटोमें । वहाँ एकान्तमें बैठी-बैठी आंसू बहाया करती ।

आखिर भोरीके धैर्यका बाँध टूट चला । उसने जान लिया कि स्वामिनी उसे सभी प्रकारसे पतित जानकर उसपर कृपा नहीं कर रहीं । तब वह मरजानेकी सोचने लगी—

अब मोहि कछु ऐसी जान परं ।
 हौं जु पतित सब भाँति अभागी, स्वामिति नहिं निज ढरनि डरं ॥
 काँपत देह त्रास हिय भारी, अब न चित्त छिन धीर धरं ।
 साधन नेम न ठौर ठिकानी, ध्याकुल द्वार पै दीन रटं ॥
 कहौ कृपा करिके अलबेली, भोरी शठ कित जाइ भरं ॥

भोरी सखी सयानी होते हुए भी सचमुच भोरी थी । वह यह नहीं जान रही थी कि स्वामिनीकी कृपा उसपर पहले ही भरपूर है । वह जिस प्रीतिको प्रार्थना करती थी, जिस विरह-वेदनाकी आकांक्षा करती थी, वह तो उन्होंने उसे दे ही रखी है । पर इसमें उसका दोष ही क्या था ? प्रीतिका स्वरूप ही ऐसा है । प्रीति जितनी हीती है, उतना ही उसका अभाव प्रतीत होता है । जितना हृदय उससे भरपूर होता है, उतना ही खाली जान पड़ता है । तभी न भक्त भोरीकी तरह प्रीति-दाता स्वामिनीसे सदा शिकायत करता रहता है—

देखत-देखत दिन सब बीते ।

तुम अटूट अनुरागकी दाता, हम अजहूँ रीतेके रीते ॥

पर जो भी हो, भोरी जव मरनेकी सोचने लगी, स्वामिनीका हृदय कांप गया । उन्होंने सन्मुख न आकर पीछेसे ऐसा सोचनेकी उसे मना किया । तब उसे अवसर मिला यह कहनेका—

जो पै जिबावौ तो ऐसे जियावौ ।

करुणाधाम कृपाल कृपानिधि, सन्मुख मृदु मुसकावौ ॥

मोहन प्रान जीवन धन सरदस, सो मो हृदय समावौ ।

मुदित सगहारत कच मुख छूटे, कर गहि हृदय जुड़ावौ ॥

तुम बिन और लखौ नहि काहू, शग छबिमें अटकावौ ।

नित नव छबि नव रूप माधुरी, शग पुट भरि-भरि प्यावौ ॥

भोरी दोन दुखारी श्रीहित चरणन सुवस बसावौ ॥

अन्तमें भोरीने आषाढ़ शुक्ला ६, सं० १९८६ को ४२ वर्षकी अल्पावस्थामें अपने मरनेका हठ पूरा किया और स्वामिनीने जिलानेका । वे उसकी वाह पकड़कर उसे ले गयीं निजधामको ।*

गोस्वामी श्रीगल्लूजी महाराज

(वृन्दावन)

श्रीललित किशोरीजीने 'अभिलाष माधुरी' में अपने एक पदमें गोस्वामी श्रीगल्लूजी-सौ रति-मति प्राप्त करनेकी अभिलाषा व्यक्त की है—

कबहुँक ऐसी बननि बनंगी ।

गोस्वामी श्रीगल्लूजी-सौ मेरी, मति रति रूप सनैगी ॥

* पदावलियोंके अतिरिक्त भोलानाथजी अपनी दो बड़ी कृतियाँ भी छोड़ गये हैं—ब्रह्मसूत्रपर हिन्दीमें भाष्य और 'सुधर्म बोधिनी' की टीका । पदावलियोंका सङ्कलन 'प्रेमकी पीर' के नामसे आचार्य श्रीललिताचरण गोस्वामी द्वारा प्रकाशित किया गया है ।

रुचि है ना चित छाँड़ि जुगल, जस ना रसना कछु और भनैगी ।
ललित किशोरी सुलभ जबै तैं, पतित उधारन पनै पनैगी ॥

ललित किशोरीजी स्वयं उच्चकोटिके भक्त थे । गल्लूजी जैसी रति-मति प्राप्त करनेकी उनकी अभिलाषासे स्पष्ट है कि गल्लूजी महाराज उस समयके ब्रजके सर्वोच्च भक्तोंमें-से थे और साधक-भक्त उन्हें अपने आदर्श रूपमें देखते थे ।

उनका जन्म ज्येष्ठ कृष्ण ८, सं० १८८४ को श्रीवृन्दावनमें श्रीराधारमण मन्दिरके सेवाईत श्रीरमणदयालु गोस्वामीके पुत्ररूपमें हुआ । श्रीरमणदयालु गोस्वामी अधिकतर फर्रुखाबादमें रहते थे । वहाँ उनके बहुत-से शिष्य-सेवक थे । वहीं रहकर गल्लूजीने विद्याध्ययन किया ।

प्रारम्भसे ही गल्लूजीकी मानसिक स्थिति साधारण लोगोंसे बहुत भिन्न थी । वे सदा सत्यमें प्रतिष्ठित रहते थे । स्वप्नमें भी मिथ्या नहीं बोलते थे । वृथा वाक्य उनके मुखसे कभी किसीने नहीं सुना । दैन्य और विनयकी वे मूर्ति थे । लोभ उन्हें छूकर भी नहीं गया था । अपना सर्वस्व देकर भी वे दूसरोंकी सेवामें सदा तत्पर रहते थे ।

इन सब गुणोंके मूलमें थी उनकी भगवद्-भक्ति । उसीके ये शाखा-फलव, फूल और फल थे । ऐसा कौन-सा सद्गुण है, जो भक्तिरूपी वृक्षपर स्वभावतः नहीं फलता ? भक्ति गल्लूजी महाराजकी नैसर्गिक सम्पत्ति थी । भक्ति ही उनकी दृष्टिमें एकमात्र मूल्यवान् वस्तु थी । और सभी चीजोंका मूल्य वे भक्तिकी कसौटीपर आँकते थे । इसलिए संसारमें उनकी आसक्ति बिलकुल नहीं थी । संसारका वे भगवत्सेवाका साधन मात्र मानते थे ।

पर दुर्भाग्यवश उनका अपना संसार भगवत्सेवाके बहुत अनुकूल न था । उनके पिताजीकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी । उनपर वृन्दावनमें बहुत-सा कर्ज हो गया था । इसीलिए वे वृन्दावन छोड़कर फर्रुखाबाद रहने लगे थे । गल्लूजीके भक्ति-भावमें इससे अधिक प्रतिकूलता और क्या हो सकती थी कि उन्हें पिताके ऋणके कारण अपने इष्टके घामसे बाहर रहना पड़े ।

उन्होंने इस प्रतिकूलताको दूर करनेका सङ्कल्प किया । पर यह कार्य

आसान तो था नहीं। उनकी उम्र अभी नौकरी या व्यवसायके लायक तो थी नहीं, जो वे ऐसा कुछ कर पिताजीका ऋण चुका सकते। फिर नौकरी या व्यवसाय उनके स्वभावके अनुकूल भी कब था? वे एक ही कार्य कर सकते थे। वह था हरि-कथा कीर्तन। इसलिए उन्होंने कथा बहना आरम्भ किया। पहली कथा उन्होंने १० वर्षकी उम्रमें कही लखनऊमें साह विहारीलालजीके घर। उनके पुत्र, प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीराधाचरण गोस्वामीने लिखा है कि उस कथामें (५००) की भेट चढ़ी, जो उस समयके लिए एक बहुत बड़ी रकम थी। उससे ऋणका कुछ अंश चुका दिया गया।

अल्पावस्थामें ही एक सच्चे भक्त और मृनिपुण कथावाचकके रूपमें उभरते हुए गल्लूजीने भक्तजनोंके हृदयमें अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। यह देख उनके ही कुटुम्बके एक व्यक्तिको उनसे ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने उन्हें विष दे दिया। उस समय उनकी अवस्था १६ वर्षकी थी। विषका पता चल गया। उसके निवारणका शीघ्र उपाय किया गया और उनके प्राणकी रक्षा हो गयी। परिवारके लोगोंने विष खिलानेवाले व्यक्तिकी पुलिसमें रिपोर्ट करना चाहा। पर गल्लूजीका हृदय इसे गँवारा न कर सका। उन्होंने बहुत अनुनय-विनयकर उन्हें उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही न करनेकी राजी किया। इसके पश्चात् वे जन्म भर उनका यथोचित सत्कार करते रहे।

गल्लूजीका विवाह उनके पिताजीने सं० १९०१ में कर दिया, जब उनकी अवस्था केवल १७ सालकी थी। विवाहके कुछ ही दिन बाद उनकी पत्नीका देहान्त हो गया। पिताजीने दूसरा विवाह फर्खावादकी ही एक कन्यासे कर देना चाहा। गल्लूजी दूसरे विवाहके पक्षमें न थे। जब पिताजीने आग्रह किया तो वे बोले—‘यदि मेरा वास्तविक कल्याण चाहते हैं, तो दुवारा गार्हस्थ्यकी बेड़ियाँ न पहनाइये। यदि पहनानी ही हों, तो लोहेकी बर्याँ, सोनेकी पहनाइये। विवाह सम्बन्ध फर्खावादमें न कर वृन्दावनकी किसी लड़कीसे कीजिये, जिससे कम-से-कम उसके सम्बन्धमें वृन्दावन जाना-आना होता रहे।’ पिताने उनकी बात मान ली। विवाह वृन्दावनमें श्रीजगन्नाथ मिश्रकी कन्या श्रीसूर्यदेवीसे कर दिया।

गल्लूजीने धीरे-धीरे कथाओंमें प्राप्त भेंटके माध्यमसे पिताजीका सारा ऋण चुका दिया। पिता-पुत्रके वृन्दावन जानेका मार्ग अब प्रशस्त हो गया। दोनों वृन्दावन जाकर रहने लगे।

वृन्दावन जाते समय रास्तेमें लुटेरे गाड़ीमें घुस आये। गल्लूजीका एक बक्स, जिसमें बहुमूल्य ग्रन्थ थे, लेकर जाने लगे। उन्होंने कहा—‘भड्या, इसमें केवल पुस्तकें हैं। यह तुम्हारे कामकी नहीं हैं। इन्हें छोड़ जाओ और जो चाहो सो ले जाओ।’ लुटेरे पुस्तकें छोड़ गये, बाकी सारा सामान ले गये।

वृन्दावन आनेके पश्चात् गल्लूजीके जीवनमें एक नये अध्यायका शुभारम्भ हुआ। श्रीराधारमणजीसे उनका प्रीतिका सम्बन्ध दिनोदिन बढ़तर होता गया। श्रीराधारमणजीके मन्दिरके ४० सेवाइत थे, जो वारी-वारीसे उनकी सेवा करते थे। इनकी मेवा प्रति ढाई वर्ष बाद आती थी। तब तो यह प्राण खोलकर श्रीराधारमणजी सारी सेवा करते ही थे। बाकी दिनोंमें भी मङ्गला (प्रातःकालीन आरती) की सेवा यह दूसरे लोगोंसे माँग लेते थे। दूसरे लोग लुशीसे उन्हें यह सेवा दे देते थे, कुछ इसलिए कि इस सेवाके लिए उन्हें प्रातः ४ बजे स्नानादिकर मन्दिरमें जाना कष्टकर प्रतीत होता था, कुछ इसलिए कि इनके प्रीतिभरे आग्रहकी वे अवहेलना नहीं कर पाते थे। मङ्गलाकी सेवा जैसे इन्हींके नाम लिख गयी थी। यदि कभी ऐसा होता कि कोई सेवाइत उन्हें मङ्गलाकी सेवा न देता, तो उसका कारण श्रीराधारमणजी अपनी इच्छा ही जानकर कहते—‘आज मैं पै श्रीजीका कछु अपराध बन गयी है, जाई सों सेवा नाँय दीनी।’ उस दिन वे मन्दिरके बाहर झाड़ू लगाकर ही अपने-आपको सन्तुष्ट कर लेते। झाड़ू लगाते जाने और श्रीजीके प्रति प्रणय-आक्षेप करते जाते—‘तुम्हारे घरको कुत्ता। तुम ठुकराओ तो ठुकराओ। जालँगो कहाँ। द्वारपर पड़्यो रहके सेवा तुम्हांगी ही करूँगी।’

श्रीराधारमणके राजभोगके पश्चात् वे सेवाइतसे राधारमणजीकी एक प्रसादी रोटीकी भिक्षा माँग लिया करते। यह भी उनका दैनिक नियम था। एक बार एक कर्कश स्वभावके गोस्वामीने उन्हें फटकारते हुए कहा—‘रोज-रोज आ जाता है रोटी माँगने। तुझे लज्जा नहीं आती। जा रोटी नहीं मिलेगी।’ गल्लूजीने इसका बुरा न मानकर गोस्वामीजीसे कुछ नहीं कहा। उनकी दृष्टिमें गोस्वामीजीका दोष ही क्या था? रोटी देना न देना तो राधारमणजीकी अपनी इच्छापर निर्भर करता था। सेवाइतकी इतनी स्वतन्त्रता कहाँ, जो उनकी इच्छाके विरुद्ध उनके प्रसादकी एक कणिका भी किसीको दे सके? इसलिए जब भी उन्हें प्रसादी रोटी न मिलती उनका कहना-मुनना, अभ्यर्थना और अभियोग, जो कुछ होता, राधारमणके प्रति

ही होता। वे उनसे कहने हुए चले जाते—‘मैं तो तुम्हारा टहलुआ हूँ। मांगबो टहलुआको काम, देनो तुम्हारा। देओ, न देओ—तुम्हारी मरजी।’

राधारमणजी भी, यदि गल्लूजीकी सेवामें कभी कोई श्रुति हो जाती, तो स्वप्नमें उनसे शिकायत किये बिना न रहते।

वृन्दावन आनेके बाद गल्लूजीका बाहर जाकर कथा कहनेका क्रम कुछ दिन जारी रहा। वे लखनऊ अकसर जाया करते। लखनऊके साह कुन्दनलाल (श्रीललितकिशोरीजी) और साह फुन्दनलाल (श्रीललित-प्राधुरीजी) उनमें गुरुबुद्धि रखते। उन्हें वे हरि-कथा सुनाते और उपासना सम्बन्धी उपदेश देते। उनके वहाँ पधारनेपर उनमें जो हर्ष और उल्लासकी लहर दौड़ जाती उसका संकेत ललितकिशोरीजीकी एक रचनासे मिलता है, जिसकी प्रारम्भिक पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

गोस्वामी आज यहाँ गल्लूजी आये हैं,

वाहवा है, अजी वाहवा है।

स्वामिनी दृपासे भये मेरे मन भाये हैं,

वाहवा है, अजी वाहवा है ॥

काशी, शाहजहाँपुर और भरतपुर आदि शहरोंमें भी उनकी श्रीमद्भागवतकी कथाएँ होती रहतीं। भरतपुरके सरकारी मन्दिरोंमें जब वे कथा कहने जाते, तो बाजारमें उनकी सवारी निकलती। दोनों ओरसे दण्डवत् और जय-जयकारकी ध्वनिके कारण सवारीका निबलना मुश्किल हो जाता।

उनकी कथाकी एक विशेषता यह थी कि वे कथा ब्रजभाषामें कहते और फारसीके एक शब्दका भी प्रयोग न करते। एक बार उन्हें कथामें किसी प्रसङ्गमें बन्दूक छोड़नेकी बात कहनी थी। वे ‘बन्दूक’ शब्दका प्रयोग नहीं करना चाहते थे। उन्होंने कहा—‘लौह नलिकामें श्यामचूर्ण प्रवेश करके अग्नि जो दीनी, तो भड़ाम शब्द भयो।’

कथाओंमें भेंटमें प्राप्त किया हुआ धन गल्लूजी सब खर्च कर देते। खर्च भी अपने या अपने परिवारके ऊपर नहीं, साधु-वृष्णवों और ब्रज-वासियोंके ऊपर। ब्रजवासियोंसे, और विशेषरूपसे नन्दग्राम और बरसानाके ब्रजवासियोंसे उन्हें विशेष प्रेम था। उनके घर दस-पाँच ब्रजवासी अतिथि रूपमें बने ही रहते। श्रीराधाचरण गोस्वामीजीने लिखा है कि उन्होंने

कम-से-कम एक लाख रुपया उपार्जन किया, (जो आजकलके रुपयेकी कीमतके अनुसार लगभग बीस लाख रुपयेके बराबर होता है) और सब भगवत्-सेवा और परमार्थमें खर्च कर दिया । उनके अपने घरका खर्च तो बहुत ही कम था । उनकी धारणा थी कि उन्हें जो धन भगवत्-कथासे प्राप्त होता है, वह भगवत्-सेवा और साधु-वैष्णव-सेवामें ही लगाना चाहिये । अपने उपयोगमें उतना ही आना चाहिये, जितना शरीर धारण करनेके लिए आवश्यक हो ।

सं० १९३२ में गल्लूजीने वृन्दावनमें अपने निवास-स्थानकी चहार-दीवारीमें षड्भुज महाप्रभुके मन्दिर की स्थापना की । श्रीमन्महाप्रभु इस प्राचीन विग्रहके रूपमें स्वेच्छासे उनके पास आ गये थे, सम्भवतः उनकी प्रेममयी सेवाके लोभसे । ये भी बड़े प्रेमसे उनकी सेवा करने लगे ।

श्रीराधारमणकी मङ्गला-आरतीका उनका नियम पूर्ववत् चलता रहा । वे राधारमणकी मङ्गला-आरतीके पश्चात् महाप्रभुकी आरती करते । दोनों ठाकुरोंमें उनकी प्रीति क्रमशः बढ़ती गयी । अब उनकी सेवा छोड़कर उन्हें और कुछ अच्छा न लगता । उनकी सेवा छोड़ वृन्दावनसे एक दिनके लिए भी बाहर जाना उन्हें कष्टकर प्रतीत होता । सं० १९३७ में उन्होंने वृन्दावनसे कहीं भी बाहर न जानेका सङ्कल्प किया । घरका सारा भार श्रीराधाचरण गोस्वामीपर छोड़, स्वयं आठों प्रहर श्रीराधारमण और श्रीमन्महाप्रभुकी सेवामें लवलीन रहने लगे । मार्ग शीर्ष कृष्ण १ सं० १९४७ को श्रीराधारमणजीने सदाके लिए उन्हें अपने नित्य-धाममें अपनी नित्य-सेवामें अङ्गीकार किया ।

कहते हैं कि उनके दाह-संस्कारमें उनका सारा शरीर भस्मीभूत हो जानेपर भी उनके गलेकी कण्ठी ज्यों-की-त्यों बनी रही । लोग प्रसादीके रूपमें उसके दाने ग्रहण करनेके लिए उसपर झपट पड़े । जिसके हाथमें एक भी दाना आया, वह अपने भाग्यको सराहता चला गया ।

गल्लूजी व्रजभाषाके अच्छे कवि थे । वे 'गुणमञ्जरी' के नामसे पद-रचना करते थे । उनके 'श्रीराधारमण-पदमञ्जरी' और 'श्रीयुगलछन्द' नामके ग्रंथ प्रकाशित हैं । आज भी श्रीराधारमणके मन्दिरसे विभिन्न तिथियोंपर 'श्रीराधारमण-पदमञ्जरी' के ही पद गाये जाते हैं ।

श्रीललितकिशोरीजी एवं श्रीललितमाधुरीजी

(वृन्दावन)

सन् १८५७ के विप्लवकी सन्ध्या है। भारतीय सेनानी हार चुके हैं। ब्रिटिश सरकार चुन चुनकर लोगोंको फाँसी दे रही है, जिन्होंने विद्रोहियोंका साथ दिया था। वृन्दावनके शाह कुन्दनलाल (श्रीललित-किशोरीजी) पर भी बागियोंका साथ देनेका अभियोग है। उनके नाम वारंट जारी है। वे वृन्दावनसे नावके मार्गसे अगणित भक्तोंके साथ कीर्तन करते हुए मथुरा-कच्छहरी पहुँच गये हैं। आज मजिस्ट्रेटके कोर्टमें उनकी पेशी है। कोर्ट खचाखच दर्शकोंसे भरा है। सबके चेहरोंपर उदासी छायी हुई है। सब कुन्दनलालजीके लिए भगवान्से प्रार्थना कर रहे हैं। पर कुन्दनलालजी शान्त और निरुद्विग्न खड़े हैं। वे जैसे तटस्थ भावसे प्रभुकी इस लीलाका दर्शन कर रहे हैं। उनकी उस समयकी मनोवृत्तिका परिचय मिलता है उस समयकी उन्हींकी इस रचनासे—

श्रीधन-वीथिनके प्यारे हम दबते नहीं सवारोंसे ।

मिहतर हूँ से कमतर यद्यपि बिहतर शाह हजारोंसे ॥

भौंह निशाने चढ़ि क्या डरना तलवारोंके वारोंसे ।

‘ललितकिशोरी’ दरपर हाजिर खतरा क्या सरकारोंसे ॥

श्यामसुन्दरकी भौंहोंसे भी पैना क्या कोई अस्त्र है ? जो एक बार उन भौंहोंका निशाना बन चुका उसे तलवारों और सवारोंसे क्या डर ?

शाह कुन्दनलालको शपथ दिलायी गयी। थोड़ी देरको कोर्टमें खामोशी छा गयी। उसी समय गूँज उठा अंग्रेज मजिस्ट्रेटका गम्भीर स्वर—

‘कुन्दनलाल, तुम बागी हीरासिंहको जानता है ?’

‘जी सरकार ।’

‘तुम गदरके वक्त उसको और उसका सब आदमीको अपना घर रखा ? उसका खातिर किया ?’

‘जी सरकार ।’

‘तुम जानता है बागीका साथ देना जुर्म है ?’

‘जी सरकार ।’

‘तुम जानता है उसका सजा क्या है ?’

‘जी सरकार, फाँसी ।’

‘ऐसा जानकर फिर तुम उसका साथ क्यों दिया ?’

‘सरकार, मैंने उसका साथ नहीं दिया । साम-दामसे उसको अपने वक्षमें कर ब्रजकी उसकी लूट-पाटसे बचा लिया । मैंने एक ओर अपनी सैन्य-शक्तिका प्रदर्शन किया । दूसरी ओर उसकी आवभगत कर उससे वचन ले लिया कि वह ब्रज-क्षेत्रमें किसी प्रकारका उपद्रव नहीं करेगा । राजाका फर्ज है प्रजाकी रक्षा करना, प्रजाका फर्ज है राजाकी सेवा करना । मैंने ब्रजमें आपकी प्रजाकी रक्षा कर और बागियोंकी मार-काटसे उसे बचाकर प्रजाके प्रति अपना फर्ज अदा करनेमें सरकारका साथ दिया, बागियोंका नहीं ।’

‘तुम बहुत होशियार है । बात बनाकर अपना कसूर छिपाना चाहता है । तुमकी फाँसी जरूर होना चाहिये ।’

‘सरकार, आप मालिक हैं । फाँसी देना चाहें तो दें । पर फाँसीपर चढ़नेके पहले भुज्रिमसे पूछा जाता है वह क्या चाहता है ? मैं आपको बतादूँ कि मैं क्या चाहता हूँ ? मुझे फाँसी वृन्दावनमें दी जाय और फाँसीके समय हरिनाम-संकीर्तन सुनाया जाय । यदि आपने इस प्रकार फाँसी दी, तो मैं उसे सजा नहीं मानूँगा, आपका इनाम मानूँगा ।’

‘तो, तुम ऐसा फाँसीके लिए तैयार है ?’

‘जी सरकार ।’

कुन्दनलालजीकी निर्भोक्ता और धर्मपरायणता देख मजिस्ट्रेटको विश्वास हो गया कि वे जी कुछ कह रहे हैं, उससे कृत्रिमता बिलकुल नहीं है । उन्होंने उन्हें तुरन्त बरी कर दिया ।

शाह कुन्दनलालका जन्म कार्तिक कृष्ण २ सम्बत् १८८२ में लखनऊमें शाह गोविन्दलालजीके पुत्र रूपमें हुआ । उनके पितामह शाह बिहारीलालजी लखनऊके एक बहुत बड़े रईस थे । नवाबसे उन्हें ‘शाह’ को उपाधि मिली हुई थी । शाह कुन्दनलाल उनके भाई थे । वे उनसे तीन वर्ष छोटे थे ।

उस समयकी आवश्यकतानुसार दोनों भाइयोंको फारसीकी शिक्षा दी गयी। फारसीके वे अच्छे विद्वान हुए। हिन्दी, पंजाबी, गुजराती और बँगला भाषाएँ भी उन्होंने सीखीं। दोनों भाइयोंका कृष्ण-लीलामें अभिनिवेश था। दोनोंने व्रजभाषा और उर्दू में कृष्ण-लीलाका गान किया है। शाह कुन्दनलाल 'श्रीललित किशोरी'के नामसे और शाह फुन्दनलाल 'ललितमाधुरी'के नामसे कविता लिखते थे। ललित किशोरीजीकी ललित कविताओंका संग्रह 'अभिलाष माधुरी'के नामसे प्रकाशित है।

शाह बिहारीलालजीने वृन्दावनमें अपने इष्टदेव श्रीराधारमणलालजी के नये मन्दिरका निर्माण किया। उसे देखने उन्होंने अपने दोनों पीत्रोंको वृन्दावन भेजा। संवत् १९०६ के लगभग दोनों वृन्दावन गये। अपने साथ श्रीराधारमणजीके लिए एक सोनेका सिंहासन लेते गये।

बाल्यकालसे ही दोनों भाई इस सुअवसरकी प्रतीक्षामें थे। एक महीने वृन्दावनमें रहकर उन्होंने व्रजकी विभिन्न लीला-स्थलियोंके दर्शन किये। उनका मन व्रजमें ऐसा रमा कि घर लौटनेकी कौन कहे, घरकी याद भी उन्हें दुःख देने लगी। पर माता-पिता और पितामहके भयके कारण घर लौटना पड़ा।

घर तो लौटे पर, प्राण वृन्दावनमें ही पड़े रहे। वृन्दावनवासके लिए उनकी उत्कण्ठा दिनों-दिन बढ़ती गयी। कब वह दिन होगा जब वे युगल-नामका जप करते हुए सदा वृन्दावनमें वास करेंगे, अंग-अंगमें व्रजरजकी छाप लगाकर वृन्दावनके कुञ्जोंमें सुखपूर्वक भ्रमण करेंगे—यह अभिलाषा उनके मनमें दिन-प्रतिदिन तीव्र होती गयी—

जहाँ जुगल नित नाम सु छिनपल बसों सदा वृन्दावन खोरी ।
छापों छाप अंग व्रजरजकी भ्रमत रहों कुञ्जनकी ओरी ॥
आसरो आस वासना मेरे हृद करि मन यह ललितकिशोरी ।
रहों चैतन्यचन्द्र-चित्तामणि-चरणचार-नखचन्द्र चकोरी ॥

वृन्दावनवास वृन्दावनकी अधीश्वरी वृषभानुदुलारी श्रीराधारानीकी कृपाके बिना सम्भव नहीं होता। इसलिए वृषभानुदुलारीसे वे निरन्तर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—

श्रीवृन्दावन वास दीजिये आस यहै वृषभानुदुलारी ।

बंशीबट तट नटनागर सँग करत केलि अबलोकौ प्यारी ॥

×

×

×

श्रीवृषभानुकिशोरीजू कब जग उपहास मिटैहौ ।
इन्द्रिन बसै जिन जानि हँस्थो मुहि तिन छग सकुच करैहौ ॥
ललितकिशोरी नित निकुञ्जन श्रीवन माहि बसैहौ ।
करुणा क्षितवनि चितै स्वामिनी निज दासी न हँसैहौ ॥

वृषभानुकिशोरीने जैसे उनकी पुकार सुन ली । दो ही एक वर्षोंके भीतर उनके पितामह, पिता और माताका स्वर्गवास हो गया । वृन्दावन जानेका उनका मार्ग बहुत कुछ प्रशस्त हो गया । पर पितामहकी विपुल सम्पत्तिकी देख-भालका भार एकाएक उनपर आ पड़ा । इस कारण उनका तुरन्त वृन्दावन जाना सम्भव न हो सका । उनकी अपनी सामर्थ्य कहाँ थी, जो इस नयी बाधासे जूझकर वृन्दावनकी ओर अग्रसर हो सकते । वे राधारानीका भरोसा लिये उनकी पूर्ण कृपाकी प्रतीक्षा करते रहे ।

प्रियतमकी प्रतीक्षामें बैठी प्रेयसीको काक भी प्रियतमका सन्देश लेकर आया जान पड़ता है । ललितकिशोरीजीको वृन्दावनसे आया प्रत्येक व्यक्ति राधारानीका सन्देश लेकर आया जान पड़ता था । इस बार उनके भाग्यसे उनके घर पधारे वृन्दावनके श्रीराधारमणके मन्दिरके गोस्वामियोंके मुकुटमणि भक्तश्रेष्ठ श्रीगल्लुलाल महाराज । उन्हें लगा कि वे राधारानीका सन्देश लेकर आये हैं । राधारानीने उन्हें भेजा है उन्हें बुला लानेके लिए । वे उत्साह भरे स्वरमें गा उठे—

गोस्वामी आज यहाँ गल्लुजी आये है,
बाहवा है अजी बाहवा है ।
स्वामिनी कृपासे भये मेरे मन भाये हैं,
बाहवा है अजी बाहवा है ।
वृन्दावन वास हूँ हियरा हुलसाये हैं,
बाहवा है अजी बाहवा है ।
ललितकिशोरी मानौ बोलिबे पठाये हैं,
बाहवा है अजी बाहवा है ॥

कुछ दिन बाद वृन्दावनसे ललितकिशोरीजीके गुरु श्रीराधागोविन्द

गोस्वामी लखनऊ पधारे । जब वे जाने लगे, तो उन्होंने निजसेव्य श्रीराधारमणजीका विग्रह उनके साथ भेज दिया और कहा—‘हम शीघ्र वृन्दावन आनेकी चेष्टा करेंगे । जबतक न आ सकें आप कृपाकर अपनी देख-रेखमें इनकी सेवाकी व्यवस्था कीजियेगा ।’

वृन्दावन पहुँचनेके कुछ ही दिन बाद श्रीराधारमणजीने ललित-किशोरीजीको स्वप्नादेश देकर कहा—‘अब तुम शीघ्र वृन्दावन चले आओ । निधिवनके पास भेरे रहनेके लिए भवनका निर्माण करो ।’

बस, फिर क्या था । वृन्दावन जाकर निधिवनके निकट रहनेका निश्चय हो गया । साथ ही उनके हृदयमंचपर गूँज गयी आनन्द-लहरीकी यह झंकार—

वृन्दावनको जाना हेली वृन्दावनको जाना है ।
रसिक रंगीले राधामोहन तिनसों दिल लहिराना है ॥
ललितकिशोरीने दृढ़कर अब ये ही मनमें ठाना है ।
ललितलता निधुवनके नीचे ह्याँ ई ठीक ठिकाना है ॥

×

×

×

एक नहीं मानेंगे अब हम श्रीवृन्दावन जावेंगे ।
रूखी सूखी घीकी झुपड़ी पावेंगे सो खावेंगे ॥
ललितकिशोरी कौन कबोने परे कुञ्ज गुन गावेंगे ।
अवलोकत छबि जुगललालको ध्रिभुवन सुख बिसरावेंगे ॥

उन दिनों वृन्दावनके मार्गमें लुटेरोंका बहुत भय था । ललितकिशोरी-जीको राधारमणजीके आदेशानुसार एक विशाल मन्दिरके निर्माणके लिए पर्याप्त धन लेकर वृन्दावन जाना था । इसलिये सं० १२१३ वैशाख शुक्ला १३ को दोनों भाई रक्षाके लिए शस्त्रधारी सिपाहियोंकी सेना साथ लेकर वृन्दावनको चल पड़े । व्रजकी सीमाके बाहर किसी स्थानपर उनका अन्तिम पड़ाव हुआ । वहाँ नित्यकी भाँति नौकरने ललितकिशोरीजीके सामने हुक्का भरकर रखा । उन्होंने हुक्केको लात मारी । उसके पश्चात् जीवनमें कभी हुक्का नहीं पिया ।

व्रजकी सीमाके भीतर उन्होंने नंगे पाँव प्रवेश किया । वृन्दावन पहुँचकर पहले श्री राधारमणलालजीके मन्दिरके निकट राजा पटनीमलके कूञ्जमें निवास किया । कुछ भूतय उनके साथ रहे । बाकी यमुना किनारे बड़े-बड़े तम्रुओंमें ठहराये गये ।

सम्बन्ध १८१७, माघ शुक्ला ५ से निधिवनके निकट संगमरमरके एक विशाल भवनके निर्माणका कार्य प्रारम्भ हुआ। आठ वर्षमें यह कार्य शेष हुआ। सं० १८२५, माघ शुक्ला ५ को ललितकिशोरीजीके निज-सेव्य श्रीराधारमणके विग्रहको बड़े समारोहके साथ इसमें ले जाया गया। इसका नाम रखा गया 'ललित-निकुञ्ज'। पर शाहजीके मन्दिरके नामसे विख्यात रहकर आज भी यह वृन्दावनमें यात्रियों और पर्यटकोंके आकर्षणका केन्द्र बना हुआ है।

वृन्दावनमें ललितकिशोरीजीका मन एक क्षण भी भजन छोड़कर और किसी कार्यमें न जाता। प्रातः ४ बजे उठकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त हो वे ठाकुरजीकी मंगला आरती करते। बाल-भोग रखकर दैनिक भजनमें बैठ जाते। श्रृंगार-आरतीके पश्चात् ठाकुरजीके राजभोगके समय अपने सारे अमलके साथ कीर्तन करते हुए श्रीराधारमणजीके मन्दिर जाते। राधारमणजीके दर्शन कर कुछ देर गुरुदेव श्रीराधागोविन्दजीके घर जाकर उनका सत्संग करते। वहाँसे कीर्तन करते-करते अपने स्थानको लौट जाते। प्रसाद ग्रहणकर किंचित विश्राम करते। विश्रामके पश्चात् पद-रचनादि विभिन्न भगवत-कार्योंमें लग जाते। सन्ध्या समय ठाकुरजीकी सेवाका भार भाईपर छोड़ स्वयं यमुना तटपर जाकर भजन करते। दो-ढाई घण्टे वहाँ भजन करनेके बाद घर लौटते। हलका-सा प्रसाद ग्रहणकर फिर भजनमें बैठ जाते। रात बारह-एक बजे तक भजन करते रहते। सोते रातमें केवल तीन-चार घण्टे ही।

ललितकिशोरीजी बँगला, फारसी, हिन्दी आदि भाषाओंके विद्वान और एक अच्छे कवि तो थे ही, वे गायक भी ऊँचे दर्जेके थे। सभी तरहके वाजे बजा सकते थे। नृत्य-कला, विभिन्न शिल्प-कलाओं और हिकमतका भी उन्हें अच्छा ज्ञान था।

उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभाका निरन्तर भगवत-सेवा-कार्योंमें प्रयोग किया। रासलीलाओंमें उनकी विशेष रुचि थी। रासलीलाके पदोंकी रचना वे स्वयं करते थे। रासधारियों और रासके स्वरूपोंको गान, नृत्य और अभिनयकी शिक्षा भी स्वयं देते थे। ललितकुञ्जका नकशा और इसके चित्र उन्होंने स्वयं बनाये थे। हिकमतके उनके बहुत-से शिष्य नवाबोंके यहाँ नौकरी करते थे।

सब प्रकारसे योग्य और ऐश्वर्यशाली होते हुए भी, वे अति सरल और

दैन्यभावसम्पन्न थे । उनका रहन-सहन बहुत सादा था । वे केवल धोती और दुपट्टा धारण करते थे । सबसे बड़े प्रेमसे मिलते थे । सबके प्रति सेवाका भाव रखते थे ।

व्रज और व्रजरजमें उनकी निष्ठा अद्वितीय थी । व्रजके बाहर कभी न जानेका उनका दृढ़ संकल्प था । अन्त समय तक उन्होंने इसका पालन किया । व्रजके बाहर अपने चित्र तकको न जाने दिया । व्रजकी पवित्र भूमिमें मल-मूत्र विसर्जन करना उनके लिए असम्भव था । आगरेके बने मिट्टीके पात्रोंमें वे मल-मूत्र विसर्जन करते थे । उन पात्रोंको व्रजकी सीमाके बाहर फिकवा दिया जाता था । उनका आदेश था कि उनकी मृत्युके पश्चात् उनके शरीरको विमान आदिमें रखकर लोगोंके कन्धोंपर न ले जाया जाय, बल्कि वृन्दावनकी वीथियोंमें घसीटते हुए इस प्रकार ले जाया जाय, जिससे व्रजरजका निरन्तर स्पर्श होता रहे ।

भगवत्-प्रसादमें भी उनकी इतनी निष्ठा थी कि उसका एक भी कण नष्ट नहीं होने देते थे । प्रसाद पा चुकनेके पश्चात् दोनों और पत्तलोंकी सीके निकालकर उनमें छिपे हुए प्रसादके कणोंको मुखमें डाल लेते थे ।

राधारानीके वे अनन्य उपासक थे । सारे विश्वको राधामय देखते थे—

नैनन राधे नैनन राधे सैनन राधे कृतनित राधे ।
कानन राधे तानन राधे भानन राधे हितचित राधे ॥
बुद्धमें राधे सुखमें राधे मुद्धमें राधे उर चित राधे ।
ललितकिशोरी इत-उत राधे जित देखौं मैं तित-तित राधे ॥

राधादासीपनेके अपने अभिमानमें उन्होंने ऋद्धि, सिद्धि और ब्रह्मानन्दको ठुकरानेकी बात ही नहीं, हरिको अँगूठा दिखानेकी बात तक कह डाली है—

मैं दासी अपनी राधाकी करत खदासी जो रुचि पावत ।
सुधे वचन न बोलत सपनेहु हरिहृको अँगूठा दिखरावत ॥
ब्रह्मानन्द मगन सुख सिद्धि निधि श्रीबन गेल पाँव ठुकरावत ।
मुसतगनी मगरूरी होलत ललितकिशोरीको गुन गावत ॥

अब राधारानीकी दासीके रूपमें उनकी साक्षात् सेवाके लिए उनका

चित्त व्याकुल रहने लगा । सं० १६३० में दशहरेके बाद उन्हें फसली बुखार हुआ । दस-बारह दिनमें बुखार ठीक हो गया । दुर्बलता बनी रही । उसी समय निरोग अवस्थामें कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको उन्हें ज्ञात हुआ कि राधारानी अविलम्ब उन्हें निकुञ्जमें अपनी साक्षात् सेवामें लेनेके लिए आतुर हो रही हैं । उसी दिन उन्होंने आतुर संन्यास लिया । दूसरे दिन प्रातःकाल ललितमाधुरीजीको व्रजरजका चबूतरा तैयार करनेकी आज्ञा दे वे अपने दैनिक भजनमें बैठ गये । छोटे भाईने यमुनाजीकी कोमल, स्वच्छ, छनी हुई बालुकासे चबूतरा तैयार करवाया । चबूतरेके चारों ओर राधारमणजीके चित्र लगाये । दैनिक भजन समाप्त करनेके पश्चात् ललितकिशोरीजी चबूतरेपर विराजमान हुए । उस समय उनके मुखपर अवर्णनीय प्रसन्नताकी अलौकिक आभा थी । लग रहा था जैसे दे-इन्द्रासनके सुखका अनुभव कर रहे हों । उस समय उन्होंने इस पदकी रचना की—

वृन्दावन अवनी अली करो राधिका सोर ।
 गलरे गली छुट राधिका नाम न डूजौ घोर ॥
 नाम न डूजौ घोर ओर दश हूँ रङ्ग रांचे ।
 जल थल पातन पात सोर राधा धुनि मांचे ॥
 ऐसौ बने समाज सदा रहिहों जग जिन्दा ।
 ललितकिशोरी प्राण जाउठेंगे बन बिन्दा ॥

पदको पढ़कर सुनाया । पद पढ़नेके बाद कीर्तनका आदेश दिया । कीर्तनकी ध्वनि चारों ओर गूँज गयी । वे भी मन्द स्वरमें कीर्तन करते जाते और चारों ओर टंगे राधारमणके चित्रोंका दर्शन करते जाते । कभी चित्रोंमें राधारमणके चरणोंका स्पर्शकर माथेसे लगाते, कभी हाथ बढ़ाकर उन्हें अपने हृदयमें रख लेने जैसा अभिनय करते, कभी हाथ उठाकर नृत्य करने जैसी भंगी करते । अन्तमें राधारमणजीके चित्रकी ओर एकटक देखते-देखते और उनका नाम उच्चारण करते-करते नश्वर शरीरको त्यागकर वे उनके नित्यधाम पहुँच गये ।

बिजलीकी-सी द्रुतगतिसे यह संवाद चारों ओर फैल गया । सहस्रोंकी संख्यामें लोग उमड़-उमड़कर आने लगे । उनके अन्तिम संस्कारकी उनकी अपनी इच्छानुसार तैयारी की जाने लगी । वृन्दावनकी वीथियोंपर कोमल यमुनाजीकी रज बिछायी गयी । उसपरसे धीरे-धीरे वृन्दावनके मुख्य-मुख्य

मन्दिरोंके सामनेसे होते हुए हजारों लोगोंके कीर्तनकी महाध्वनिके बीच उन्हें ले जाया गया । अन्तमें उनके पूर्वनिर्देशानुसार उन्हें समाधि दे दी गयी ।

सन्वत् १९४२, ज्येष्ठ शुक्ला ५ को इसी प्रकार श्रीललितमाधुरीजीने भी निरोग अवस्थामें अकस्मात् रजका चबूतरा तैयार करवाया और इसी प्रकार चबूतरेपर लेटे कीर्तन करते हुए उन्होंने भी नित्यधाममें प्रवेश किया । दोनों भाइयोंकी समाधियाँ श्रीललितनिकुञ्जके चन्दपोल नामक द्वारके दोनों ओर, जो निधिवनके अति समीप है, विद्यमान हैं । दोनों जय-विजयकी तरह द्वारपाल रूपमें आज भी अपने इष्ट श्रीराधारमणकी सेवामें नियुक्त हैं ।



भक्त श्रीनवलकिशोर दासजी

(नन्दगाँव)

नन्दग्राममें नन्दबाबाका मन्दिर है । लगभग सवासी वर्ष पूर्व उसकी अवस्था जीर्ण-शीर्ण थी । उसके जगमोहनके पत्थरका पुराना फर्श ऊबड़-खाबड़ हो रहा था । नन्दलालको उसमें दौड़-भाग करते कष्ट होता था । उन्होंने सोचा—कितना अच्छा होता यदि यह फर्श चिकना संगमरमरका होता । सोचा, तो सोचते हो फर्श बैसा हो नहीं गया ? नहीं ! क्यों नहीं ? यह भी क्या अखिलब्रह्माण्डके अधिपति और नियन्ता श्रीभगवान्‌के लिए कोई बड़ी बात थी ? जिनकी अघटन-घटना-पटीयसी माया-शक्ति उनके इक्षण मात्रसे परिचालित हो एक ही पलमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका सृजन करनेकी क्षमता रखती है, वह क्या इस छोटे-से कार्यको नहीं कर सकती थी ? कर सकती थी । पर कर सकते हुए भी हाथ-पर-हाथ रखे कुछ न करनेको विवश थी ।

विबशताका कारण ? कारण यह कि यहाँ व्रजमें उसके प्रभुका दूसरा आवेश है । यहाँ वे प्रभु नहीं, नन्द-यशोदाके दुलाल हैं, श्रीदाम, सुदामादिके सखा हैं, गोपिकाओंके माखनचोर गोपाल और रासबिहारी हैं । यहाँ उनका एकमात्र लक्ष्य है उनके प्रेम-सेवा-रसका आस्वादन कर अपने रसिकशेखरत्व-को सार्थक करना, अपनी प्रेम-रसकी निरन्तर बढ़ती हुई भूखके लिए सामग्री

जुटाते रहना । यहाँ वे खाते-पहनते वही हैं, जो उनके प्रेमीभक्त प्रेमसे उन्हें देते हैं, रहते भी वहीं हैं जहाँ वे उन्हें प्रेमसे रखते हैं, चाहे वह सोनेका महल हो, या फूसकी झोंपड़ी । उन्हें वैकुण्ठमें ऐसी झोंपड़ी भी कहाँ नसीब होती है, जिसे उनके किसी भक्तने प्रेमसे तैयार किया हो, जिसका कण-कण उसके प्रेम-रससे सिक्त हो । यहाँ उनकी सभी शक्तियाँ उनसे दूर जा खड़ी होती हैं, जिससे उनके सांनिध्यसे उनका यह आवेश भंग न हो जाय और उनके प्रेमरसास्वादनमें बाधा न पड़ जाये ।

संगमरमरका फर्श नन्दके लालाके किसी प्रेमी भक्तकी प्रेम-सेवासे हो बन सकता था । उसने सोचा कोई ऐसा भक्त आ जाय तो उससे कहूँ । उसे किसीसे अपने लिए कुछ कहनेमें या उससे कुछ माँगनेमें शर्म तो है नहीं । पर वह माँगता है अपने भक्तोंसे ही । भक्तोंको छोड़ उस बिचारेका और है ही कौन ? जो उसकी सुने, वही तो हैं उसके नाते-रिश्तेदार, भाई-बन्धु और सखा । उन्हें हो वह अपना मानता है । अपनोंसे कुछ माँगनेमें शर्मकी बात ही क्या है ?

पर एक गुण और भी है उसमें । यदि उसे कोई अपना न दीखे, तो किसीको अपना बना लेनेमें, उससे मैत्री कर लेनेमें या कोई न कोई नाता जोड़ लेनेमें उसे देर नहीं लगती । ऐसा कुछ जादू है उसके पास, ऐसी कोई मोहिनी शक्ति है उसमें कि जिस किसीके सामने वह एक बार आ जाता है, वह सदाके लिए उसका अपना बनकर रह जाता है । इसलिए जिसे वह अपना बनाना चाहता है, उसे बस एक बार अपनी झलक दिखा देता है । फिर उससे अपना जो काम चाहता है करा लेता है । देखनेमें तो वह बड़ा भोला है, जैसे कुछ जानता ही नहीं । पर नखसे शिख तक इस प्रकारकी चतुराईसे भरा हुआ है ।

इस बार उसने अपनी इसी चतुराईसे काम लिया । राजस्थानके अलवर जिलेके चौघरीका नगला ग्राममें श्रीनवलकिशोर रहते थे । वे गौड़ ब्राह्मण थे और रामानुज सम्प्रदायमें दीक्षित थे । विष्णु भगवान्को उपासना करते थे । उनकी माँ श्रीमती हीरादेवी बड़ी भक्तिमती थीं । वे नन्दलालकी उपासना करती थीं । नन्दलालकी उनपर बड़ी कृपा थी । एक बार वे दुमंजलेसे गिर पड़ीं । नन्दलालने उन्हें अपनी गोदमें ले लिया । उन्हें चोट जरा भी नहीं आयी । तभी उन्होंने वृन्दावन जाकर बस जानेका निश्चय किया ।

वे वृन्दावन चली गयीं । साथमें श्रीनवलकिशोर और उनकी पत्नी भी गयीं । कुछ दिन बाद हीराबाईको नन्दलालाने नित्यधाममें अपनी सेवामें ले लिया । नवलकिशोरजीपर माँकी भक्ति और वैराग्यका प्रभाव पहलेसे था ही । माँके अन्तर्धानके पश्चात् उनका वैराग्य और भी तीव्र हो गया । उन्होंने अपनी धन-सम्पत्ति सब ठाकुर-वैष्णवोंकी सेवामें लगा दी । फिर पत्नी सहित नन्दग्राम चले गये । वहाँ आशेष्वरपर रहकर भजन करने लगे । एक दिन पत्नीसे कहा—‘यहाँ आशेष्वरपर चोरोंका भय बहुत है । लाओ तुम्हारे आभूषण किसी सुरक्षित स्थानपर रख आऊँ ।’

पत्नीने अपने सब आभूषण दे दिये । उन्हें बेचकर नवलकिशोरजीने साधु-वैष्णवोंकी सेवा कर दी । पत्नीने पूछा—‘आभूषण कहाँ रख आये ?’

वे बोले—‘नन्दलालाकी तिजोरीमें ।’

पत्नी भवितमती थीं । वे समझ गयीं । उन्होंने भी इसपर कोई आपत्ति नहीं की ।

कुछ दिनों बाद उन्होंने पत्नीको मँके भेज दिया और स्वयं वैराग्यवेश ग्रहणकर अकेले रहने लगे । नैष्ठिक ब्राह्मण होनेके कारण उन्हें छुआछूतका विचार बहुत था । वे मधुकरीमें सूखा अन्न माँग लाते । स्वयं बड़ी शुद्धतासे रसोई बनाते । किसीकी परछाई भी उसपर न पड़े, इसका विशेष ध्यान रखते । इस प्रकार बड़ी सावधानी और शुद्धतासे तैयार किये हुए भोगको ही विष्णुको अर्पणकर स्वयं प्रसाद ग्रहण करते ।

नन्दलाला नवलकिशोरजीकी माँके सम्बन्धसे उनसे भी अपना सम्बन्ध मानते थे । यह तो उनकी रीति ही ठहरी । वे अपने भवतसे तो सम्बन्ध मानते ही हैं, उसके सम्बन्धियोंसे, पूर्वजों और पितरोंसे, यहाँ तक कि उसकी आनेवाली सन्तानसे और उस भूमि तकसे, जिसमें उसने वास किया है, अपना निजी सम्बन्ध मान लेते हैं ।

उन्होंने नवलकिशोरजीसे फर्शकी सेवा करानेका विचार किया । पर इसमें उन्हें स्वाभाविक रूपसे कुछ संकोच था; क्योंकि नवलकिशोरजी तो उनसे अपना कोई विशेष सम्बन्ध मानते नहीं थे । वे विष्णुके उपासक थे । नन्दलालाकी नगरीमें रहते थे । उनके मन्दिरमें जाकर उनके भी दर्शन कर लिया करते थे, यह और बात थी । केवल इतनेसे उनका उनसे प्रेमका कोई विशेष सम्बन्ध तो बनता नहीं था ।

तो नन्दके लालाने उनपर अपना जादू चलानेकी बात सोची । एक दिन वे एक ब्रजमाईके घर मधुकरीको गये । वह जानती थीं कि यह बाबा मधुकरीमें रोटी नहीं लेते, आटा ही लेते हैं । वह गयी भीतरसे आटा लाने । बरामदेमें उसके दो छोटे-छोटे बालक सामने रखी थालीमें-से महेरी^१ खा रहे थे । नवलकिशोरजीने देखा कि उनके साथ बैठे उसी थालीमें-से कृष्ण और बलराम भी खा रहे हैं । उनके हाथ और मुँह उन ब्रज-बालकोंकी जूठी महेरीसे सने हुए हैं और वे उनकी (नवलकिशोरजीकी) ओर देख-देख, जैसे उन्हें चिढ़ानेको आँखें मटकाते हुए उसमें लम्बे-लम्बे हाथ मार रहे हैं ।

नवलकिशोर चकित, स्तम्भित और सम्मोहित-से एकटक उनकी ओर देखते रह गये । ब्रजमाई आयी मधुकरी लेकर और हाथ बढ़ाकर बोली—‘ले बाबा ।’

पर बाबा तो अपनी मुग्ध खो चुके थे । उनकी प्राकृतिक आँख और कान जड़ हो चुके थे । उन्हें ब्रजमाई दीखती होती और उसके शब्द उनके कानमें पड़ते होते, तब न वे अपनी झोली उसके आगे बढ़ाते । वे तो वैसे ही खड़े अपलक नेत्रोंसे कृष्ण-बलरामकी रूपमाधुरीका पान कर रहे थे । ब्रजमाईने उनकी यह मुद्रा देख ऊँचे स्वरमें कहा—‘भिक्षा ले न बाबा, कहा देख रह्यौ है बालकनकी ओर ?’

तब कहीं बाबाने चौंककर देखा आटेकी मुट्ठी भरे सामने खड़ी ब्रजमाईको । वे कुछ क्षण मौन रहे । फिर बोले—

‘मइया, यह मधुकरी रहने दे । मुझे बालकोंकी थालीमें-से थोड़ी महेरी दे दे ।’

‘कहा बाबा ? महेरी, बालकनकी जूठी ! तू कहा आज वावरो हय गयौ है ? आन दिना तो सच्ची रोटिउ नाय लेतो । आज बालकनकी जूठी महेरी मांग रह्यौ है ?’

ब्रजमाईके लिए इससे बड़ी अचम्भेकी बात और क्या हो सकती थी ? वह क्या जानती थी कि वह भीतर गयी और आयी, इतनेमें ही बाबाका सब कुछ उलट-पलट हो गया । उनपर नन्दके लालाका जादू असर कर गया । वे अब पहलेके-से नैष्ठिक ब्राह्मण नहीं रह गये, जो किसी द्रव्यपर किसीकी

१ दूध या दहीमें मिला हुआ जौका दलिया ।

परछाईं पड़ जानेसे भी उसे दूषित मानते थे और किसी औरका पकाया द्रव्य प्रसादी हो तो भी उससे परहेज करते थे । उन्होंने अब समझ लिया कि ब्रजका ठाकुर शुद्धता द्रव्यकी नहीं, प्रेमकी मानता है । वह प्रेमका ठाकुर है । नेमसे नहीं, प्रेमसे रीझता है ।

बाबाने कहा—‘मइया, मैं बावरा नहीं हुआ हूँ । मेरा बावरापन अब छूट गया है । देरी मत करे । महेरी दे दे ।’ बाबाके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी और उनका कण्ठस्वर रुद्ध हो रहा था ।

ब्रजमाईने समझा बाबा सचमुच बावरा हो गया है । वह चुपचाप खड़ी रही । बाबाने स्वयं लपककर थालीमें-से महेरीकी मुट्ठी भर ली ।

वे महेरी खा रहे थे, ब्रजमाई देख रही भी । खाते-खाते वे किसी अप्राकृत आस्वादनके आनन्दका अनुभव कर रहे थे । आनन्दाश्रुओंसे उनका मुख और वक्ष भीग रहा था !

इस घटनाके बादसे बाबाकी उपासनाने एक नया मोड़ लिया । उनके मनमें एक नयी उथल-पुथल मचने लगी । वे सोचने लगे— मैंने इतने दिन विष्णु भगवान्की उपासना की । उन्होंने एक बार भी दर्शन नहीं दिये । पर इस ब्रजके ठाकुरने न भजनेपर भी अयाचित भावसे ऐसी कृपा की ! यह कितना दयालु है ! कितना भोला है ! विष्णुकी उपासनाने कितनी मर्यादा है, कितना संभ्रम और संकोच है । पर यह तो किसी प्रकारके संभ्रम और संकोचको टिकने ही नहीं देता । इसे देखते ही लगता है, जैसे यह कितना जन्म-जन्मका अपना है । जी चाहता है, इसे हृदयसे लगाकर प्रेमाश्रुओंसे अभिषिक्त कर दो और बस करते रहो । कभी भी विलग न करो । विष्णु भगवान् अपने ऊँचे सिंहासनपर विराजमान रहकर दूरसे ही भक्तोंके नैवेद्यको स्वीकारकर प्रसादी उनके लिए छोड़ देते हैं । पर यह ब्रजके घर-घरमें डोलता-फिरता ब्रजवासियोंकी जूठन स्वयं खाता रहता है और उसमें न जाने कितने आनन्दका अनुभव करता है ।

फलतः बाबा बाह्यरूपसे तो पूर्ववत् विष्णुकी ही उपासना करते रहे, पर चित्तनमें नन्दलालको लाड़ लड़ाते रहे । वे विष्णुका ध्यान करना चाहते, तो भी नन्दलाल वहाँ आ विराजते । वे चेश्ठा करते, तो भी विष्णुके लिए वहाँ कोई स्थान न पाते । एक बार जब वे नन्दलालके मन्दिरके प्रांगणमें चित्तनमें बैठे थे, उन्होंने देखा कि नन्दका लाला वहाँ घुटनों चल रहा है,

चलते-चलते रुक जाता है और घुटनोंको हाथसे सहलाने लगता है। चिन्तन करते-करते तंद्रा आ गयी। स्वप्नमें नन्दलालने कहा—'बाबा मेरे पायनमें गड़े हैं।'

बाबासे नन्दलालका कष्ट न देखा गया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो और जितनी जल्दी हो नन्दलालके मन्दिरका फर्श चिकने संगमरमरका बनवाना है।

दूसरे दिन वे जोधपुर राज्यमें मकरानाके लिए चल पड़े। वहाँ पहुँचकर पत्थरके एक बड़े व्यापारीसे नन्दलालके मन्दिरके लिए संगमरमरके पत्थरोंकी भिक्षा माँगी। उसने कहा—'बाबा, जितने पत्थर चाहो ले जाओ। जिसने तुम्हें भेजा है, उसने मुझसे भी स्वप्नमें तुम्हें पत्थर देनेको कह दिया है।'

उस समय जोधपुरसे मथुराके लिए रेलगाड़ीकी व्यवस्था तो थी नहीं। बैलगाड़ीसे पत्थर नन्दग्राम पहुँचाये गये। शीघ्र नन्दलालके मन्दिर और जगमोहनमें सुन्दर संगमरमरका फर्श बनकर तैयार हो गया। जगमोहनके बाहर एक सुन्दर संगमरमरकी छतरी भी बन गयी। आज भी शरदमें इस छतरीमें नन्दलाल विराजते हैं। एक जगह दीवारके पत्थरमें इस घटनाका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार अंकित है—

देखो कृष्णबयाल जीवनके उद्धार हित ।

रच्यो महल नन्दलाल नौल' हृदय'में बैठके ॥

सोढा बिछवायो नन्दलाल संगमर निज महलमें ।

देखो कृष्ण बयाल बड़ी बड़ाई नवलको ॥

नवलकिशोरजी अब पहलेकी तरह स्वपाकी तो रहे, नहीं। पर नन्दग्रामके बाहर अब भी वे किसी औरके हाथका न खाते। एक बार वे मथुरा गये हुए थे। साथमें थे उनके शिष्य श्रीजुगलकिशोर। जुगलकिशोरको उन्होंने भेजा अपने ठाकुरकी रसोईके लिए घी लाने। उन्होंने एक परचूनियेकी दुकानपर घी माँगा। उसने कहा—

'ले जाओ बाबा।'

‘पर मेरे पास पैसे नहीं हैं, ।’

जुगलकिशोरजीने कहा ‘कोई’ बात नहीं । टाकुरजीकी घीकी सेवा मेरी तरफ से हो जायगी ।’

घी देनेके बाद बनियेने कहा—‘बाबा, मेरे कोई सन्तान नहीं है । तुम्हारे गुरुदेव सिद्ध-महात्मा है । उनसे कहना कुछ कृपा करें ।’

भोले-भाले और उदार स्वभावके जुगलकिशोरने झट कहा—‘अच्छा, अच्छा, हो जायगी कृपा ।’

वे लौटकर आये, तो नवलकिशोरजीने पूछा—‘घी कहाँसे लाये ?’

उन्होंने सारा वृत्तान्त ज्यों-कान्त्यों कह सुनाया । नवलकिशोरजीको गुस्सा आया । उन्होंने उनकी पीठपर चिमटा मारा और कहा—‘भूख, कृपा बेचता फिरता है । कृपाका रोजगार करता है । आज मेरी कृपा बेची, कल मुझे बेच आयेगा । चला जा यहाँसे । मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता ।’

जुगलकिशोर उनके चरणोंमें गिरकर रोते हुए बोले—‘बाबा ! क्षमा करें । अब ऐसा नहीं करूँगा । बनियेसे जाकर कह दूँगा—अपना घी वापस ले लो । याबा तुम्हारे लिए कुछ नहीं करेंगे ।’

नवलकिशोरजीका गुस्सा कुछ शान्त हुआ । वे बोले—‘अब तू वचन दे ही आया है, तो नन्दलाल उसपर कृपा अवश्य करेंगे । पर बनियेने तुझे ठग लिया । थोड़े-से घीके बदले लड़का ले लिया । जा, कह उससे जाकर—लड़का होनेपर नन्दलालकी गुलाबजलकी सेवा मित्य उसीको करनी होगी ।’

जुगलकिशोरने जाकर उससे ऐसे ही कह दिया । वह सुनकर ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे, उसे सन्तान सुनते ही प्राप्त हो गयी हो । नन्दलालकी गुलाबजलकी सेवा उसने तुरन्त आरम्भ कर दी । कुछ ही दिनोंमें उसके लड़का हुआ । नाम रखा ‘नमो ।’

सन्तान होनेपर उस परचूनियेने नया काम पत्थर आदिका शुरू किया । फर्मका नाम रखा ‘नवलकिशोर जुगलकिशोर ।’ कंस टीलाके नीचे यह फर्म दोनों महात्माओंके नामसे कई पीढ़ियाँ बीतनेपर आज भी वर्तमान है ।

नवलकिशोर जी कुछ भी करते, उसमें लक्ष्य होता केवल नन्दलालकी सेवाका । एक दिन ‘छोटे मिसर’ नामके एक गोस्वामी बालकने उनसे कहा—‘बाबा, तू तो सिद्ध है न ! बता मेरी मुट्ठीमें क्या है ?’

बाबाने कहा—'वता दूंगा। पर नन्दलालकी सेवा करनी पड़ेगी।

उसने सेवाका वचन दिया। बाबाने तत्काल नन्दलालका चिन्तन किया। देखा उनके ओष्ठ लाल हैं। वे बोले—'लालाके होठ लाल हो रहे हैं। तेरे हाथमें गुलकाँक (बिम्बफल) है।' वह बालक जब तक जीवित रहा नन्दलालकी सवा रुपयेकी सेवा नित्य करता रहा।

हरयाणाके सेठ भगवानदास बेरीवाला एक धनाढ्य व्यक्ति थे। उनका काम कुछ खराब हो गया था। ऊँटपर चढ़कर वे नन्दग्राम आये और नवलकिशोरजीकी कृपा प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उनसे अपनी सारी स्थितिका वर्णन किया। उन्होंने कहा—'नन्दलालकी सेवा करोगे, तो तुम्हारी उन्नति होगी।' वे नन्दलालकी सेवा करने लगे। तभीसे उनकी उन्नति होने लगी। आजतक उनके परिवारके लोग नन्दलालकी सेवा करते आ रहे हैं। उनके पौत्र श्रीरतनलाल बेरीवालाने ही नन्दलालके मन्दिरका जीर्णोद्धार किया, उसे उसका वर्तमान रूप दिया।

भगवानदासजीने पीछे नवलकिशोरजीको अपना शिक्षा गुरु मानकर उनसे मानसी-सेवाकी शिक्षा ग्रहण की। नवलकिशोरजीकी तरह वे भी मानसी-सेवामें सिद्ध हो गये। उन्हें भी नन्दलालके दर्शन होने लगे। उनके पौत्र रतनलालजी भी बड़े भक्त और साधु-वैष्णव-सेवी थे। उन्होंने श्रीसनातन गोस्वामीके 'बृहद्भागवतामृत'का हिन्दी अनुवादकर मुद्रित कराया और उसका निःशुल्क वितरण किया।

श्रीनवलकिशोर बाबा नन्दलालके लिए नित्य दस लड्डू अपने हाथसे बनाकर पुजारीको दिया करते। उसमें-से आठ प्रातः बालभोगमें उसे दिये जाते और दो रातको यशोदा माँके पास रख दिये जाते, जिससे यदि रातको उसे भूख लगे, तो खिला दें। तभीसे नन्दलालके लड्डू-भोगका यह नियम चला, जो आज भी जारी है।

नवलकिशोरजीका नन्दलालके प्रति वात्सल्यभाव था। पर अन्तमें श्रीराधाजीके प्रेमकी महिमा जान वे कान्ताभावके उपासक हो गये। इस सम्बन्धमें मन्दिरके जगमोहनकी दीवारपर उनका एक पद अंकित है, जिसकी दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

राधिकाजू प्रेम सुन्यो पद्मो अमित कथा ।
नौल लियौ सोई नेम मिल्यो श्याम श्रीपद कृपा ॥

उनका एक हस्तलिखित ग्रन्थ भी है, जो नन्दग्रामके गोस्वामी श्यामजीके पिताके पास सुरक्षित है। उससे उपरोक्त कई घटनाओंके अतिरिक्त यह बात भी प्रमाणित होती है कि वे कान्ताभावमें सिद्ध थे। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

तब ते बड़ भाग्यनि भई मोहि अपनायी नाथ ।
नाते बातो मान करि पुरषा किये सनाथ ॥
प्रगट वृन्दावन ल्याये मोहि, रखि करि उरमाल ।
करि सब मन की रुचि मेरे पति नन्दलाल ॥

नन्दगाँवमें आशेश्वरपर, जहाँ नवलकिशोरजी भजन करते थे, उनकी समाधि है। समाधिपर संभवत् १६३७ विक्रम खुदा हुआ है।

★

मुसलमान भक्त गुलाब सखीजी

(बरसाना)

बरसानेकी पीलीपोखरसे प्रेमसरोवर जानेवाले रास्तेसे कुछ हटकर बनप्रान्तमें एक पुराना चबूतरा है। लोग उसे गुलाब सखीका चबूतरा कहते हैं। आते-जाते उसपर माथा टेकते हैं।

गुलाब एक गरीब मुसलमान था। बरसानेमें उसका जन्म हुआ था। बरसानेकी जिस रजकी ब्रह्मा आदि भी कामना करते हैं, उसका जन्मसे ही उसे स्पर्श हुआ था। बरसानेके जलवायुसे उसके शरीर, मन और प्राणका ठन हुआ था। बरसानेके ब्रजवासियोंका उसे संग मिला था। वह उन्हींके झूमें रङ्गा हुआ था। उन्हींकी तरह बरसानेकी लीला-स्थलियोंकी रजथेपर लगाता था। होलीके दिनोंमें बरसानेकी रंगीली गलीमें झाड़ू लगाकर अपनेको धन्य मानता था।

वह बहुत दीन, भावुक और सरल था। पढ़ा-लिखा कुछ नहीं था। र सारंगी अच्छी बजा लेता था। श्रीजी (राधारानी) के मन्दिरके प्रांगणमें समाज (पदगान) हुआ करता था, उसमें वह सारंगी बजाता था। यही उसकी जीविका थी। श्रीजीके मन्दिरसे उसे नित्य प्रसाद मिल जाता था।

और महीनेमें दस-पाँच रुपये, जिससे किसी प्रकारका उसका निर्वाह होता था।

उसकी एक छोटी लड़की थी, जिसे वह प्यारमें 'राधा' कहा करता था। वह जब समाजमें सारंगी बजाता, तो लड़की नाचा करती। बड़ा मधुर और लोभनीय हुआ करता उसका वह नृत्य।

लड़कीसे, वह बहुत प्यार करता था। उसके साथ श्रीजीके मन्दिरमें सेवाकर वह बहुत प्रसन्न रहता था। मानो उसे त्रिलोककी सारी सम्पत्ति मिली हुई थी। वह और कुछ नहीं चाहता था। वह क्या सोच पाता था कि यह एक स्वप्न है, जिसका कभी अन्त होगा? लड़की बड़ी होकर ब्याह दी जायगी और वह श्रीजीकी सेवाके लिए अकेला रह जायगा।

पर वह दिन आते देर न लगी, जब लोभ उससे कहने लगे—'गुलाब, लड़की सयानी हो गयी है। उसकी शादी कर दे।' वह केवल गुलाबकी तो लड़की थी नहीं, बरसाने भरकी लड़की थी। बरसानेके सभी लोग उससे स्नेह करते थे, उसके भविष्यकी चिन्ता रखते थे।

पर जब कोई उसके ब्याहकी बात चलाता, तो गुलाबका एक ही उत्तर होता—'शादी करूँ कैसे? शादीके लिए तो पैसा चाहिये न।'

एक दिन श्रीजीके मन्दिरके कुछ गोस्वामियोंने उससे कहा—'तू पैसेकी क्यों चिन्ता करता है? उसकी व्यवस्था श्रीजी करेंगी। तू लड़का तो देख।'

गुलाबने लड़का देखना शुरू किया। श्रीजीकी कृपासे एक अच्छा लड़का मिल गया। गोस्वामियोंके सहयोगसे राधाका ब्याह हो गया। वह ससुराल चली गयी।

राधाके बिदा होते ही गुलाब गुम हो गया। उसकी भूख-प्यास, गाना और वजाना, सब उसके साथ बिदा हो गये। तीन दिन और तीन रात भूखा प्यासा श्रीजीके मन्दिरके सिंहद्वारपर गुम बैठा रहा। लोगोंको चिन्ता हुई कि कहीं वह पागल न हो जाय। उन्होंने उसे बहुत समझाया। पर किसीवि समझाने-बुझानेका कोई असर न हुआ। उसका विरहोन्माद बढ़ता गया वह सिंहद्वारपर या तो ग्रहग्रस्त-सा गुमसुम बैठा रहता, या राधाका नाम ले लेकर आहें भरता रहता।

तीसरे दिन रात १२ बजे, जब वह आँखें बन्द किये बैठा था, उ

सुनायी पड़ी अपनी बेटीकी आवाज—‘बाबा, मैं आ गयी। सारंगी नार्यं बजायगो ? मैं नाचूंगी ।’

उस समय वह सो रहा था या जग रहा था, कहना कठिन है। मुँदी हुई आँखोंसे उसने देखा कि वह सारंगी बजा रहा है और बेटी नाच रही है। पर उसकी पायलोंकी झंकारमें आज मन-प्राणकी हर लेनेवाला जैसा आकर्षण है, वंसा उसने पहले कभी नहीं अनुभव किया था। उस झंकारने उसकी अन्तरात्मा तकको झकझोर दिया। उसके भीतर और बाहरकी दोनों आँखें खुल गयीं। उसने देखा कि यह उसकी बेटी राधा नहीं, स्वयं राधारानी हैं, जो उसीकी तरह नृत्य कर रही हैं और यह उन्हींकी पायलोंकी झंकार है, जो उसके कर्णकुहरमें अमृत उड़ेल रही है !

सजल और विस्फारित नेत्रोंसे उनकी ओर एकटक देखते हुए उसने कहा—‘बेटी !’ और जैसे ही कुछ और कहनेकी चेष्टा करते हुए, स्नेहसे काँपते और डगमगाते वह अग्रसर हुआ उनकी ओर, वे भागीं मन्दिरकी ओर; और वह भागा उनके पीछे-पीछे।

इसके पश्चात् गुलाबको किसीने कभी नहीं देखा। उसके अकस्मात् बरसानेसे अदृश्य हो जानेकी बात सबके लिए एक पहली बनकर रह गयी। लोगोंने समझा कि उसने लड़कीके विरहमें देह त्याग दिया।

कई दिन बाद मन्दिरके एक गोस्वामी श्रीजीकी शयन-आरती कर अपने घर लौट रहे थे। रास्तेमें झुरमुटोंके पीछेसे आवाज आयी—‘गोसाईंजी, गोसाईंजी !’

उन्होंने उलटकर पूछा—‘कौन ?’

‘मैं, तिहारो गुलाब’ कहता हुआ गुलाब झुरमुटोंमेंसे निकल पड़ा।

उसे देख गोस्वामीजी अवाक् ! ‘तू तो मर गया था ?’ उन्होंने साहस गँवारते हुए कहा।

गुलाबने सिंहद्वारपर श्रीजीके दर्शनकी घटना सुनाते हुए कहा—‘मूले श्रीजीने अपने परिकरोंमें ले लिया है। अभी शयनके पूर्व मैं उन्हें सारंगी बजाकर आ रहा हूँ। यह लीजिये उनकी प्रसादी पानकी बीड़ी।’

इतना कह उसने गोस्वामीजीको श्रीजीके प्रसादी पानकी बीड़ी दे दी।

वे यह देखकर चकित रह गये कि बीड़ी वही थी, जो वे श्रीजीके भोगमें अभी रखकर आये थे ।

गोस्वामीजीने पूछा— 'तो तू अब रहता कहाँ है ?

उसने वही स्थान बताया, जहाँ वह चबूतरा है । चबूतरा उस समयके गोस्वामियोंने उसकी स्मृतिमें वहाँ बनवा दिया था ।

गुलाबपर राधारानीकी कृपाके सम्बन्धमें विचार करनेका हमें अधिकार नहीं । पर रह-रहकर हृदयमें एक प्रश्न जागता है । उस मुसलमानने ऐसा कौन-सा पुण्य किया था, कौन-सा ऐसा जप-तप, साधन या सेवाका कार्य किया था, जिसके फलस्वरूप श्रीजीने उसपर ऐसी कृपा की ? यदि कहें कि वह श्रीजीके मन्दिरमें सारंगी बजानेकी सेवा करता था, तो यह उसकी जीविका ही थी । वह सारङ्गी अपना पेट पालनेके लिए बजाता था, न कि श्रीजीको प्रमत्त करनेके लिए । यदि कहो कि वह श्रीजीके मन्दिरके सिंहासनद्वारपर तीन दिन तक बैठा रोता रहा था 'राधा' नाम ले-लेकर, तो वह तो अपनी लड़की राधाका नाम लेकर उसके लिए रोया था, न कि राधारानीके लिए । उसके हृदयमें जो तड़प थी, वह अपनी लड़कीके विरहकी थी । राधारानीका विरह उसे कब इतना सताया था ? कब उनके दर्शनकी उसे इतनी छटपटी हुई थी ?

इस प्रश्नका उत्तर शायद यह है कि राधारानीकी कृपा प्राप्त करनेके लिए किसी जप-तप या साधन-विशेषकी आवश्यकता नहीं । आवश्यकता है केवल उनकी कृपा चाहनेकी और अपने-आपको उसे ग्रहण करनेके योग्य बना लेनेकी । उनका कृपा-वारिधि तो स्वभावतः उच्छलित होता रहता ही है । पर हमारे हृदय-कलशमें जगह कहाँ रहती है उसका एक विन्दु भी ग्रहण करनेकी । वह तो लबालब भरा हुआ होता है अगणित दोषों और अपराधोंकी कीचड़से । गुलाब निर्दोष, निष्कपट और निरपराध था । उसके ऊपर राधारानीकी कृपा उमड़ पड़नेके लिए इतना ही पर्याप्त था कि वह उनके मन्दिरका मिरासी था और उनके द्वारपर बैठा रो रहा था उनका भरोसा लेकर । कहनामयी उसे अपने द्वारपर इस तरह रोते कब देख सकती थीं ?



श्रीअद्वैतदास बाबाजी

(गोवर्धन)

श्रीअपूर्वचरण उस दिन न जाने किस चिन्तामें बैठे थे। उन्हें देख उनके बन्धु श्रीमृत्युञ्जयदासने कहा—‘आज किस चिन्तामें बैठे हो बन्धु ? चिन्ताके विषयकी चिन्ता न कर चिन्ताहरणकी चिन्ता करो न। असत्यकी चिन्ता न कर सत्यकी चिन्ता करो न ! चिन्ता अपने-आप भाग जायगी।’

‘इस जगत्में सत्य वस्तु कुछ है क्या ?’ अपूर्वचरणने प्रश्न किया।

‘है नहीं क्या ? शास्त्राध्ययनसे सत्य-असत्यका पता चलता है। पर शास्त्र अनन्त हैं। उनके अध्ययनमें समय लगता है। मैं तुम्हें दो पैसेकी एक छोटी-सी पुस्तक दूंगा, जिसमें सब शास्त्रोंका सार है। उसे पढ़कर सहज ही जान लोगे कि सत्य क्या है और असत्य क्या है।’ मृत्युञ्जयने इतना कह गांवके एक प्राचीन वैष्णवके घरसे श्रीप्रेमानन्द-कृत ‘मनःशिक्षा’की एक प्रति लाकर अपूर्वचरणको दे दी।

अपूर्वचरणने मनःशिक्षाका अध्ययन किया। उनके हृदय-पटलपर उसकी पंक्तियाँ सदाके लिए अंकित हो गयीं—

ए मन ! तुमि से अबोध बड़ ।

देखिया झुनिया बूझिते नारिया, करिते ना पार रड़ ॥

के सार असार, ना कर विचारः के तुमि कर कि काज ।

परेर कारणे, शरीर खोयालि, आपन काजे ते बाज ॥

ए धन ए जन, आपना भाविछ, से तोर बुद्धिर भूल ।

एखन तखन, कखन कि हय, बूझ ना आपन मूल ॥

देख न जीवन केवल पसन, जाइते कि तार बाधा ।

कैसेर कारणे, एतेक आरति, खाटिया मरिछ गाधा ॥

‘मन ! तू कैसा मूर्ख है ? देख-सुनकर भी कुछ नहीं समझ रहा है। सार-असार और अपने स्वरूपका बिना विचार किये यह तू क्या कर रहा है ? दूसरोंके लिए जीवन व्यर्थ गवाँ रहा है। अपने लिए कुछ नहीं कर रहा है। अपने धन-जनकी जो तू अपना समझ रहा है, यह तेरी भूल है। कब यह

तुझसे छूट जायें, कौन कह सकता है ? जो सचमुच तेरा अपना है, सदाक लिए अपना है, जिससे तेरी उत्पत्ति और स्थिति है, उसे तू नहीं जान रहा है। देख, तेरा जीवन पवनके समान अस्थिर है। इसे जाते क्या देर लगेगी ? इसकी क्या कोई रोक-थाम कर सकेगा ? यह पवनकी तरह आया है, पवनकी तरह विलीन हो जायगा। फिर तू किसके लिए गधेकी तरह पिस-पिसकर मर रहा है ?'

मनःशिक्षाकी उपरोक्त पंक्तियोंसे उन्हें असत् वस्तुका ज्ञान हुआ और निम्न पंक्तियोंसे सत् वस्तुके श्रेष्ठतम स्वरूपका :-

ए मन ! गौरांग बिने नाहि आर ।

हेन अवतार, हवे कि हंयेछे, हेन प्रेम परचार ॥

दुरमति अति, पतित पाषण्डी, प्राणे ना मारिल कारे ।

हरिनाम दिये, हृदय शोधिल, जाचि गया घरे घरे ॥

भव-चिरञ्चर, बाञ्छित जे प्रेम, जगते फेलिल दालि ॥

काङ्गले पाइये, खाइल नाचिये, बजाइया करतालि ॥

हासिये काँदिये, प्रेमे गड़ा गड़ि, पुलके व्यापिल अङ्ग ।

चण्डाले ब्राह्मणे, करे कोला कुलि, कबे बा छिलो ए रंग ॥

'श्रीगौरांग महाप्रभु हो परतत्त्वकी चरम सीमा हैं। ऐसा अवतार न कभी हुआ, न होगा। उनका जैसा प्रेमका प्रचार क्या कभी किसी अवतारने किया है ? दूसरे अवतारोंने तो दुष्टों, पतितों और पाषण्डियोंका वध कर धर्मकी रक्षा की। पर गौरांग महाप्रभुने वध किसीका नहीं किया। अपितु दुष्ट और दुराचारी लोगोंके घर-घर जाकर हरिनाम सुनाकर उनका शोधन किया और उन्हें प्रेमदान किया। जिस प्रेमामृतके लिए ब्रह्मा भी लालायित रहते हैं, उसे उन्होंने भूतलपर ऐसे बहाया, जैसे अनायास उसकी बाढ़ आ गयी हो। उन सभी व्यक्तियोंने, जो सदासे प्रेम-धनके कंगाल थे, जिन्होंने प्रेमामृतका आस्वादन छोड़ स्पर्श भी कभी नहीं किया था, नाच-नाचकर, ताली बजा-बजाकर उसका जी भरकर पान किया। उसका पानकर वे ऐसे प्रेमोन्मत्त हुए कि कभी हँसते, कभी रोते, कभी अश्रु-पुलकादि सात्विक भावोंसे अभिभूत हो भूमिपर लोट-पोट होते और कभी, वे ब्राह्मण हों या चण्डाल, एक-दूसरेको प्रेमसे आलिंगन कर आनन्द विभोर होते। ऐसा रंग, ऐसा

आनन्द क्या और कभी हुआ है ? ऐसा प्रेमका उन्मुक्त पवन क्या अन्य किसी अवतारने कभी बहाया है ?'

शुष्क काष्ठमें छिपी अग्निको प्रज्वलित करनेके लिए एक-दो चिनगारियाँ ही यथेष्ट होती हैं। वैसे ही मनःशिक्षाकी कुछ चिनगारियोंके संपर्क-से अपूर्वचरणकी वैराग्याग्नि धक्-धक्कर जल उठी। घरके लोगोंसे छिपकर उन्होंने शोड़ा ग्रामके श्रीमन्नित्यानन्द वंशके श्रीअच्युतानन्द प्रभुसे श्रीकृष्ण-मन्त्रमें दीक्षा ली। दीक्षा लेकर वे अपना अधिकांश समय हरिभजनमें व्यतीत करते हुए संसार त्यागकर श्रीगौरांग महाप्रभुकी शरण लेनेके उद्देश्यसे उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे।

अपूर्वचरणका जन्म गौड़मण्डलके मेदिनीपुर जिलेके अन्तर्गत वयदाई ग्रासमें भक्तध्वंश श्रीनीलकण्ठकी पत्नी श्रीमती व्रजरानीदेवीके गर्भसे सन् १८७० में फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन सायंकाल चन्द्रग्रहणके समय हुआ था। डेढ़ वर्ष पश्चात् उनके पिताका देहान्त हो गया। उनका लालन-पालन और विद्याध्ययन बड़े भाईकी देख-रेखमें चलता रहा। पर उनके बड़े भाईको अल्पावस्थामें उनका भजन-साधनमें संलग्न रहना अच्छा न लगता। वे उनपर कठोर शासन करते और सृत्युञ्जयदासको इसके लिए दोषी मानकर उनसे दूर रहनेको कहते। अपूर्वचरणपर इसका कोई असर न हुआ। उनका भजनमें आवेश दिन-पर-दिन बढ़ता गया। यह देख बड़े भाईने १५ वर्षकी अवस्थामें उनका विवाह कर देनेका निश्चय किया।

एक दिन वे अपूर्वचरणसे बोले—'देखो, कल अक्षयतृतीया है। मुझे तुम्हारा विवाह-सम्बन्ध तय करने बाहर जाना है। तुम अक्षयतृतीयाके उपलक्ष्यमें कुछ ब्राह्मणोंको भोजन करा देना।'

अपूर्वचरणकी ब्राह्मण-भोजनके लिए कुछ रुपये देकर वे चले गये। बहुत दिनोंसे अपूर्वचरण जिस अवसरकी प्रतीक्षा कर रहे थे वह आ गया। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन करा वे सृत्युञ्जयदासके साथ घरसे निकल पड़े। श्रीधाम नवद्वीप होते हुए मयनाडाल पहुँचे। वहाँ मित्र ठाकुर महाशयके आश्रममें रहकर उनसे संकीर्तनकी शिक्षा लेने लगे। 'निरमल गौरा तनु'के पदगानसे संकीर्तन-शिक्षा आरम्भ की। उस पदका गान करते-करते संकीर्तन-पिता गौरांग महाप्रभुके भावमें इतना आविष्ट हो गये कि सोते-जागते, खाते-पीते हर समय बिना किसी प्रकारकी चेष्टा किये उनका चिन्तन अपने-आप होता

रहता। उसी समय एक दिन रात्रिमें श्रीमन्महाप्रभुने स्वप्नमें उन्हें दर्शन दिये। महाप्रभुके दर्शन करते-करते उन्होंने देखा कि वे एक बाबाजीका रूप धारणकर उनके प्रति स्नेहपूर्वक देख रहे हैं।

दूसरे दिन जब वे मित्रठाकुरके आश्रमके मन्दिरमें श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन करने गये, तो महाप्रभुके दर्शनके पश्चात् तत्काल एक बाबाजीके दर्शन किये, जिनका ठीक वैसा ही स्वरूप था, जैसा स्वप्नके उन बाबाजीका, जिनका रूप महाप्रभुने धारण किया था। वे उन बाबाजीकी तरह ही स्नेहपूर्वक उन्हें देख रहे थे। उन्हें देखते ही वे अपनी सुध-बुध खो बैठे। उनके चरणोंमें लिपटकर 'हा, गुरुदेव ! हा, गुरुदेव ! कृपा करो गुरुदेव' कहते हुए रोदन करने लगे। बाबाने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया और मृदु वाक्योंसे आश्वस्त कर शान्त किया। दूसरे दिन उन्हें महाप्रभुके मन्दिरमें ही संकीर्तनके बीच वेश देकर नाम रखा श्रीअर्द्धतदास।

यह थे वृन्दावनके श्रीविष्णुदास बाबाजी महाराज, जो गोवर्धन तटवर्ती गोविन्दकुण्डमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी द्वारा प्रकटित श्रीनाथजीकी सेवा करते थे और इस समय वृन्दावनसे मयनाडाल होते हुए जगन्नाथजीके दर्शन करने श्रीधाम पुरी जा रहे थे। कौन जाने कि वे श्रीमन्महाप्रभुकी प्रेरणासे अपूर्वचरणकी वेश देनेके लिए ही मयनाडाल आये थे।

वेश ग्रहणकर श्रीअर्द्धतदास बाबाजीने मृत्युञ्जयदासके साथ वृन्दावम गमन किया। वहाँ वे श्रीविष्णुदास बाबाजीके भजन-स्थान नारङ्गाबादमें रहकर भजन करने लगे। विष्णुदास बाबाजीने जगन्नाथपुरीसे लौटनेपर मृत्युञ्जयदासको भी वेश देकर नाम रखा श्रीमाधवदास।

अर्द्धतदासके घरसे चले आनेके पश्चात् उनकी माता बहुत दुःखी हुई। उनके बड़े भाईको जब पता चला कि वे वृन्दावन चले गये हैं, उन्होंने पत्र लिखकर उनसे एक बार माताके दर्शन कर जानेका आग्रह किया। श्रीगुरुदेवके आदेशसे वे अपने जन्म-स्थान गये। उन्हें देखकर मंनि कहा— 'बेटा, तुम जहाँ चाहो रहना। पर बीच-बीचमें अपना संवाद भेजते रहना और मेरे अन्त समयमें मेरे निकट रहना।'।

जब वे लौटकर वृन्दावन आये, गुरुदेवने उन्हें श्रीनाथजीकी सेवामें नियुक्त कर दिया। साथ ही सिद्ध श्रीमनोहरदास पण्डित बाबाजीसे श्रीमद्भागवतादि भक्तिशास्त्रोंका अध्ययन करनेकी आज्ञा की। श्रीमनोहरदास

बाबाजी महाराजकी कृपासे उन्होंने थोड़े ही समयमें भक्तिशास्त्रोंमें निपुणता प्राप्त कर ली। तदन्तर वे श्रीजगदानन्ददास बाबाजीके साथ रहकर गोवर्धनमें सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा (द्वितीय) के आनुगत्यमें अष्टकालीय लीला-स्मरण करने लगे।

कुछ ही दिनोंमें उन्होंने एक महान पण्डित और भक्तिशास्त्रोंके विशिष्ट ज्ञाताके रूपमें ख्याति लाभ की। भक्त-जन श्रीमद्भागवत-पाठादिके लिए उनसे आग्रह करते और वे लीला-स्मरणसे समय निकालकर उनकी सेवा करते।

श्रीअद्वैतदास बाबा बड़े वैराग्यसे रहते। उन्होंने अपने हाथसे मिट्टी सानकर श्रीनाथजीके मन्दिरके पीछे एक कच्ची कुटियाका निर्माण किया। उसके ऊपर किरचे (लकड़ीके तख्तों) की छत डालकर उसे मिट्टी और गोबरसे लीप दिया। उस कुटियामें रहकर वे भजन करते। मधुकरी द्वारा जीवन-निर्वाह करते। पैसा कभी स्पर्श न करते। एक दिन वे कुटियामें बैठे दरवाजा बन्दकर उच्च स्वरसे कीर्तन कर रहे थे। कोई भक्त उनके दर्शन करने आया और दरवाजेपर एक रुपया रखकर चला गया। दरवाजा खोलते वे रुपया देखकर चौंक पड़े और दो हाथ पीछे खिसक गये। उसी समय एक नाई जाता दीखा। उससे उन्होंने रुपया लेकर स्थान गोबरसे लीप देनेको कहा। जब तक रुपया वहाँसे उठ नहीं गया और स्थान धो-लीपकर पवित्र नहीं कर दिया गया, उन्हें चैन नहीं आया।

पर उनका वैराग्य शुष्क नहीं था। वे कहा करते कि शुष्क वैराग्यसे अहंकार बढ़ता है, हृदय कठोर हो जाता है और भाव-भक्तिके उदय होनेमें बाधा पड़ती है। इस सम्बन्धमें वे अपने शिक्षा-गुरु श्रीमनोहरदास बाबाके एक विचित्र अनुभवकी बात अकसर कहा करते।

श्रीमनोहरदास बाबा केवल सात घरोंसे मधुकरी मांगते और उसे भी दूसरे साधुओंमें बाँटकर खाते। कुछ दिन बाद वे केवल आटेकी मधुकरी करने लगे और आटा पानीमें घोलकर पीने लगे। एक दिन वे गोविन्दकुण्डके किनारे बैठे भजन करते-करते यह सोचकर दुःखी हो रहे थे कि इतना सब करनेपर भी वे श्रीकृष्णकी कृपासे वंचित रहे और यह सोच-सोचकर अपने जीवनको बार-बार धिक्कार रहे थे। उसी समय उन्हें एक विशेष स्फूर्ति हुई। उन्होंने देखा कि गिरिराजकी गुफासे एक महात्मा निकले। उनके शरीर-

की दूरसे चमकती हुई एक-एक हड्डी, पीठसे लगते हुए पेट और जीर्ण-शीर्ण वहिर्वासको देख लगता था जैसे स्वयं वैराग्य मूर्ति धारण कर चला आ रहा हो। उन्होंने गोविन्दकुण्डमें स्नान किया। कसएमें जल भरकर बाहर निकले। तटवर्ती तुलसीमंचके निकट जाकर मंचपर विराजमान गिरिधारीजीको स्नान कराया। स्नानका जल नीचे एक गड्ढेमें जा गिरा। उसमेंसे उन्होंने दो चुल्हू जल निकालकर पिया। फिर रो-रोकर कहने लगे—‘हाय ! अभी तक मुझे भगवत्-प्राप्ति नहीं हुई। फिर भी मैं जल पीता हूँ और जिन्दा हूँ ! मुझे धिक्कार है।’ इस प्रकार रोते और अपने-आपको धिक्कारते हुए वे गुफाको लौट गये। मनोहरदास बाबाको तीन-तीन दिन बाद तीन बार उसी प्रकार उन महात्माके दर्शन हुए। तब उन्होंने समझा कि महात्मा तीन दिन केवल दो चुल्हू जल पीकर रह रहे हैं, फिर भी उन्हें भगवत्प्राप्ति नहीं हो रही है। यह देख उनका अपने त्याग और वैराग्यका अभिमान जाता रहा। उन्होंने यह भी जान लिया कि प्रभुने इसके द्वारा उन्हें यह समझानेकी चेष्टा की है कि केवल शुष्क वैराग्यसे उनकी प्राप्ति नहीं होती।

श्रीअर्द्धतदास बाबाजीका हृदय बड़ा सरस था। कीर्तनमें अकसर उन्हें असाधारण भावावेश हो जाता। एक बार वृन्दावनमें शृङ्गारवटके श्रीब्रह्मानन्द ठाकुरके पोष्यपुत्र और श्रीचैतन्यमंगलके प्रसिद्ध गायक श्रीचाँपाठाकुर महाशयने लगातार दो महीने चैतन्यमंगलका कीर्तन किया। श्रीअर्द्धतदास बाबाने प्रारम्भसे ही श्रीमन्महाप्रभुके उस लीला-कीर्तनका श्रवण किया। बीचमें एक दिन महाप्रभुके पिता श्रीजगन्नाथ मिश्रके परलोकगमनका प्रसंग आया। शची माँकी विरह-कातरावस्थाका हृदयविदारक वर्णन किया गया। उसी अवस्थामें उस दिनका कीर्तन समाप्त हो गया। उस समय बाबा विरहभावमें इतना व्याकुल हो गये कि उनके मुखसे रक्त गिरने लगा। यह देख चाँपाठाकुरने तुरन्त लीला-कीर्तन फिर आरम्भ किया और शची माँके विरहापनोदनके पश्चात् बन्द किया। तब बाबा प्रकृतिस्थ हुए।

एक दिन बाबा गोविन्दकुण्डके दक्षिण तटपर अपनी कुटियाकी छत्रपर बैठे नेत्र बन्द किये भजन कर रहे थे। भजनावेशमें उन्होंने देखा कि कृष्ण-बलराम सखाओंके साथ गोचारणस्-वापस लौट रहे हैं। उनकी अन्तर्दृष्टि उनकी रूपमाधुरीमें उलझकर रह गयी। वे तबतक एकटक उन्हें निहारते रहे, जबतक वे आँखोंसे ओझल नहीं हो गये। जैसे ही वे आँखोंसे ओझल हुए, उन्होंने देखा कि गोविन्दकुण्डके उस पार वृक्षरूपमें एक भक्त,

जो उन्हींकी तरह उनकी ओर एकटक निहार रहे थे, मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पड़े। उसी समय उन्होंने आँखें खोलीं। कुण्डके उसपार जाकर देखा कि सचमुच एक वृक्ष, जो अभीतक हरा-भरा खड़ा था, अब भूमिपर गिरा पड़ा है।

कौन जाने बाबाको चिन्तनमें इस प्रकारकी और कितनी लीलाओंका अनुभव हुआ। कभी-कभी वे अपने किसी अन्तरंग भक्तसे किसी प्रसंगमें उनका वर्णन कर दिया करते। उनके शिक्षा-शिष्य श्रीप्रियाचरणदास बाबा उनके विशेष कृपापात्र थे। कृष्ण-वलरामके दर्शनकी उपरोक्त घटनाका वर्णन उन्होंने उनसे किया था।

कुछ दिन पश्चात् श्रीअद्वैतदास बाबा राधाकुण्डमें जाकर रहने लगे और श्रीमद्भागवतादि भक्तिशास्त्रोंकी आलोचना कर राधाकुण्डके वैष्णवोंको आनन्दित करने लगे।

इसी बीच उन्हें गोवर्धनसे अपने गुरुदेव श्रीविष्णुदास बाबाजीकी अस्वस्थताका सम्वाद प्राप्त हुआ। वे गोवर्धनके लिए चल पड़े। उनके शिष्य श्रीहरिदास गोवर्धनमें गुरुदेवकी सेवामें नियुक्त थे। जब वे मार्गमें ही थे, हरिदासने उनसे कहला भेजा कि गुरुदेव नित्यलीलामें प्रवेश कर गये। यह सुनते ही वे 'हा गौरांग !' कह मूर्च्छित हो गिर पड़े। कुछ चैतन्य लाभकर उन्होंने हरिदास द्वारा भेजे गये व्यक्तिसे कहा—'मेरी अब जानेकी सामर्थ्य नहीं है। हरिदाससे कहना, वह बाबाजी महाराजकी अंत्येष्टिका यथोचित रूपसे समाधान कर दे।'।

हरिदास बाबाजी महाराजका अन्तिम संस्कारकर रात्रिमें गोविन्द-कुण्डमें शयन कर रहे थे। शेष रात्रिमें श्रीविष्णुदास बाबाजीने स्वप्नमें हरिदाससे कहा—'अद्वैतदास मेरे विरहमें बहुत कातर हो रहा है। उससे जाकर कहो, कोई दुःख न करे। मैं जिस तुलसीके नीचे बैठकर भजन किया करता था, वहाँ जाकर वह पहलेकी तरह मुझे देख सकेगा और मुझसे बात कर सकेगा।' हरिदासने उसी दिन प्रातःकाल राधाकुण्ड जाकर अद्वैतदास बाबाको स्वप्नका सब वृत्तान्त कह सुनाया। बाबाने आकुल भावसे कहा—'मुझे शीघ्र वहाँ ले चलो। यदि सचमुच उनके दर्शन हुए, तो प्राण रखूँगा, नहीं तो गोविन्दकुण्डमें डूबकर मर जाऊँगा।' गोविन्दकुण्ड पहुँचकर उन्होंने तुलसी-मंके नीचे श्रीगुरुदेवके साक्षात् दर्शन किये। उनके द्वारा भली प्रकार

आश्वस्त होनेपर धैर्य धारण कर पूर्ववत् श्रीमद्भागवत-पाठादि द्वारा लोगोंकी सेवा करने लगे ।

इस समय पूर्वोक्त श्रीचाँपाठाकुर महाशयने आकर उनसे वेश ग्रहण किया । नाम हुआ श्रीकृष्णचैतन्यदास । और भी बहुत-से शिष्य हुए, जिनमें मुख्य थे श्रीवैष्णवदास शास्त्री, श्रीभागवतदास, श्रीकुञ्जबिहारीदास, श्रीदीनशरणदास, श्रीप्रेमानन्द शास्त्री, डा० अमरनाथ सेन, श्रीरासगौर घोषाल इत्यादि ।

सन् १९६२ में एक दिन श्रीअद्वैतदास बाबाने अपने सभी शिष्योंको पत्र लिखकर फाल्गुन मासके कृष्णपक्षमें गोवर्धन आकर उनसे मिलनेकी आज्ञा की । दूर-दूरसे शिष्य आने लगे । सबको यथायोग्य उपदेशकर नवमीके दिन श्रीहरिदास और श्रीनित्यानन्ददाससे बोले—‘मेरे दीक्षा-गुरुदेव मुझे लेने आये हैं । एकादशीके दिन निशान्त होते ही जब श्रीमन्महाप्रभु श्रीवास-आँगनमें कीर्तन आरम्भ करेंगे, मैं गुरुदेवके साथ श्रीश्रीनिताइ-गौरके चरणोंमें जा उपस्थित होऊँगा ।’*

दशमीके दिन प्रातःकालसे ही शिष्य और वैष्णवगण बाबाके दर्शनके लिए आने लगे । सबको उन्होंने प्रीतिजनक वाक्योंसे आनन्दित किया । सन्ध्या-समय शिष्योंसे कहा—‘तुम लोग दीरत्वकर मुझे किसी ओषधिका प्रयोग न कराना । केवल मधुर हरिनाम सुनाना ।’ मध्यरात्रिमें हरिदाससे बोले—‘नाड़ी देखकर बताओ तो मेरे शरीरकी कैसी अवस्था है ?’

नाड़ी देखकर हरिदासने कहा—‘आप तो स्वयं ही जानते हैं । मैं क्या बताऊँ ?’

‘अच्छा तो थोड़ा स्थिर भावसे लेट जाऊँ’ कहकर मौन हो गये । शिष्यगण मधुर स्वरसे ‘श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द’ नामका कीर्तन करने लगे । थोड़ी देर बाद उनके शिष्य श्रीप्रेमदासने पूछा—‘बाबा, क्या आप सचमुच हमें छोड़कर चले जायेंगे ?’

उन्होंने कहा—‘हाँ’ और फिर मौन हो गये । दूसरे दिन निशान्तमें और एकादशीके प्रारम्भमें मधुर कीर्तनकी ध्वनिके बीच वे अपने पार्थिव

*बाबाका आशय यह था कि श्रीकृष्ण-लीलाकी तरह श्रीश्रीनिताइ-गौरकी प्रत्येक लीला नित्य है । इसलिए श्रीवास-आँगनमें उनका कीर्तन भी नित्य है ।

शरीरको छोड़ सिद्ध देहसे श्रीवास-आंगनमें निताइ-गौरांगके कीर्तनमें जा सम्मिलित हुए !

श्रीअद्वैतदास बाबाजी महाराजके भजनके सम्बन्धमें दो बातोंका उल्लेख कर देना साधकोंके लिए उपयोगी होगा, जो उन्होंने अपने शिष्य श्रीमत्कुञ्जबिहारीदास बाबाजीसे कही थीं। एक तो यह कि मधुररसकी लीलाओंका स्मरण उन्हें अपने साधक-जीवनके प्रारम्भमें लाभप्रद सिद्ध नहीं हुआ। इन लीलाओंके चिन्तनसे उनकी इन्द्रियाँ चंचल होने लगीं। उन्होंने लीला-चिन्तन छोड़कर केवल नाम-जप, शास्त्राध्ययन, कथा और कीर्तनमें मनोनिवेश किया, जिससे उनका हृदय शुद्ध हुआ और धीरे-धीरे लीला-चिन्तनका अधिकार प्राप्त हुआ।

दूसरी बात उन्होंने श्रीकुञ्जबिहारीदास बाबाजीसे यह कही कि उन्होंने एक ऐसे सिद्ध महात्माका संग किया, जो गौड़ीय होते हुए भी शान्तरसके उपासक थे। उनके संगके प्रभावसे उनका शान्तरसकी ओर झुकाव हो गया और मधुररस लगभग छूट गया। मधुररसमें फिरसे प्रवेश करना उनके लिए दुष्कर हो गया। चार-पाँच वर्षतक लगातार उन्होंने अथक परिश्रम किया। श्रीरूप गोस्वामीकी स्तवमाल और श्रीरघुनाथदास गोस्वामीकी स्तवावली आदि मधुररसके ग्रन्थोंका लगातार अनुशीलन किया, तब कहीं शान्तरसका आवेश छूटा और मधुररसके अनुकूल चित्तमें भूमिका बन सकी। इससे स्पष्ट है कि विजातीय भाववाले महात्माका संग, चाहे वह एक सिद्ध महात्माका ही क्यों न हो, साधकके लिए हानिकारक होता है।

श्रीअद्वैतदास बाबाजी महाराज अपने शिष्योंको प्राथमिक अवस्थामें अष्टकालीय-लीला-चिन्तन करनेको मना करते। वे नाम-जपपर ही पूरा बल देते और कहते कि नाम कल्प-तरु है। नामकी कृपासे साधकके हृदयमें लीलाकी स्फूर्ति आप ही होती है। नाम-जपके सम्बन्धमें उन्होंने डा० अमरनाथ सेनसे कहा था—'नाम करते समय श्रीमन्महाप्रभुका ध्यान करना चाहिये। तात्पर्य यह कि जिस भावसे महाप्रभु नाम करते हैं उसी भावसे नाम करना चाहिये। महाप्रभुका भाव है विरहिणी राधाका। साधकको भी श्रीकृष्णके अभावमें उनके विरहके भावसे भावित हो स्नेहपूर्वक नाम करना

चाहिये । महाप्रभुका ध्यान करनेसे यह भाव सुलभ हो जाता है ।*

दो और बातें वे अपने शिष्योंसे कहा करते, जो साधकोंके लिए उपयोगी हैं—

१. कीर्तन करते समय साधकका मनोभाव यह होना चाहिये कि श्रीनित्यानन्द प्रभु और उसके गुरुदेव कीर्तन कर रहे हैं, वह उनका साथ दे रहा है । इस प्रकार कीर्तन करनेसे शीघ्र प्रेमकी प्राप्ति होती है ।

२. मधुररसके साधकको जानना चाहिये कि मैं राधारानीकी दासी हूँ । मेरा संसार राधारानीका संसार है । संसारके सभी कार्य करते समय उसका मनोभाव होना चाहिये कि मैं राधारानीका ही कार्य कर रही हूँ ।



* श्रीजीव गोस्वामीने भी भागवत ६.२.२० श्लोककी टीकामें इसी प्रकार भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि नाम-जप स्नेहपूर्वक करना चाहिये । श्रीसनातन गोस्वामीने बृहद्भागवतामृत श्लोक ३.१६७ में लिखा है कि नाम-कीर्तन उसी प्रकार आर्तभावसे करना चाहिये, जिस प्रकार चातक मेघके लिए और चकवी चकवेके लिए आर्त स्वरमें रट लगाती हैं ।

श्रीअनन्तदास बाबाजी

(करहला)

ब्रजमें करहला नामक एक ग्राम है। वहाँ श्रीकृष्णके पौत्र वज्रनाभकी समाधि है। महात्मा घमण्डीदासको वहीं श्रीकृष्णने अपना चूड़ा प्रदान किया था। गाँवमें एक विशाल कदमखण्डी है। कदमखण्डीमें कुण्डके तटपर सघन लताओंसे मण्डित एक कुटी है। लता-पत्ताओं और झाड़ियोंसे कुटी इस प्रकार घिरी है कि उसमें सूर्यकी किरणोंका प्रवेश नहीं-जैसा होता है। पक्षियों और साँप-बिच्छुओंके रहनेके लिए वह उपयुक्त स्थान है। कोई मनुष्य उस कुटियामें रह सकता है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। पर आजसे कुछ ही दिन पूर्व उसमें श्रीअनन्तदास बाबा रहते थे। श्रीअर्द्धतदास बाबाजी महाराजसे दीक्षा और वेश लेकर वे इस कुटियामें भजन करते थे।

वे एक सीधे-साधे सरल प्रकृतिके व्यक्ति थे। हरिनाममें उनकी प्रबल निष्ठा थी। चार-पाँच लाख नामका जप निरन्तर करते थे। उनके रोम-रोममें, श्वास-श्वासमें नाम जैसे बस रहा था। वे जितनी देर श्वास लिये बिना रह सकते थे, उतनी देर भी बिना नामके नहीं रह सकते थे। नाम ही उनका जीवन और प्राण था।

वे सन्ध्या समय एक बार मधुकरीकी जाते। उसके अतिरिक्त हर समय कुटियामें नाम-जपमें तल्लीन रहते। दिनपर दिन, मासपर मास, वर्षपर वर्ष उन्हें उसी प्रकार बिना एक क्षणका अवकाश लिये नाम करते चले गये।

उस दिन, जब वे मधुकरीसे लौटे, तो कुटियाके द्वारपर एक काले साँपने फुँफकारकर उन्हें पास आनेसे रोका। पर बाबा तो नामकी धुनमें राधा-कृष्णकी किसी मनोरम-लीलाका स्मरण करते हुए चले आ रहे थे। उन्हें उसकी फुँफकार सुनाई पड़ती कैसे? उन्होंने जैसे ही पैर आगे बढ़ाया, उसने काट लिया। बाबाकी बाह्य-चेतना जागी। उन्होंने सब कुछ जान लिया। उन्हें किसी विषैले सर्पने इस जन्मका या पूर्व जन्मका बदला लेनेको नहीं काटा था। स्वयं अनन्तदेवने उनपर कृपाकर उनके अन्त समयकी पूर्व सूचना देकर उनपर कृपा की थी।

अनन्तदेवको मन-ही-मन धन्यवाद देते हुए उन्होंने मधुकरीका झोला खूंटोपर टांग दिया और पचासनसे बैठकर लगे उच्चस्वरसे नाम-कीर्तन करने । नाम करने-करते पता नहीं कब उनकी ममाधि लग गयी । दो दिन और दो रात बीत गये । पर उनकी समाधि नहीं टूटी । तीसरे दिन जब उन्हें बाह्यज्ञान हुआ, तब उनका शरीर पूर्ण स्वस्थ था । उसमें न कोई ज्वाला थी, न साँपके काटेका कोई और दुष्परिणाम । उनका अन्त समय आया तो था, पर अनन्तदेवने कृपाकर उसे टाल दिया, जिससे कुछ दिन और जीवित रहकर वे भजन-मुखका अनुभव कर सकें ।

ऐसे नाम-निष्ठ महात्माओंके लिए जीवन और मृत्युमें कोई अन्तर नहीं होता । वे जिस स्तरपर जीते हैं, उसमें देहसे उनका सम्बन्ध नाम-मात्रका ही रह जाता है । देह जैसा रहा, जैसा न रहा । किसी भी समय अनायास वे भगवत्-इच्छासे या अपनी इच्छासे उसे वैसे ही छोड़ सकते हैं, जैसे मुसाफिर सरायको या पक्षी घोंसलेको छोड़ जाता है । प्राकृत दृष्टिसे भले ही जान पड़े कि उनकी किसी रोगके कारण कष्टसे मृत्यु हुई । पर कष्ट तो शरीरको होता है, जिसका उन्हें पता भी नहीं होता । उनकी चित्त-वृत्ति मङ्गलमय प्रभुके चरणोंमें लीन रहकर परम शान्तिका अनुभव करती होती है ।

बाबाके अन्त समय उनका मूत्र अवरुद्ध हो गया था । पर ऐसेमें जो असह्य वेदना होती है, उसका उन्हें तनिक भी अनुभव नहीं हुआ । उन्होंने सारे जीवन कोई औषधि नहीं ली थी । किसी व्यक्तिकी किसी प्रकारकी सेवा भी ग्रहण नहीं की थी । अन्त समय भी उन्होंने न कोई औषधि ली, न किसीकी सेवा । वे कई दिन मधुकरीको न जा सके । गाँवके ब्रजवासी, जो उनसे बहुत स्नेह करते थे, उन्हें अस्वस्थ जान उनके पास आगये । उनके सेवा और चिकित्साके अनुगोचको उन्होंने यह कहकर अमान्य कर दिया कि जहाँ मङ्गलमय श्रीहरिनाम विराजमान है, वहाँ किसी चिकित्सक या किसी व्यक्तिकी सेवाका सहारा लेना मङ्गलमय प्रभुके मङ्गलमय विधानमें बाधा डालना है ।

ब्रजवासियोंने देखा कि उन्होंने उस कठिन रोगकी अवस्थामें पूर्ण शान्त और प्रसन्न मुद्रामें नाम करते-करते शरीर छोड़ दिया ।

श्रीकृपासिन्धुदास बाबाजी

(वृन्दावन)

चट्टग्राम, पूर्वबंगालके प्रसिद्ध वैद्य और भक्त श्रीकार्तिकचन्द्रने एक दिन घरके लोगोंको एकत्र कर कहा—‘मेरे जीवनकी सन्ध्या आ पहुँची है। एक साल बाद सूर्यास्त हो जायगा। मुझे आजसे नित्य हरि-कीर्तन सुनाया करो।’ उस समय श्रीकार्तिकचन्द्रजी पूर्ण स्वस्थ थे और उनकी अवस्था भी बहुत अधिक नहीं हुई थी। इसलिए किसीने उनकी बातका विश्वास नहीं किया। उनके चारों पुत्र इस सोच-विचारमें पड़ गये कि कीर्तन प्रारम्भ कर देनेकी पिताकी आज्ञाका पालन करें या न करें। यदि दूसरे लोगोंको कीर्तनके कारणका पता चल गया, तो वे हँसी करेंगे। कहेंगे कि लड़के अच्छे-भले पिताकी मृत्यु मना रहे हैं; क्योंकि हमारे गाँवमें लोग कीर्तन तभी करते हैं, जब किसीकी मृत्यु होनेकी होती है। फिर यदि पिताजीकी मृत्यु सचमुच हो गयी, तो लोग कहेंगे कि हमने उनके मरनेका कीर्तन कर उन्हें मार दिया, यदि न हुई तो पिताजी समेत हम सब मूर्ख कहे जायेंगे।

श्रीकार्तिकचन्द्रके तीसरे लड़के श्रीकृष्णदास उन्हींके समान भक्ति-परायण और सुबोध थे। उन्होंने कहा—‘आप लोग धृष्टा सोच-विचारमें पड़े। सब जानते हैं कि पिताजीकी बात मिथ्या नहीं होती। यदि उनकी मृत्यु हुई, तो लोग कहेंगे कि हमारे कीर्तनके प्रभावसे उनका सङ्कट टल गया, यदि हो गयी तो पिताजीकी सद्गति होगी और लोग उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिए हमारी प्रशंसा करेंगे। फिर इस शुभ कार्यमें हम इस बातकी चिन्ता ही क्यों करें कि लोग क्या कहेंगे? लोग प्रशंसा करें या निन्दा, पिताजी मरें या जीवित रहें, हमारे कीर्तनसे प्रभु तो प्रसन्न होंगे ही। हम उनकी प्रसन्नताके लिए कीर्तन करेंगे।’

बस वे जुट गये कीर्तनकी व्यवस्थामें। सन्ध्या समय नित्य दो घण्टे गेल-करतालके साथ कीर्तन होने लगा। धीरे-धीरे एक वर्ष व्यतीत होनेको आया। कार्तिक मास प्रारम्भ हुआ। कार्तिकके आरम्भ होते ही कीर्तन खण्ड रूपसे किया जाने लगा। गोपाष्टमीके दिन श्रीकार्तिकचन्द्रने गाँवके

लोगोंको सन्ध्या समय विशेष कीर्तनके लिए आमन्त्रित किया। घरके लोगोंको खा-पीकर कीर्तनके लिए प्रस्तुत होनेको कहा। चार-चार खोल-करतालके साथ तीन दलोंका कीर्तन होने लगा। कीर्तनकी तुमुल ध्वनिसे आकाश मुखरित हो उठा। उस ध्वनिमें और किसी शब्दका सुनायी पड़ना सम्भव न था। उसी समय कार्तिकचन्द्रने कृष्णदासको इसारेसे निकट बुलाकर कुछ आज्ञा की। कृष्णदासने तुरन्त आज्ञाका पालन किया। उन्हें चारपाईसे नीचे उतारकर स्नान कराया, द्वादश तिलक धारण कराये, ठाकुरका चरणामृत पिलाया, ब्रजरज छातीसे लगायी और योगपीठका चित्र उनके सामने विराजमान किया। चित्रको अपलक देखते-देखते उन्होंने देह छोड़ दिया।

पिताके देहावसानके पश्चात् कृष्णदासने भी संसार त्यागकर भजन करनेका निश्चय किया। उनकी अवस्था उस समय केवल १७ वर्षकी थी। वे मैट्रिक पास कर चुके थे। भाइयोंकी इच्छा थी कि उन्हें उच्चशिक्षाके लिए किसी कालिजमें भर्ती कराया जाय। पर कृष्णदास अपना निश्चय बदलना नहीं चाहते थे। भाइयोंसे इसके विषयमें कुछ कहना भी नहीं चाहते थे। एक दिन वे किसी बहाने घरसे निकले और रेलसे श्रीधाम पुरीकी यात्राको चल दिये।

पुरीमें उनको श्रीनित्यानन्ददास नामके लगभग उन्हींकी उम्रके एक बाबाजीसे भेंट हुई, जो उन्हींकी तरह घर छोड़कर चले आये थे और तीर्थ तथा सन्तोंके दर्शन करते हुए इधर-उधर डोल रहे थे। वे बहुत ही सरल प्रकृतिके और बड़े स्नेही स्वभावके व्यक्ति थे। कृष्णदाससे उनका बन्धुत्व हो गया। दोनोंने श्रीधाम पुरीसे पैदल यात्रा कर श्रीवृन्दावन जानेका निश्चय किया।

दोनोंने झारखण्ड तककी यात्रा एक साथ की। पर झारखण्ड पहुँच कर दोनोंका साथ छूट गया। नित्यानन्ददासका आवेश कीर्तनमें अधिक था कृष्णदासका स्मरणमें। मार्गमें कहीं सुन्दर कीर्तन होता देख नित्यानन्द वहीं रह गये, कृष्णदास वृन्दावनके पथपर आगे अग्रसर हुए।

वृन्दावन पहुँचकर वे झाड़ू मण्डलमें ठहरे, और वेश ग्रहण करनेके लिये योग्य गुरुकी खोज करने लगे। मन्त्र-दीक्षा वे घरपर रहते ही श्रीगोविन्दान गोस्वामीसे ले चुके थे।

कुछ दिन बाद उन्हें पसोली ग्रामके श्रीकृष्णदास बाबाके दर्शन हु-

जो उस समय वृन्दावनमें गोविन्दकुण्डमें रहते थे । उनसे विधिवत् वेश ग्रहण किया; नाम हुआ श्रीकृपासिन्धुदास । वेश लेकर वे व्रजके गाँवोंमें भजन करने चले गये । कुछ दिन जैतके पास भरतिया ग्राममें रहे । फिर भदावलमें श्रीगोपालदास बाबाके पास रहकर उनकी सेवा करने लगे ।

उस समय पण्डित रामकृष्णदास बाबाजी महाराज कुसुम सरोवरके पास श्यामकुटीमें भजन करते थे । उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था और उन्हें एक योग्य सेवककी आवश्यकता थी । गोपालदास बाबाको जब इसका पता चला तो उन्होंने कृपासिन्धुदास बाबाको उनकी सेवामें भेज दिया । कृपासिन्धुदास बाबा बड़ी तन्मयतासे उनकी सेवा करने लगे । पण्डित बाबा जब स्वस्थ हो गये तो कृपासिन्धुदाससे गोपालदास बाबाके पास लौट जानेको कहा । गोपालदास बाबाने उन्हें सदाके लिए पण्डित बाबाके पास रहकर उनकी सेवा करनेकी आज्ञा की थी । पर पण्डित बाबा स्वस्थावस्थामें किसीसे अपनी सेवा नहीं कराना चाहते थे । कृपासिन्धुदास बाबाका असाधारण सेवा-भाव देख उन्हें इस बातका भय हुआ कि उनके निकट रहनेसे उनकी निरपेक्षताकी हानि होगी ।

कृपासिन्धुदास बाबा धर्मसंकटमें पड़ गये । वे श्रीगोपालदास बाबाकी आज्ञाका पालन करें, या पण्डित बाबा की ? पण्डित बाबाकी सेवामें उनके मन-प्राण सदाके लिए उलझ चुके थे । इसलिए उन्होंने उनकी आज्ञाको अनसुनी कर दिया । पण्डित बाबाने जब फिर उनसे चले जानेको कहा, तो वे बोले —“मैं आपका शिष्य तो हूँ नहीं, जो आपकी आज्ञा मानूँ । मैं नहीं जाऊँगा । आपसे कुछ सीखने आया हूँ । लोग पूछेंगे कि पण्डित बाबासे क्या सीखा, तो क्या कहूँगा ? यही कि जो कोई आर्तभावसे तुम्हारे पास आये कुछ सीखने, उसकी अवहेलना करो और कह दो—‘चले जाओ यहाँसे ।’ मैंने आपसे सीखी है निरपेक्षता । इसलिए मैं निरपेक्ष भावसे यहाँ रहूँगा । आपकी आज्ञाकी भी उपेक्षाकर रहूँगा ।”

पण्डित बाबा उनके उत्तरसे प्रसन्न हुए और उन्हें अपने पास रहनेकी आज्ञा दे दी । तभीसे श्रीकृपासिन्धुदास बाबाके जीवनका एक नया और स्वर्णिम अध्याय आरम्भ हुआ । गुरुबुद्धिसे पण्डित बाबाकी सेवा उनके भजनका मुख्य अंग बन गया । किस प्रकार वे सेवाके माध्यमसे पण्डित बाबाके अभिन्न अंग बन गये, उसका हम विस्तारसे वर्णन कर आये हैं पण्डित बाबाके निज

चरित्रके सम्बन्धमें। उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया वह पण्डित बाबाकी सेवाके फलस्वरूप ही। इसके सम्बन्धसे एक प्रत्यक्ष घटनाका उल्लेख कर देना उचित होगा।

कृपासिन्धुदास बाबा नित्य पण्डित बाबाकी सेवा-पूजाके समय पुष्पादिकी व्यवस्था कर रखते। एकदिन पूजाके समयसे पूर्व वे भंगीसे छू गये। उन्हें स्नान करना पड़ा। फूल समयसे न ला सके। चिन्तामें पड़ गये कि पूजाका समय आ गया, अब क्या करें? उसी समय एक सुन्दर कन्या आयी और उन्हें फूल दे गयी। पीछे कृपासिन्धुदास बाबाने यह बात पण्डित बाबासे कही। उन्होंने कहा—‘तेरी भावसिद्धि हो गयी है। यह बात किसीसे न कहना।’ कदाचित् उनका संकेत था कि कन्याके स्वरूपमें उन्हें अपने ही सिद्ध-स्वरूपका अनुभव हुआ था। जो सेवा उनसे न बन सकी, वह उनके सिद्ध-स्वरूपने कर दी।

कृपासिन्धुदास बाबाने पण्डित बाबाकी आज्ञासे श्रीगोविन्दलीलामृत पूरा कण्ठ कर लिया था और वे उनकी बतायी हुई रीतिसे लीला-स्मरण किया करते थे। उन्होंने अपने हाथसे गोविन्दलीलामृतके अनुसार श्रीराधाकृष्णकी अष्टकालीन लीलासे सम्बन्धित विभिन्न लीला-स्थलियों और कुञ्जोंके अनेक चित्र बनाये थे, जिन्हें वे एक लम्बे गोल टीनके डिब्बेके भीतर लपेटकर रखते थे और उस डिब्बेको बहुत दिनोंतक अपनी अमूल्य गोपनीय निधि के रूपमें जहाँ भी जाते अपने कन्धेपर लटकाकर ले जाते थे। बहुत-से साधक उनके पास लीला-स्मरण सम्बन्धी शिक्षा लेने आया करते थे। उन्हें वे उन चित्रोंके माध्यमसे लीलाका उपदेश करते थे, जिससे उन्हें लीला-चिन्तनमें विशेष सुविधा होती थी।

कुछ दिन बाद उनके श्रीधाम पुरीके बन्धु श्रीनित्यानन्ददास बाबा भी वृन्दावन आकर उनसे मिले और कुसुम सरोवरसे प्रथमकुटीसे कुछ दूर एक कुटियामें रहकर उनके उपदेशानुसार लीला-चिन्तन करने लगे। हम पहले ही कह चुके हैं कि वे बहुत भोले-भाले और श्रद्धालु व्यक्ति थे। उन्हें लीला-चिन्तनमें अभूतपूर्व सफलता मिली। वे नित्य कृपासिन्धुदास बाबासे मिलने जाया करते और उन्हें जो-जो अनुभव होते उन्हें सुनाया करते। एक बार कई दिनतक लगातार कृपासिन्धुदास बाबाको उनके दर्शन न हुए। तब वे उनकी कुटियापर गये। वहाँ देखा कि उनका रजका कसबा, आसन और अन्य सामान मौजूद हैं। आसनपर गाँठ लगी हुई उनकी लंगोटी भी ऐसे पड़ी है, जैसे वे

लंगोटी लगाये आसनपर बैठे हों और लंगोटीको बिना खोले इस तरह उसमें-से निकल गये हों, जैसे साँप केंचुलीमें-से निकल जाता है ! इसके पश्चात् नित्यानन्ददासको कभी किसीने नहीं देखा । कृपासिन्धुदास बाबा यह निर्णय किये बिना न रह सके कि उन्हें राधारानीकी कृपासे सशरीर अप्राकृत ब्रजधामकी प्राप्ति हो गयी !

सन् १९१८ में जब पण्डित बाबा फिर अस्वस्थ हुए, तो कृपासिन्धुदास बाबा उन्हें लेकर वृन्दावन चले गये । वृन्दावनमें लगभग नौ वर्ष मदनमोहनकी बगीची आदि स्थानोंमें रहनेके पश्चात् १९२६ से दाऊजीकी बगीचीमें रहने लगे, जहाँ सन् १९४० में पण्डित बाबाने शरीर त्याग दिया । पण्डित बाबाके अप्राकृत्यके पश्चात् कृपासिन्धु बाबाको उनका विरह असहनीय हो गया । उनका अन्न-जल छूट गया । शरीर त्याग देनेका निश्चयकर वे आश्रमसे निकल पड़े । भूखे-प्यासे चलते-चलते बरसाना पहुँचे । क्लान्त हो जानेके कारण श्रीजीके मन्दिरकी सीढ़ियोंपर लेट गये । लेटे-लेटे सोच रहे थे कि कहाँ जाकर किस प्रकार प्राण विर्सजन करें । उसी समय तन्द्रा आ गयी । तन्द्रामें उन्होंने देखा कि पण्डित बाबा उनसे कह रहे हैं—‘तू पागल हो गया है । मेरे पास किसलिए आया था ? श्रीजीकी सेवा सीखनेके लिए न ! क्या मैंने तुझे यही सिखाया था कि श्रीजीकी सेवा, उनकी सेवाके उपकरणको त्यागकर की जाती है ? तुझे यह शरीर उन्होंने अपनी सेवाके लिए ही तो दिया है । उनकी दी हुई, उन्हींकी सेवाकी वस्तुके साथ इस प्रकार मनमानी करना ही क्या तूने मुझसे सीखा है ?’

पण्डित बाबाके दर्शनकर और उनकी प्यारभरी फटकार सुन वे आश्चर्यसे हुए और अपनी आत्म-हत्याके संकल्पके कारण अपने आपको धिक्कारने लगे ।

पण्डित बाबाने आज्ञा की थी कि उनके अप्राकृत्यके पश्चात् उनके आश्रमके सभी लोग दाऊजीकी बगीची छोड़कर अन्यत्र चले जायें । इसलिए कृपासिन्धु बाबा लौटकर दाऊजीकी बगीची नहीं गये । कुछ ही दिनोंमें उनके भक्तोंने दाऊजीकी बगीचीके निकट ‘भागवत-निवास’ नामके एक भव्य आश्रमका निर्माणकर दिया । बाबाका शेष जीवन वहीं व्यतीत हुआ ।

भागवत-निवास श्रीगौरांगदास बाबाके समाधि-स्थल श्रीराधारमण-निवासके निकट है । राधारमण-निवासमें श्रीगौरांगदास बाबाके अप्राकृत्यके

समयसे अखण्ड हरिनाम-कीर्तन आज तक हो रहा है। एकदिन रात्रिमें २ बजेके लगभग कीर्तन करनेवाले साधुओंकी झपकी लग गयी। उसी समय कृपासिन्धुदास बाबाको स्वप्न हुआ। स्वप्नमें गौरांगदास बाबाने उनसे कहा— 'मेरे आश्रममें नाम खण्डित हो गया है। जाकर साधुओंको सचेत कर दो।' शीघ्र शय्यासे उठकर वे राधारमण निवास गये। देखा कि नाम बन्द है और साधु बैठ-बैठे आँघाई ले रहे हैं। उन्होंने जगाकर उनकी ताड़ना-भर्त्सना की।

जबसे बाबा भागवत-निवासमें रहने लगे। उन्होंने अन्न त्याग दिया। मधुकरीको जाना भी बन्दकर दिया। केवल दूधपर रहने लगे। वे नित्य रात्रिमें १ बजे शय्या त्याग देते। स्नानादिकर भजनमें बैठ जाते और मध्याह्न १२ बजेतक भजन करते रहते। १२ बजे स्नान कर गिरिधारीजीकी सेवा करते। फिर दूध पीकर विश्राम करते। कुछ देर विश्रामकर फिर भजनमें बैठ जाते। बाबाकी भजनक्रियाका मुख्य अंग था नाम-जप सहित अष्टयाम लीला-स्मरण। वे सन्ध्याका समय जिज्ञासु साधकोंके लिए खाली रखते। जो लोग उनके पास भजन-सम्बन्धी उपदेश ग्रहण करने आते, उन्हें उपदेश देते।

जोप अवस्थामें बाबाके पास दर्शनार्थी बहुत आने लगे। शिष्य-सेवक भी बहुत एकत्र हो गये। वे भागवत-निवासके कोलाहलपूर्ण वातावरणसे ऊब गये। इसलिए उन्होंने संकेतबटपर श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीकी भजन-कुटीके निकट एक छोटे-से संकेतविहारीके मन्दिरका निर्माण किया। उसमें संकेतविहारीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करा वहाँ जाकर रहनेकी व्यवस्था करलेलगे। सब तैयारी हो गयी। उनका आसन भी वहाँ पहुँचा दिया गया। दूसरे दिन, चौथ शुक्ल दशमी, सम्बत् २०२६ को संकेतबट जाला था। गये भी, पर शरीर इन्दावनमें छोड़ गये। रात्रिमें १ बजे सदाकी भाँति सोकर उठे। स्नान और तिलकादि कर लखतपर बैठे। कुछ अस्वस्थताका अनुभव किया। और 'हा गौर ! हा निताई !' कह संकेतविहारीके निकट प्रयाण किया।

भक्त दादर रहमान

(मथुरा)

भक्ति भगवान्की स्वरूप शक्तिकी वृत्ति है, भगवान्की ही तरह परम स्वतन्त्र और निरपेक्ष है। कब किसके ऊपर किस रूपमें भक्ति महारानीकी कृपा हो जाय, कौन कह सकता है ?

आजसे लगभग पचास वर्ष पूर्व मथुरामें विश्रामघाटके निकट दादर रहमान नामका एक पन्द्रह-सोलह वर्षका मुसलमान बालक रहता था। वह भक्तव्रतमें पढ़ता था। बहुत शर्मीले और शान्त स्वभावका था। बोलता-चालता कम था। बड़े अदब-तरीकेसे रहता था। छोटे-बड़े सब उसे बहुत प्यार करते थे। उसके पिताको विश्वास था कि वह एक अच्छा मुसलमान बनेगा।

एक दिन उसने अपनी माँसे पूछा—‘अम्मी, हमलोग हिन्दुओंको काफिर क्यों कहते हैं?’

माँने कहा—‘चुप बालायक, जानता नहीं, हमलोग काफिरोंका नाम भी मुंहपर नहीं लाते। आने दे अम्माको, वही जवाब देंगे तेरे सवालका।’

दादर रहमान अपने माँ-बापका एक ही लड़का था। उसके मुँहसे ऐसा प्रश्न सुनकर माँके कान खड़े हो गये। उसने सोचा कि शायद लड़का हिन्दुओंकी सोहबतमें पड़कर बिगड़ने लग गया है। इसे तत्काल सबक न सिखाया, तो कहीं बिल्कुल ही हाथसे न निकल जाये। पतिके घरमें प्रवेश करते ही उसने कहा—

‘जानते हो आज रहमानने क्या सवाल किया है? वह पूछता है कि हमलोग हिन्दुओंको काफिर क्यों कहते हैं?’

‘अच्छा, इसकी इतनी जुरअत!’ कह उन्होंने उसके ऊपर आँखें तरेरीं और बेंत उठाया।

वह सहमकर चुपचाप खड़ा रहा। बापने बेंत सटकाते हुए कहा—‘कम्बख्त, तू जानता नहीं कुरान शरीफमें क्या लिखा है—जो हमारे पाक इस्लाम मजहबपर ईमान नहीं लाते और बुतोंको पूजते हैं, वे काफिर हैं।’

कौन मुसलमानका बच्चा इस बातको नहीं जानता ? फिर तूने यह सवाल करनेकी हिम्मत कैसे की ? तुझे कुरानकी आयतोंपर एतबार नहीं ? खुदातालाका तुझे खौफ नहीं ! लगता है तू काफिरोंकी सोहबतमें पड़ गया है । उन्होंने तुझे बहकाया है । खबरदार जो किसी काफिरका साथ किया ।'

दादर न किसी काफिरका साथ करता, न किसी काफिरने उसे बहकाया था । पर काफिरोंके खुदाने उसपर कुछ ऐसी मोहिनी डाली थी कि वह उन्हें देखे बिना नहीं रह सकता था । मकतब आते-जाते रास्तेमें एक हिन्दुओंका मन्दिर पड़ता था । मन्दिरके भीतर राधा-कृष्णकी सुन्दर, मन-प्राण हर लेनेवाली मूर्तिके बाहरसे दर्शन होते थे । वह मन्दिरके दन्वाजेपर खड़ा-खड़ा उन्हें एकटक देखा करता था । उन्हें देखते-देखते कभी-कभी अपनी सुध-बुध छो बैठता था । मकतबमें और घरमें देरसे पहुँचनेके लिए उसे डाँट भी खानी पड़ती थी । पर जबतक वह दिनमें एक-दो बार उन्हें नहीं देख लेता था, उसे चैन नहीं पड़ता था । कई बार तो उन्हें देखकर उसकी बेचैनी और अधिक बढ़ जाती थी । उनकी मोहिनी मूरत उसकी आँखोंके सामने छायी रहती थी । वह उनको यादमें खोया-खोया रहता था । उसके नेत्रोंमें पानी भरा रहता था । बार-बार किसी बहाने उसे पीछकर अपनी वह बेचैनी छिपानेकी कोशिश किया करता था ।

उसका चचेरा भाई कासिम भी उसके साथ उसी मकतबमें पढ़ता था । वह एक अच्छा मुसलमान था । दिनमें पाँच बार नमाज पढ़ता था । उसे दादरकी काफिराना हरकतोंका पता था ।

एक दिन, जब दादर कासिमके साथ मकतबसे लौट रहा था, उसने उससे कहा— तू घर जा । मैं जरा ठहरकर आऊँगा ।'

कासिमने कहा— 'मैं जानता हूँ, तू कहाँ जायगा । काफिरोंके मन्दिर न ! मैं नहीं जाने दूँगा । वहाँ जायगा, तो काफिर हो जायगा ।'

'भाई तूने उस मन्दिरमें किशनजी और उनकी दुलहिनको देखा है ?' दादरने अपने आँसुओंको छिपाते हुए और भरे हुए कण्ठकी सुधारते हुए विनम्रतापूर्वक उससे पूछा ।

'वह क्या मुसलमानोंके देखनेकी चीज है, अहमक ?' कासिमने गुस्सेमें भरकर कहा ।

‘क्यों ? खुदाकी दुनियाँमें सभी कुछ तो उसका बनाया हुआ है । उसकी बनायी किसी चीजको देखना गुनाह कैसे हो सकता है ?’

‘दादर, तू पूरा काफिर हो गया है । अल्लाह तुझपर खफा होगा । तुझे काफिरोंके साथ जहन्नुम भेजेगा ।’

‘अल्लाह तो मोहब्बत चाहता है । जो उससे सोहब्बत करता है, उसपर वह खफा क्यों होगा ?’

‘तो जा मर !’ कह कासिम तमककर चला गया । दो दिन तक सोचता रहा कि चचाजानसे दादरकी काफिराना हरकतोंके बारेमें कहूँ या नहीं । वह जानता था कि यह सब सुनकर वे उसकी बोटी-बोटी उछेड़ देंगे । पर अन्तमें उसने निश्चय किया कि भाईको काफिर होनेसे बचाना उसका फर्ज है, और उसने जाकर चचाजानसे सब कुछ कह दिया ।

चचाजानके पैरके नीचेसे धरती एकदम सरक गयी । दादर सामने होता तो उसी समय उसकी शामत आ गयी होती । पर वह अभी मकतबसे लौटा नहीं था ।

मिरजा साहब कासिमको लेकर उसी समय दरगाह शरीफ गये अपने मुल्ला हाकिमसे मिलने । उन्हें भी कासिमने दादरके बारेमें सब कुछ बता दिया और कहा—‘मैंने अपनी आँखोंसे देखा है कि वह हिन्दुओंके मन्दिरके सामने खड़ा होकर उनके देवताको देखता रहता है । उसे देख-देख रोता है और न जाने क्या-क्या कहता है, जिसे वह अपने-आप ही सुन सकता है ।’

यह सब बात सुनकर मुल्ला साहबकी अकल गुम हो गयी । वे और क्या कहते ? बोले—‘जरूर काफिर पण्डितोंके लड़कोंने उसे यह सीख दी है । आप उसपर निगाह रखिये । काफिरोंसे मत मिलने दीजिये । मैं अभी फरुखसिंहारसे इसके बारेमें और मशवरा करता हूँ ।’

इतना कह मुल्ला साहब फरुखसिंहारसे मिलने चले गये । मिरजा साहब घर लौट आये । देखा कि दादर गुमसुम बैठा है । उसके चेहरेको देखकर लगता है जैसे उसने कोई गुनाह ही नहीं किया । उसे देखते ही वे आग-बबूला हो गये और लगे उसे पीट-पीटकर कहने—‘बता कौन काफिरका बच्चा है, जो तुझे काफिराना सीख देता है ? कौन तेरा सलाहकार है ?’ दादर पिटता गया । उसने कुछ भी नहीं कहा । पिटते-पिटते वह बेहोश हो गया ।

इसके बाद कुछ दिन मिरजा साहबको ऐसा लगा कि दादरका रवैया काफी बदल गया है। वह चुपचाप रहता है और कहीं आता-जाता भी नहीं है।

एक दिन दादरकी माँने मिरजा साहबसे कहा—‘तुम लड़केको देखते नहीं। मुझे लगता है, कोई देवता उसपर सवार हो गया है। उसकी आँखें हर समय लाल रहती हैं। उसमें पानी जैसे हर वक्त भरा रहता है। कोई उसके पास जाय, तो वह दूर सरक जाता है। अकेला रहना चाहता है। यह सब देखकर मुझे डर लगता है।’

उस दिनसे मिरजा साहब उसकी विशेष देख-भाल करने लगे। एक दिन रातके समय, जब वे उसे देखने गये, तब वह अपने बिस्तरेपर नहीं था। खोज की तो देखा कि वह बाहर अँधेरेमें एक कुएँकी मेड़पर चुपचाप बैठा है। उन्होंने उसे बेहद मारा, यह सोचकर कि मारसे उसका भूत भाग जायगा; पर भूत फिर भी न भागा।

तब एक दिन अपनी बीबीके कहनेसे मिरजा साहब मौलालीसे औझाको बुलाने गये। उसी दिन दादर घरसे लापता हो गया। जानेके पूर्व अम्मीसे कह गया—‘मेरी उम्मीद छोड़ दो। मैं एकदम काफिर हो गया हूँ। लाइली मुझे बुला रही है।’

अब मिरजा साहबको काटो तो खून नहीं। पश्चाताप ही पश्चाताप—‘नाहक मैंने उसे इतना मारा-पीटा। वह नादान दच्चा है, किसीके सिखानेमें आ गया है। अगर मैं प्यारसे समझाता, तो शायद धीरे-धीरे सुधर जाता।’

वे अपने इकलौते लड़केकी खोजमें पागलोंकी तरह इधर-उधर डोला किये। जो मिल जाता, उसीसे अपनी दुःखभरी कहानी कहते, लड़केकी हुलिया बताते, अपना पता बताते और कहीं दीख जाय तो उसकी सूचना देनेकी प्रार्थना करते।

दस-बारह दिन बीत गये इस तरह खोज करते-करते। एक दिन विश्रामघाटपर उनको भेंट हुई बंगालसे आये हुए एक यात्री श्रीप्रमोदकुमार चट्टोपाध्यायसे। उन्हें भी एक तरफ ले जाकर उन्होंने अपने लड़केकी सारी बात कही। वे उनकी स्थितिका सही मूल्यांकन कर उनकी कुछ सहायता करें, इस उद्देश्यसे यह और कहा—देखिये, हम लोग मुसलमान हैं और

बादशाहकी जात हैं। शाह आलमके अमलमें दिल्लीमें हमारा बड़ा रोब-दाब रहा है। एक वक्त सारा हिन्दुस्तान हमारे हुक्मपर चलता था। डफरिन लाटसे जागीर लेकर हमलोग आगरेमें बस गये—कागजोंमें यह सब छपे हुए हरफोंमें दर्ज है। हमारा मजहब दुनियाँमें सबसे अच्छा है। एक दिन सारी दुनियाँको इसे कबूल करना होगा। हिन्दू हमारे लिए काफिर हैं। कुरान-शरीफमें लिखा है कि वे कभी वहिगतमें कदम नहीं रख सकते। उन्हें तो जहन्नममें जाना ही है। तो बताइये, हम यह कब बरदाश्त कर सकते हैं कि हमारा अपना लड़का ही काफिर हो जाय।'

चट्टोपाध्याय महाशयसे मिरजा साहबने अपनी सारी दास्तान कही। उनकी बातें सुन-सुनकर उन्हें मन-ही-मन जितना उनपर क्रोध आता, उतना ही दादर रहमानपर तरस आता। उनसे तो उन्होंने किसी प्रकार पीछा छोड़ा लिया। पर दादर रहमानकी मूर्ति उनके मन-मन्दिरमें जमकर बैठ गयी। उन्हें विश्रामघाटमें स्नानकर वृन्दावन जाना था। वृन्दावनके रास्तेमें वे बराबर उसीके विषयमें चिन्ता करते रहे और सोचते रहे कि वह उन्हें कहीं दीख जाय तो उससे बहुत-सी बातें करें और उसके दर्शनकर अपनेको धन्य करें।

वृन्दावनेश्वरीने उनकी मनोकामना पूर्ण की। वृन्दावन जाकर उन्होंने यमुनातटपर जो देखा, उसे सुनिये उनके अपने ही शब्दोंमें, जो कल्याण, वर्ष ३६, संख्या १२ में प्रकाशित उनके 'विलक्षण प्रेम और विलक्षण कृपा' कीपंक लेखसे उद्धृत है—

'जहाँ बैठा था, उससे कुछ दूरीपर तीन अपूर्व विशाल वृक्ष खड़े थे। सुन्दर, सुपरिष्कृत, तृणहीन भूमिपर लम्बे-लम्बे तीन वृक्षोंके मूल इस प्रकार समान अन्तरपर विद्यमान थे कि उनके बीच एक सुन्दर त्रिकोण क्षेत्रकी सृष्टि हो गयी थी।.....उसके भीतर कौपीनधारी एक मूर्ति अद्भुत भंगिमाके साथ बैठी है। वह भंगिमा ऐसी चित्ताकर्षक थी कि मेरी दृष्टि बलपूर्वक उसी ओर खिंची रह गयी। प्रथम दृष्टिमें ही ऐसा लगा कि वह मूर्ति किसी वैष्णव एवं योगीकी है। उसका बैठनेका ढङ्ग योगी-जैसा ही था।

".....मैं अपनी जगहपर स्थिर न बैठ सका, उठ पड़ा और निमिष-मात्रमें उस स्थानपर जा पहुँचा। वहाँ देखी एक अद्भुत बालक-मूर्ति।

स्वास्थ्यपूर्ण, सुडौल, उज्ज्वल गौरवर्ण, कोपीनमात्र वस्त्र । लगा जैसे व्यासपुत्र परमहंस शुकदेवकी ही मूर्ति देख रहा होऊँ ।

“.....उन दिनों कुछ ठण्ड थी; किन्तु बालकके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था, शायद उसे इसकी आवश्यकता भी न थी; किन्तु मेरी बुद्धि तो स्थूल देहगत बुद्धि ठहरी । उसका शीतबोध अपने ऊपर आरीपितकर अपने शरीरका गरम कपड़ा उसे ओढ़ा दिया । उसकी अपलक दृष्टि यमुनाकी ओर निबद्ध थी, मुँहमें कोई शब्द न था ।

“.....इसी समय एक ब्रजवासिनी घाघरा, चोली, ओढ़नी, सब कुछ नीले रंगका धारण किये हुए आ उपस्थित हुई । उसके एक हाथमें एक थाल कपड़ेसे ढका था, निश्चय ही उसमें कुछ खाद्यपदार्थ था; दूसरे हाथमें एक साफ झक-झक करते हुए लोटेमें कुछ पेय था । अति कमनीय था उसका मुखमण्डल; अपूर्व भावभंगीके साथ खड़ी होकर उसने धीरे-धीरे हाथकी चीजें उस किशोरके सामने रख दीं । वह बोली—‘दुलाल मेरे, अब कुछ खाले । मैं तुझे खिलाकर घर जाऊँगी, फिर वहाँका काम समाप्तकर सन्ध्या समय पुनः यहाँ आऊँगी और तुझे वहाँ ले चलूँगी ।’

“यह सब मधुर ब्रजभाषामें कहकर वह उसके मुखकी ओर स्नेहभरी आँखोंसे देखने लगी । मैं वहाँ एक अपरिचित व्यक्ति भी उपस्थित हूँ—इस ओर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं था; मानो उसके सामने उस किशोरके सिवा और कोई न हो । उसकी बातें इतनी मधुर थीं कि भाषाके साथ कण्ठस्वर मिलकर एक अपूर्व संगीतकी सृष्टि कर रहा था ।

“साधुमें किन्तु कोई भावान्तर नहीं हुआ । वह जैसे अपलक यमुनाकी ओर ताक रहा था, वैसे ही ताकता रहा । यह देख उस ब्रजाङ्गनाने व्याकुल भावसे ‘मेरे लाल’ कहते हुए उसके चिबुकका स्पर्श किया । उस समय वह ध्यानस्थ किशोर तनिक चौंका, किन्तु उसके नेत्र वैसे ही अपलक बने रहे ।

“फिर एक बार उस नवागताके मुँहकी ओर देखकर वह बोला—‘चम्पा, मुझे ले चलो, ले चलो’, और कहते-कहते उठने लगा । जननीकी तरह स्नेहसे हाथ पकड़कर मधुर भाषामें वह ब्रजनारी बोली—‘अभी नहीं मेरे लाल ! अभी कुछ खा ले । उसके बाद सन्ध्या-समय आकर तुझे ले जाऊँगी ।’ इतना कह उसने थालमेंसे एक ग्रास उठाकर उसके मुँहमें डाल दिया । दो-एक ग्रास ही उसने खाये । अन्तमें थोड़ा-सा दूध पीकर वह किशोर फिर

समाहित चित्त होकर यमुनाके तटवर्ती वनकी ओर देखने लगा। तब मेरी ओर ताककर वह ब्रजवाला विनती भरे करुण स्वरमें बोली—‘बाबा ! तुम यहाँ अभी कुछ देर रह सकोगे न ?’

“मेरे उत्तरसे वह प्रसन्न हुई; किन्तु फिर उस बालककी ओर देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे बोली—‘कल ही मुझे लाइलीजीने कह दिया था कि उसका सब समय ध्यान चलता रहता है, होश नहीं रहता, उसे खिला दो, नहीं तो उसका शरीर नहीं टिकेगा। दस-बारह दिनसे कुछ नहीं खाया, थोड़ा-सा दूध, बस। इससे क्या शरीर रह सकता है ?’ उसके बाद चकित हिरणीकी तरह घूमकर उसने किशोरको देखा, कहा—‘क्या करूँ ? अच्छा, मेरे गोपाल ! तू यहीं रह। मैं घर जाती हूँ। मुझे अभी घरका काम करना है। साँझको आकर तुझे ले जाऊँगी, अच्छा !’

“किशोर निर्वाक, समाहित चित्त अपने आसनपर बैठा रहा। ब्रज-वासिनीका अन्तर्धान भी कुछ विचित्र-सा ही था। जब मैं ध्यानमग्न उस योगमूर्तिकी ओर देख रहा था, तब जरा मुड़कर उसे एक हाथमें लोटा और दूसरेमें थाल लेकर जाते हुए देखा। उसके बाद वह आगे बढ़ते-बढ़ते न जाने कहाँ विलीन हो गयी। वहाँ कोई पेड़ अथवा और किसी प्रकारकी आड़ नहीं थी, यह मुझे पूर्ण स्मरण है।

“लड़कीका आना-जाना और इस थोड़े-से समयके लिए रहना—इस सबके भीतर जो कुछ देखा, उससे लगा कि वृन्दावनके यमुनातटपर किशोर वैरागीको केन्द्र करके एक महान् आनन्दमय अपार्थिव खेल चल रहा है।

“.....अब साँझ होनेको आ गयी। यमुना-तीरपर खूब हवा चल रही थी। परन्तु योगीकी ओर देखनेपर ऐसा लगता था मानो आकाश-वृतासका कुछ भी कार्य उसे दृष्टि-गोचर नहीं था। मेरी बात करनेकी प्रबल इच्छा हो रही थी। मैं ‘हरि-हरि’ शब्दका इस तरह उच्चारण करने लगा कि वह सुन ले। मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण हुई। उसने मेरी ओर देखा। मैंने कहा—‘बाबाजी ! तुम्हें क्या कष्ट है ?’

“वह धीरे-धीरे बोला—‘कष्ट ! कष्ट कुछ नहीं। मैं वृन्दावनमें हूँ। मथुरामें था, तब माँ, बाप सब कितना मारते थे।.....पर अब कितनी मेहरबानी कृष्णजीकी, शीरी राधाकी ! आह !’ बस इतना कह वह संज्ञा-हीन सा हो गया।

“.....थोड़ी देर बाद बोला—‘तुम जानते हो राधाकुण्ड कहाँ है?’ और व्वाकुल भावसे मेरी ओर ताकने लगा।

“मैं बोला—‘जानता हूँ।’ सुनते ही महान् उत्साहके साथ उसने कहा—‘तो मुझे वहाँ ले चलोगे?’ फिर न जाने क्या उसके मनमें आया, कुछ सोचने-जैसा भाव बनाकर तुरन्त बोला—‘ना-ना, वहाँ तो तुम जा ही नहीं सकते। ब्रजरानीकी दयाके बिना वहाँ कोई जा नहीं सकता। मुझे चम्पा सखी ही ले जायगी!’ फिर थोड़ा रुककर धीरे-धीरे अति मृदु स्वरमें कहा—‘पर उसके आनेमें अभी देर है न!’

“राधाकुण्डकी कुछ बात सुनाओगे?’ मैंने विनम्रतापूर्वक उससे पूछा।

“सुनते ही उसके शरीरमें एक अनिर्वचनीय सिहरनकी तरंग खेल गयी। उसके चेहरेपर एक दिव्य ज्योति फूट पड़ी और वह बोला—‘क्या कहूँ? वहाँका आसमान मुहब्बतसे भरा है। मुहब्बतकी ही हवा चलती है। वह क्या कुछ कहनेकी बात है साधुजी! वहाँ सखा-सखी इस तरह मिल-जुलकर घूमते-फिरते हैं मानो आनन्दसे नाचते हों। उनकी बातें, गाना, हरएक सुर ऐसा है कि कानमें पड़ते ही बेहोश कर देता है।..... आ हा!’

“.....इसो समय चम्पा आ गयी। उसका रूप देखकर मैं स्तम्भित हो गया। यह तो वह ब्रजनारी नहीं, जिसने मुझे यहाँ रहनेके लिए कहा था, वेषभूषा भी तो वह नहीं। यह तो एक अपूर्व हो वेष था। अबतक किसीको भी ऐसी पोशाकमें नहीं देखा था। सबकुछ अत्यन्त पतला, इतना हल्का मानों उड़ रहा हो, स्थूल जरा भी न हो। उसकी अपूर्व गति एक मनोहर सौन्दर्यकी सृष्टि कर रही थी।

“बालककी स्पर्श करते ही वह उठ खड़ा हुआ। निर्वाक चम्पा आगे-आगे जा रही थी और उसके पीछे वैरागी किशोर। धीरे-धीरे मेरी आँखोंके सम्मुख ही वे दोनों अन्तर्धान हो गये। एक विलक्षण आच्छन्न भावसे जड़ीभूत होकर मैं बहुत देरतक वहीं बैठा रहा।”

श्रीफूल बाबाजी

(वृन्दावन)

श्रीइन्दुभूषण बसुका जन्म सम्बत् १८७६ में बंगालके जिला बाखरगंजमें हुआ। अठारह वर्षकी अवस्थामें उन्होंने इण्टरमीडियेट और मध्यमाकी परीक्षाएँ पास कीं। इन परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेके पश्चात् भौतिक उन्नतिके सारे मार्ग उनके लिए खुल गये। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, अच्छा स्वास्थ्य, परिश्रमी स्वभाव और उच्चशिक्षाके लिए उपलब्ध आवश्यक पारिवारिक सुख समृद्धिपूर्ण भविष्यकी सूचना देने लगे। कोई कहता कि वे उच्चकोटिके विद्वान बनेंगे, कोई कहता कि वे एक सफल वकील या बैरिस्टर बनेंगे, कोई कहता, वे एक यशस्वी समाज-सेवक और नेता बनेंगे। पर कोई भी कल्पना न कर सका कि वे बीस-बाईस वर्षकी अल्पावस्थामें ही वृन्दावनके बाँके-बिहारीके शृङ्गारके लिए फूलोंकी चोरी करनेवाले फूल बाबा बनेंगे।

पर इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। बाँकेबिहारीका प्रभाव ही कुछ इस प्रकारका है। जिसकी उनके ऊपर एक बार दृष्टि पड़ जाय, जिसके मानस-पटलपर उनकी बाँकी छवि एक बार उदय हो जाय, जिसके कर्ण-कुहरमें उनके नाम-गुण, रूप, लीला-कथाकी ध्वनि एक बार गूँज जाय, उसका लौकिक दृष्टिसे सबकुछ एकदम उलट-पुलट हो जाना कोई असाधारण बात नहीं।

इन्दुभूषणके पिता श्रीनिशिकान्त बसु बड़े कृष्ण-भक्त थे। इसलिए वृन्दावनके बाँकेबिहारीसे अल्पावस्थामें ही उनका परिचय हो जाना स्वाभाविक था। जबसे उनका परिचय प्राप्त हुआ, तभीसे उन्हें प्रतीत होने लगा कि उनके यथार्थ वन्दु, आत्मीय स्वजन वे ही हैं, उनका धाम ही अपना धाम है, उनकी सेवा ही अपना धर्म है।

जैसे-तैसे विद्यार्थी-जीवनके कुछ दिन व्यतीतकर बीस वर्षकी अवस्थामें वे कलकत्तेके नगेन्द्र मठके विष्णुस्वामी सम्प्रदायके सन्त श्रीयुत ध्यानप्रकाशजी महाराजसे गोपाल-मन्त्रमें दीक्षा लेकर व्रज चले गये। गुरुदेवने नाम रखा श्रीज्योतिप्रकाशदास। पर व्रजमें वे फूल बाबाके नामसे पुकारे जाने लगे;

क्योंकि सेठोंके वगीचोंसे बिहारीजीके शृङ्गारके लिए फूल चुराकर लाना ही उनकी मुख्य सेवा और भजन था।

पर बाँकेबिहारीकी फूल-सेवा उन्हें व्रजमें आते ही नहीं मिल गयी। बाँकेबिहारीकी सेवाका रास्ता इतना सहज और सीधा थोड़े ही है। वह भी बाँकेबिहारीकी तरह कुछ बाँका-टेढ़ा ही है। व्रजमें आकर श्रीफूल बाबा कुछ दिन वृन्दावनमें रहे। फिर सीधे नन्दगाँव चले गये, यह जानकर कि नन्दगाँव नन्दलालका निज घर है। वहाँ सखाओंके साथ खेलते-कूदते या गो-चारणके लिए नन्द-भवनसे आते-जाते उनका दर्शन सहजमें हो सकेंगे। पर वहाँ कहीं भी उनके दर्शन न हुए।

जब खोज-खोजकर हार गये, तब उन्होंने प्राण त्याग करनेका निश्चयकर अनशन आरम्भ कर दिया। साधु-महात्माओंके बहुत समझानेपर भी अनशन नहीं छोड़ा। तब एक दिन बाँकेबिहारीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—‘मेरा दर्शन हठसे नहीं, प्रेमसे होता है। कल यहाँसे उत्तर दिशामें चले जाता।’

बाँकेबिहारीने अपना रास्ता आप ही बता दिया। नन्दगाँवसे उत्तर दिशामें बरसाना है। नन्दग्रामका प्रकृत रास्ता बरसाना होकर ही है। बरसाना नन्दलालकी ह्लादिनी शक्ति प्रेमस्वरूपिणी राधारानीका स्थान है। नन्दलाल सब प्रकारसे प्रेमके अधीन हैं। इसलिए प्रेमकी अधिष्ठात्री देवी राधारानीके अधीन हैं। उनके संकेतके बिना वे कुछ भी कर सकनेमें लाचार हैं। उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिए राधारानीकी कृपा प्राप्त करना अनिवार्य है।

बाबा वृषभानुनन्दिनीका स्मरण करते हुए बरसानेकी ओर चल दिये। वे जैसे ही सिंहद्वारपर पहुँचे, उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति उनके लिए राधारानीके प्रसादका थाल लेकर वहाँ खड़ा है। राधारानीको इस रूपमें बाबाका स्वागत करना ही था; क्योंकि उन्हें स्वयं नन्दलाजने उनकी शरणमें जानेके लिए प्रेरित किया था।

राधारानीका दिव्य प्रसाद प्राप्तकर उन्होंने अपना कई दिनोंसे चला आ रहा अनशन समाप्त किया।

उस प्रसादको प्राप्तकर उन्हें एक नया बल, नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई।

उन्हें लगा कि करुणामयी राधारानीकी शरणमें जाते ही उन्होंने अपना करुणा-वारिधि उनके ऊपर उड़ेल दिया है। वे इस प्रकार उनके करुणा-वारिसे अभिषिक्त हो, उनके भावमें दिन-रात डूबे रहकर बरसानेके निर्जन और सुरम्य सांकरिखोरमें भजन करने लगे। वे हर समय भाव-समाधिमें डूबे रहते। उनके आहारादिकी चिन्ता स्वयं राधारानीको करनी पड़ती। वे कभी किसीको, कभी किसीको प्रेरणा देकर प्रसाद उनके पास पहुँचा दिया करतीं। कभी-कभी तो वे स्वयं ही ब्रजवासी बालिकाके रूपमें खानेकी सामग्री ले उनके पास उपस्थित होतीं।

राधारानीको इस प्रकार कष्ट करते देख उन्होंने मधुकरीके लिए जाना आरम्भ कर दिया। कुछ दिन सांकरिखोरमें भजन करते और राधारानीकी अनुपम कृपाका अनुभव करते हुए बीत गये, तो उन्हें बाँकेबिहारीकी याद फिर उद्देलित करने लगी। वे राधारानीका कृपा-आशीर्वाद लेकर वृन्दावन पहुँचे।

वृन्दावनमें निधिवन नामक स्थान है, जहाँ प्रिया-प्रियतम सखियों सहित आज भी रास-विलास करते हैं। आज भी उनके भाग्यवान भक्त वहाँ उनके दर्शनकर कृतार्थ होते हैं। बाबा वहाँ युगलके दर्शन प्राप्त करनेकी आलसासे सोहनी-सेवा करने लगे। इस भावसे कि यह प्रिया-प्रियतमके रास-विलासकी भूमि है, यहाँ प्रिया-प्रियतम नित्य रात्रिमें रास करते हैं, वे से जाड़-बुहारकर उसके काँटे-कंकड़ बीनकर, उसे स्वच्छ और सुकोमल बने लगे।

फूलबाबा निरन्तर यह भावना करते कि वे राधारानीकी प्रिय सखी। इसी भावसे वे निधिवनमें सोहनी-सेवा करते और बाँकेबिहारीके मन्दिरमें न-सेवा। बाँकेबिहारीके शृङ्गारके लिए जहाँ-तहाँसे फूल चुनकर लाते। हैं जहाँ, जिस कोठी या बगीचेमें सुन्दर फूल खिले दीख पड़ते, उसीमें उकर फूल तोड़ने लगते। उनके लिए वृन्दावनके सभी स्थान वृन्दावन-हारीके थे, और वहाँके सभी फूल उनकी सेवाके लिए खिलते थे। इसलिए हैं कहींसे फूल तोड़नेमें सङ्कोच नहीं होता था। पर उनके भावको सब ग नही समझने थे। इसलिए उन्हें कभी गालियाँ सुननी पड़तीं, कभी रतक खानी पड़ती। एक बार तो उन्हें हवालातकी हवा भी खानी पड़ी। उन्होंने यह सेवा नहीं छोड़ी। कुछ दिन बाद सेठ हरगुलालने उन्हें

विहारीजीके बगीचेसे फूल तोड़नेकी छूट दे दी। तब उन्होंने दूसरे बगीचेसे फूलोंकी चोरी करना बन्द कर दिया।

कोई कार्य शुभ है या अशुभ, प्रभु उससे प्रसन्न हैं या अप्रसन्न, उसके परिणामसे जाना जाता है। फूल बाबाकी फूल-सेवाके फलस्वरूप उन्हें युगलकी जो कृपा मिली, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रभु उनके चोरीके फूलोंसे कितना प्रसन्न थे।

प्रिया-प्रियतमको जब किसी भक्तपर कृपा करनी होती है, तब योगसाया उसके लिए भूमिका तैयार कर देती हैं, उसके अनुकूल किसी लीला-विशेषका सृजन कर देती हैं। एक दिन जब निधिवनमें रास-नृत्य हो रहा था, नृत्य करते-करते प्रियाजीके नूपुर बिखर गये। सखियोंने उन्हें सभेटा और पिरोकर प्रियाजीको पहना दिया। नृत्य समाप्त होनेपर प्रियाजीने नूपुरोंको गिना। एक नूपुर कम था। सखियाँ उसे खोजनेमें जुट गयीं। बहुत खोजनेपर भी वह न मिला।

दूसरे दिन रास आरम्भ होनेसे पूर्व प्रियाजीने सखियोंसे कहा—'प्रातःकाल फूलसखी निधिवनमें नित्य सोहनी-सेवा करती है। उमे आज सोहनी-सेवा करते समय नूपुर अवश्य मिला होगा। तुम उसके पास जाकर नूपुर ले आओ।'

उधर फूलबाबा भाव-समाधिमें देख रहे हैं कि उन्हें सखीरूपसे रासमण्डलमें सोहनी-सेवा करते समय राधारानीका नूपुर मिला है। वे सो रहे हैं कि सखियाँ उनके पास नूपुर साँगने आयेंगी, तो वे क्या कहेंगे। उस समय सखियाँ उनके पास पहुँची और पूछा—'तुम्हें सोहनी-सेवा करते समय श्यामाजीका नूपुर मिला है?'

फूलसखीने कहा—'नूपुर तो मिला है। परं वह श्यामका है र श्यामाका, मैं कैसे जानूँ? दोनोंके चरण देखकर उनके नूपुरोंसे मिलान कर तभी न पता चले कि नूपुर किसका है। मैं मिलाकर देखूँगी। नूपुर जिसव होगा उसीको दूँगी।'

श्यामाजीसे जाकर जब सखियोंने यह कहा, तो उन्होंने फूलसखी बुला भेजा। उससे कहा—'देख री, नूपुर सेरा खोया है, श्यामका नहीं नूपुर मुझे दे दे।'

फूलसखीने अपना हठ फिर भी न छोड़ा। तब श्याम और श्यामा दोनोंने अपने-अपने चरण उसके आगे बढ़ा दिये। फूलसखीकी जन्म-जन्मान्तर-की साध मिट गयी। नील और अरुण चरण-कमल-द्वयको प्राप्तकर उसका भाव-समुद्र उमड़ पड़ा। प्रेमाश्रुओंके अर्घ्यसे उनका प्रच्छालनकर उसने अपने प्राण-पुष्प उनपर चढ़ा दिये। तूपुर तो राधारानीको दिया ही, अपने मन और प्राण भी सदाके लिए उनके चरणोंमें समर्पित कर दिये।

जब बाबाकी भाव-समाधि भंग हुई, और उन्हें श्यामा-श्याम सामने न देखे, तो उनकी विरहाग्निने और भी प्रचण्ड रूप धारण किया। वे उन्मत्त-की भांति 'हा कृष्ण ! हा राधे !' कहकर प्रलाप करते और अश्रुविसर्जन करते बाह्यज्ञान रहित हो इधर-उधर डोलने लगे। इस अवस्थामें उन्हें कभी श्रीकृष्णकी बंशी-ध्वनि सुनायी पड़ती, कभी रास-लीलाके दर्शन होते और कभी युगल अपनी एक झलक दिखाते और अन्तर्धान हो जाते।

यह आँख-मिचौलीका खेल कुछ दिन चलता रहा। पर यह कबतक चलता रह सकता था ? बाबाका पार्थिव शरीर आँख-मिचौलीके अपार्थिव शक्तियोंको कबतक सहन कर सकता था ? संवत् २००३ आश्विनका महीना था। प्रभुने उन्हें अपने नित्य-धाममें बुला लेनेका विचार किया। उन्हें थोड़ा खर हुआ। उसके साथ-साथ उन्हें आभास हुआ कि प्रभु उन्हें अपने निकट ला लेनेको व्यग्र ही रहे हैं। उन्होंने सेवाकुञ्ज और ज्ञान-गुदड़ीकी रज गवाकर बिहारीजीके बगीचेमें अपने लेटनेके लिए रजकी शय्या बनवायी। सी समय बिहारीजी पधारे उन्हें ले जानेको। उन्होंने देखा और गुड़का गेग लगाकर उनका सत्कार किया। सेवकोंसे कहा हाथ धुलानेको। सेवक हाथ धुलाते समय हाथ गुड़से सना देख अवाक् !

जैसे बिहारीजी उन्हें ले जानेको जल्दी कर रहे हों, हाथ धोकर वे रन्त रज-शय्यापर लेट गये। सेवकोंने महामन्त्रका कीर्तन शुरू किया। बिहारीजीका चरणामृत उनके मुखमें दिया। बिहारीजी उन्हें अपने साथ ले गे। उनका पार्थिव शरीर व्रज-रजपर पड़ा रह गया। अपार्थिव सिद्धदेह तय-लीलामें प्रवेशकर गया।

बाबाकी फूलोंको चोरीका यह परिणाम ! यहाँ कारागार, वहाँ मुक्ति। र नित्य-लीलाका सुख अपार ! कितना अन्तर है व्यवहार और परमार्थके। दृष्टिकोणोंमें !

★

श्रीशचीनन्दनदास बाबा

(बरसाना)

सन् १९७२ का माघ मास था, जब मैं बरसानेके श्रीरामजीवनदास बाबाको साथ लेकर श्रीशचीनन्दन बाबाके दर्शन करने गया । उस समय श्रीशचीनन्दनदास बाबाकी आयु ११० वर्षसे भी अधिक थी । भ्रजके सबसे प्राचीन सिद्ध महात्माके रूपमें उनकी ख्याति थी । बरसानेमें आये तीर्थयात्रियोंके आकर्षणके वे प्रमुख केन्द्र थे । दूर-दूरसे आये तीर्थयात्री, जो उनके विषयमें कुछ नहीं भी जानते, उन्हें पण्डे उनके पास ले जाया करते; क्योंकि वे जो कुछ उन्हें भेंटकर जाते उसे आगे-पीछे वे ही ले लेते । बाबाकें न उसका पता होता, न उसकी आवश्यकता ही होती । वे अधिकतर एव मूर्तिके समान ध्यानस्थ बैठे रहते । लोग जैसे मन्दिरमें मूर्तिको दण्डवत्क पैसे-कौड़ी चढ़ाकर वापस चले जाते हैं, वैसे ही उनके भी दर्शनकर औ उनके सामने रुपये-पैसे या फल-फूल आदि रखकर चले जाते ।

श्रीशचीनन्दनदास बाबा बरसानेके भानुखर (भानुसरोवर) के तट पर शमशान-भूमिमें एक प्राचीन जीर्ण-शीर्ण छतरीमें रहते थे । हम जब छतरी पर गये, तो साँकल बाहरसे लगी थी । दरवाजा खोलकर जैसे ही हमने भीतर प्रवेश किया, देखा कि बाबा दीवारके सहारे ध्यानस्थ बैठे हैं । उनके ओर ईषत् हिल रहे हैं और कण्ठसे 'राई, राई' (राधे, राधे) शब्दका निरन्तर उच्चारण हो रहा है । ऐसा बिलकुल नहीं लग रहा है कि उन्हें बाह्यज्ञान 'राई, राई'का उच्चारण अभ्यासवश अपने-आप होता प्रतीत ही रहा है ।

बाबा दृष्टि-शक्ति खो चुके थे । पर उनकी श्रवणशक्तिमें कोई अन्त नहीं पड़ा था । फिर भी हमारे दरवाजा खोलकर भीतर आनेका आभा उन्हें नहीं हुआ था । उस समय सन्ध्या हो आयी थी । छतरीमें प्रकाश बहुत कम था । मध्यमें किसी दम्पतिकी समाधियोंके चिह्न अस्पष्ट-से दीख रहे थे ऊबड़-खाबड़ फर्शपर एक तरफ पानीका घड़ा और रजका करुआ-थाली रखे थे । एक टाटका आसन था, जिसपर बाबा बैठे थे । एक गुदड़ी थी, जिस आधा हिस्सा फर्शपर लोट रहा था और आधा उनके वाम अंगपर टं

हूँ था। इसके सिवा छतरीमें और कुछ नहीं था। पासमें कोई सेवक भी नहीं था।

ऐसा नहीं कि उनका कोई शिष्य था ही नहीं। उन्होंने शिष्य किये थे, पर केवल चार ही। बड़ी मुश्किलसे ही वे किसीको दीक्षा देते थे। जिन्हें दीक्षा दी थी, उन्हें भी प्रायः अपने पास नहीं रखते थे। ब्रजवासी उन्हें रोटी दे जाया करते थे और बाहरसे साँकल लगाकर चले जाया करते थे, जिससे कोई जानवर भीतर न जा सके।

हम लोग बाबाके सान्निध्यमें बहुत देर चुप-चाप बैठे रहे इस प्रतीक्षामें कि उनके शरीरमें बाह्य-ज्ञानका कोई चिह्न दीखे तो कुछ बातें करें।

उस समय छतरीके बाहर और भीतरका वातावरण शान्त और स्तब्ध था। पर नीरवता पल-पलपर मुखरित हो जैसे कुछ कह रही थी। हमारे बगैर कुछ कहे-सुने ही हमारी बहुत-सी शंकाओंका समाधान कर रही थी। हमारे बहुत-से प्रश्नोंके उत्तरमें बाबाकी ओर इंगित करती जान पड़ रही थी। उन्हें देख हमारे सभी प्रश्न कुण्ठित हो रहे थे। श्मशान भूमिकी उस छतरीमें शान्त और प्रसन्न मुद्रामें अकेले अन्तरमत्ता बैठे बाबा मायाके संसारको चूनीती देते लग रहे थे। ये प्रभुके चरणप्रान्तमें अपनी जीवननैयाका लंगर डालकर निश्चिन्त थे। संसार-समुद्रकी प्रचण्ड लहरें और झंझावात उन्हें अपने स्थानसे विच्युतकर उनके साथ खिलवाड़ करनेमें असमर्थ थे। वे सदा प्रभुके चरणोंकी शीतल छायामें रहकर उनके मधुर चिन्तनमें तल्लीन रहते थे। बाहरके जगत्की खबर भी नहीं रखते थे। उस जगत्की किसी वस्तु या उसके किसी व्यक्तिकी उन्हें अपेक्षा ही न थी। भगवान् स्वयं उनके योग-क्षेमका भार वहन करते।

प्रभुकी कृपासे माया-निर्मित इस देहमें रहते हुए भी मायापर क्या कोई पूर्ण विजय प्राप्त कर सकता है? केवल प्रभुकी कृपापर निर्भर रहकर, जीवन-यापनके लिए कुछ भी न करते हुए, क्या सचमुच कोई सुखसे जीवित रह सकता है? क्या सचमुच भगवान् उसका योग-क्षेम वहन करते हैं?—इन सभी प्रश्नोंके वे उत्तर-स्वरूप लग रहे थे।

उनके दिव्य सान्निध्यमें बैठे-बैठे काफी समय बीत गया, तब रामजीवन बाबाने उच्च स्वरमें कहा—‘राधे, राधे!’

‘कौन ?’ मन्द और गंभीर स्वरमें बाबा बोले, जैसे वे बहुत दूर कहींसे बोल रहे हों ।

‘मैं, रामजीवन’ रामजीवन बाबाने उत्तर दिया । साथ ही मेरा परिचय देते हुए कहा—‘यह वृन्दावनसे आपके दर्शन करने आये हैं । इनपर कुछ कृपा कीजिये ।’

बाबा चुप रहे । कुछ क्षण पश्चात् वे गाने लगे गोधूलिकी उस बेलाके अनुकूल एक गीत, जिसमें गोचारणके पश्चात् श्रीकृष्ण-बलरामके ग्वाल-बाल सहित घर लौटनेका सुन्दर वर्णन है—

गो-सुर-धूलि उछलि भर अम्बर । धनहुँ हाम्बा-रव हई-हई राव ।

बेणु-बिषाण-निसान समाकुल; सगे रंगे सब सहचर धाव ॥

वन सजे गिरिधर-धर धर आवत; जलब हेरि जनु हरषित चातकी ॥

ब्रजरमणीगण मंगल गावत ॥

(आकाश-मण्डल गोखुरोंसे उड़ती धूल, गायोंके ‘हम्बा-हम्बा’ रव और ग्वाल-बालोंकी ‘हई-हई’ ध्वनिसे व्याप्त है । बेणु और शृंगा बजाते, निशानादि लिये सखागण तरह-तरहके रंग करते चले आ रहे हैं । वन-प्रान्तसे गिरिधारीको घर आते देख ब्रजरमणियाँ उसी प्रकार आनन्द-विभोर हो मंगल-गीत गा रही हैं, जिस प्रकार बादलोंको देख चातकी आनन्द-विभोर हो नाचने लगती है ।)

बाबा एक उच्च कोटिके गायक और वादक थे । उनका कण्ठ-स्वर अब भी सुरीला और तड़पीला था । उनके गानसे लग रहा था जैसे लीला-जगत्की कोई ब्रजाङ्गना दिन भरके बाद कृष्णको सखाओं सहित घर लौटते देख आत्म-विभोर हो गानके माध्यमसे उनके चरणोंमें अपने विगलित प्राणोंका अर्घ्य उड़ेल रही है ।

गान समाप्त करते ही बाबा फिर अन्तरमना हो गये । उसी अवस्थामें उन्हें श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीका प्राण-चसकसे जी भरके पान करते छोड़ हम चुपकेसे छतरीके बाहर हो गये । रामजीवन बाबाने दरवाजा बन्दकर साँकल बाहरसे लगा दी ।

बाबाका बंगाली शरीर था । वे बंगालमें कहाँ रहते थे और ब्रजमें कब आये, इस सम्बन्धमें कुछ नहीं पता । पर अब उन्हें बरसानेके भानुकुण्डके तटपर इस छतरीमें रहते ८० वर्ष हो गये थे । अपने प्रधान शिष्य श्रीअनुरागी

बाबासे उन्होंने एक बार कहा था—‘मुझे बचपनसे ही कथा-कीर्तनका नशा था । यदि घरसे कहीं दस मील दूर रासमें भी कथा-कीर्तन होनेका संवाद पाता तो उस स्थानको चल पड़ता । रात वहीं व्यतीत कर दूसरे दिन घर लौटता । घरके लोग डाँटते-उपटते, मारते-पीटते, तो उसे सहन करते हुए भगवान्से प्रार्थना करता उस प्रतिकूल वातावरणसे मुक्ति दिलानेकी । एक बार मैं श्रीमद्भागवतकी कथा सुन रहा था । राजा अम्बरीषका गुणानुवाद हो रहा था । ‘स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो’ श्लोक (भा. ८।४।१८) की व्याख्यामें सुना कि उन्होंने अपने मनको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्द युगलमें, बाणीको भगवद्गुणगानमें, हाथोंको श्रीमन्दिरके मार्जन-सेवनमें और कानोंको उनकी मंगलमयी कथाके श्रवणमें लगा रखा था । उसी समय मैंने भी अपनी सर्वेन्द्रियोंको श्रीभगवान्में लगा रखनेका निश्चय किया । घरपर रहते यह सम्भव न था । इसलिए घरसे निकल पड़ा । गलेमें एक छोटेसे मिट्टीके पात्रमें तुलसीका पौधा लटकाये दो वर्ष तक भारतके विभिन्न तीर्थोंमें भ्रमण करता रहा ।’

दो वर्ष पश्चात् बाबाने व्रजमें प्रवेश किया । दीक्षा शायद उन्होंने पूर्वाश्रममें ही किसीसे ले रखी थी । व्रजमें आकर सिद्ध श्रीजगन्नाथदास बाबा-के शिष्य सिद्ध श्रीरामहरिदास बाबासे वेष ग्रहण किया । कुछ दिन व्रजके विभिन्न क्षेत्रोंमें भ्रमण करते रहे । फिर स्थायी रूपसे इस छतरीमें आसन जमाकर भजन करने लगे ।

राधारानीमें उनकी अटूट निष्ठा थी । उनकी तरह-तरहसे सेवा किया करते । होलीके दिनोंमें सुबहसे शाम तक भानुधर छतरीसे लेकर श्रीजीके मन्दिर तकके मार्गमें झाड़ू लगाया करते । श्रीजीके शृंगारके लिए फूल-चयन किया करते । कभी-कभी बरसानेमें फूलोंका नितान्त अभाव हो जाता । तब वे रात-रात पैदल चलकर बुन्दावन जाते । वहाँसे फूल लाकर प्रातःकाल माला गूँथकर श्रीजीको अर्पण करते ।

एक बार कोसीके निकट किसी बगीचेमें उन्हें सुन्दर-सुन्दर फूल लगे दीखे । इच्छा हुई उनकी माला गूँथकर श्रीजीको पहनानेकी । बगीचेके मालिकसे फूल तोड़नेकी अनुमति माँगी तो उसने मना कर दिया । उस दिन रातको वे उस बगीचेके निकट एक तिवारीमें सो गये । रात १२ बजे कुछ चोर तिवारीके निकट कहीं चोरी करनेकी योजना बना रहे थे । बाबाको

देख उनके सरदारने हिला-डुलाकर उन्हें जगाया । पूछा—‘तू कौन है, रे ?’

बाबाने कहा—‘मैं चोर हूँ ।’

‘चोर ? कहाँ चोरी करेगा ?’

‘इस बगीचेमें ।’

‘बगीचेमें क्या रखा है ?’

‘बड़े सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हैं ।’

‘फूलोंकी चोरीसे तेरा पेट भरेगा ?’

‘हाँ भरेगा ।’

‘कैसे ? इन्हें बेचकर तुझे क्या मिलेगा ?’

‘बेचूँगा नहीं । फूलोंकी माला गुंथकर श्रीजीको धारण कराऊँगा । श्रीजी प्रसन्न होंगी । उनकी प्रसन्नतासे मेरा भवरोग छूट जायगा । मेरी जन्म-जन्मान्तरकी भूख मिट जायेगी ।’

चोर बाबासे बहुत प्रभावित हुए । बोले—‘बाबा, चलो इस चोरीमें हम भी तुम्हारा साथ देंगे ।’

उनकी सहायतासे फूलोंकी चोरीकर बाबाने अपनी मनोवाञ्छा पूर्ण की ।

बाबाके क्षणभरके संगके प्रभावसे, या श्रीजीके लिए एक बार चोरी करनेके फलस्वरूप चोर अपने लिए चोरी करना भूल गये । वे बाबाके पास उनकी छतरीपर बीच-बीचमें आते रहे । उनके व्यक्तित्वमें असाधारण परिवर्तन हुआ । वे चोरसे भक्त बन गये ।

बाबा दिनभर छतरीमें भजन करते रहते । सन्ध्या समय एक बार मधुकरीको जाते । मधुकरीमें प्राप्त रोटियाँ कभी अधिक मिल जातीं तो उन्हें सुखाकर रख लेते । किसी दिन भजनावेशके कारण मधुकरीको जानेकी इच्छा न होती, तो उन्हें चबाकर रह जाते । वृद्धावस्थामें जब दाँत नहीं रहे, उन रोटियोंका चूराकर थोड़ा नमक और पानी मिलाकर उनकी गोलियाँ बना लेते और पानीके साथ उन्हें निगल जाते । जिह्वाको स्वाद लेनेकी इच्छा होती, तो ‘राई, राई’ (राधा-राधा) नाम रटने लगते । इसमें उन्हें इतना स्वाद मिलता कि भूख-प्यास सब भूल जाते । उन्हें अकसर गाते सुना जाता—

धूरि खेला आर खेलिबो ना, हरिनामे मन मेजे छे ।
मायेर काछे आर जाबो ना, क्षुधा पेले आर खाबो ना ॥
राई राई आमार क्षुधा-तृष्णा सब हरे छे ॥

‘(सांसारिक विषयरूपी) धूलसे अब मैं नहीं खेलूंगा, क्योंकि मेरा मन हरिनामामृत-समुद्रमें डूब गया है । अब मैं न माँके पास जाऊँगा, न भूख लगनेपर कुछ खाऊँगा, क्योंकि राधा-नामने मेरी क्षुधा-तृष्णा सब हर ली है ।’

राधा-कृष्णकी अष्टकालीन लीला-चिन्तनमें बाबा सब समय डूबे रहते । उनके कण्ठसे ‘राई-राई’की ध्वनि होती रहती । रात्रिमें चिन्तनमें राधारानीको शयन कराकर अपने-आप भी विश्राम करते । पर एक-डेढ़ घण्टा विश्राम करनेके पश्चात् उठ बैठते और आसनपर बैठे ‘राई-राई’ रटा करते । उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती ।

उनके पास जिस समय भी कोई व्यक्ति आता, उस समयकी लीलासे सम्बन्धित कोई पद गाकर उसे सुनाते । उससे उसकी राशिका नाम पूछते । उसकी राशिके अनुसार राधारानीकी सखी-मञ्जरी, ललिता, विशाखा, रंगदेवी आदिमें-से किसी एकका नाम लेकर कहते—‘आजसे तुम्हारा यही नाम है । फिर उस सखीके रूप-रंग, वेशभूषा आदिका वर्णनकर उसकी सेवाका वर्णन करने लगते । उसे और कुछ कहने-सुननेका अवकाश न देते । यदि वह उनकी बात काटकर अपने संसारकी नीकरी-चाकरी या सन्तानादिकी कोई बात पूछने लगता, तो उसे डाँट-फटकारकर छतरीसे निकाल देते ।

बाबा जिस समय जिस भावमें डूब जाते, उसीमें डूबे रहते । बाहरकी क्रिया, आलाप-संलाप तो जैसे यन्त्रवत् अपने-आप चलते रहते । शौचादिको जाते तो भी वही स्थिति रहती । तीन-तीन घण्टे वहाँ बैठे रह जाते । आँखकी पुतलियाँ ऊपर चढ़ी रहकर उनकी ध्यानस्थ अवस्थाका परिचय देती होती । पर ‘राई-राई’की ध्वनि उस समय भी चलती रहती ।

बहुत दिनोंसे बाबाने मधुकरीको जाना वन्दकर रखा था । उन्हें इसके लिए अवकाश ही कहाँ था ? उनके शिष्य, सेवक और ब्रजवासी उन्हें प्रसाद पहुँचा दिया करते थे । एक बार वर्षा ऋतुमें वाढ़के कारण बाबाकी छतरी चारों ओर पानीसे घिर गयी । उन तक किसीका पहुँचना बहुत मुश्किल हो

गया । बाबा फिर भी छतरी छोड़नेकी तैयार न हुए । उस समय अनुरागी बाबा उनके पास रहकर उनकी सेवा कर रहे थे । एक दिन रातमें वर्षा जोर-की हो रही थी । उसी समय बाबाकी उँगलीमें बिच्छूने डंक मारा । असह्य यन्त्रणा ! अनुरागी बाबाने तत्काल उँगलीको सुतलीसे कसकर बाँध दिया । फिर चिन्ता करने लगे और क्या उपचार करें, ऐसे पानीमें कैसे कहाँ जायें । बाबाने कहा—‘बेटा, कहीं मत जा । थोड़ी देरमें मैं लीलामें डूब जाऊँगा । तब कुछ भी न करना । सबेरे तक अपने-आप ठीक हो जायगा ।’

ऐसा हो हुआ । देखते-देखते बाबा ध्यान-मग्न हो गये । प्रातःकाल मुख-प्रक्षालनके पश्चात् अनुरागी बाबाने पूछा—‘बाबा दर्द कैसा है ?’

‘कैसा दर्द ?’

‘कल जो बिच्छूने काटा था ?’

‘कहाँ ?’

‘उँगलीमें’, कहते हुए उँगलीका बन्धन खोला, तो बाबा बोले—‘हाँ, थोड़ी-सी टपकन तो है ।’

सन् १९७४, वैशाख मासके कृष्णपक्षकी दशमीके दिन बाबाने नित्य-लीलामें प्रवेश किया ।



श्रीप्रियाशरण बाबाजी

(वृन्दावन/बरसाना)

श्रीप्रियाशरण बाबाका जन्म अगहन शुक्ला दशमी सम्बत् १९५२ में बिहारके बक्सर प्रान्तके अन्तर्गत सुनहरा ग्राममें कान्यकुब्ज चतुर्वेदी परिवारमें हुआ । उनके माता-पिता दोनों रामानन्दी वैष्णव थे । वैष्णवताके संस्कार उन्हें प्रारम्भिक अवस्थामें ही उन दोनोंसे प्राप्त हुए । पर वे अपनी माँसे विशेषरूपसे प्रभावित थे । वे एक परम वैष्णवी, विदुषी महिला थीं ।

विद्याध्ययनके लिए उन्हें अपनी ननसार वाराणसी भेज दिया गया । वहाँ एक कुशाग्र बुद्धिके होनहार बालकके रूपमें अपना परिचय देनेमें उन्हें

देर न लगी । वाराणसीका वातावरण उनके भक्तिके संस्कारोंको भी पनपानेमें सहायक हुआ । श्रीमद्भागवतसे उन्हें बहुत प्रेम था । जहाँ-कहीं उसका पाठ होता सुन लेते वहाँ पहुँच जाते । सन्त-महात्माओंका संग भी किया करते । इसी बीच बक्सर स्थित निम्बार्क सम्प्रदायके श्रीश्रीभूरामदेव द्वारेके महन्त श्रीश्यामदासदेवजी महाराजसे उनकी भेंट हुई । उनसे दीक्षा लेकर वे विधिवत् भक्ति मार्गपर आरुढ़ हुए ।

पर अभी उनका भक्ति-भाव इतना प्रबल और परिपक्व नहीं था कि वे सब कुछ छोड़कर एकान्त रूपसे इस पथके पथिक बन जाते । इस समय उनकी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी । विद्याध्ययनमें उनका मन रमा हुआ था । व्यायाम और कुश्ती आदिका भी उन्हें शौक था । नवयौवनकी नयी-नयी उमंगें नयी-नयी दिशाओंमें उड़ान भरनेको उन्हें चंचलकर रही थीं ।

जिन महापुरुषोंने इस अवस्थामें गृह-त्याग किया है, उन्हें अपनी पूरी शक्ति और मनोबलका प्रयोग करते हुए अगणित विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा है । कुछको अपने कियेपर पछताना भी पड़ा है, और कुछको घर लौट जाना पड़ा है ।

श्रीप्रियाशरण बाबाकी इस समय गृह-त्याग करनेकी न तो कोई इच्छा थी, न उन्होंने उसके लिए कोई प्रयास ही किया । अपने भक्तिके संस्कारोंके कारण वे कभी-कभी यह स्वप्न अवश्य देखा करते थे कि एक दिन घर-गृहस्थीके बन्धनसे मुक्त हो वे वृन्दावनमें जा वसेंगे और वहाँके उपवनोंमें, लताओं-पताओंके बीच बैठकर प्रिया-प्रियतमकी मधुर ललाओंका चिन्तन करते हुए सुखसे जीवन व्यतीत करेंगे । उन्होंने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि उनका यह स्वप्न उनके बिना प्रयत्न किये ही अविलम्ब साकार हो उठेगा ।

पर हुआ ऐसा ही । विद्यालयकी छुट्टियोंमें वे वृन्दावन गये केवल वहाँकी लीला-स्थलियों और सन्त-महात्माओंके दर्शन करनेके उद्देश्यसे । पर वहाँ जाकर पकड़ लिये गये । ऐसे पकड़े गये कि फिर घर लौटनेका नाम ही नहीं लिया । वृन्दावन जब किसीको पकड़ता है, तो ऐसे ही पकड़ता है । मनुष्य जब उसे पकड़ता है तो पकड़कर छोड़ भी सकता है । पर वृन्दावनके उसे पकड़कर छोड़नेका सवाल ही नहीं उठता ।

वृन्दावन किसी को पकड़ती है अपने किसी ऐकान्तिक भक्तके माध्यमसे। वृन्दावन आते ही प्रियाशरण बाबा प्रेरित हुए व्रजके सन्तोंके मुकुटमणि, परम भागवत पण्डित रामकृष्णदास बाबाजी महाराजके दर्शन करनेको। पण्डित बाबा उन दिनों गीवर्धनमें श्यामकुटीमें रहते थे। वहाँ जाकर उन्होंने उनके दर्शन किये। उनके दर्शनकर वे कृतकृत्य हो गये। उन्हें लगा कि जैसे उन्हें कोई अपूर्व निधि मिल गयी हो। पण्डित बाबाने भी उनमें एक होनहार बालकके दर्शन किये। उनकी पत्नी दृष्टिने उनके भीतर-बाहर झाँककर उनका सब कुछ जान लिया। उन्होंने जान लिया कि जैसा उनका रूप सुन्दर है, वैसी ही उनकी आत्मा भी सुन्दर और उन्नत है। उनके द्वारा भविष्यमें जन-कल्याणका बहुत-सा कार्य होना है। उन्होंने अपना सारा प्रेम उनपर सहज ही उड़ेल दिया। उस प्रेमसुधाका पान कर वे अपने माँ-बाप, घर और संसार-को एकदम भूल गये। उनके क्रीतदासकी तरह उन्हींके होकर उनके पास रह गये। ऐसा ही होता है महाजनोके निःस्वार्थ प्रेमका चमत्कारी प्रभाव !

प्रियाशरण बाबा पण्डित बाबाके संरक्षणमें रहकर उनके आदेशोंका पालन करते हुए भजन करने लगे। वे निम्बार्क सम्प्रदायमें दीक्षित थे और पण्डित बाबा गौड़ीय सन्त थे। पर गौड़ीय होते हुए भी उन्हें सभी सम्प्रदायोंके शास्त्रों और साधन-पद्धतियोंका पूरा ज्ञान था। सभी सम्प्रदायोंके महात्मा उनका आदर करते थे। सभीको वे उनके सम्प्रदायकी मान्यताओंके अनुसार भजनकी शिक्षा देते थे। प्रियाशरण बाबाको भी उन्होंने उनके सम्प्रदायकी पद्धतिके अनुसार भजन करनेका उपदेश दिया। पर पण्डित बाबाके प्रभावसे वे एक सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त होते हुए भी साम्प्रदायिक संकीर्णताओंसे सदा मुक्त रहे।

पण्डित बाबाने प्रियाशरण बाबाको सदाचार और वैराग्यादिकी शिक्षा देकर उनके चरित्रका जिस प्रकार अपने धर्मपुत्रके समान स्नेहपूर्वक गठन किया, वह उनके सम्बन्धमें घटित एक घटनासे स्पष्ट है।

वे उन्हें अपने साथ नित्य मधुकरीको ले जाया करते। एक व्रजवासीके घर मधुकरी बँधी हुई थी। उसके घर जाकर वे बाहर खड़े रहते, प्रियाशरण भीतर जाकर मधुकरी ले आते। उसके घर एक नवविवाहिता वधू थी, जो मधुकरी दिया करती थी। एक दिन मधुकरी देते समय उसके पैरका अँगूठा बाबाके पैरके अँगूठेसे स्पर्श कर गया। बाबाने इसपर ध्यान नहीं दिया।

पर दूसरे दिन भी वैसा ही हुआ और तीसरे दिन भी। तब उन्होंने बाहर निकलकर पण्डित बाबासे कहा—‘बाबा, कलसे इस घरमें मधुकरीको नहीं आया करेंगे।’ पूछनेपर उन्होंने कारण भी उन्हें बता दिया। कारण सुनते ही पण्डित बाबासे न रहा गया। वे घरके भीतर गये और सबके सामने नववधूको फटकारते हुए बोले—‘तू हमारे छोरानको बिगारबेको आयी है?’ अपने छोराके चरित्रकी उन्हें इतनी चिन्ता थी कि नववधूको भी सबके सामने इस प्रकार फटकारनेमें उन्होंने संकोच नहीं किया।

एक बार पण्डित बाबा प्रियाशरण बाबा और श्रीगौरांगदास बाबा आदि कई महात्माओंके साथ मधुकरीको निकले। कई घरोंपर गये, पर कहीं भी मधुकरी न मिली। यह एक असाधारण घटना थी, क्योंकि बाबाको मधुकरी देनेके लिए ब्रजवासी सदा लालायित रहते। किसीको इसका कारण समझमें न आया। बावाने अपनी दिव्य-दृष्टिसे कारण जान लिया। उन्होंने कहा—‘अच्छा, सब लोग बताओ तो कि इस समय किसके पास क्या-क्या है?’ एक साधुने बताया कि उसके पास सात रुपये हैं। पण्डित बावाने कहा—‘यही कारण है कि आज मधुकरी नहीं मिली। प्रभु हमारे योग-क्षेमकी चिन्ता तभी करते हैं, जब हम उनका पूर्णरूपसे आश्रय लें। उनका आश्रय छोड़ जब हम अपने बल-बुद्धिका प्रयोग करने लगते हैं, तो वे भी अपना हाथ खींच लेते हैं।’ तभीसे प्रियाशरण बावाने रुपया-पैसा स्पर्श भी न करनेका संकल्प कर लिया।

प्रियाशरण बावाने पण्डित बाबाकी आज्ञासे पूछरीमें गोपाल मन्त्रका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। अनुष्ठान करते दस ही दिन बीते थे, जब उनमें कुछ ऐसी शक्तिका संचार हुआ, जिससे उन्हें अज्ञात वस्तुओंका पता चल जाता और भविष्यकी घटनाओंका पूर्वाभास हो जाता। उन्होंने जब पण्डित बाबाको यह बताया, तो उन्होंने कहा—‘गोपाल मन्त्रका अनुष्ठान बन्द कर दो। केवल हरिनामका जप करो। मन्त्रसे कामना सिद्ध होती है। नामसे कामनाका नाश होता है।’

बावाने अनुष्ठान बन्द कर दिया और नाम-जपमें लग गये।

पण्डित बाबासे प्रियाशरण बावाने निम्बार्क सम्प्रदायके ग्रन्थोंका तो अध्ययन किया ही, अन्य सम्प्रदायोंके, विशेष रूपसे गौड़ीय सम्प्रदायके ग्रन्थोंका भी गम्भीर अध्ययन किया। फलस्वरूप उन्हें सभी सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंका

अच्छा ज्ञान हो गया और उनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक हो गया। कुछ ही दिनोंमें उन्होंने कथा कहना प्रारम्भ किया और एक अच्छे कथावाचकके रूपमें उनकी ख्याति हो गयी। अपनी कथाओंमें वे गौड़ीय और राधावल्लभीय सिद्धान्तोंका भी खुलकर वर्णन और समर्थन करते, जिससे कभी-कभी लोगों-को उनका वास्तविक झुकाव राधावल्लभीय या गौड़ीय सिद्धान्तकी ओर अधिक होनेका भ्रम हो जाता। पर वास्तविकता यह थी कि उन्होंने निम्बाकं सिद्धान्तको उसके व्यापक रूपमें ही ग्रहण किया था। उस रूपमें उसका गौड़ीय और राधावल्लभीय सिद्धान्तोंके मुख्य रूपसे कोई विरोध नहीं था।

प्रियाशरण बाबाने जबसे वृन्दावनमें पदार्पण किया, तभीसे पण्डित बाबाके अतिरिक्त उन्हें श्रीगौरांगदास बाबाजीका भी अमूल्य सग प्राप्त हुआ। वे और गौरांगदासजी दोनों नवयुवक थे। दोनोंका वैराग्य असाधारण था। दोनों पण्डित बाबाके अन्य शिष्योंके समान उनके आध्यात्मिक संरक्षण और आश्रयमें रहकर शास्त्राध्ययन और भजन-शिक्षा ग्रहण करते थे। दोनोंसे पण्डित बाबा पुत्रवत् स्नेह करते थे। प्रियाशरण बाबा अन्त समय तक बात-वातमें गौरांगदास बाबाकी यादकर अश्रु विसर्जन करते और अपनी कथाओंमें श्रोताओंके समक्ष उनकी अनुपम भक्ति और वैराग्यका उदाहरण प्रस्तुत करते।

प्रियाशरण बाबाने गोवर्धनके सिद्ध मनोहरदास बाबा और पियासेवाले बाबा श्रीराधिकादासजीका भी संग बहुत किया। सम्बत् १८७५ में वे टटिया स्थान, वृन्दावनके महन्त श्रीभगवानदासजी महाराजके सम्पर्कमें आये। उनसे और टटिया स्थानके ही श्रीनवेलीशरणजीसे उन्होंने वाणी-ग्रन्थोंका गम्भीर अध्ययन किया।

इसके पश्चात् वे कथा विशेष रूपसे वाणी ग्रन्थोंकी ही कहा करते। उनकी कथामें जिस अपूर्व रसकी वृष्टि होती, उसमें सराबोर हो लोग अपनी सुध-बुध खो बैठते। श्रीहरि बाबा और श्रीउड़िया बाबा जैसे सन्त भी उनकी कथा सुनने आया करते।

एक बार व्रजमें व्रज-लीला और निकुञ्ज-लीलाको लेकर विवाद छिड़ गया। लीला दो प्रकारकी है—स्वारसिकी और मन्त्रोपासनामयी। अप्रकट लीला स्वारसिकी है, क्योंकि वह स्वेच्छामयी है और भिन्न-भिन्न समय, भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें अनुष्ठित होती रहती है। वह प्रवाहरूपा

है। पर शास्त्रोंमें बहुत-से उपासना-मन्त्रोंमें ऐसी लीलाओंका भी उल्लेख है, जो सदा-सर्वदा एक ही स्थानपर एक ही रूपमें होती रहती हैं। उन्हें मन्त्रोपासनामयी लीला कहते हैं। स्वारसिकी लीलामें अन्तर्भुक्त लीलाओंका सबका आदि, मध्य और अवसान होता है। पर मन्त्रोपासनामयी लीलाका आदि, मध्य और अवसान नहीं होता। वह नित्यस्थितिशीला है। एक ही प्रकारसे, एक ही स्थानपर नित्य होती रहती है। मन्त्रोपासनामयी नित्यस्थितिशीला लीला स्वारसिकी गतिशीला लीलासे उसी प्रकार उद्भूत और उसके अन्तर्गत है, जिस प्रकार यमुनामें कालीयहृदके समान बहुत-से हृद उससे उद्भूत और उसके अन्तर्गत हैं। स्वारसिकी लीला अपने चक्राकार प्रवाह-पथपर चलते हुए बहुत-से हृदोंमें परिणत होती है और उन हृदोंके भीतरसे बहती हुई निकलती रहती है। जिस समय स्वारसिकी लीलाका प्रवाह मन्त्रोपासनामयी लीलाके हृदमें प्रवेश करता है, उस समय सामयिक रूपसे दोनों लीलाओंका ऐक्य होता है। पर स्वारसिकी लीलाका प्रवाह आगे बढ़ जाता है और मन्त्रोपासनामयी लीलाका हृद वहीं रह जाता है।

उपासना-मन्त्रोंकी विभिन्नताके अनुसार मन्त्रोपासनामयी लीला भी अनेक प्रकारकी है, जैसे गोचारण लीला, रास-लीला, कुञ्ज-क्रीड़ा-लीला इत्यादि। चैतन्य-चरितामृतमें निकुञ्जके नित्य-विहारका वर्णन इस प्रकार है*—

राय कहे—कृष्ण हृष धीर ललित । निरन्तर काम क्रीड़ा जाह्नार चरित ॥
रात्रि विन कुञ्ज-क्रीड़ा करे राधासंगे । केशोर-धधत सफल कै क्रीड़ा रंगे ॥

(चै० च० २.८.१४७-४८)

प्रत्येक मन्त्रोपासनामयी लीलाकी अवस्थिति वृन्दावनके एक विशेष प्रकाशमें है।

व्रजलीला और निकुञ्ज-लीलाका यह समन्वय बाबाके मनमें बैठा हुआ था। पर इस विवादमें कुछ लोगोंका कहना था कि निकुञ्ज-लीला व्रज-लीलासे सर्वथा भिन्न है और निकुञ्जेश्वरी राधारानी वृषभानुनदिनीसे भिन्न हैं। निकुञ्जके श्यामा-श्याम अनादि और अजन्मा है। उनके न कोई माता-पिता

* भक्तिरसामृतसिन्धु, दक्षिण विभाग १ म-विभावलहर्याम् १/१२३-२४ में भी नित्य-विहारका इसी प्रकार वर्णन है।

हैं, न उनका ब्रज-लीलासे कोई सम्बन्ध है। वे नित्य-किशोर और किशोरी हैं, उनका विहार नित्य है। कुछका मत था कि निकुञ्जेश्वरी और वृषभानुनन्दिनीमें कोई भेद नहीं है और निकुञ्ज-लीला भी ब्रज-लीलाके अन्तर्गत है। श्यामा-श्याम अजन्मा और अनादि हैं, पर प्रकट लीलामें उनका जन्म है। नन्द-यशोदाका अनादि कालसे उनके प्रति वात्सल्य भाव है, जिसकी प्रकट-लीलासे और भी पुष्टि होती है। विवादके कारण बाबाके मनमें भी इस सम्बन्धमें कुछ सन्देह होने लगा। इस प्रश्नको लेकर वे बड़ी उलझनमें पड़ गये। एक दिन उन्हें गोपालकुटीमें इसी उलझनमें बैठे-बैठे तन्द्रा आ गयी। उस समय स्वयं राधारानीने दर्शन देकर उनसे कहा—‘मैं ही वृषभानुनन्दिनी हूँ, मैं ही निकुञ्जेश्वरी हूँ।’ तबसे उनका विश्वास इस सिद्धान्तमें और भी दृढ़ हो गया।

प्रियाशरण बाबा बड़े स्पष्टवादी थे। अपने विषयमें ही या दूसरोंके, उन्हें जहाँ कहीं त्रुटियाँ दीखतीं, उन्हें उजागर करनेमें न चूकते। कभी-कभी बड़ी तीखी बातें भी कह बैठते, जिससे दूसरोंको कष्ट होता। पर उनका उद्देश्य होता दूसरोंका सुधार करना, न कि उनकी निन्दा करना।

एक बार निम्बार्क सम्प्रदायके अनन्तश्रीविभूषित श्री ‘श्रीजी’ महाराज वृन्दावन पधारे। उनके आग्रहसे प्रियाशरण बाबाने निम्बार्क सदन, रमणरेती-में श्रीमहावाणी, सिद्धान्तसुखकी कथा कहना प्रारम्भ किया। श्री ‘श्रीजी’ महाराज कथा सुनने आने लगे। प्रियाशरण बाबा उनका यथोचित सम्मान करते और उन्हें उचित आसनपर बिठाकर स्वयं पत्थरके चबूतरेपर बैठते। प्रथम दिन श्रीजीके सामने वे बिना कुछ बिछाये ही चबूतरेपर बैठे। श्रीजीके आग्रहपर उसपर चटाई बिछाकर बैठनेको राजी हुए। फिर भी सम्प्रदायके एक वयोवृद्ध सन्तने श्रीजी द्वारा प्रियाशरण बाबाकी कथा सुननेपर आपत्ति की। उन्होंने इसे लेकर एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। फलतः श्रीजी महाराजको छः दिन कथा सुननेके बाद कथामें आना बन्दकर देना पड़ा। उसके पश्चात् एक दिन, जब वह वृद्ध महात्मा कथामें उपस्थित थे, बाबाने किसी प्रसंगमें उन्हें लक्ष्य कर कहा—“श्रीहरिदयास देवाचार्यने मायाको चेली बनाया। शिक्षा प्रदान करते समय उससे कहा—“अब तू वैष्णवी हो गयी है। यदि पुराने अभ्यासवश किसीको लगनेका मन कर आये, तो वृन्दावनमें रहनेवाले बूढ़े महात्माओंको लगना।”

एक बार वृन्दावनमें कहींसे एक महात्मा पधारै। उनकी स्थिति बड़ी विलक्षण थी। कथा-कीर्तनमें उन्हें अश्रु-कम्पादि भाव होते थे। मूर्च्छा भी आ जाती थी। वे अधिकतर भाव-समाधिमें रहते थे। भगवान्‌से बातें करते थे, जिन्हें सुनकर लोग बहुत प्रभावित होते थे। शीघ्र ही सिद्ध महात्माके रूपमें उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। बड़े-बड़े महात्मा भी उनके दर्शन करने आने लगे। श्रीहरि बाबाने भी उनके संगका लाभ उठाना चाहा।

उन्होंने उनसे कहा—‘महाराज, प्रभु सदा ही आपकी सन्निधिमें विराजते हैं। क्या आप उनसे पूछनेकी कृपा करेंगे कि मुझे उनके दर्शन कैसे हो सकते हैं?’

महात्माने उत्तर दिया—‘यारका कहना है कि आप २१ दिन अनशन करें तो आपको दर्शन हो जायेंगे।’

भोले-भाले हरिबाबाने अनशन आरम्भ कर दिया। जब किसीने प्रियाशरण बाबाको यह सब बताया, तो उन्होंने कहा—‘उन महात्माको मेरे पास ले आओ।’

वे महात्माको उनके पास ले गये। बाबाने आदरपूर्वक प्रणामादिकर उन्हें आसन देकर अपने पास बिठाते हुए कहा—

‘महाराज अपराध क्षमा करें। मुझे स्वयं आपके पास जाना चाहिये था। आपने बड़ी कृपा की जो यहाँ पधारनेका कष्ट किया।’

‘कोई बात नहीं। यारने अनुमति दे दी, तो चला आया’ महात्माने उत्तर दिया।

प्रियाशरण बाबाने कुछ देर भजन सम्बन्धी बातें कर उन्हें भली प्रकार समझने और परखनेकी चेष्टा की। अच्छी तरह कसौटीपर कस लेनेके बाद उनसे कहा—

‘सुना है, आपपर प्रभुकी बड़ी कृपा है।’

‘हाँ, उनकी मुझपर असीम कृपा है।’

‘वे आपको दर्शन दिया करते हैं, आपसे बातें भी करते हैं?’

‘हाँ, वे हर समय मेरे साथ ही रहते हैं।’

‘इस समय भी आपके साथ हैं क्या?’

‘हैं तो, पर वे बाहर खड़े हैं । उन्होंने कहा है—तुम बाबासे बातकर आओ । मैं भीतर नहीं जाऊँगा ।’

उसी समय बाबाने तयोरी बदलकर महात्माको घूरते हुए ऊँचे स्वरमें कहा—‘हाँ, मैंने तेरे पारकी भेंस चुराई है न । इसीलिए मुझसे दृष्ट है । अब मैं अनशन करूँगा, तब प्रसन्न होगा । यह भी कहा है न उसने तुमसे ? धूर्त कहीं का ! आया है वृन्दावनमें भोले-भाले बाबाओंको ठगने । चला जा यहाँसे इसी क्षण, नहीं तो देता हूँ शाप ।’

महात्माको पसीना आ गया । वे थर-थर कांपने लगे । आँखें नीची कर जानेकी हुए, तब बाबाने कहा—

‘रुको । पहले हरि बाबाके पास जाकर उनसे अनशन तोड़नेको कहो । तब चले जाओ यहाँसे ।’ महात्माने ऐसा ही किया ।

गोपाल मन्त्रके अनुष्ठानके समय बाबामें जिन दिव्य शक्तियोंका विकास हुआ था, उनकी अभिव्यक्ति उनके जीवनमें बीच-बीचमें होती रहती । अपनी ओरसे तो वे चेष्टा यही करते कि वे प्रकाशमें न आयें । पर भक्तोंसे उनके सहज प्रेमके कारण उनका प्रकाश कभी-कभी ही ही जाता ।

एक बार उनके भक्त श्रीउमाशंकर अग्रवाल बरेली जाते समय उनसे आज्ञा लेने गये । उन्होंने जानेको मना किया । पर जरूरी कामको वजहसे उन्हें जाना पड़ा । उन्हें विदा करते समय बाबाने कहा—‘मङ्गल हो ।’ दूसरे दिन अखबारोंमें उस गाड़ीके लड़ जानेकी खबर छपी, जिससे वे गये थे । उस समय उनकी पुत्री कुसुमजी बरसानेमें ही थीं । उन्हें उनके विषयमें चिन्ता होने लगी । तब बाबाने कहा—‘चिन्ता न करो । उमाशंकरजीकी कोई हानि न होगी ।’ पीछे पता चला कि जिस डिब्बेमें वे बैठे थे, उसके आगे और पीछेके डिब्बोंके बहुतसे लोग मारे गये, पर उन्हें खरोंच भी नहीं आयी ।

कुसुमजीको भी एक बार बाबाने व्रजयात्रामें जानेको मना किया । फिर भी उन्होंने जानेकी सब तैयारी करली । जिस दिन वे जानेकी थीं, उसी दिन उन्हें अचानक साँसका ऐसा दौरा पड़ा कि वे न जा सकीं । उस यात्रामें भीषण वृष्टिके कारण लोगोंको बहुत कष्ट उठाना पड़ा और बहुतसे लोग बीमार भी पड़ गये । तब बाबाने कहा—‘देख, जाती तो कितना कष्ट पाती ।’

सन् १९६६ में जब बाबा बरसानेमें गवरी बाईकी धर्मशालामें रह

रहे थे, हीरालालजीने वहाँ एक भण्डारेका आयोजन किया। धर्मशालाके मैनेजर श्रीगौरी पण्डित उसका प्रबन्ध कर रहे थे। बाबाने उनसे कहा—‘भट्टीपर टीन और पंगतकी जगह शामियाने डलवा लेना।’ बैसाखका महीना था। उस समय वृष्टिकी कोई आशङ्का थी नहीं। इसलिए हीरालालजीने गौरी पण्डितको बाबाकी इस बातपर विशेष ध्यान न देनेको कहा। पर गौरी पण्डितसे बाबाकी आज्ञाकी अपहेलना न हो सकी। उन्होंने टीन और शामियाना डलवा दिया।

जब लड्डू बन चुके और पूरियाँ उतारी जा रही थीं, इतनी जोरकी वर्षा हुई कि यदि यह व्यवस्था न की गयी होती तो भट्टीपर काम करना असम्भव हो जाता और पंगत भी निर्धारित स्थानपर न हो सकती।

मधुराके श्रीचन्दन चौबे बहुत बड़े गायक थे। एक बार बाबा उनका लीला-गान सुन रहे थे। गान बड़ा मयुर था, बाबा उसे सुन भाव-मग्न हो रहे थे। उसी समय किसीने कहा—‘चौबेजीके कोई लड़का नहीं है।’ बिचारे दुःखी हैं।’ भावाविष्ट अवस्थामें बाबाके मुखसे निकला—‘लड़का होगा, होगा, होगा।’ तीन बार ‘होगा-होगा’ कहनेके परिणाम-स्वरूप उनके तीन लड़के हुए। चन्दन चौबे बाबाके भक्त हो गये। अन्त तक गान द्वारा उनकी सेवा करते रहे। उन्हींसे गान-विद्या सीखकर बाबा स्वयं अच्छे गायक बने।

सम्बत् २०३३ फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदाके दिन ६७ वर्ष व्रजवास करनेके पश्चात् ८१ वर्षकी अवस्थामें गोवर्धनकी तलहटीमें बाबाने नित्य-निकुञ्जमें प्रवेश किया। कुछ दिन पहलेसे वे अस्वस्थ थे। उस दिन प्रातः जब सेवक औषधि लेकर आया, उन्होंने कहा—‘औषधि नहीं लूँगा। आज मुझे जाना है।’

उसी समय वे उठकर बैठ गये। सेवकने मसनद लगादी। वे राधा नामका जप करते रहे। उनका कण्ठ तबतक चलता रहा, जबतक उनका श्वास चलता रहा।

बाबाके जीवनके तीन अभिन्न अङ्ग थे—धाममें वास, महाबाणीका पाठ और राधा-नामका जप। उन्होंने व्रजधामका एक दिनको भी पारेत्याग नहीं किया। एक बार निम्बार्क सम्प्रदायके एक सन्त श्रीदीनजीने उनसे कहा—‘मेरा मन प्रयागके कुम्भ मेलेमें जानेको बहुत कर रहा है। वैसे तो मैं धाम छोड़कर कहीं जाता नहीं। पर मैं समझता हूँ कि कुम्भके पावन

अवसरपर तीर्थराज प्रयागकी जानेमें कोई हर्ज नहीं। आपकी क्या राय है ?'

बाबाने उत्तर दिया—'ब्रजधाममें एक पल वास करनेका जो फल है वह हजार बार कुम्भके पर्वपर प्रयागराजमें वास करनेका भी नहीं है। मैं तो किसीको मरकर भी ब्रजसे बाहर जानेकी सलाह नहीं दूंगा।'

महावाणीका पाठ बाबा नित्य करते। जङ्गलमें रहते समय इतने ऊँचे स्वरसे पाठ करते कि दूर-दूरके लोग भी उसे सुन पाते।

राधा-नामका उनका जप तो सर्वदा स्वतः ही होता रहता। उसके कारण उनका कण्ठ सदा स्पन्दित रहता। उनके शरीर छोड़नेके कुछ दिन पूर्व भक्तश्रेष्ठ श्रीजगन्नाथदासजी भक्तमाली उनके दर्शन करने गये थे। उन्हें अस्वस्थ देख उन्होंने उन्हें हनुमानचालीसाका पाठ करनेका परामर्श दिया था। उत्तरमें उन्होंने कहा था—'भइया, मैं श्रीराधा-नामका जप करता हूँ। उसीमें सब कुछ मान लेता हूँ।' उन दिनों जो कोई उपदेशके लिए उनके पास जाता था उसे वे श्रीमद्भागवतका निम्न श्लोक पढ़कर सुनाते थे—

'संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्थोर्नाथः' प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।

लीलाकथारसनिवेद्यमन्तरेण पुंसो भवेद् विविधदुःखदुर्वादितस्य ॥

(जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार होना चाहते हैं, अथवा जो अनेकों प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिए पुरुषोत्तम भगवान्की लीला-कथा-रूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई नौका या साधन नहीं है। वे केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।)

शरीर छोड़नेके कुछ दिन पहले बाबाने यह भी कहा था—'पण्डित बाबाकी कृपासे ही मेरा ब्रज-धाममें वास हुआ है। उनके प्रथम दर्शन भुझे गोवर्धनमें हुए थे। इसलिए मेरा अन्तिम संस्कार गोवर्धनमें ही होना चाहिये।' गोवर्धनमें जिस स्थानपर उनका संस्कार हुआ, उसका भी उन्होंने पहले ही इंगित कर दिया था। उस स्थानपर उन्हें श्रीजीकी कोई विशेष कृपा हुई थी, जिसके फलस्वरूप वे कई दिन अप्रकृतिस्थ रहे थे।

पण्डित रामकृष्णदास बाबाकी प्रतिमूर्ति श्रीप्रियाशरण बाबाने उन्हींके पथका अनुसरण करते हुए न कोई आश्रम बनाया, न किसीको मन्त्र-शिष्य किया। अपने अनन्य भक्त बरसानेके श्रीबनवारीलाल ब्रजवासीकी सेवासे वे

बहुत प्रसन्न थे। उनके बारेमें कहा करते—‘यही मेरा एकमात्र शिष्य, सेवक और पुत्र है।’ उन्होंने ही उनकी पूर्व-आज्ञाके अनुसार उनका अन्तिम संस्कार किया।

श्रीजुगलदास बाबाजी

(पुराना मदनमोहन मन्दिर, वृन्दावन)

महन्त श्रीस्वरूपदास बाबाजी महाराजके पश्चात् श्रीजुगलदास बाबाजी वृन्दावनमें पुराने मदनमोहन-मन्दिरके महन्त हुए। उनका जन्म बिहारके गया जिलेमें हुआ था। पढ़े-लिखे वे बिलकुल नहीं थे। पर स्वभावके बहुत सरल और बड़े भजननिष्ठ थे। वैष्णव-सेवा उन्हें बहुत प्रिय थी। वैष्णवोंकी सेवा-पूजामें ही उनका सारा समय व्यतीत होता। प्रातः स्नानादिके पश्चात् वे अपने स्थानमें रहनेवाले सभी वैष्णवोंकी, यहाँ तक कि अपने शिष्योंतककी, कुटियाके सामने जाकर उन्हें दण्डवत् करते। कोई पूछता—‘आप अपने शिष्योंको क्यों दण्डवत् करते हैं? आपकी दण्डवत्से इन्हें अपराध नहीं लगेगा?’ तो उत्तर देते—‘मैं दण्डवत् इनके वैष्णव-स्वरूपको करता हूँ। नहीं करूँ तो ये सीखेंगे कैसे?’

वैष्णवोंके लिए उनके आश्रमका द्वार खुला रहता। जो जिस समय आ जाता, उसे ठहरनेके लिए स्थान और क्षुधा-निवृत्तिके लिए भोजन उपलब्ध रहता। बड़े-बड़े भण्डारे भी उनके स्थानपर अकसर होते रहते।

इस सबके लिए धन कहाँसे आता, कोई नहीं जानता। आश्रमकी कहींसे कोई निश्चित आमदनी तो थी नहीं। बाबाको जब जिस प्रकारकी वैष्णव-सेवा करनी होती, वे कर बैठते। दुकानदारोंका देना आगे-पीछे चुकाते रहते। दुकानदारोंको बाबाका पूरा विश्वास था। उन्हें उधार सामान देनेमें संकोच न करते। पर एक बार कर्ज ढाई हजार रुपयेतक पहुँच गया। बहुत दिन हो गये, इसे चुकाया न जा सका। बाबा कुछ चिन्तामें पड़ गये। फिर भी वैष्णव-सेवा पूर्ववत् चलती रही।

इसी समय एक दिन एक सज्जन बाबाके पास आये और बोले—‘बम्बईसे सेठ गोविन्ददास आये हैं। उनकी वैष्णव-सेवामें बहुत रुचि है।

उन्हें पता चला है कि आपके स्थानपर वैष्णव-सेवा नित्य होती रहती है, जिसके कारण आपपर कर्ज हो गया है। उन्होंने ढाई हजार रुपये भेजे हैं, जिससे आप कर्ज चुका सकें।'

इतना कह उसने रुपयोंकी थैली बाबाके सामने रख दी। बाबा कुछ देर विस्फारित नेत्रोंसे उसकी ओर देखते रहे। फिर पूछा—'सेठजी कहाँ हैं?'

'वे शृंगारवटके पास ठहरे हैं। सन्ध्या समय आपके दर्शन करेंगे।'

बाबाको दण्डवत्कर वह चला गया। बाबा सन्ध्या समय देर तक सेठजीकी प्रतीक्षा करते रहे। पर न सेठजी आये और न वह आदमी हो, जिसके हाथ उन्होंने रुपये भेजे थे। बाबाने शृंगारवट और उसके आस-पास-के स्थानोंमें बहुत खोज करवायी। पर उनका कहीं पता न चला।

सेठ गोविन्ददासकी अहेतुकी कृपाकी बाबा जब भी याद करते, तभी वे एक अनिर्वचनीय भाव-समाधिमें डूब जाते। प्रेमाश्रुओंसे उनका मुख और वक्ष भीग जाता।

एक दिन वृन्दावनके एक पुलिसवालेने देखा कि वृन्दावनसे छटीकरा जानेवाले भार्गपर एक गधेवाला पचास-साठ मन लकड़ी गधोंपर लादे कहीं चला जा रहा है। उसे सन्देह हुआ कि लकड़ियाँ चोरीकी हैं। उसने गधेवाले-से कहा—'थाने ले चल गधोंको।'

'अ्यों?' गधेवालेने तड़ककर कहा।

'लकड़ियाँ चोरीकी हैं, इसलिए।'

'लकड़ियाँ जुगलदास बाबाकी हैं। उन्होंने छटीकरासे भण्डारके लिए मँगायी हैं।'

'तू झूठ बोलता है। अच्छा, चल जुगलदास बाबाजीके पास।'

जुगलदास बाबाजीके पास गधेवालेको ले जाकर पुलिसवालेने पूछा—'बाबा यह लकड़ियाँ आपने मँगवायी हैं?'

बाबाके यहाँ सचमुच दूसरे दिन भण्डारा था। उन्होंने भण्डारके लिए सब सामग्री मँगा ली थी। पर लकड़ियाँ नहीं आ पायी थीं। टालवालेका उधार बहुत चढ़ गया था। उसने लकड़ियाँ देनेको मना कर दिया था। बाबा लकड़ियोंके लिए चिन्तित बैठे थे, जब पुलिसवालेने जाकर उनसे यह प्रश्न किया। उन्हें लगा कि कोई उनके कानमें उनसे कह रहा है—'कह दो हाँ,

मैंने मँगवायी हैं।' उन्होंने वही शब्द दोहरा दिये । गधेवालेकी ओर आँख फिराते हुए प्यारसे कहा—'डाल जा बेटा ।'

पुलिसवाला आश्वस्त हो चला गया । गधेवाला जब लकड़ियाँ डाल चुका, बाबाने कहा—'बेटा, पैसे दो-चार दिव बाद ले जाना ।'

गधेवालेने कहा—'बाबा पैसोंकी चिन्ता न करें । लकड़ियाँ चोरी की थीं । आपने पुलिससे मुझे बचा लिया । यह क्या लकड़ियोंके मूल्यसे कुछ कम है ?'

कुछ दूर जाकर गधेवाला गधों समेत अदृश्य हो गया । कौन था वह गधेवाला, जो बाबाके भण्डारेके लिए लकड़ियाँ चुराकर लाया और पैसे भी नहीं ले गया ? वह कोई भी हो सकता है, जिसे प्रभुने सन्तसेवी, सन्तगतप्राण अपने अनन्य भक्तकी चिन्ता दूर करनेके लिए यह प्रेरणा दी हो । पर यदि वे स्वयं प्रभु ही रहे हों, तो क्या यह कोई आश्चर्यकी बात है ? उन्होंने ही तो गीतामें कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां निश्चयमिष्टुष्वप्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(जो मेरे अनन्य भक्त निरन्तर मेरा स्मरण करते हुए सम्यक् रूपसे मेरी आराधना करते हैं, मैं उनके योग-क्षेमका भार स्वयं वहन करता हूँ, अर्थात् उन्हें अप्राप्य वस्तुकी प्राप्ति कराता हूँ और उनकी प्राप्त वस्तुकी रक्षा करता हूँ ।)

जगन्नाथपुरीके एक ब्राह्मण भक्तको इसमें शंका हो गयी थी । उनके मनमें भाव आया था कि प्रभु स्वयं क्यों किसीके योग-क्षेमका भार वहन करेंगे ? वे किसीको भी प्रेरणा देकर उसके अभावकी पूर्ति करा सकते हैं । उन्होंने उक्त श्लोकके 'वहाम्यहम्' शब्दको कलमसे काटकर 'करोम्यहम्' लिख दिया था । एक दिन दिनभर वृष्टि होते रहनेके कारण, वे भिक्षाको न जा सके थे और उन्हें तथा उनके परिवारको भूखा रहना पड़ा था । सन्ध्या समय जब वे भिक्षाको गये थे, श्रीकृष्ण स्वयं बालक रूपमें ब्राह्मणीके पास प्रसादका थाल लेकर आये थे । उनके माथेपर कलमसे काटे जानेका निशान था और उसमें-से रक्त वह रहा था । ब्राह्मणीके पूछनेपर उन्होंने कहा था—'भुक्षे ब्राह्मण देवताने मारा है ।' उन्हें पण्डितजीका अपने अभिन्न अंग गीतापर

कलम फेरना शूलकी तरह चुभा था और उन्होंने स्वयं उनके लिए प्रसादका थाल ले जाकर उन्हें विश्वास दिलाया था कि 'ब्रह्महृद्' शब्द ही ठीक है ।

श्रीजुगलदास बाबाजी निरन्तर वैष्णव सेवामें रत रहते । पर स्वयं आवश्यकता होनेपर भी किसी वैष्णवकी सेवा ग्रहण न करते । सम्बन् १३३८, ज्येष्ठ मासमें लगभग ३० वर्षकी आयुमें एक दिन अकस्मात् वे नित्य-लीलामें प्रवेश कर गये । उन्होंने उस समय भी किसीकी सेवा ग्रहण नहीं की ।

श्रीअवधदास बाबाजी

(वृन्दावन)

बिहार प्रान्तके अन्तर्गत मिथिलापुरीमें श्रीहरिकिर योगीन्द्रवर्य नामके एक माधव-गौड़ेश्वर सम्प्रदायके सन्त रहते थे । श्रीमद्भागवतमें उनकी अनन्य निष्ठा थी । संमस्तीपुर जिलेके सेमरियाघाटपर गंगा-किनारे श्रीमद्भागवतका पाठ करते हुए उन्होंने स्वेच्छापूर्वक शरीर छोड़ा था । शरीर छोड़नेके कुछ दिन पूर्व उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा था—'मुझे कार्तिक मासकी अमुक तिथिकी सेमरियाघाटपर शरीर छोड़ना है ।' उस तिथिकी वे शिष्यों सहित वहाँ चले गये थे और गंगाके तटपर बैठकर श्रीमद्भागवतका पाठ आरम्भ कर दिया था । रासपञ्चाध्यायीका पाठ आरम्भ होते ही 'हा, प्राणनाथ !' कह वे अपना पार्थिव शरीर छोड़ सिद्ध देहसे रासलीलामें प्रवेश कर गये थे ।

प्रयाणके लिए सेमरिया घाटकी यात्रा करनेके पूर्व उन्होंने अपने दो प्रधान शिष्य श्रीजमुनादास और श्रीअवधदासको निकट बुलाकर कुछ आदेश दिया था । जमुनादाससे कहा था—'तुम देश-विदेश जाकर वैष्णव-धर्मका प्रचार करना ।' अवधदामसे कहा था—'तुम श्रीधाम वृन्दावन जाकर भजन करना ।'

बाबा अवधदासजीका जन्म सन् १८२६के लगभग एक मैथिल-ब्राह्मण परिवारमें बिहार प्रान्तके भागलपुर जिलेमें मन्दार-मधुसूदन (वौमी) नामक ग्राममें हुआ था, जिसे कलिपावनावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने गयायात्राके समय अपनी चरणरजसे पवित्र किया था । दस-बारह वर्षकी अल्पायुमें ही

वे परमार्थपथके पथिक बन घरसे बाहर निकल पड़े थे । विभिन्न तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए जब वे मिथिलापुरी पहुँचे तो उन्हें श्रीहरिकिकर योगीन्द्रवर्य-का साक्षात्कार हुआ । उनसे दीक्षा ग्रहणकर वे उनकी सेवामें उनके आश्रममें रहकर भजन-साधन करने लगे । श्रीहरिकिकरजी परम भागवत होनेके साथ-साथ उच्चकोटिके विद्वान भी थे । विद्याके ऐतिहासिक केन्द्र मिथिलापुरीके विद्वानोंके वे मुकुटमणि थे । उनसे उन्होंने विभिन्न शास्त्रोंका, विशेषरूपसे श्रीमद्भागवतका गंभीर अध्ययन किया । गुरुदेवकी कृपासे सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत उन्हें कण्ठ हो गयी और उसके वे एक अच्छे मर्मज्ञ बन गये ।

श्रीगुरुदेवके प्रयाणके पश्चात् लगभग ४० वर्षकी अवस्थामें वे उनके आदेशानुसार श्रीधाम वृन्दावन चले गये । वहाँ धोबी गलीमें एक स्थानपर रहकर भजन करने लगे । उनका भजन-साधन जो भी था, श्रीमद्भागवतसे सम्बन्धित था । वे श्रीमद्भागवतकी षोडशोपचारसे उसी प्रकार पूजा करते, जिस प्रकार किसी श्रीविग्रहकी की जाती है । श्रीमद्भागवतको एक सुन्दर रेशमी बस्त्रसे लपेटकर सिंहासनपर विराजमान करते । धूप दीप-नैवेद्यादिसे उसको सेवा करते । गर्मीमें उसे पंखा झलते, सर्दीमें रजाई उढ़ाते, श्रावणमें झूला झुलाते । श्रीमद्भागवतका ही भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करते ।

वे अपने आश्रमसे बाहर केवल सालमें दो बार जाते—एक बार श्रीमन्मध्वाचार्यके महोत्सवपर और एक बार अपने गुरुदेवके महोत्सवपर, जब वे नगर-कीर्तनमें सम्मिलित होते । सब समय आश्रममें श्रीमद्भागवतकी सेवा-पूजा-पाठादिमें लगे रहते । सोते भी केवल दो-तीन घण्टे ही । उनका सारा जीवन भागवतमय था । वे कहा करते कि भागवतका एक-एक श्लोक मन्त्र है, जिससे मनुष्य जो चाहे प्राप्त कर सकता है, भगवन्-साक्षात्कार तक कर सकता है ।

उनके पास जब भी कोई आता, वे प्रायः श्रीमद्भागवतका पाठ करते होते । यदि थोड़ी देरको श्रीमद्भागवतको विश्राम दिया होता, तो भी उस समय वे श्रीमद्भागवतकी ही बात करने लगते । उसीकी कोई कथा सुनाने लगते और सुनाते-सुनाते भावमें बह जाते । आगन्तुकको और कोई बात कहने-सुनानेका अवसर ही न मिलता । वह स्वयं भी उस भाव-गंगामें बह जाता ।

एक बार उनके पास श्रीमती आनन्दीबाई आयी हुई थीं । उसी समय

बाबा हंसदासजी और बिहारीजीके मन्दिरके सेवाइत श्रीमदनमोहन गोस्वामी आ गये । भागवत-चर्चा चल पड़ी । उसमें सबके सब इतना बिभोर हो गये कि किसीको भी समयका ज्ञान न रहा । लगातार अपराह्न ३ बजेसे रात्रि ८ बजे तक कथा-वार्ता चलती रही । मदनमोहन गोस्वामीकी ही उस समय बिहारीजीकी सेवा थी । मन्दिरकी चाबियाँ उनके पास थीं । सन्ध्या-आरतीका समय बीत चुका था । मन्दिरका दरवाजा अभी भी नहीं खुला था । दर्शनार्थियोंकी बहुत देरसे भीड़ लगी थी । गोस्वामीजीकी खोजके लिए लोग निकल पड़े थे । पर उनका कहीं पता न चला था । आनन्दीबाई और बाबा हंसदासजीके स्थानपर भी लोग गये थे । उन दोनोंको भी बहुत देरसे कहीं गये हुए जानकर उन्होंने अन्तमें अनुमान लगाया था कि सम्भवतः सबके साथ अवधदास बाबाके यहाँ भागवत-रस-समुद्रमें अवगाहन करते-करते लम्बी दुश्की लगा गये हैं । उन्होंने अवधदास बाबाके आश्रमके बाहर जाकर उच्च स्वरसे 'राधे, राधे'की आवाज लगायी ।

तभी मदनमोहन गोस्वामीकी बाह्य चेतना जागी और वे चमककर 'अरे सर्वनाश !' कहते हुए मन्दिरकी ओर भाग पड़े ।

बाबा अपने आश्रममें मित्य सन्ध्या-समय श्रीमद्भागवतकी कथा कहा करते । एक बार कथामें किसी प्रसंगमें उन्होंने कहा—'भगवत्-प्रसाद अनन्त होता है ।' इस सम्बन्धमें उनके आश्रममें एक घटना घटी, जिसका वृत्तान्त सुनिये उसके प्रत्यक्षदृष्टा उन्हींके एक शिष्य श्रीगोपालकृष्ण श्रीवास्तव बिहारके अवकाश प्राप्त सुपरिन्टेन्डिंग इंजीनियरसे :

'सन् १९३५ में जब मेरी आयु १५ वर्ष की थी, मैं पिताजीके साथ श्रीधाम कुन्दावन गया । हम लोग परम साध्वी श्रीमती आनन्दीबाईके आश्रममें ठहरे । उनकी हमपर बड़ी कृपा रहती थी । उन्होंने एक दिन पिताजीसे कहा—'गोपालकृष्णको श्रीअवधदास बाबासे दीक्षा दिलवा दो ।' उनकी आज्ञाके अनुसार उन्होंने बाबासे मुझे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की । मेरी दीक्षा हो गयी । उसके उपलक्ष्यमें पिताजीने बाबाके आश्रममें एक छोटा-सा उत्सव किया । दस-बारह वैष्णवोंके प्रसादकी व्यवस्था की । उत्सवके एक-दो दिन पूर्व बाबाके पास जो भी आया उसे उन्होंने उस दिन आश्रममें प्रसादके लिए आमन्त्रित कर दिया । जानबूझकर हो या भूलसे, लगभग १०० व्यक्तियोंको निमन्त्रण दे दिया । पिताजीको इसका कुछ पता नहीं । उत्सवके दिन आश्रममें

इतने लोगोंकी भीड़ देख पिताजी घबराये । सोचने लगे—क्या करें जिससे आश्रमकी बदनामी न हो । उधर श्रीमद्भागवतका भोग लग गया । बाबाने आमन्त्रित व्यक्तियोंको भोजनके लिए बैठाना शुरू किया । पत्तलें भी उनके सामने रखी जाने लगीं । यह देख पिताजी भागकर बाबाके पास गये । कानमें उनसे कहना चाहा—‘प्रसाद बहुत थोड़ा है, इसलिए पत्तलें न बिछाकर दोनोंमें सबको थोड़ा-थोड़ा वितरण कर दें ।’ पर बाबाको कुछ भी सुननेकी फुरसत कहाँ ? उन्होंने पिताजीको भी हाथ पकड़कर पंगतमें बैठा दिया । वैष्णवोचित रीतिसे गुरु-गोविन्द और महाप्रसादकी जय-जयकारके पश्चात् लोगोंने प्रसाद पाना आरम्भ किया । पिताजीका हाथ लेकिन बहुत धीरे-धीरे चला । वे कम-से-कम खानेकी कोशिश कर रहे थे । उन्हें चिंता भी कि अभी पाँच ही मिनटमें सब भण्डाफोड़ हो जायगा । उन्हें उस दिनकी बात बार-बार याद आ रही थी, जब बाबाने कहा था—‘भगवत्-प्रसाद अनन्त होता है ।’ उसके सहारे वे अपनी चिंता कुछ कम करनेकी भरसक चेष्टा कर रहे थे । चिन्ता कम हुई होती यदि बाबाके वाक्योंपर उनका विश्वास होता ।

पर आश्चर्य ! भण्डाफोड़की घड़ी आयी ही नहीं । सभी लोगोंने भरपेट प्रसाद पा लिया और थोड़ा बच भी रहा ! भूखे रहे केवल पिताजी, जो डरके मारे थोड़ा-थोड़ा खा रहे थे । उन्हें पीछेकी एक छोटी पंगतमें फिरसे बैठना पड़ा । इस बार महाप्रसादकी जय-जयकारमें उन्हींका स्वर सबसे ऊँचा था ।

एक बार एक युवक भक्त इलाहाबादसे श्रीधाम-द्वन्दावन आये । उन्होंने सुना था कि सन्तोंका उच्छिष्ट ग्रहण करनेसे श्रीराधामाधवके दर्शन होते हैं । वे श्रीराधा-माधवके विशेष कृपापात्र किसी सन्तकी खोज करने लगे । किसीने बताया कि श्रीअवधदास बाबाजी महाराज राधा-माधवके विशेष कृपापात्र हैं । वे उनके आश्रमपर गये । बाबा उस समय प्रसाद पा रहे थे । सेवकने उनके पास जानेको मना किया । फिर भी वे उनके पास जा बैठे । हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की अपनी थालीमें-से एक कणिका प्रसाद देनेकी । बाबा प्रसाद ग्रहण करते हुए भी श्रीकृष्णकी किसी लीलाके चिन्तन या दर्शनमें निमग्न थे । पता नहीं कि युवककी बात उन्होंने सुनी या नहीं । उसने जाना कि उन्होंने उसकी प्रार्थना सुनकर भी अनसुनी कर दी है । उसने हाथ बढ़ाकर उनकी थालीमें-से एक मुट्ठी प्रसाद लेकर जैसे ही अपने मुखमें

डालना चाहा, बाबाने उसका हाथ पकड़ लिया। युवकने उनके हाथमें मुँहसे काटकर हाथ छुड़ाना चाहा। बाबाने अपने दूसरे हाथसे उसका मुँह हटाना चाहा। उसी समय उसने मुट्ठी खोल अपने दूसरे हाथमें प्रसाद ले मुँहमें डाल लिया।

प्रसाद मुखमें डालते ही वह अचेतन हो पृथ्वीपर लोट गया। सन्ध्या-भागवत-कथा समाप्त होनेतक भी उसे चेतना न हुई। बाबाकी आज्ञासे कथा सुनने आये महात्माओंने उसे धेरकर नाम-कीर्तन आरम्भ किया। तब उसने आँखें खोलीं। कुछ देर भौंचक्का-सा इधर-उधर देखता रहा। प्रकृतिस्थ होनेपर बाबाके चरण पकड़कर रोते-रोते उसने कहा—‘मुझे क्षमा कीजिये महाराज। मैंने आपके चरणोंमें बड़ा अपराध किया है। पर मैंने अब आपके स्वरूपको जान लिया। मैं आपके चरणोंको छोड़ कहीं नहीं जाऊँगा। आपको मुझे अपनी शरणमें लेना होगा। मैं जबतक जीवित रहूँगा आपकी सेवाकर जीवन सफल करूँगा। दया कीजिये, दया कीजिये गुरुदेव।’

दयामय बाबाने उसे क्षमा ही नहीं किया, उसे दीक्षा देकर उसके जन्म-जन्मान्तरका भार अपने ऊपर ले लिया। एक महात्माके पूछनेपर कि उसने बाबाके स्वरूपके विषयमें क्या जाना, उसने उत्तर दिया—‘बाबाका उच्छिष्ट मुखमें देते ही मुझे एक दिव्य स्थानके दर्शन हुए। मैंने देखा कि वहाँ एक वनप्रान्तमें बाबाके साथ ब्रजेन्द्रनन्दनकी मध्याह्न-भोजन-लीला चल रही है। बाबा और ब्रजेन्द्रनन्दन बीचमें बैठे हैं और सखागण चारों ओर उन्हें घेरकर बैठे हैं। हास-परिहासके उन्मुक्त वातावरणसे श्यामसुन्दर और बाबा भोजन करते-करते एक-दूसरेको अपने हाथसे अपना उच्छिष्ट खिला रहे हैं।’

एक बंगाली सज्जन बाबासे दीक्षा और वेश ग्रहणकर उनके आश्रममें रहने लगे। वे स्वभावके चंचल थे, बहुत दिन तक उनका मन वहाँ न लगा। उन्होंने बाबासे भ्रमण करनेकी आज्ञा माँगी। बाबाने निषेध किया। फिर भी एक दिन वे अपना बोरिया-बिस्तर बाँध कहीं जानेकी तैयारी करने लगे। बाबाने पूछा—‘कहाँ जा रहे हो?’

उन्होंने कहा—‘कहीं नहीं। थोड़ा घूम-फिरकर आ जाऊँगा।’

बाबाने उन्हें सावधान करते हुए कहा—‘गुरु-आज्ञाकी अवहेलनाकर बन्दरकी तरह इधर-उधर डोलनेसे कुछ न होगा?’

‘गुरु-आज्ञाका इतने दिन पालन किया। अब क्या सब दिन गुरु-आज्ञा-का ही पालन करता रहूँगा?’ कहते हुए वे आश्रमसे बाहर निकल गये।

बहुत दिन बीत गये, उनका कोई संवाद न मिला। बाबाको चिन्ता रहने लगी। एक दिन जब वे आश्रमके प्रांगणमें टहलते हुए नाम-जप कर रहे थे, एक बन्दरके बच्चेने आकर उनके चरण पकड़ लिये। वे समझ गये कि यह उनका वही शिष्य है, जो उनके सावधान करनेपर भी उनकी अवज्ञाकर आश्रमसे चला गया था। उसकी मृत्यु हो गयी थी और गुरु-आज्ञाकी अवहेलनाके फलस्वरूप उसे बन्दरकी योनि प्राप्त हुई थी। पर भक्तिके प्रभावसे उसे पूर्व जन्ममें किये अपने अपराधकी याद थी। उसे इसका पश्चात्ताप था और वह क्षमा-प्रार्थना करने बाबाके पास आया था। उसे देख परम दयालु बाबाने कहा—‘अच्छा किया तुम आ गये। अब कहीं न जाना। आश्रमके आस-पास रहकर प्रसाद दोनों समय यहाँसे ले लिया करना।’ उसी समय उन्होंने उसके गलेमें कण्ठी बांध दी और आश्रम-बासियोंको उसका ध्यान रखनेको कह दिया।

बन्दर आश्रमकी छतपर और उसके आस-पास रहने लगा। प्रसादके समय वह आँगनमें आकर प्रसाद पा जाता। सन्ध्या समय जब बाबा श्रीमद्भागवतकी कथा कहते, तो नीचे उतरकर जंगलेके पास बैठ जाता और बड़े ध्यानसे कथा सुना करता।

बाबाने उसका नाम रखा ‘रामदास’। एक दिन वे अपने शिष्योंसे बोले—‘दो दिनसे रामदास नहीं दीखा। तुम लोगोंने भी उसकी खबर नहीं ली।’ उसी समय एक शिष्यने छतपर देखा कि वह वहाँ मरा पड़ा है।

बाबाको जब इसकी सूचना दी, तो उन्होंने कहा—‘रामदास परम वैष्णव था। उसका उसी रीतिसे विधिवत् संस्कार हो जाना चाहिये।’

तदनुसार रामदासको बड़ी धूम-धामसे विमानपर लिटाकर कीर्तनके साथ यमुना-तटपर ले जाया गया। वहाँ उसे यमुनाजीको समर्पण कर दिया गया। इसके पश्चात् उसके निमित्त एक भण्डारेकी व्यवस्था की गयी। वैष्णवोंने महाप्रसाद ग्रहण किया।

श्रीअवधदास बाबाको एक बार श्रीराधा-माधवके बड़े अनोखे ढंगसे दर्शन हुए। उन्होंने उन्हें उस श्रीमद्भागवतकी परिक्रमा करते देखा, जिसका

वे नित्य पाठ किया करते थे । यह बात उन्होंने एक दिन, भक्तश्रेष्ठ वयोवृद्ध श्रीजगन्नाथदास भक्तमालीजीसे कही थी, जो आज भी वृन्दावनकी एक विशिष्ट विभूतिके रूपमें विराजमान हैं और श्रीअवधदास बाबाकी भक्तिकी महिमाका गान करते नहीं अघाते ।

श्रीमद्भागवत श्रीकृष्णका ही दूसरा स्वरूप है, यह सर्वविदित है । पर श्रीकृष्ण अपने ही स्वरूपकी परिक्रमा करें, यह बात कुछ समझमें नहीं आती । परिक्रमा आराध्य वस्तुकी की जाती है आराध्यक द्वारा । श्रीमद्भागवत-में ऐसी कौन सी विशेषता है जिसके कारण श्रीकृष्णने उसे अपना आराध्य मानकर उसकी परिक्रमा की ?

वात यह है कि श्रीमद्भागवत केवल श्रीकृष्णका स्वरूप ही नहीं, प्रेमका स्वरूप भी है । प्रेम भक्तका ही नहीं, भगवानका भी आराध्य है । भगवान प्रेम-स्वरूप होते हुए भी सदा प्रेमके भूखे हैं । इसलिए वे अपने प्रेमी-भक्तोंके सदा अधीन हैं । उन्होंने 'अहं भक्त पराधीनः' कहकर स्वयं इस पराधीनताको स्वीकार किया है । उन्हें जो सुख अपने भक्तोंकी प्रेम-सेवासे मिलता है, वह उनके स्वरूपानन्दसे भी कहीं श्रेष्ठ है । श्रीमद्भागवतमें भक्तोंके साथ उनकी प्रेममयी लीलाओंका वर्णन है । इसलिए उनका श्रीमद्भागवत-स्वरूप उनके अपने स्वरूपसे भी श्रेष्ठ है; इसीलिए श्रीमद्भागवतकी कथा सुननेको वे स्वयं सदा लालाधित रहते हैं । उन्होंने कहा है—'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद—मेरे भक्त जहाँ मेरी लीला, कथाओंका गान करते हैं, मैं वहाँ जा जमकर बैठ जाता हूँ ।' गोपालचम्पू ग्रन्थमें श्रीजीव गोस्वामीने उन्हें मधुकण्ठ और स्निग्धकण्ठसे स्वयं अपनी लीला-कथाओंको बड़े चावसे सुनते दिखाया है । उस दिन भी सदाकी तरह वे श्रीअवधदास बाबाकी भागवत-कथामें श्रोतारूपमें अवश्य उपस्थित रहे होंगे और श्रद्धालु श्रोताओंके समान कथाके पश्चात् श्रीमद्भागवतकी परिक्रमा करनेको विवश हुए होंगे । बाबाको इस रूपमें अपने दर्शन दिये होंगे भेंटके रूपमें । उन्हें देनेको उनके पास और था ही क्या, जिसे प्राप्तकर बाबा प्रसन्न होते ?

बाबाकी आयु ११० वर्षकी हो गयी, तो भी उनका श्रीमद्भागवतका पाठ और पूजन विधिवत् चलता रहा । पाठ करते समय वे अकसर बिना देखे ही श्रीमद्भागवतके पन्ने यथाक्रम उलटते जाते और उनके श्लोकोंका उच्चारण करते जाते, क्योंकि उन्हें श्रीमद्भागवतके सारे श्लोक कण्ठ ही

नहीं थे, उन्हें यह भी ज्ञान था कि कौन-कौनसे श्लोक किस पत्रमें हैं।

सन् १८३७ में बाबा बीमार पड़े। शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया। बिना किसीके सहारे उठना-बैठना भी सम्भव न रहा। लोग उन्हें शीचादिके लिए गोदीमें उठाकर ले जाने लगे। फाल्गुन मासके कृष्ण-पक्षकी द्वितीयाको उनका शरीर बिल्कुल ही निश्चेष्ट और निस्पन्द-सा हो गया। सेवकोंने अन्त समय निकट जान कीर्तन आरम्भ किया। जैसे ही उनके कानमें कीर्तनके प्रथम शब्द 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द'की ध्वनि पड़ी, वे यकायक नृत्य करनेकी मुद्रामें उठकर खड़े हो गये। सेवकोंने आतंकित हो कीर्तन बन्द कर दिया और उन्हें सावधानीसे पकड़कर लिटा दिया। थोड़ी देरमें अवस्था और बिगड़ती देख उन्हें, उनके पूर्व आदेशानुसार शान्गुदड़ीकी रज भूमिपर बिछाकर उसपर लिटा दिया। उस समय भी उनके ओष्ठ हिल रहे थे और अति मन्द स्वरमें श्रीमद्भागवतके श्लोक पढ़ते सुनायी पड़ रहे थे। दूसरे दिन प्रातः ३ बजे उसी प्रकार श्रीमद्भागवत-के श्लोक पढ़ते-पढ़ते उन्होंने नित्य लीलाओंमें प्रवेश किया।



स्वामी श्रीकृष्णानन्ददासजी

(हिंदोल)

स्वामी कृष्णानन्दजीके पूर्वश्रमका नाम था श्रीकर्मचन्द। उनका जन्म सन् १८८३ में पंजाबके जालंधर जिलेके अन्तर्गत बुण्डाला नामक उपनगरमें उच्च गौड़-ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। पिताका नाम था श्रीभोलाराम, माँका श्रीमती रली। दोनों बड़े सदाचारी और धर्मात्मा व्यक्ति थे। गीता और रामायणके पाठ और साधु-महात्माओंके संगमें ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था।

माता-पिताके धार्मिक संस्कारोंका प्रभाव बालक कर्मचन्दपर पड़ना स्वाभाविक था। वह ध्रुव-प्रह्लादादिके चरित्रोंको बड़े चावसे सुनता और उनका मनन करता। हिन्दी और संस्कृत पढ़नेमें उसकी स्वाभाविक रुचि थी। पर पंजाबमें उर्दूका प्रचार अधिक था। माता-पिताने उसे उर्दू मिडिल रास कराकर बड़े भाई श्रीदोलतरामजीके पास अंग्रेजी पढ़नेके लिए कालका भेज दिया।

कर्मचन्दकी उम्र उस समय चौदह वर्ष की थी। उसने अपने जीवनका लक्ष्य पहले ही स्थिर कर लिया था। उसे ध्रुव-प्रह्लादकी तरह साधनामय जीवन व्यतीतकर भगवत्-साक्षात्कार लाभ करना था। अंग्रेजीकी शिक्षाका उस लक्ष्यसे कोई सम्बन्ध था नहीं। उसे संस्कृत पढ़कर शास्त्राध्ययन द्वारा अपने भगवत्-प्राप्तिके मार्गको प्रशस्त करना था। पर माता-पिता उसके सत्कारोसे प्रसन्न होते हुए भी उसे एक सुशिक्षित, सुसम्पन्न उच्च पदाधिकारीके रूपमें देखना चाहते थे। इसलिए उसे अंग्रेजी पढ़ाना आवश्यक समझते थे।

कर्मचन्द इस समय अपने जीवन पथके एक महत्वपूर्ण चौराहेपर खड़ा था। उसे निर्णय करना था, वहाँसे उसे किधर जाना है। निर्णय करते उस देर न लगी। उसने सोचा कि माता-पिता और बड़े भाईके अधीन रहकर अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेमें उसे बड़ी मुश्किलोंका सामना करना पड़ेगा। इसलिए उसने संसार त्यागकर एक स्वतन्त्र पथका पथिक बननेका निश्चय कर लिया।

आज कर्मचन्द घरसे भागकर काशी चला आया है। विश्वनाथके दर्शनकर गंगाके तटपर चिन्तित बैठा है और विश्वनाथ बाबासे मन-ही-मन कुछ प्रार्थना कर रहा है। उसके गौरवर्ण और तेजपुञ्ज कलेवरपर काशीके एक बड़े मठाधीशकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने निकट जाकर पूछा—'वत्स, तुम कहाँसे आये हो? कैसे चिन्तामें बैठे हो?'

कर्मचन्दने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। साथ ही विद्याध्ययन और सन्यास-ग्रहण करनेका अपना निश्चय प्रकट किया। मठाधिपति ऐसे ही एव नवयुवककी खोजमें थे। उन्होंने उसके अध्ययनादिकी समुचित व्यवस्था का देनेका वचन दिया और उसे अपने साथ मठमें ले गये।

दस वर्ष तक कर्मचन्दने उस मठमें रहकर संस्कृत व्याकरण, न्याय, मोमांसा और शांकर-वेदान्तका अध्ययन किया। इसी बीच सन्यास-दीक्षा भी ग्रहण की। नाम हुआ श्रीकृष्णानन्द। स्वामी कृष्णानन्दजीको मठाधिपति मठका सारा भार सौंप देनेका पहले ही निश्चय कर लिया था। उन्हें गद्दीपर बैठा देनेके लिए वे एक शुभ तिथिकी प्रतीक्षा करने लगे।

स्वामी कृष्णानन्दजी अब अपने जीवनके एक और चौराहेपर आ ख हुए थे। उन्हें निश्चय करना था कि उन्हें मठाधीशका वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करना है, हाथी घोड़े, नौकर-चाकर, सोने-चाँदीके छत्र-सिंहासन और

विलासिताकी अन्य सामग्रीका उपभोग करना है, या विरक्त संन्यासीके कटकाकीर्ण पथका अवलम्बन करना है। मठाधीशका वैभव उन्हें अपने निर्दिष्ट पथसे विचलित करनेमें असमर्थ था। पर वे एक धर्मसंकटमें पड़ गये थे। जिस मठाधिपतिने उनके लिए इतना कुछ किया था उन्हें अपना भार सौंप देनेके उद्देश्यसे, उसकी सारी आशाओंपर वे सहसा पानी कैसे फेर देते? एक दिन यही सब सोचते-सोचते उन्हें झपकी लग गयी। अर्धनिद्रित अवस्थामें उन्होंने देखा कि एक सुन्दर गौरवर्ण बालक उनसे कह रहा है—‘यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो इस स्थानको छोड़कर चले जाओ।’

दूसरे दिन प्रातः वे दण्ड-कमण्डलु और ‘खण्डनखाद्य’ नामक ग्रन्थ लेकर मठसे निकल पड़े। गंगा-स्नानकर श्रीविश्वनाथजीके दर्शन किये और गंगाके किनारे-किनारे पश्चिमकी ओर चल दिये। ढाई साल तक गंगा-भ्रमण करते रहे। दिनमें एक बार किसी गाँवसे भिक्षा कर लेते। यदि गाँव मार्गमें न पड़ता तो गङ्गाजल पीकर ही रह जाते। अधिकतर मीन धारणकर रहते। आवश्यकतानुसार किसीसे थोड़ा बहुत आलाप करते।

इस बीच उन्होंने यथासम्भव साधुसंग भी किया और जिसने जो बताया उसके अनुसार ध्यान-प्राणायामादिकर शान्ति लाभ करनेकी चेष्टा की। पर उन्हें वास्तविक शान्ति न मिली। अन्त में चलते-चलते वे अनूपशहर पहुँचे, जहाँ गङ्गा-किनारे नावमें श्रीअच्युत मुनि रहते थे। वे एक विद्वान और अनुभवी महात्मा थे। उनके दर्शन और उपदेशसे उन्हें कुछ शान्ति मिली। उन्होंने उन्हें भावुक और रसिक जान ब्रजमें रहकर भजन-करनका उपदेश किया।

कृष्णानन्दजी वृन्दावन पहुँच गये। वहाँ रासबिहारीकी रासलीला देख काएक उनका कायापलट हो गया। उनका ब्रह्मज्ञान वैसे ही विलीन हो गया, जैसे सूर्यके प्रकाशमें दीपका प्रकाश विलीन हो जाता है। रासनृत्यमें रास-बिहारीकी थिरकनेके साथ उनके प्राण भी थिरकने लगे। उनका हृदय ससे परिपूर्ण हो गया। वे समझ गये कि जिस शान्तिकी वे इतने दिनोंसे ढोजमें थे वह उन्हें रासबिहारीके चरणतलमें ही मिल सकती है, अन्यत्र नहीं नहीं।

रासलीला देखकर उनकी इच्छा हुई श्रीमद्भागवतका अध्ययन करने-की। वे दिनभर रास देखते और श्रीमद्भागवतका अध्ययन करते। जहाँ-

कहीं रास होता वहीं पहुँच जाते। रासमें बराबर खड़े रहकर ठाकुरजीको पंखा झलते या चमर डुलाते। रास-लीलाका चिंतन करते-करते रातमें जहाँ स्थान मिलता सो जाते।

उस समय व्रजमें बहुत-से मजनानन्दी और सिद्ध गौड़ीय महात्मा रहते थे, जिनमें पण्डित रामकृष्णदास बाबाजी महाराज मुख्य थे। कृष्णानन्दजीने उनका संग किया। उनके संगसे उनमें परम करुण, पतित-पावन श्रीगौरांग महाप्रभुकी भक्तिका उन्मेष हुआ। बँगला भाषा सीखकर वे श्रीचैतन्य-चरितामृत और श्रीचैतन्य-भागवतादि ग्रन्थोंका पाठ करने लगे। दिन-पर-दिन श्रीगौरांग महाप्रभुमें उनकी निष्ठा-भक्ति बढ़ती गयी। उन्होंने किसी गौड़ीय महात्मामे दीक्षा लेकर महाप्रभुके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेका निश्चय कर लिया।

कुछ दिन बाद वे किबाड़िवनमें एक कुटियामें रहकर भजन करने लगे। उस समय श्रीमाधवदास बाबाजी भी किबाड़िवनमें रहते थे। जैसा हम पहले वर्णन कर आये हैं श्रीमाधवदास बाबाजी एक सिद्धकोटिके वैष्णव सन्त थे। उन्हींकी कृपासे कृष्णानन्दजीको वैष्णव गुरुकी प्राप्ति हुई। उन्होंने माध्वगौड़ीय सम्प्रदायमें दीक्षा ग्रहण करनेके लिए उन्हें उत्कण्ठित देखकर कहा—‘तुम्हारे जैसे विद्वान और तेजस्वी पुरुषके लिए योग्य गुरु हैं १०८ श्रीप्राणगोपाल गोस्वामी प्रभुपाद। वे नित्यानन्द प्रभुके वंशज और माध्वगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके मुख्य स्तम्भ हैं। कुछ दिन उनके वृन्दावन आनेकी प्रतीक्षा करो। मैं उन्हींसे तुम्हें दीक्षा दिलवाऊँगा।’

कृष्णानन्दजी श्रीप्राणगोपाल प्रभुपादके वृन्दावन आगमनकी उत्कण्ठ महित प्रतीक्षा करने लगे। कुछ ही दिनों बाद प्रभुपादका शुभागमन हुआ। उनके शुभागमनके साथ ही उनकी अमृतमयी कथाका शुभारम्भ हुआ। कथा सुनकर कृष्णानन्दजी इतना प्रभावित हुए कि मन-ही-मन उन्हें गुरु रूपसे वरण किये बिना न रह सके। पीछे एक शुभ दिन, शुभ महर्तमें उनसे दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा ग्रहणकर वे व्रजके हिंडोल ग्राममें रहकर भजन करने लगे। ग्राम माँट तहसीलमें नन्दघाटसे दो मील दूर एक सुन्दर ग्राम है। इसमें उनमें कुछ प्राचीन खण्डहर और जंगल हैं। यहीं एक ऊँचे स्थानपर, जहाँ

नन्दघाटके दर्शन होते हैं, गाँववालोंने अपने हाथसे एक कुटियाका निर्माण किया। कृष्णानन्द बाबा उमीमें रहने लगे। बीच-बीचमें व्रजके अन्य स्थानोंपर चले जाते या व्रजमें भ्रमण करते। पर घूम-फिरकर वहीं आ जाते।

कुछ दिन भजन करते हो गये, तो उन्हें एक बड़ी समस्याका सामना करना पड़ा। गुरुदेवने उन्हें मधुर-भावकी उपामनाका उपदेश किया था। पर उनका हृदय उसे नहीं स्वीकार करता जान पड़ रहा था। उनकी स्वाभाविक रुचि सख्य-भावकी उपासनामें थी। बहुत चेष्टा करनेपर भी वे मधुर-भावको नहीं अपना पा रहे थे। उनका सख्य-भाव दिनपर दिन और बढ़ होता जा रहा था। चिन्ता यह थी कि गुरुदेवकी आज्ञाके विरुद्ध सख्य-रसकी उपासनामें क्या उन्हें सफलता मिल सकेगी। एक दिन जब उन्हें गुरुदेवके वृन्दावन आगमनका सम्वाद मिल चुका था, वे उनसे इस समस्याका समाधान करानेके उद्देश्यसे वृन्दावन चल पड़े। वृन्दावनके निकट मार्गमें उन्हें एक कागज पड़ा दीखा। प्रभुकी प्रेरणासे उन्होंने उसे उठा लिया। खोलकर देखा, तो उसमें उनकी समस्याके उनके भावानुकूल समाधानका स्पष्ट इंगित था। उसे पढ़ उनका हृदय भर आया। नेत्रोंमें अश्रुधारा वह निकली। उसी भाव-विभोर अवस्थामें उन्होंने गुरुदेवके निकट अपनी स्थितिका और कागज द्वारा प्राप्त उम दैवी इंगितका वर्णन करते हुए उनसे आवश्यक निर्देशकी प्रार्थना की। गुरुदेवने सख्य-भावमें उनकी स्वाभाविक रुचि देख सहर्ष उस भावकी उपासनाके लिए आज्ञा दे दी।

तबसे दिन-प्रतिदिन उनकी भजनमें तल्लीनता बढ़ती गयी। जन्म-मृत्यु-मन्तरके अपने सखा श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए उनके प्राण छटपटाने लगे। हर समय उसकी यादमें अश्रु बहाते रहते। कब सोते, कब जागते, कोई न जानता; क्योंकि सन्ध्यांकालके एक-दो घण्टेका समय छोड़ और किसी समय उनके पाम कोई न जा पाता। कई बार लोग कौतूहलवश जब मधिरात्रिमें उनकी कुटियापर गये, तो देखा कि वे नहीं हैं और कहीं दूर जङ्गलसे उनके कृष्ण-विरहमें रोदन करनेकी आवाज आ रही है। एक बार उनके एक अनन्य भक्त श्रीरामचरणदासने उस आवाजका अनुसरण करते ए जंगलमें प्रवेश किया, तो देखा कि वे अपने दोनों हाथोंमें एक वृक्षकी ल पकड़कर गद्गद कण्ठसे एक श्लोक गा रहे हैं, जिसकी प्रथम पंक्ति थी—

‘श्यामेन साकं गदां चारणाय मातस्तथा प्रथयामि वीनः।’

अर्थात्, हे सात यशोदा ! मैं दीन भावसे तुमसे प्रार्थना करता हूँ । मुझे श्यामसुन्दरके साथ गोचारणकी आज्ञा प्रदान करो ।

इस प्रकारकी उनकी दिव्योन्मादकी अवस्था कई वर्ष रही । अन्तमें एक दिन नन्दग्राममें जब वे श्रीकृष्णचन्द्रके मन्दिरमें उनके दर्शन करते हुए उन्हें खरी-खोटी सुना रहे थे, उन्होंने देखा कि श्रीकृष्णचन्द्र अपनी दिव्य श्यामकान्ति बिखेरते हुए मन्दिरसे निकलकर बाहर आये और थोड़ी देरसे वापस जाकर पुजारीसे बोले—‘जा बाबाजी मोते छेड़खानी करे है । जाको खायवेकी रोटी दै दे ।’

बस अब भक्त और भगवान्की परस्पर छेड़-छाड़ आरम्भ हो गयी । इसी समय कृष्णानन्दजीकी ग्वारिया बाबासे सँथी हो गयी । ग्वारिया बान्ना भी सद्य-भावके एक सिद्ध महात्मा थे । उस समय वे रंगजीके मन्दिरके पूर्वी फाटकके ऊपरवाले कमरेमें रहते थे । कृष्णानन्दजी भी वहाँ जाकर उनके साथ रहने लगे । दोनों सखाओंकी खूब घुटतो । दोनों प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त होते हुए भी बालकृष्णके बाल-सखा होनेका अभिमान करते । दोनों एक अनिवचनीय भाव-जगत्में विचरते हुए कृष्णचन्द्रके साथ तरह-तरहके लीला रंगमें खोये रहते । एक दिन ग्वारिया बाबाने कृष्णानन्दजीसे कहा—‘नन्दबाबाने आज्ञा की है पाठशालामें पढ़ने जानेकी । उन्होंने कहा है—‘तुम लोग कृष्णके साथ मिलकर बहुत ऊँधम करते हो । इसलिए पाठशाला जाय करो । तो चलो पाठशाला चला करें, नहीं तो बाबा मारेंगे ।’ दोनों वृन्दावनके ‘प्रेम सहाविद्यालय’ की प्रथम कक्षामें जाकर बैठने लगे । उस समय कृष्णानन्दजीका पाण्डित्य न जाने कहाँ लुप्त हो गया । जो बड़े-अपण्डितोंकी वेद-वेदान्त सम्बन्धी शङ्काओंका समाधान करते थे, वे ग्वारिया बाबाके साथ अ, आ, इ, ई पढ़नेमें लग गये । यह क्रम तबतक चलता रहा जबतक दोनोंको इस भावमें स्थिति रही । विद्यालयके अध्यापक दोनों सहात्माओंसे भली-भाँति परिचित थे । इसलिए वे उनके इस लीलारंग सहयोग देते रहे ।

भाव-जगत्की लीलाएँ साधारण लोगोंके ससझनेकी नहीं होतीं । भले हो इन्हें नाटक समझें, पर भावुक भक्तोंके लिए इसमें नाटककी गति भी नहीं होती । श्रीरामकृष्ण परमहंस गोपालेर माँको देख अपने व्यक्तित्ववश भूल जाते थे । वे बालमुलभ भावसे उनकी गोदीमें जा बैठते थे और उन खानेकी तरह-तरहकी चीजोंकी फरमाइश करने लगते थे ।

प्राणगोपाल गोस्वामीने आशा की थी कि स्वामी कृष्णानन्दजी जैसे सुयोग्य शिष्य द्वारा जगत्में भक्तिका प्रचार होगा और अनेकों नास्तिक और अधर्मी लोगोंका उद्धार होगा। उन्हें यह देखकर चिन्ता ही गयी कि वे ग्वारिया बाबाके साथ भाव-समुद्रमें निरन्तर डूबे रहकर इस लक्ष्यसे दूर होते जा रहे हैं। उन्होंने एक दिन उन्हें अपने निकट बुलाकर आज्ञा की— 'तुम्हें प्रभुकी कृपासे जो मिला है, उसका दूसरे लोगोंमें बाँटकर उपभोग करो। जगत्में कृष्ण-भक्ति और कीर्तनका प्रचार करो।'

उन्होंने गुरुदेवकी आज्ञाका पालन करनेका निश्चय किया। पर स्वतन्त्र रूपसे प्रचार करनेमें उनके सामने एक बहुत बड़ी बाधा थी। उन्होंने सङ्कल्प कर रखा था यथासम्भव किसी स्त्रीका मुख न देखनेका। वर्षोंसे वे इस सङ्कल्पको निभाते आ रहे थे। उनकी कुटियापर स्त्रियोंको आना मना था। वे जब मधुकरीको जाते, तो सिरपर कपड़ा डालकर निगाह नीची किये जाते।

एक दैवी घटनाके कारण उन्हें अपना सङ्कल्प तोड़ना पड़ा। घटना इस प्रकार है। हिंडौल ग्रामके निकट नगला लक्ष्मणपुरमें श्रीलालारामजीकी पुत्री श्रीमती देवा ग्यारह वर्षकी अवस्थामें विधवा हो गयी थी। वह मन-ही-मन स्वामी कृष्णानन्दजीको गुरु मानकर तन-मनसे ठाकुर सेवामें लगी रहती थी। पर गुरुजीके दर्शन न कर सकनेके कारण वह बहुत दुःखी थी। लोगोंके बहुत आग्रह करनेपर स्वामीजीने एक कागजपर महामन्त्र लिखकर उसका जप करने और सख्य-भावसे श्रीकृष्णका चिन्तन करनेको उमे कहला भेजा। वह तदनुसार जप और चिन्तन करने लगी। पर उसने यह प्रण कर लिया कि जबतक गुरुजीके दर्शन न होंगे, सूर्यके दर्शन नहीं करूँगी। वह प्रातः ४ बजेमें अपनी भजन कुटीमें बैठ जाती और सूर्यास्ततक भजन करती रहती। तीन वर्ष इस प्रकार बीत गये। पर गुरुदेवके दर्शन न हुए। अन्तमें उसने अन्न-जल त्याग दिया। नौ दिन हो गये बिना अन्न-जल ग्रहण किये। तब कृष्णानन्दजीको दाऊजीका दिव्य सन्देश प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप उन्हें स्त्रीका मुख न देखनेका सङ्कल्प त्यागकर उसे दर्शन देने पड़े।

थोड़े ही दिनोंमें उस लड़कीका सख्य-भाव सिद्ध हो गया। उसकी ल-चाल, रहन-सहन सब कुछ श्रीकृष्णके सखाके समान हो गया। लोग

उसे 'भैया' कहकर पुकारने लगे। श्रीकृष्ण भैयाके साथ बातें करते, खेलते-कूदते और भाँति-भाँतिकी खीलाएँ करते।

भैयाका पार्थिव शरीर श्रीकृष्णके दिव्य सान्निध्यको कबतक झेल सक्ता था। उसकी शारीरिक अवस्था दिन पर दिन खोचनीय होती गयी। अन्तमें एक दिन जब वह मूर्च्छित अवस्थामें गुरुदेवकी गोदमें सिर रखे लेटा हुआ था, उसने एकदम आँखें खोलकर गुरुजीकी ओर देखा और कहा— 'भैया ! चलो चलें। देखो राम-कृष्णादि सखा बुलाने आये हैं। गुरुदेवने अश्रु-गद्गद कण्ठसे कहा— 'भैया, तुम चलो। मैं पीछे आऊँगा।' गुरुदेवकी आज्ञा प्राप्त करते ही वह राम-कृष्णके साथ उनके दिव्य धाममें प्रवेश कर गया।

स्वामीजीने भैयासे उसका अनुगमन करनेको कहा था। पर ऐसा करनेको अभी उन्हें गुरुदेवकी आज्ञा नहीं थी। उन्हें उनकी आज्ञानुसार जगतके कल्याणके लिए कुछ करना था। वे इस कार्यमें जुट गये। गाँव-गाँवमें जाकर कीर्तनका प्रचार किया। अद्वैतवाद, आर्यसमाज और नास्तिक मतोंका खण्डनकर वहाँ वैष्णव-धर्मकी जड़ सुदृढ़ की। उनके गौरकान्तियुक्त प्रभावशाली वपु, विद्या, वैराग्य और भक्ति-भावसे आकर्षित ही अनेकों लोगोंने उनका अनुगत्य स्वीकार किया। आज भी महामण्डलेश्वर श्रीरामदास शास्त्री तथा महाकवि श्रीबनमालीदास शास्त्री जैसे बहुत-से विद्वान और गणमान्य व्यक्ति उनके शिष्य हैं।

प्रचारके उद्देश्यसे उन्होंने बहुत-से ग्रंथोंकी रचना भी की, जिनमें-से उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. वैदिक प्रमाण-पत्रिका, २. भक्ति रत्नावली, ३. श्रीमद्भगवत-तत्त्व-विमर्श, ४. श्रीरामकृष्ण-लीलामृत, ५. अद्वैत-भेदक-प्रश्नावली, ६. आर्यसमाज-मत-समीक्षा, ७. भक्ति-सिद्धान्त-विवेचन, ८. श्रीमद्भगवतगीता (विस्तृत हिन्दी टीका सहित)।

इतना सब कर चुकनेपर उन्होंने भी अपनी पूर्वघोषणाके अनुसार मन् १९४१ की फाल्गुन कृष्ण सप्तमीके दिन रात्रिके ठीक १२ बजे 'हरेकृष्ण' उच्चारण करते हुए प्रसन्न मुद्रामें राम-कृष्णके धाममें प्रवेश किया।